VYAWHARIK GYAN

MAHATMA GANDHI

व्यावहारिक ज्ञान

(यंग इण्डियाके लेखोंका संग्रह)

लेखक—

महात्मा गांधी
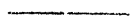
मिलनेका पता—

कलकत्ता पुस्तक भण्डार

२७१, ए०, हरिसन रोड, कलकत्ता।

मूल्य सजिल्द २॥)

प्रकाशक—
राधाकृष्ण नेवटिया
मन्त्री
बड़ाबाजार कुमार सभा
२६३।२ हरिसन रोड, कलकत्ता ।

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका,
"हनुमान प्रेस"
नं० ३, माधोकृष्टो सेठ लेन,
(बहरापट्टी) कलकत्ता

विषय-सूची

असहयोग कार्यक्रम

३०७--७८९

४—स्वदेशी

५—बहिष्कार

६—हिन्दू मुस्लिम एकता

प्रकाशकका निवेदन

सुलभ साहित्य सीरीजकी दूसरी संख्या 'यंग इण्डिया' का दूसरा भाग पाठकोंकी सेवामें उपस्थित है। प्रथम भाग प्रकाशित करनेके बाद तीन मास तक हमें पाठकोंको दूसरे भागके लिये ठहरना पड़ा। इसका हमें हार्दिक खेद है। पर इसमें हमारा बहुत कम दोष है। अपना निजका छापाखाना न होनेसे जिन कठिनाइयोंका सामना किसी प्रकाशकको करना पड़ता है उससे हम रत्ती भर भी बरी न थे। यही कारण है कि हर तरहसे तैयार रहकर भी हम आजके पहले इस भागको पाठकोंकी सेवामें नहीं उपस्थित कर सके।

पत्र पत्रिकाओंने प्रथम भागकी समालोचनायें जिन शब्दोंमें की हैं उन्हें पढ़नेसे व्यक्त होता है कि या तो उन्हें कुछ भ्रम हो गया है या वे ठीक समझ नहीं सकी हैं। एकाध पत्रोंने तो स्पष्ट ही लिख दिया है कि इसका क्रम स्पष्ट नहीं है। इस शंकाका निवारण करनेके लिये हम यहां पर दो शब्द लिख देना उचित समझते हैं।

यंग इण्डिया तीन भागोंमें समाप्त है। इसमें उन्हीं लेखोंका समावेश है जिन्हें महात्माजीने लिखा है अर्थात् जिस दिनसे महात्माजीने इस पत्रका भार अपने हाथमें लिया तबसे लेकर उनकी जेलयात्रा तकका संग्रह इसमें है। लोगोंकी सुविधाके लिये पूरा संग्रह दस प्रकरणोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें तीन प्रकरण अर्थात् सत्याग्रह, पंजाब और खिलाफत प्रकाशित हो चुका है, इस भागमें असहयोग और असहयोग कार्यक्रम दो प्रकरणका समावेश है तथा तीसरे भागमें (

दूसरेके साथ ही प्रकाशित हो रहा है) असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा, स्वराज्य कांग्रेस तथा महात्माजीपर राज-विद्रोहका अभियोग ये प्रकरण आये हैं। लेखोंका क्रम प्रसं-गानुसार रखा गया है जिससे एक विषयपर महात्माजीके विचारोंका क्रमबद्ध ज्ञान लोगोंको हो जाय।

इतनी मालाओंके होते हुए भी हमने सुलभ साहित्य सीरीज-को आरम्भ क्यों किया, इसका संक्षिप्त परिचय हमने प्रथम भागके निवेदनमें दे दिया था। हिन्दी साहित्यकी तरफ हिन्दी भाषी जनताकी रुचि ज्यों ज्यों अधिक बढ़ती जा रही है त्यों त्यों प्रकाशक पुस्तकोंका मूल्य भी अधिक बढ़ाते जा रहे हैं। परिणाम यह हो रहा है कि साहित्यका प्रचार जिस तरह होना चाहिये नहीं हो रहा है। इसी कमीको पूरी करनेके लिये हमने इस सीरीजको जन्म दिया कि इसके द्वारा मूल लागतपर पुस्तकें निकालकर हम उन गरीबोंकी सेवा कर सकेंगे, उनकी तृष्णा मिटा सकेंगे जो द्रव्यके अभावके कारण पुस्तकें नहीं खरीद सकते। हमारी पुस्तकोंकी जिस तरह खपत हुई है उसे देखते हुए हमने यही अनुमान किया कि सस्ते साहित्यकी अधिक आवश्यकता है। यदि पुस्तकोंका मूल्य और भी सस्ता कर दिया जाय तो अधिककी खपत हो सकती है। हम भी हृदयसे यही चाहते हैं कि हमें इससे भी सस्ती पुस्तकें निकालें, पर यह हमारी शक्तिसे बाहर है। इससे सस्ती पुस्तकें निकल अवश्य सकती हैं पर पाठकोंकी सहायता विना यह असम्भव है। यदि वे चाहें और चेष्टा करें तो हमारी सीरीजकी पुस्त-कोंका मूल्य और भी कम हो सकता है।

बात यह है कि स्थायी ग्राहकोंके अभावमें मूल लागतपर पुस्तक निकालकर भी हमें बेचनेवालोंको पूरा कमीशन देना

पड़ता है। कमीशनकी रकम मूल्यमें जोड़ देनेसे पुस्तककी कीमत काफी बढ़ जाती है। दूसरे स्थायी ग्राहकोंके अभावमें हम परिमित संख्यामें ही पुस्तकें छपाते हैं जिससे व्यय भी अधिक पड़ता है। इससे यदि इस सीरीजके स्थायी ग्राहक काफी संख्यामें हो जायं तो हम पुस्तकोंका मूल्य दो तरहसे घटा सकेंगे। एक तो अधिक प्रतियां छपावेंगे तो व्यय कम पड़ेगा और दूसरे कमीशनकी रकमका भार कम कर देनेसे भी मूल्य घट जायगा। यह पाठकोंके हाथकी बात है। यदि वे वास्तवमें इस सीरीजको उपयोगी समझते हैं और इसके द्वारा हिन्दी संसारके लाभ होनेकी संभावना प्रतीत करते हैं तो उन्हें इस सीरीजके आज ही ग्राहक बन जाना चाहिये जिससे चौथी संख्यामें ही हम यह सार्थक कर सकें कि अवसर पाकर हिन्दीके पाठक उदासीन बैठे रहनेवालोंमें नहीं हैं। वे मातृभाषा और अपने साहित्यको अपनानेके लिये सदा तैयार हैं। स्थायी ग्राहकोंके नियम अन्यत्र दिये गये हैं।

अन्तमें हम पूरी आशा करते हैं कि हिन्दीके प्रेमी पाठक पूर्व उदारताके साथ इस सीरीजके ग्रन्थोंको अपनावेंगे, हमारा उत्साह बढ़ावेंगे और इस सीरीजको अमर कर देंगे।

विनीत—
राधाकृष्ण नेवटिया

स्थायी ग्राहकोंकी आवश्यकता

इतनी सस्ती पुस्तक प्रकाशित करनेपर भी हमें स्थायी ग्राहकों की खोज है, इससे कदाचित लोग चकित होंगे। इसलिये हम यहांपर यह लिख देना चाहते हैं कि हम स्थायी ग्राहक क्यों चाहते हैं। मूल लागतपर पुस्तक निकालकर भी हमको सन्तोष नहीं हो रहा है, क्योंकि पुस्तक बेचनेवाले विना भरपूर कमीशन-के किताब बेचना नहीं चाहते। इच्छा न रहनेपर भी हमें बाध्य होकर कमीशनका यह भार पाठकोंके सिरपर मढ़ना पडता है। यदि उचित संख्यामें हमारी सीरीजके स्थायी ग्राहक हो जायं तो हम मूल्यमें और सुविधा कर सकेंगे।

(१) स्थायी ग्राहकोंको पुस्तककी कीमत पर ≈) रुपये कमीशन दिया जायगा।

(२) स्थायी ग्राहकको मालाकी पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार रहेगा पर ग्राहक होनेके बादकी प्रकाशित सभी पुस्तकें लेनी पड़ेगी।

(३) सालमें प्रायः ६ पुस्तकें प्रकाशित की जायगी। इससे अधिक पुस्तकें भी प्रकाशित हो सकती हैं।

(४) प्रकाशित होनेपर पुस्तकोंकी सूचना मात्र दे दी जायगी सूचनाके १५ दिन बाद वी० पी० रवाना कर दी जायगी।

(५) जो लोग वी० पी० वापिस करेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे निकाल दिया जायगा। फिर ग्राहक होनेके लिये उन्हें लौटाई हुई वी० पी० का खर्च देना पड़ेगा और उसे स्वीकार करना होगा।

(६) स्थायी ग्राहक श्रेणीमें नाम लिखानेके लिये ॥) प्रवेश फीस देना पड़ेगा।
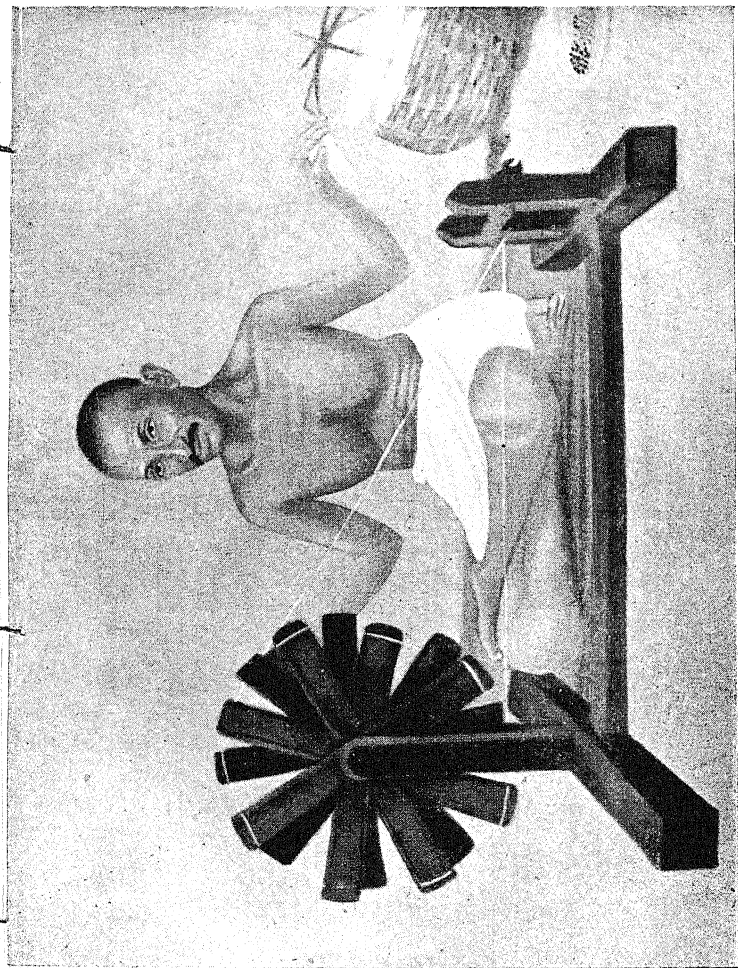
सूतके धागेमें स्वराज्य

तुम हमारे हाथपर खादी रख दो मैं तुम्हारे हाथपर स्वराज्य रख दूंगा।"

असहयोग या तर्कें तअल्लुक

—:०:—

आजकल असहयोगके सम्बन्धमें बड़ी चर्चा हो रही है। इस- लिये असहयोग क्या है और यह हथियार क्यों उठाया जा रहा है इसपर मैं कुछ कहूंगा। इस समय देशके सामने दो प्रश्न उपस्थित हैं जिनमें पहला और सबसे प्रधान प्रश्न खिलाफतका है। इससे मुसलमानोंका दिल टुकड़े टुकड़े हो गया है। इङ्ग- लैंडके नामपर, ब्रिटिश अधिकारियोंके विचारपूर्वक दिये हुए बचनोंपर पानी फेर दिया गया है। भारतके मुसलमानोंसे किये हुए वादेके जोरपर भारतसे जो मदद ली गई थी वे वादे तोड़ दिये गये हैं। इसलिये आज महान इस्लाम धर्म जोखिममें पड़ रहा है। मुसलमान उचित रीतिसे यह मानते हैं कि जबतक वादे पूरे नहीं किये जाते तबतक उनके लिये ब्रिटिशके प्रति राजभक्त बने रहना असंभव है। जब यह सवाल सामने आता है कि ब्रिटिशका भक्त रहना या पैगम्बरका, तब मुसलमान पलभरकी देर किये विना पैगम्बरके भक्त बनेंगे। इसलिये मुसलमानोंने विना कुछ छिपाये निस्सङ्कोच भावसे दुनियाभरको यह जता दिया है कि यदि उनसे किये हुए वादे पूरे न किये गये, यदि भारतके सात करोड़ मुसलमानोंके भावोंका मान न रखा गया तो वे राजभक्त नहीं रह सकते। अब सवाल बाकी भारतवासि-

योंका है कि वे इस समय अपने मुसलमान भाइयोंके साथ खड़े रहकर अपना पड़ोसीपनका धर्म पालन करेंगे या नहीं ? विश्वास, बन्धुभाव और मित्रता दिखानेके साथ ही मुसलमान हिन्दुओंके भाई हैं—जिसकी दुहाई हम वर्षोंसे देते आ रहे हैं—इसका सच्चा सबूत देनेका यही मौका है। ऐसा मौका फिर सहजमें नहीं मिल सकता। यदि हिन्दू, अङ्गरेजोंसे मुसलमानोंको ज्यादा नजदीक समझते हों, यदि मुसलमानोंकी मांग न्याय और धर्मके पायेपर होनेमें आप निःशङ्क हों तो मैं आपसे कहूंगा कि जबतक मुसलमानोंकी मांग न्यायानुकूल है और उनके उपाय स्पष्ट और भारतके लिये हानिकर नहीं हैं तबतक मुसलमान भाइयोंका साथ देना आपका कर्त्तव्य है। मुसलमानोंने इन निर्दोष साधनोंकी शर्त्तोंको मान लिया है और वे विना संकोच इन साधनोंको काममें ला सकेंगे यह सोचनेके बाद आपकी मदद लेनेको तैयार हुए हैं। ऐसी स्थितिमें हिन्दू मुसलमानोंको मिलकर सारे युरोपकी क्रिश्चियन राजसत्ताका प्रतिकार करना चाहिये और उनसे साफ कह देना चाहिये कि भारत निर्बल होनेपर भी स्वाभिमानकी रक्षा कर सकता है। वह आज भी अपने धर्म और मानपर मरना जानता है। खिलाफतके यही माने हैं। दूसरा सवाल

पंजाब

का लीजिये। पञ्जाबके मामलेने भारतके हृदयमें जैसी भयानक चोट पहुंचाई है वैसी चोट गत सौ वर्षोंमें कभी नहीं लगी।

१८५७ के बलवेको मैं नहीं भूलता। इस बलवेमें भारतको चाहे जितना ही कष्ट सहना पड़ा परन्तु रौलट कानूनसे भारतका जो अपमान करनेकी चेष्टा की गई है और इस कानूनके बन जानेके बाद भारतका जो अपमान किया गया है उसका नमूना अपने सारे इतिहासमें कहीं नहीं मिल सकता। इस मामलेमें ब्रिटिश-प्रजासे न्याय पानेके लिये आपको कोई राह ढूंढनी पड़ेगी। ब्रिटिश पार्लिमेंट, उनकी लार्ड सभा, मि० मांटेगू तथा भारतके बड़े लाट, इन सबको खिलाफत और पञ्जाबके सम्बन्धमें हमारे भावोंकी पूरी खबर है। पार्लिमेंटकी उपरोक्त दोनों सभाओंकी चर्चाने और मि० मांटेगू और बड़े लाट अपने कामोंसे अच्छी तरह यह बता दिया है कि वे भारतके साथ न्याय करनेको तैयार नहीं हैं। अपने नेताओंको इस समय इस कठिनाईमेंसे कोई रास्ता निकालना चाहिये और जबतक हमें अंगरेज अधिकारियोंकी बराबरीका स्वत्व नहीं प्राप्त होता, और यह जबतक आप साबित नहीं कर देते कि उनके हाथोंसे हम अपने मानकी रक्षा कर सकते हैं तबतक उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध या भाई चारा रखा ही नहीं जा सकता। इसी लिये मैं असहयोगका सुन्दर और सच्चा मार्ग बतला रहा हूं। कुछ लोगोंका कहना है कि

असहयोग गैर कानूनी है

मैं इसे नहीं मानता। मैं तो कहता हूं कि असहयोग न्यायानुमोदित और धर्मसम्मत मार्ग है, प्रत्येक मनुष्य इसको ग्रहण कर

सकता है और यह सर्वथा कानूनी है। ब्रिटिश साम्राज्यके एक महान भक्तने कहा है कि ब्रिटिश व्यवस्थाके अनुसार तो सफल राजविप्लवतक पूर्ण रूपसे वैध है और अपने कथनके समर्थनमें उसने ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण दिये हैं जिन्हें मैं भी इनकार करनेमें असमर्थ हूं। तथापि मैं सफल या असफल विप्लवको वैध कहनेका बिलकुल दावा नहीं करता। कारण, बलवेमें खून खराबीका स्थान है। मैं पहलेसे ही भारतको कहता आया हूं कि खून खराबी चाहे यूरोपके लिये कितनी ही फलदायक हो परन्तु हमारे कामको कदापि सिद्ध नहीं कर सकती। मेरे भाई शौकतअलीकी खून खराबीमें श्रद्धा है। यदि उनसे बन पड़ता तो वे अब तक ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध तलवार खींच चुके होते, उनमें मनुष्योचित वीरता भी है और ब्रिटिश साम्राज्यका सामना करनेकी बुद्धि। परन्तु सच्चे सिपाहीकी दृष्टिसे आज वे भारतमें तलवारसे काम लेना असम्भव समझ मेरे पक्षको मानकर मेरी साधारण सहायता स्वीकार करनेको तैयार हुए हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जबतक मैं उनके साथ हूं तब तक अङ्गरेजोंकी तो बात ही क्या वे दुनियाके किसी भी मनुष्यके विरुद्ध खूनाखराबीका विचार न करेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वे अपने वचन सच्चे धार्म्मिककी भाँति पालन कर रहे हैं। सच्ची ईमानदारीके साथ असहयोगके मार्ग पर चल रहे हैं और यही खूनखराबीसे रहित असहयोगका मार्ग पकड़नेकी मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूं।

मैं आपसे कहता हूं कि भारतमें हम लोगोंके अन्दर आज भाई शौकत अलीसे बढ़कर दूसरा कोई सच्चा सिपाही नहीं है। यदि कभी तलवार उठानेका मौक़ा आया तो आप देखेंगे कि वे कैसी तलवार उठा सकते हैं। साथही मुझे भी उस समय आप हिमालयके जङ्गलोंकी तरफ जाते देखेंगे। जिस दिन भारत तलवारका न्याय मान लेगा उस दिन मेरा भारतीय जीवन समाप्त हो जायगा। मैं मानता हूं कि भारतको प्रभुकी यह विशेष आज्ञा है, इसलिये, और इसलिये कि भारतके ऋषियोंने सैकड़ों वर्षोंके अनुभवके बाद इस महान सत्यको ढूंढ़ निकाला था कि सच्चा न्याय पशुबलपर नहीं परन्तु आत्मसंयम-पर, यज्ञपर और आत्मबलिदानपर अवलम्बित है। मैं पशुबल-के सिद्धान्तसे अलग हूं और मरते दमतक अलग रहूंगा। इसीसे मैं आपको समझाता हूं कि जहां भाई शौकतअलीने खूनखराबीमें श्रद्धा रखते हुए भी असहयोगको दुर्बलके अस्त्रकी तरह मान लिया है वहां मैं इसे सबलसे भी सबल मानते हुए यह मानता हूं कि खाली हाथ जो दुश्मनके सामने अपनी छाती खोलकर मरनेका साहस कर सकता है वह सबसे बढ़कर वीर सिपाही है। यह बिना खूनखराबीका असहयोग है और इससे मैं अपने देशके विद्वान देश बन्धुओंको समझा रहा हूं कि गैर कानूनी नहीं है।

मैं तो उलटे यह पूछता हूं कि आज ब्रिटिश सरकारसे यह कहनेमें कि "मैं आपकी सेवा करनेसे इनकार करता हूं" क्या

गैर कानूनी है ? हमारे माननीय सभापति महोदय अपनी सारी उपाधियाँ विनयपूर्वक सरकारको वापस लौटा दें तो इसमें क्या गैर कानूनी है ? सरकारी या सरकारी सहायता लेनेवाले स्कूलोंमेंसे अपने लड़कोंको निकाल लेना, उनके मां बापके लिये क्यों अवैध है ? किसी भी वकीलका यह कहना कि 'जिस कानूनका उपयोग मेरी उन्नतिके लिये नहीं पर अधोगतिके लिये होता है ऐसे कानूनकी सत्ताका पालन मैं नहीं कर सकता" क्या गैर कानूनी है ? किसी सिविलसर्वेण्ट या जजका यह कहना कि "जो सरकार सारी प्रजाकी इच्छाका सम्मान नहीं करना चाहती उस सरकारकी नौकरी करनेसे मैं बाज़ आता हूं" क्या अवैध है ? मैं आपसे पूछता हूं कि किसी पुलिस या सिपाहीके लिये अपनेही भाइयोंको अपमानित करनेवाली सरकारकी सेवा करनेके कर्त्तव्यसे हटकर नौकरीसे इस्तीफा देना क्या अवैध है ? मैं कृष्णा ज़िलेके किसानोंसे जाकर कहूं कि तुम जो कर दे रहे हो उसका उपयोग सरकार तुम्हारी उन्नतिके लिये नहीं पर तुम्हें निर्बल बनानेके लिये करे तो तुम्हारे लिये बेहतर है कि तुम कर न दो तो इसमें क्या अवैध है ? मैं मानता हूं और विनयपूर्वक कहता हूं कि इसमें कुछ भी गैर कानूनी नहीं है। मैंने इसकी एक एक बात अपने जीवनमें करके आज़मा ली है और अबतक किसीने मुझे इसके उचित होनेके सम्बन्धमें प्रश्न नहीं किया। खेड़ेमें ७ लाख किसानोंमें मैं मौजूद

था, उन सबने कर देनेसे इनकार किया था और इसमें सारे भारतने मेरा समर्थन किया था। किसीको यह अवैध नहीं जंचा; मैं कहता हूं कि असहयोगके सारे पंथमें कहीं भी अवैधता नहीं है। सबसे बढ़कर अवैधता तो इस कानूनी सरकारके नीचे—शानदार व्यवस्थावाली ब्रिटिश प्रजाकी हुकूमतके नीचे भारतीय प्रजाके निर्बल बनने—पेटके बल चलनेमें भरी हुई है। गैरकानूनी तो यह है कि भारतकी प्रजा पल पलमें होनेवाले अपमानको चुपचाप बरदाश्त करती रहे। अवैध तो हिन्दुस्तानके सात करोड़ मुसलमानोंको अपने धर्मपर गुजरे हुए भयानक अन्यायको सह लेना है। अवैधता तो सारे हिन्दुस्तानके गूंगे बनकर बैठे टकटकी लगाये देखनेमें और जिस अन्यायी सरकारने पञ्जाबकी इज्जतको मिट्टीमें मिला दिया उसके साथ सहयोग करनेमें है। मैं अपने प्रत्येक देश भाईसे कहूंगा कि जो तुममें ज़रा भी आत्माभिमान हो, जो तुम्हें अपनी आबरूकी फिक्र हो, जो तुम अपनेको अपने महान पुरुषाओंकी पीढ़ियोंसे चली आयी उच्च परम्पराका वारिस और रक्षक मानते हो तो वर्त्तमान सरकारके समान अन्यायी सरकारके साथ असहयोग न करना तुम्हारे लिये सबसे अधिक अपमानजनक बात है। जब तक सरकार अन्याय करती है तबतक वह मुझे अपना सबसे प्रबल शत्रु समझ सकती है। अभी गत वर्ष ही अमृतसरकी कांग्रेसके समय—मैं ईश्वरको साक्षी रखकर कह रहा हूं—मैंने इस सरकारके साथ सहयोग करनेके लिये आपके

पैरों पड़कर प्रार्थना की थी। वह इस श्रद्धासे कि तबतक मुझे पूरी आशा थी कि ब्रिटिश मन्त्रीगण, जो साधारण बुद्धिमानवर्ग हैं—मुसलमानोंके भावोंपर ध्यान देंगे, पञ्जाबके अत्याचारोंकी पूरी भरपाई करेंगे और इससे मैंने भरी कांग्रेसमें बार बार आग्रहके साथ विनय की थी कि सरकारने मित्रताके लिये हाथ बढ़ाया है हमको भी अपनी उच्चताकी तरफ देखकर श्रद्धाके साथ हाथ बढ़ाना चाहिये। मैं मानता था कि सम्राट्की घोषणाके रूपमें सरकार सच्चे दिलसे मित्रताके लिये हाथ बढ़ा रही है इसीसे प्रजासे सहयोगके पक्षमें रहनेको प्रार्थना की। परन्तु ब्रिटिश अधिकारियोंने अपने हाथों मेरी श्रद्धाको धूलमें मिला दिया और वही मैं, आज आपके सामने केवल कौंसिलोंमें जानेके लिये ही नहीं पर सरकारके साथ सच्चा, प्रभावशाली और दुनियाकी जबरदस्तसे जबरदस्त सरकारके सामने टिक सकनेवाला ज़ोरदार असहयोग करनेको कह रहा हूं। इस समय मैं यह आपसे मांग रहा हूं। जबतक हमको न्याय नहीं मिलता, जबतक हम नाखुश नौकरशाहीसे अपने स्वाभिमानकी रक्षा नहीं कर सकते तबतक सहयोग हो ही कैसे सकता है? अपने शास्त्रोंका कथन है और मैं भी अपने शास्त्र और धर्माचार्योंके प्रति पूर्ण सम्मान दिखलाता हुआ कहता हूं कि—अन्यायका न्यायसे—अन्यायी और न्याय प्रिय मनुष्यसे—सत्य और झूठसे सहयोग कदापि नहीं होता। जबतक सरकार आपके मान और प्रतिष्ठाकी रक्षक है तबतक उसके साथ सहयोग करना आपका

धर्म है परन्तु जब वही सरकार आपकी इज्जतको बचानेके बदले लूटने लगती है तब वैसी सरकारके साथ सहयोग नहीं बल्कि असहयोग करना भी उतना ही जरूरी धर्म है।

असहयोग और स्पेशल कांग्रेस

मुझसे कहा जाता है कि प्रजाकी प्रतिनिधि स्वरूप स्पेशल कांग्रेसतक मुझे बाट देखनी चाहिये था। मैं जानता हूं कि कांग्रेस प्रजाकी आवाज है। अगर यह सवाल सिर्फ मेरे अपने तक होता तो मैं अनन्त कालतक राह देखनेमें नाहीं न करता। पर यहां तो मेरे हाथमें मुसलमान मजहबकी एक पवित्र धरोहर सौंपी हुई थी। मैं मुसलमान जातिका सलाहकार था और इस समय उनकी इज्जत मेरे हाथमें सौंपी हुई है! मैं अन्तः-करणकी ध्वनिको छोड़कर किसी भी संस्थाके निर्णयकी बाट देखनेकी सलाह उन्हें कैसे दे सकता था? मुसलमान थूककर कैसे चाटते, अपने निश्चय किये हुए गम्भीर विचारोंको कैसे बदलते? ईश्वर न करे कि कांग्रेस कहीं इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास कर दे, तब? तब भी मैं मुसलमान भाइयोंसे यही कहूंगा कि वे अपने धर्मको अपमानसे बचानेके लिये अकेले मैदानमें डटे रहें। मुसलमान चाहें तो कांग्रेससे भले ही विनय पूर्वक सहायता मांगें लेकिन मदद मिले या न मिले यह सम्भव नहीं कि वे कांग्रेसकी सहायताके लिये काम रोक दें। व्यर्थकी मारकाट अथवा निर्दोष फिर भी परिणामकारक असहयोग,

ये दो रास्ते उनके लिये खुले हुए थे, उनमेंसे इन्होंने असह-योगका रास्ता चुन लिया है। मैं तो कहूंगा कि जो लोग मेरी तरह असहयोगको पवित्र मानते हैं उनका कर्त्तव्य है कि कांग्रेसकी बाट न देखें, बल्कि कांग्रेसके लिये यह असम्भव कर दें कि वह दूसरे प्रकारका निर्णय कर सके, क्योंकि कांग्रेस उन्हींमेंसे एक बड़े समुदायके सम्मिलित मत प्रगट करनेके साधनके सिवा और क्या है? और, लोग जो एक-मत होकर कांग्रेसमें जायं तो फिर कांग्रेस उनसे भिन्न मत कैसे प्रगट कर सकती है? हां, जो हम पहले मत कायम किये बिना अथवा अपना मत प्रगट करनेमें डरकर किसी मतके बिना ही कांग्रेसमें जाना चाहते हों तो हमें बैठे कांग्रे-सके निर्णयकी बाट देखनी चाहिये। जो निश्चय नहीं कर सकते उनसे मेरा कहना है कि तुम कांग्रेस तक ठहरो लेकिन जिनकी दृष्टिके सामने प्रकाश है जो देख चुके हैं, विचार कर चुके हैं, उनके लिये ठहरना पाप है। कांग्रेस तुम्हें ठहरनेके लिये नहीं कहती, बल्कि तुम्हें अपने विचारानुसार कार्य करते देखनेकी आशा करती है कि जिसमें वह लोगोंके भावोंको ठीक तरहसे परख सके।

कौंसिलोंका बहिष्कार

असहयोगके विभागोंमें सबसे पहला भाग कौंसिलोंका बहिष्कार रखा गया है। बहुतसे मित्र "बहिष्कार" शब्दके

लिये मुझसे झगड़ते हैं। वजह यह है कि मैं पहलेहीसे ब्रिटिश माल या किसी भी मालके बहिष्कार करनेके विरुद्ध हूं। पर वहां बहिष्कार शब्दके मानी और हैं यहां और। मैं पूर्ण विचारके बाद आगामी नई कौंसिलोंके बहिष्कारका मत स्वीकार कर रहा हूं। और वह क्यों? प्रजा—जन समुदाय नेताओंसे अच्छा नेतृत्व चाहती है, दुमानी बातें नहीं चाहती। पहले कौंसिलोंके लिये चुने जाना और फिर वहां सौगन्ध न खाना इससे जनताका नेताओंमें अविश्वास हो जायगा। यह बात लोगोंकी समझमें नहीं आती। उल्टे प्रजामें बुद्धिभेद हो जायगा। मैं आपको इस जालसे बचनेकी सलाह देता हूं। पहले चुने जाकर कौंसिलमें जानेके बाद वहां सौगन्ध लेनेसे इन्कार करनेकी रीति स्वीकार करनेसे हम अपने हाथों देशको बेंच देंगे। आपको बुरा लगेगा, लेकिन मैं खुले हृदयसे कहूंगा कि जितने हिन्दुस्तानी आज कौंसिलमें जाकर सौगन्ध न लेनेकी बात कह रहे हैं, मुझे भरोसा नहीं कि वे ऐसा कर सकेंगे। ऐसा करनेकी इच्छा रखनेवालोंको मैं सावधान कर रहा हूं कि वे अपने लिये तथा उसी प्रकार प्रजाके लिये जाल बुन रहे हैं। और उसमें वे फंसेंगे। यह मेरी अपनी राय है। मैं तो मानता हूं कि प्रजाको ठीक ठीक साफ रास्तेसे ले जाना चाहिये, अगर इस महान जातिके साथ आप दिल्लगी नहीं करना चाहते तो जबतक हिन्दुस्तान पर किया हुआ यह डबल अन्याय दूर नहीं होता तबतक सरकारकी तरफसे चाहे जितनी बड़ी कृपाका

लाभ हो हमें उसे स्वीकार करनेके पहले इस पञ्जाब और खिलाफतके डबल अन्यायकी भरपाई होनी चाहिये। प्राचीन यूरोपमें कहावत थी कि "ग्रीकोंसे होशियार रहना और जब उन्हें हाथमें कोई भेंट लाते देखो तब तो जरूर सचेत हो जाव।" जो प्रधान मन्त्रिमण्डल आज इस्लाम और पञ्जाब पर किये गये अत्याचारोंको दृढ़ करने पर तुला बैठा है उसके हाथकी कोई भेंट कैसे स्वीकार की जा सकती है? उल्टे उनके बिछाये हुए जालसे बचनेके लिये हमें हमेशा सचेत रहना चाहिये। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि नई कौंसिलोंके साथ नखरे करनेका अथवा दूसरे किसी प्रकारके लेन देनका विचार हमें छोड़ ही देना चाहिये।

यह भी कहा जाता है कि हम लोग जो प्रजा पक्षके सच्चे प्रतिनिधि हैं कौंसिलोंमें न गये तो माडरेट लोग जो प्रजा पक्षके सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं कौंसिलोंमें चले जायंगे। मैं इससे सहमत नहीं हूं, मैं नहीं जानता कि माडरेट किसके सच्चे प्रतिनिधि हैं और नैशनलिस्ट किसके हैं। मेरी समझमें अच्छे बुरे दोनोंमें ही हैं। मैं यह भी जानता हूं कि बहुतसे माडरेट हृदयसे मानते हैं कि इस समय असहयोगको स्वीकार करना पाप है। मैं आदर पूर्वक उनसे अलग होता हूं।

उन्हें भी मैं कहता हूं कि जो आप चुनावके लिये खड़े होंगे तो अपने बुने हुए जालमें आप फंसेंगे। पर इसमें मेरी स्थितिमें फरक नहीं पड़ता। जो मैं यह मानता हूं कि हमें कौंसिलोंमें

नहीं जाना चाहिये तो मुझे कमसे कम अपने तक तो इसका अमल करना ही चाहिये। फिर भले ही मेरे बाकी देश भाई कौंसिलके लिये खड़े ही क्यों न हों। यही प्रगट काम करने और प्रजामतके बनानेका मार्ग है। यही सुधार प्राप्ति और धर्म रक्षाका मार्ग है।

यदि यह धर्मकी मर्यादाका सवाल है तो चाहे मैं अकेला ही या बहुतोंमें एक होऊं मुझे अपने सिद्धान्त पर अटल रहना चाहिये। यदि इसमें मेरा मरण भी हो जाय तो वह जीते रहकर अपने आप अपना सिद्धान्त बदलनेसे अच्छा है। मैं बार बार कह रहा हूं कि किसीका भी कौंसिलमें जाना गलतीसे खाली न होगा। यदि एक बार हमने अनुभव कर लिया कि हम इस सरकारसे सहयोग नहीं कर सकते तो हमें चोटीसे आरम्भ करना चाहिये। हम लोग प्रजाके स्वाभाविक अगुआ हैं। आज प्रजाको सहयोगकी सलाह देनेका अधिकार और शक्ति भी हमें मिली हुई है। इसलिये मैं तो बारम्बार यही कहता हूं कि नई कौंसिलोंके लिये किसी भी शर्त्त पर खड़े होना असहयोगकी नीतिके विरुद्ध है।

वकील और असहयोग

मैंने एक दूसरी कठिन समस्या और पेश की है। वकीलोंको वकालत छोड़ देनी चाहिये। सरकार वकीलोंकी मददसे शासन करनेमें जितना काम ले रही है उसे जब मैं जानता हूं

तब दूसरी सलाह दे ही कैसे सकता हूं ? देशमें आन्दोलन करने-वाले वर्त्तमान नेताओंमें अधिकतर वकील ही हैं यह बिलकुल सच है। लेकिन जब सरकारकी प्रवृत्तिको रोकनेकी बात आती है तब मैं जानता हूं कि सरकार अपनी मान मर्यादाकी रक्षाके लिये वकीलोंका मुंह ताकती है, इसीसे मैं अपने वकील भाइयोंको अपनी वकालत छोड़कर सरकारको यह दिखा देनेके लिये समझा रहा हूं कि वे भी बहुत बार अपनी आनरेरी पदवी धारण किये रहनेकी इच्छा नहीं रखते। कारण यह है कि वकील अदालतके आनरेरी अधिकारी समझे जाते हैं और उसी हिसाबसे वे कोर्टके कायदे कानूनके अधीन हैं। यदि वह भी सरकारसे असहयोग त्याग कर देना चाहते हों तो इस आनरेरी पदपर नहीं रह सकते। लेकिन ऐसा होनेपर कायदे और व्यवस्थाकी क्या गति होगी यह प्रश्न किया जाता है। मेरा उत्तर यह है कि आज वकीलदल द्वारा हम अपने कायदे कानून बनावेंगे। हम पंचायती कचहरियां स्थापित करेंगे और अपने देश बन्धुओंको शुद्ध, सादा, निर्मल, घरेलू और स्वदेशी न्याय वितरण करगे। वकीलोंके वकालत छोड़नेका अर्थ यही है।

मा बाप और असहयोग

मैंने प्रजाके सामने एक कठिन प्रश्न और रखा है। बालकोंको स्कूलोंसे उठा लेना, कालेजके छात्रोंको कालेजसे अलग कर लेना और सरकारी तथा सरकारी सहायता लेनेवाली अर्ध सरकारी

पाठशालाओं और कालेजोंको खाली करा देना। दूसरी बात मैं कह हो कैसे सकता हूं? मैं लोगोंके भावोंकी जांच करना चाहता हूं। मुझे देखना है कि मुसलमानोंके हृदयमें घाव कितना गहरा है। यदि उनके हृदयमें घाव बैठा होगा तो वे आंखके इशारेसे समझ जायंगे कि जिस सरकारसे उनका विश्वास उठ गया है उसके द्वारा अपनी सन्तानकी शिक्षाव्यवस्था कितनी अनुचित बात है? जब हम सरकारको किसी प्रकारकी सहायता देना नहीं चाहते तो हम किसी प्रकारकी सहायता ले भी कैसे सकते हैं? मेरी दृष्टिमें तो वर्तमान स्कूल और कालेज सरकारके लिये क्लर्क और नौकर तैयार करनेकी फैक्टरियां मात्र हैं। यदि मैं सरकारसे सहयोग त्याग करना चाहता हूं तो मुझे इन बड़ी बड़ी फैक्टरियोंकी मदद न करनी चाहिये। चाहे जिधरसे सोच देखिए, असहयोगके सिद्धान्तोंका मानना और लड़कोंको सरकारी पाठशालाओंमें पढ़ाते रहना दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

उपाधिधारियोंका कर्त्तव्य

उपाधि और मेडलधारियोंको भी मैंने उपाधियां छोड़ देनेकी सलाह दी है। इस सरकारकी उपाधियां अब कैसे रखी जा सकती हैं? जिस समय हम मानते थे कि हमारी इज्जत आबरू सरकारके हाथमें सुरक्षित है उस समय ये उपाधियां वास्तवमें हमारे लिये मानप्रद थीं। पर आज तो ये मानका नहीं पर लज्जा-

का निदर्शन हैं, क्योंकि हम लोगोंने देख लिया कि इस सरकार-के पास अब न्याय जैसी वस्तु नहीं रही। प्रत्येक उपाधिधारी अपनी उपाधि प्रजाका ट्रस्टी बनकर भोगता है और इसीलिये आज सरकारके साथ सहयोग करनेमें प्रजाकी ओरसे पहली सीढ़ीकी भांति घड़ी भरकी देर या विचार किये विना सरकार-की इन उपाधियोंका त्याग करना धर्म है। मैं अपने मुसलमान-भाइयोंसे कहता हूं कि यदि इस पहले कर्त्तव्यका पालन आप न कर सकेंगे तो आप कुछ भी न कर सकेंगे। इसके सिवा शिक्षित समुदायको एक ओर छोड़कर जैसे क्रान्तिके समय फ्रांसकी प्रजाने राज्यकी लगाम अपने हाथमें ले ली थी वैसे ही यहांकी प्रजाको असहयोगकी लगाम अपने हाथमें लेनी और विजय प्राप्त करनी चाहिए। मैं क्रान्तिका समर्थन नहीं करता, मैं तो प्रगति चाहता हूं। मुझे अव्यवस्थित व्यवस्था नहीं चाहिए। मुझे अन्धाधुन्धी नहीं चाहिए, मुझे तो इस समय व्यवस्था सी दीखने-वाली अन्धाधुन्धमेंसे सच्ची व्यवस्था चाहिए। जो यह व्यवस्था अत्याचारी राज्यकी जुलमी लगामको हथियानेके लिये स्थापित कीहुई व्यवस्था हो तो मेरे मनसे तो वह भी अव्यवस्था ही है। मुझे तो आज अन्यायमेंसे न्याय प्राप्त करना है, इसीसे मैं आप लोगोंके सम्मुख निवृत असहयोग उपस्थित करता हूं यदि इस शान्त पर रामवाण मार्गका रहस्य हम समझ लेंगे तो आप देखेंगे कि हमें किसीको एक कड़ुआ शब्द भी कहनेकी आवश्य-कता न होगी। वे आपके सामने तलवार उठावेंगे पर आपको

उनके सामने छोटीसी लकड़ी तो क्या उँगली हिलानेकी भी ज़रूरत न होगी।

असहयोगसे साम्राज्य सेवा

आपको जान पड़ेगा कि ये शब्द मैं गुस्सेमें भरकर कह रहा हूं, क्योंकि सरकारकी वर्त्तमान नीतिको मैं अन्यायी अनीतिसे, ओछेपनसे तथा झूठसे भरी हुई मानता हूं। लेकिन मैंने पूरा पूरा विचार करनेके बाद ही इन विशेषणोंका उपयोग किया है। इसका उपयोग मैंने अपने सगे भाईके साथ किया है, जिससे मेरा असहयोग १३ वर्ष तक चलता रहा। और आज वह भाई चिरनिद्रामें सोया हुआ है। लेकिन मैं आपसे कह सकता हूं कि मैं उसे रोज कहता था कि "तुम अन्यायी हो और तुम्हारे काम अनीतिकी भित्तिपर निर्भर हैं।" मैं उससे कहता कि "तुम सत्यपर नहीं खड़े हो।" इसके लिये मैं उसपर क्रुद्ध नहीं था; मैं उसे इतनी कड़वी बात इसीलिये कहता था कि मैं उसे चाहता था। इसी प्रकार आज मैं ब्रिटिश प्रजासे कह रहा हूं कि मैं तुम्हें चाहता हूं और तुम्हारा सङ्ग चाहता हूं पर यह सङ्ग अच्छी शर्तों पर चाहता हूं। अपने मानकी रक्षा करते हुए मैं उनकी बराबरी चाहता हूं। जो यह बराबरी देनेमें ब्रिटिश प्रजा तैयार न हो तो मुझे ऐसे अंग्रेजोंका सम्बन्ध नहीं चाहिये। ऐसा करते हुए मुझको अंग्रेजोंको निकाल देनेके कारण यदि देशमें थोड़े समयके लिये अव्यवस्था या अन्धाधुन्धी भोगनी पड़े तो वह भी भोग लूंगा परन्तु अंग्रेजोंके

समान महान प्रजाके हाथों अन्याय नहीं ले सकता। आप देखेंगे कि इस सारे प्रकरणके समाप्त होनेपर इन्हीं मांटेगू साहबके बादके अधिकारी मुझको,—असहयोग द्वारा और युवराजका नहीं, परन्तु प्रजाके गलेमें पड़ी हुई फांसी और भी अधिक कस देनेकी नीयतसे अधिकारियों द्वारा व्यवस्थित युवराजके आगमनके बहिष्कार द्वारा साम्राज्यकी सबसे बड़ी सेवा—जैसी अबतक कभी नहीं की गई थी—करनेका सार्टिफिकट देंगे।

युवराजके आगमनका सत्कार न करने और जहांतक बन पड़ेगा वहांतक मजबूतीके साथ वहिष्कार करनेके लिये यदि मैं प्रजाको न भी समझा सकूंगा तोभी मैं अकेला खड़ा रहकर पुकार करूंगा। इसीलिये मैं आज आपके सामने उपस्थित होकर आपसे इस धर्मयुद्धमें सम्मिलित होनेकी विनय कर रहा हूं। आपको इस धर्मयुद्धकी सूचना कोई स्वप्नाविष्ट या त्यागी वैरागी नहीं दे रहा है। मैं साधु या त्यागी नहीं हूं, न मैं ख्वाबी या शेखचिल्लीपन ही स्वीकार करता हूं। मैं नहीं मानता कि मैं साधु सन्यासी हूं। मैं मिट्टीका मनुष्य हूं, मिट्टीसे पैदा हुआ हूं आपके प्रत्येकके समान—शायद कहीं अधिक—संसारी, सादा किसान हूं, आपके समान ही दुर्बलताओंसे भरा हुआ हूं। पर मैंने मनुष्य-पर पड़नेवाली कठिनाइयोंमेंसे अनेक कठिनाइयां पार की हैं और मैंने अपने पवित्र हिन्दू धर्मके रहस्यको पहचाना है। असहयोग साधु सन्यासी या त्यागी वैरागियोंके लिये ही नहीं परन्तु प्रत्येक साधारण नागरिकके लिये, सारी बातोंके जाने बिना गहरे

पानीमें उतरे विना—उतरनेकी इच्छा किये विना–केवल मात्र सामान्य गृहस्थ धर्म पालनकी इच्छा करनेवालेके लिये भी है। यह पाठ मैंने सीखा है। यूरोप अपने जनसाधारणको तलवारका न्याय सिखला रहा है परन्तु भारतके ऋषियोंने, जो आर्य्याव-र्त्तकी महान् परम्पराके रक्षक थे, भारतकी प्रजाको तलवारका या खून खराबीका नहीं परन्तु सहिष्णुताका और आत्मयज्ञका मन्त्रोपदेश किया है और जब मैं और आप इस सादी सीधी साधनाके श्रीगणेशके लिये तैयार नहीं होते तब तलवार खींचनेकी तैयारी तो आपसे सैकड़ों योजन दूर है, इस बातमें आप कोई सन्देह न समझें। इस रहस्यको भाई शौकत अलीने हृदयमें समझ लेनेपर ही मेरी सच्ची भक्ति और विनयभावसे दी हुई सला-हको स्वीकार किया है और आज "असहयोग चिर जीवे" इस रूपमें असहयोगकी जय बुलवा रहे हैं। यह न भूलना चाहिये कि इसी युद्धके समय खुद इङ्गलैण्डमें छोटे छोटे बच्चे स्कूलोंसे अलग कर लिये गये थे। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजके कालेजोंमें ताले बन्द हो गये थे, वकीलोंने अपनी अदालतों और आफिसोंको छोड़कर खाइयोंमें पड़े सड़ते हुए युद्ध करना स्वीकार किया था। मैं आपसे खाइयोंमें जाकर लड़नेके लिये नहीं कहता हूं। परन्तु इङ्गलै-ण्डके स्त्री पुरुषोंने और बालकोंने जो आत्मयज्ञ किया वह आत्मयज्ञ मैं आपसे अवश्य चाह रहा हूं। जिस सरकारके साथ आप मुकाबला करनेको तैयार हो रहे हैं उस मुकाबलेमें समयपर कितना आत्मयज्ञ करना पड़ेगा वह न भूलियेगा। साथ ही यह

भी याद रखियेगा कि बोअरोंके एक छोटेसे दलने इस प्रभावशाली जातिको नाकों चना चबवा दिया था। पर उनके वकीलोंने वकालत छोड़ी थी, माताओंने बालकोंको स्कूल और कालेजोंसे निकालकर स्वयं-सेवक बनाया था, यह सब मैंने अपनी आंखों देखा है। मैं आज अपने प्रत्येक देशबन्धुसे युद्धसे पहले साधनकी जानेवाली आत्मयज्ञको साधनाके सिवा और कुछ न साधनेकी विनय कर रहा हूं। आप चाहे खून खराबीमें श्रद्धा रखनेवाले हों या अहिंसामें, इस आत्मयज्ञ शिक्षाकी परीक्षा आपको देनी ही पड़ेगी। ईश्वर आपको और अपने नेताओंको सुबुद्धि दें, साहस दें, प्रजाको अपने इष्ट ध्येयकी तरफ बढ़नेका सम्यक् ज्ञान दें ईश्वर भारतकी प्रजाको सत्य मार्गमें प्रेरित करें और कठिन होते हुए भी इस सहज आत्मयज्ञके मार्गको अतिक्रमण करनेके लिये दृष्टि, शक्ति और साहस दें।

असहयोग क्यों हो।
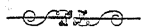
समस्त भारतके सन्मुख इस समय अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण प्रश्न खड़े हो रहे हैं। भारतका भविष्य अधिकतर उनके हल किए जाने पर ही निर्भर है। यदि ऐसे समयमें हम अपनेमें किसी तरहकी कमजोरी दिखलावेंगे तो हम पापी ठहराये जायंगे।

मुझे इस बातका दावा है कि मैं जिन विचारोंको जनताके सामने रखता हूं वे किसी कच्चे (अनुभव-शून्य) मस्तिष्कसे

नहीं निकलते। वे तीस वर्ष तक आँख खोल कर प्राप्त किये हुए अनुभवके नतीजे हैं।

यह कह कर मेरे विचारोंको टाल देना कि मैंने संसारको त्याग दिया है, मैं साधू हो गया हूँ, मेरे विचार अच्छे हैं, परन्तु दुनियादार आदमी उन पर अमल नहीं कर सकते, कायरताका चिह्न है। संसार-त्यागी होने या साधू हो जानेके इलजामको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरोंकी तरह मेरे भी स्त्री और बच्चे हैं। उनकी ओर मेरे जो कुछ कर्तव्य हैं मैंने उनका तिरस्कार नहीं किया है। इसके विपरीत मैंने उन कर्तव्यों पर गौरसे सोचा और उन्हें समझा है और उनमेंसे एकको भी नहीं छोड़ा है। मैं जङ्गलमें जाकर नहीं रहता। उलटा मैं देखता हूँ कि मेरे सम्बन्ध बराबर बढ़ते जा रहे हैं। मैं नहीं समझ सकता कि दूसरे लोग मेरी निस्वत किन बातोंमें दुनियासे अधिक मिले हुए हैं। मुझे साधू कह कर मेरी बात पर ध्यान न देना मेरे साथ अन्याय करना है।

वर्तमान सरकारके अन्याय, उसकी धृष्टता और उसके पापोंको ठीक ठीक वर्णन करना असम्भव है।...यदि कौम इन सब बातोंको सर झुका कर सह लेगी तो वह कभी नहीं उभर सकती। हम उस भूखे आदमीका भूख पर कभी भी विश्वास नहीं करेंगे जो कि 'भूखा हूँ,' 'भूखा हूँ' चिल्लाता है, किन्तु भोजन-प्राप्तिका भरसक प्रयत्न नहीं करता अथवा प्रयत्न करनेमें मर नहीं मिटता। यदि जो आपत्ति

हम पर आई है वह असली है और यदि हम जिन विशेषणोंका प्रयोग करते हैं वे ठीक ठीक हमारे भावोंको प्रगट करते हैं, तो क्या असम्भव है कि हम कोई इलाज निकाल सकें? अगणित बार हम चिल्ला चुके हैं कि पञ्जाबके दुखः असहनीय हैं। असह्य वेदनासे पीड़ित मनुष्य क्या करता है? जहरीला साँप जिस मनुष्यको काट लेता है वह अच्छा होनेके लिये अनेक औषधियोंका प्रयोग करता है। यदि दवा उसे आराम नहीं करती तो वह मर जाता है। असह्य वेदनाके होते हुए हममें मरनेकी शक्ति भी नहीं रही। उस सरकारका बहिष्कार कर डालना, जो वचन देती है और उन्हें तोड़ती है, प्रसिद्ध प्राचीन ओषधि है। जिस असहयोगकी मैं सलाह देता हूँ वह एक नरम ढंगका बायकाट असहयोगका सर्वोच्च रूप है। किन्तु हम लोगोंमेंसे असन्तुष्ट होनेकी योग्यता भी जाती रही है।

इससे हमारी पतित अवस्थाका पता चलता है। जब कि गुलाम यह महसूस करना भूल जाता है कि वह गुलाम है, तब उसके उद्धारकी कोई आशा नहीं रह जाती। जिन दो अन्यायोंको सरकार जिदके साथ कार्यमें रख रही है उनसे अधिक भड़कानेवाले और कोई अन्याय नहीं हो सकते। यदि ये अन्याय हमें 'मरता क्या न करता' की स्थिति तक नहीं पहुँचा देते, तो इसमें सरकारका कोई अपराध नहीं, फिर यह कहना पड़ेगा कि हम उनके योग्य हैं।

इस्लामका इतना अधिक अपमान किया गया है कि वह एक सदी तक दुहराया नहीं जा सकता।...जलियांवाला बागका कत्ल, उसके बादके अत्याचार, हण्टर कमेटीकी लीप-पोत; भारत सरकारका खरीता, मि० मन्टेगूका पत्र—जिसमें उन्होंने वाइसराय और उस समयके पञ्जाबके लाट साहबका समर्थन किया था,—सरकारका उन कर्मचारियोंको बरखास्त करनेसे इन्कार करना जिन्होंने मार्शल लाके जमानेमें पञ्जाबियोंकी जिन्दगीको नर्कसे भी अधिक दुःख-पूर्ण बना दिया था, इत्यादि इत्यादि ऐसे काम हैं जिनसे अधिक अन्याय-पूर्ण कामोंकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। ये काम वास्तवमें भारतके लिये एक सिलसिलेवार अत्याचारकी श्रेणी हैं। भारतवर्षमें अगर कुछ भी आत्म-गौरवका अंश पाया जाता है तो उसे अपनी तमाम सम्पतिका बलिदान करके इस अपमानको मिटाना चाहिये और अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो वह रोटीके टुकड़ोंके लिये अपनी आत्मका हनन करेगा।

सहयोग-त्यागका आरम्भ

(अगस्त ४, १९२३)

वायसरायको महात्मा गांधीका पत्र

महात्मा गांधीने वायसरायको कैसरे-हिन्द-पदक लौटाते समय निम्नलिखित पत्र भेजा था:—दक्षिण अफ्रिकाके मेरे दया-पूर्ण कार्योंके लिये आपके पूर्व वाइसरायने मुझे जो कैसरे-हिन्द-स्वर्णपदक दिया था उसे मैं हार्दिक दुःखके साथ लौटा रहा हूं। साथ ही जूलू-समरके समय १९०६ में भारतीय वालण्टियर-सर्विस कोरके अफसर-स्वरूप और १८९९ के बोर-युद्धके समय भारतीय वालण्टियर स्ट्रेचर बेयरर कोरके सहकारी सुपरि-ण्टेण्डेण्ट-स्वरूप मेरी सेवाके लिये जो दो तमगे मिले थे उन्हें भी लौटा रहा हूं। खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमें जिस सहयोग-त्यागका आरम्भ हुआ है उसीके अनुसार मैं इन तमगों-को लौटानेका साहस करता हूं। यद्यपि यह सम्मान मेरे लिये बड़ा ही मूल्यवान था तोभी जबतक हमारे मुसलमान भाइयोंके धार्मिक भावोंको यन्त्रणा सहनी पड़ती है तबतक मैं इन तमगों-को विवेककी हत्या किये विना नहीं पहन सकता। गत महीनोंमें जो घटनाएँ हुई हैं उनसे मेरा यह निश्चय पक्का हो गया

है कि साम्राज्य-सरकारने खिलाफतके प्रश्नके विषयमें अविचार-पूर्ण और अनुचितरूपसे कार्य किया है और अपने अन्यायको बचानेके लिये अन्यायपर अन्याय किया है। ऐसी सरकारके लिये मैं न तो सम्मान और न भक्ति ही रख सकता हूं। साम्राज्य-सरकार तथा आपकी सरकारने पञ्जाबके प्रश्नपर जिस नीतिका अवलम्बन किया है उससे मेरे असन्तुष्ट होनेका और भी कारण आ उपस्थित हुआ है। १६१६ के अप्रेल महीनेमें आप जानते हैं मैंने कांग्रेसकी ओरसे कमिश्नर-स्वरूप पञ्जाबके उपद्रवोंकी जांच की है और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि सर माईकल ओडायर लेफ्टेनेण्ट गवर्नर होनेके बिलकुल अयोग्य थे और अमृतसरके नागरिक दलके क्रुद्ध करनेके लिये उनकी नीति ही उत्तरदाता है। इसमें सन्देह नहीं कि नागरिकदलने जो अत्याचार किया वे अक्षम्य थे। आग लगाना, पाँच निरपराध अँगरेजोंकी हत्या और मिसेज शेरवुड पर कायरता-पूर्ण आक्रमण बहुत ही शोचनीय घटनाएँ है। पर जनरल डायर, कर्नल फ्रैंक जानसन, कर्नल ओब्रायन, मि० बासवर्थ स्मिथ, राय श्रीराम सूद तथा अन्यान्य अफसरोंने जिस सजाके उपायोंका अवलम्बन किया वे लोगोंके अपराधोंकी तुलनामें ऐसे स्वेच्छापूर्ण निर्दयता और बर्बरताके उपाय थे जिसका वर्तमान समयमें दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। अफसरोंके अपराधोंको आपने बिलकुल अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा है और सर माइकल ओडायरको दोष-मुक्त किया है। मि० मांटेगूका खरीता और पञ्जाबकी घटनाओं-

की निर्लज्ज अज्ञानता और लार्ड-सभामें भारतवासियोंके भावोंकी जैसी लापरवाही दिखाई गई है उससे साम्राज्यके भविष्यके बारेमें मेरा हृदय सन्देहसे भर गया है। मेरा मन वर्तमान सरकारसे फिर गया है और जिस भाँति मैं अभी तक सरकारसे सहयोग करता आता था उसके करनेसे असमर्थ हो गया हूं। मेरी क्षुद्र बुद्धिमें प्रार्थना-पत्र, डेप्यूटेशन तथा अन्यान्य आन्दोलनके साधारण उपाय भारतकी जैसी प्रजाकी भलाईसे उदासीन सरकारसे अनुपातका प्रतिकार नहीं करा सकते। यूरोपीय देशोंमें खिलाफत और पञ्जाब जैसे अन्यायोंकी अवहेलनाका परिणाम षड्यंत्रमें ही हुआ होता। ऊपर उल्लिखित बातोंमें जैसे अन्यायकी चर्चा है वैसे राष्ट्रको पुरुषत्व-विहीन करनेवाले अन्यायका विरोध किया है। पर आधा भारत तो इतना कमजोर है कि विरोध कर ही नहीं सकता। आधा भारत ऐसा करना ही नहीं चाहता। इसलिये मैंने असहयोग-रूपी प्रतिकार सुझाया है। इससे जो लोग सरकारसे सहयोग-त्याग करना चाहें वे उसके द्वारा—यदि जुल्मसे काम न लेकर संगठित-रूपसे काम लिया जाय तो—अन्यायका प्रतिकार करवा सकते हैं। पर मैं जब सहयोग-त्यागकी नीतिका वहाँ तक अनुसरण करना बतलाता हूं जहाँ तक कि मैं जन-समाजको ले जा सकूँगा, तब साथ ही यह भी आशा रखता हूँ कि आप यदि किसी उपायसे न्याय करा सकते हों तो करावेंगे। इससे मैं आपसे कहता हूं कि आप देशके माने हुए नेताओंकी एक कानफरेंस कीजिये

और उनसे परामर्श कर ऐसा उपाय निकालिये जिससे मुसलमान शांत हों और (बिचारे) दुःखी पंजाबियोंकी क्षति-पूर्ति हो।

आपका विश्वासी,
मो० कर्मचन्द गांधी

मालवीयजीकी प्रार्थनाका उत्तर।

माननीय पं० मालवीयजीने, जिनके लिये कि मेरे हृदयमें सम्मानका बहुत बड़ा भाव है, मुझसे प्रार्थना की है कि कांग्रेस जब तक सहयोग-त्यागके सम्बन्धमें अपना निश्चय प्रगट न कर दे तबतक वह मुलतवी रखा जाना चाहिये। 'मराठी' ने भी ऐसी ही प्रार्थना की है। इन प्रार्थनाओंके कारण मैं रुक गया और मैंने विचार किया, परन्तु मुझे खेद है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सका। मैं पण्डितजीको सन्तुष्ट करनेके लिये बहुत कुछ कर सकता हूँ। मुझे अपने कामोंमें उनकी स्वीकृति और उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा है, परन्तु इससे अधिक ऊँचा कर्त्तव्य मुझे यह आज्ञा देता है कि मैं सहयोग-त्याग-कमेटी द्वारा तैयार किये गये कार्यक्रमसे न हटूँ। जीवनमें ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते हैं कि किसी काममें अपने सर्वोत्तम

मित्रोंको अपने साथ चलानेमें असमर्थ होनेपर भी हमें उस कामको करना होता है। जब कभी कर्त्तव्यका युद्ध उपस्थित होता है तब अन्तिम निर्णयकर्ता अपने अन्तःकरणहीको बनाना होता है।

मुझसे सहयोग-त्यागको मुल्तवी करनेको इस कारण कहा गया है कि कांग्रेसका हालहीमें अधिवेशन होगा जिसमें कि वह सहयोग-त्यागके समस्त प्रश्न पर विचार करके निर्णय करेगी। परन्तु मेरी सम्मतिमें यह किसी कांग्रेस-मैनका कर्त्तव्य नहीं है कि जिस बातमें उसे तनिक भी सन्देह न हो उसमें भी काम शुरू करनेसे पहले वह कांग्रेसकी सम्मति ले ही। यदि इस प्रकार वह प्रत्येक कार्यमें उसकी अनुमतिकी प्रतीक्षा किया करेगा तब तो प्रायः कोई भी काम न हो सकेगा।

कांग्रेस आखिर देशकी प्रतिनिधि ही तो है। और अगर कोई मनुष्य किसी कार्यक्रमको स्वीकृत कराना चाहता है और साथ ही लोकमतको उसके अनुकूल बनाना चाहता है तो वह स्वभावतः ही उसे कांग्रेसके सम्मुख रखता है। परन्तु जब किसी मनुष्यको किसी विशेष नीति अथवा कार्यक्रममें इतना विश्वास हो कि वह किसी तरह हिल नहीं सकता तो उसके लिये कांग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा करना बेवकूफी ही होगी। प्रतीक्षा करनेके ब ाय उसे तो कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये। ताकि उसकी नीतिकी उत्तमता प्रमाणित हो जाय और जाति उसे स्वीकृत करनेको प्रस्तुत हो जाय।

मुझे कांग्रेससे भक्ति है। परन्तु इसका अर्थ यही है कि जब उसकी नीति मेरे अन्तःकरणके विरुद्ध न होगी तब मैं उसका पालन करूँगा। विरुद्ध इसके जब मैं देखूँगा कि बहुमत मेरे साथ नहीं है तब मैं अपनी नीतिका अपने नामसे, कांग्रेसके नामसे नहीं, पालन करूँगा। इसलिये कांग्रेसके निश्चयकर देनेसे इतना हो जायगा कि वह जो कुछ करेगा अपनी जिम्मेदारी पर करेगा और यह जानते हुए करेगा कि कांग्रेस उसका साथ नहीं दे रही है।

प्रत्येक कांग्रेस-मैन और प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाको यह अधिकार है कि वह कांग्रेसका निर्णय होनेसे पूर्व अपनी सम्मति प्रगट कर सकती है तथा उसपर कार्य कर सकती है। कभी कभी तो ऐसा करना उसके लिये कर्त्तव्य हो जाता है। वास्तवमें ऐसा करना जातिको सेवा करनेका सर्वोत्तम ढङ्ग है। जब विचार-पूर्वक हम कोई नीति स्वीकार कर लेते हैं तो फिर कांग्रेसको ठीक तौरसे मत स्थिर कर सकनेके लिये सामग्री प्राप्त हो जाती है। किसी विशेष कार्यके सम्बन्धमें जबतक हमींमेंसे कुछ लोगोंका पहलेसे दृढ़ और निश्चित मत न हो तबतक कांग्रेस उसपर कोई जातीय मत प्रगट नहीं कर सकती। यदि सब लोग अपनी सम्मति मुलतबी कर दें तो यह आवश्यक है कि कांग्रेसको भी अपना मत मुलतवी करना होगा।

प्रत्येक संस्थामें सदा तीन प्रकारके मनुष्य रहा करते हैं। एक तो वे जिनका मत किसी विशेष बातके अनुकूल हो; दूसरे

वे जिनका मत निश्चित तो हो, परन्तु उसके प्रतिकूल हो; और तीसरे जिनका कोई निश्चित मत ही न हो। कांग्रेसका निर्णय इस तीसरे प्रकारके लोगोंहीके लिये होता है जिनकी संख्या बहुत बड़ी होती है। मेरा तो सहयोग-त्यागके सम्बन्धमें निश्चित मत है। मेरा विश्वास है कि अगर हमें सुधारोंसे कुछ लाभ उठाना है तो हमें वर्तमान हीन, पतित और दुर्गन्धमय वायु-मण्डलके स्थानमें स्वच्छ, पवित्र और ऊँचा उठानेवाला वायु-मण्डल निर्माण करना चाहिये। मेरा विश्वास है कि हमारा प्रथम कर्त्तव्य ब्रिटिश सरकारको खिलाफत और पञ्जाबके सम्बन्धमें न्याय करनेके लिये बाध्य करना है। इन दोनों माम-लोंमें हमारे साथ अन्याय किया गया है और अब झूठ और धृष्टताके साथ उसका समर्थन किया जा रहा है। इसलिये मैं समझता हूं कि सरकार और जनताके बीच सहयोग हो सक-नेके पूर्व जनताका यह कर्त्तव्य है कि वह सरकारको अस्व-च्छताको साफ करा दे। जब पारस्परिक सम्मान और विश्वास होता है तब विरोध भी किया जा सकता है या विघ्न भी डाला जा सकता है। परन्तु इस समय तो अधिकारियोंको हमारे लिये अथवा हमारे भावोंके लिये सम्मान नहीं है और हमें उनके प्रति विश्वास नहीं है। ऐसी अवस्थामें सहयोग करना अपराध है। जब मेरा मत ऐसा निश्चित है तो मैं कांग्रेसकी यही सेवा कर सकता हूं कि उसपर काम शुरू कर दूँ और इस प्रकार कांग्रेसको मत स्थिर कर सकनेके लिये सामग्री तैयार कर दूँ।

मेरे लिये तो सहयोग त्यागको मुलतवी कर देना मुसलमान भाइयोंको धोखा देना होगा। उन्हें अपने धार्मिक कर्तव्यका पालन करना है। ब्रिटिश मन्त्रियोंने न्यायके कानूनोंका तथा अपने ही वचनोंका भङ्ग करके उनके धार्मिक भावोंको बहुत चोट पहुँचाई है। इसलिये उन्हें अभी कार्य करना चाहिए। वे कांग्रेसके निर्णयकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते। वे केवल यह आशा कर सकते हैं कि कांग्रेस उनके कार्यका समर्थन करेगी तथा उनके दुःखों और भारोंमें भाग लेगी। वे न तो कांग्रेसके निर्णयके लिये अपने कामको मुलतवी ही कर सकते हैं और न उसके प्रतिकूल निर्णय कर देनेसे वे अपना मार्ग पलट ही सकते हैं। हाँ अगर किसी और तरहसे उनका काम गलत साबित हो तो दूसरी बात है। उनके लिये खिलाफत एक अन्तःकरणकी बात है। अन्तःकरणके मामलोंमें बहुमतकी आज्ञा पालन होनेके नियमको कोई स्थान नहीं है।
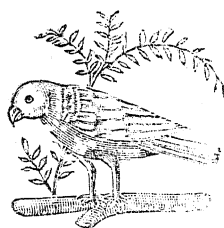
असहयोग

—⁂—

(अप्रैल २८, १९२०)

खिलाफत आन्दोलनकी सहायताके लिये असहयोगके व्रतको धारण करनेपर तीन व्यक्तियोंको विशेष क्रोध और रोष है। पहले तो मिसेज बेसेण्टको, दूसरे, टाइम्स आफ इण्डिया पत्रके सम्पादकको और तीसरे उसके एक लेखकको। इन तीनों महानुभावोंने असहयोगकी निन्दा अपने बल भर की है, कोई बात उठा नहीं रखी है। इन तीनों लेखकोंने कई बातोंपर मत प्रगट किया है जिनका किसी न किसी प्रकार असहयोगसे संबंध अवश्य है पर सम्प्रति मैं उनपर कुछ नहीं लिखूंगा। पर इन लोगोंके दो प्रधान एतराजोंपर कुछ लिख देना उचित होगा और यहां पर मैं उन्हींका उत्तर देना चाहता हूं। जिस गम्भीरता और सफाईके साथ उनका उल्लेख किया गया है उससे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनपर विशेष ध्यान दिया जाय, क्योंकि भाषाकी उच्छृं-खलतासे विषयकी मर्यादा भी घट जाती है। पहली बात उन लोगोंने लिखी है कि अहिंसाको रोकना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा अर्थात् असहयोग अहिंसात्मक नहीं रह सकता। टाइम्स आफ इण्डियाके सम्पादकने तो यहां तक लिख मारा है कि इसके प्रथम चरणमें ही हिंसाके

भाव प्रगट होने लगे हैं और दिल्ली तथा कलकत्ताकी वहि-ष्कारकी घटनायें इस बातकी प्रमाण हैं। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि थोड़ी बहुत अशान्ति हो सकती है और उस तरहकी हिंसाको रोकना भी कठिन है। मुझे दक्षिण अफ्रिकाकी घटना अब तक स्मरण है। जिस समय सत्याग्रह आन्दोलनका वहां आरम्भ किया गया था, उस समय जो कोई इसमें भाग लेनेसे दूर भागता था उसके साथ वहिष्कारकी नीतिका प्रयोग किया जाता था। यही उसके लिये दण्ड विधान था। पर उससे यह नहीं कहा जा सकता कि वहिष्कार हिंसात्मक ही होगा। वह हिंसात्मक भी हो सकता है और अहिंसात्मक भी हो सकता है। यह तो उसके प्रयोग और संचालन पर निर्भर करता है। यदि कोई पादरी अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठासे अपनी उपाधिपर अधिक महत्व रखता है, उसे ज्यादा मूल्यवान समझता है तो जनता उसके साथ प्रार्थना करना अस्वीकार करे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर यदि किसी व्यक्ति विशेषको वहि-ष्कार द्वारा तङ्ग किया जाय, उसे गालियां दी जायं, उसका घोर अपमान किया जाय तो संभव है कि उस वहिष्कारका परिणाम हिंसा हो। यदि असहयोग व्रतको धारण करने-वाले जन अधीर हो जायं और बदला लेनेके लिये उठ खड़े हों तो उस असहयोगमें हिंसा होना अनिवार्य है। यह सम्भव है यदि एकाएक मालगुजारी न देनेका प्रश्न उठा

दिया जाय अथवा सैनिकोंको हथियार रखनेकी प्रेरणा की जाय। पर मुझे इस तरहके किसी प्रकारकी हिंसाकी सम्भावना नहीं क्योंकि जहां तक मैं समझ सका हूं प्रत्येक मुसलमान इस बातको मान गया है कि यदि खिलाफतके प्रश्नका निपटारा असहयोग द्वारा करना है तो पूर्णतया अहिंसात्मक होना पड़ेगा। दूसरा एतराज उन लोगोंका यह है कि नौकरियोंको छोड़कर लोग क्या करेंगे? जीविकाका दूसरा कोई ठिकाना न होनेसे वे लोग कहीं भूखों न मरने लगें। यह आशंका निर्मूल नहीं है पर इसकी सम्भावना सुदूरकी है। निकट भविष्यमें इसकी किसी भी तरह सम्भावना नहीं है क्योंकि कांग्रेस कमेटी पहले इस बातकी व्यवस्था कर लेगी तभी किसीको नौकरी छोड़नेके लिये कहेगी। मैं सम्पूर्ण एतराजोंकी विस्तृत परीक्षा कहीं अन्यत्र करूंगा और दिखलाऊंगा कि उनकी आशंकायें निर्मूल हैं। मैं इस बातको भी पूरी तरहसे दिखला चुका हूं कि यदि मुसलमानोंके धार्मिक भावोंकी रक्षा करना हो तो असहयोगके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह गया है और विशेषकर ऐसी अवस्थामें जबकि हमें इस बातका पक्का विश्वास हो गया है कि मुसलमानोंके साथ न्याय नहीं किया गया है। तुर्कीके साथ जिन शर्तोंपर सन्धि की गई है वह वचन तथा अवस्थाके प्रतिकूल हैं।

——:०:——

असहयोगका तरीका

(मई ५, १९२१)

असहयोगके संबन्धमें लोगोंके चित्तमें अनेक तरहकी आशं-कायें उठ रही हैं, लोग तरह तरहके आक्षेप कर रहे हैं। मेरी समझमें इन सब बातोंका एकमात्र और समुचित उत्तर असहयोगके कार्यक्रमका पूरी तरहसे वर्णन होगा। आशङ्का और आक्षेप करनेवालोंके लेखोंको पढ़कर और उनकी बातोंको सुनकर यही प्रतीत होता है कि वे इस बातको मान बैठे हैं कि असहयोगका सारा कार्यक्रम एक साथ ही आरम्भ किया जायगा। पर वास्तवमें बात यह है कि इसका कार्यक्रम चार भागोंमें बांट दिया गया है और एकको पूरी तरहसे चरितार्थ करलेने पर ही दूसरेमें हाथ लगाया जायगा। इसका पहला चरण उपाधियोंका परित्याग और अवैतनिक पदोंको छोड़ना है। यदि इसका कोई असर नहीं हुआ अथवा इसमें सफलता नहीं मिली तब दूसरे चरणका सहारा लिया जायगा। इस दूसरे चरणको स्वीकार करनेके लिये पहले जैसी तैयारी करनी पड़ेगी। जबतक कि इस बातकी पूरी तरहसे जांच न कर ली जायगी कि नौकरी छोड़कर कोई व्यक्ति अपना तथा अपने कुटुम्बवालोंका पालनपोषण कर सकता

है या यदि वह नहीं करता तो खिलाफत कमेटी उसके पालन-पोषणकी पूरी व्यवस्था करती है किसीको नौकरी छोड़नेके लिये नहीं कहा जायगा। सरकारी सभी कर्मचारियोंसे आज ही नौकरी छोड़नेकी प्रार्थना नहीं की जायगी और न तो किसीपर किसी तरहका दबाव डाला जायगा कि वह सरकारी नौकरी छोड़ दे। इसके अलावा किसीके व्यक्तिगत नौकरोंको तो सलाह ही नहीं दी जायगी क्योंकि यह आन्दोलन किसी व्यक्ति विशेष या जाति विशेषके खिलाफ नहीं चलाया गया है। एक तरहसे इसे सरकारके प्रतिकूल भी नहीं कह सकते। असहयोगका केवलमात्र कारण यही है कि हम लोग उस सरकारके साथ पापाचरणमें सम्मिलित नहीं हो सकते। इस सरकारने अपने वादेको तोड़ा है, मुसलमानोंके धार्म्मिक भावोंको कुचलनेका यत्न किया है, इसलिये इसने पाप किया है और इस पापाचारमें हम लोग इसके साथी नहीं हो सकते। यदि किसी भी सरकारी नौकरके साथ ज्यादती की गई या किसी भी तरहका गैरमुनासिब दबाव डाला गया, या किसी तरहसे भी अहिंसाकी प्रवृत्ति दिखलाई गई तो निश्चय जानिये कि यह आन्दोलन वहीं रुक जायगा, इसकी गति बन्द हो जायगी। इस बातको खिलाफत कमेटीके प्रत्येक सदस्य जानते हैं। यदि ठीक तरहसे लोगोंने इसको अपनाया तो द्वितीय चरणमें ही पूरी सफलताकी आशा है, क्योंकि प्रजाके सहयोग विना कोई भी शासनप्रणाली क्षण भरके लिये भी नहीं टिक सकती फिर ब्रिटिश

शासनप्रणालीके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। इसलिये तीसरे चरणकी चर्चा तो अभी सुदूरकी बात है। जब इस दूसरे चरणसे काम नहीं चलेगा तभी पुलिस या सेनासे नौकरी छोड़नेकी प्रार्थना की जायगी। इसलिये इस व्रतके संचालनमें ऐसे लोगोंकी आवश्यकता है जो ईमानदार हों, स्पष्ट हों और शकसुबहेसे दूर हों। जो कुछ वे करना चाहते हैं, इस असहयोग व्रतके द्वारा वे जिस किसी उपायका प्रयोग करना चाहते हैं—चाहे उसका प्रयोग निकट भविष्यमें होता हो या दूरमें जाकर—वे उसे प्रगट कर देना चाहते हैं, सरकार या जनतासे वे कुछ छिपा कर नहीं रखना चाहते। चौथा चरण मालगुजारी देना बन्द करना है। यह तो और भी दूरकी बात है। इसके संचालक इस बातको जानते और स्वीकार करते हैं कि मालगुजारीका रोकना विपत्तियोंसे भरा है। इसमें इस बातकी भी संभावना है कि किसी वर्गविशेषकी प्रवृत्ति (चित्तकी) विगड़ जाय और वह पुलिसके साथ दंगा कर बैठे। इसलिये वे इस चरणको सहजमें ही स्वीकार नहीं करेंगे। इसका प्रचार वे तभी करेंगे जब वे भली भांति देख लेंगे कि जनता प्रत्येक अवस्थामें अहिंसा पर अटल रहनेके योग्य हो गई है।

मैंने पहले भी इस बातको स्वीकार किया है कि असहयोगमें पगपग पर विपत्तिकी संभावना है। पर खिलाफतका प्रश्न इतना कठिन है कि यदि इसके लिये कुछ न किया गया तो इससे जो विपत्ति उठनेकी संभावना है वह असहयोगके व्रतको ग्रहण

करने पर आनेवाली विपत्तिसे कहीं भीषण है। इसलिये उदासीन बैठकर विपत्तिको निमन्त्रित करनेसे अच्छा तो उस काममें हाथ डालना ही उचित है जिसमें विपत्तिकी केवल संभावना है।

असहयोगकी निन्दा करना सहज है। उसपर आक्षेप करना उससे भी सहज है और पत्र हाथमें रहते लेख लिख डालना तथा कुछ कह डालना भी साधारण बात है। इसमें कुछ नहीं लगता। पर जिन लोगोंके साथ घोरतम अन्याय किया गया है और जो उस अन्याय आचरणके कारण उत्तेजित हो गये हैं उनके क्रोध-को रोकना साधारण काम नहीं है, जो लोग असहयोगकी अनुप-योगिता प्रमाणित कर लेनेके लिये कुर्सियों पर बैठकर लेख लिख डालने और रंगमंचपर खड़े होकर व्याख्यान दे देनेमें जनताके प्रति अपने कर्तव्यको पूरा किया हुआ समझते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि जरा कष्ट उठाकर वे उन लोगोंके बीचमें आवें जिनके साथ इस तरहसे अन्याय किया गया है और उनके दिलोंकी अवस्था देखें और तब जाकर अपनी कुर्सियोंपर बैठकर कलम उठावें, देखें एक शब्द भी असहयोगके खिलाफ उनकी जबानसे निकलता है। उस समय उन्हें भी विदित हो जायगा कि हिंसा और रक्तपात रोकनेका इस समय एक ही तरीका शेष है और वह यह है कि उन्हें इस तरहका आश्वासन दिया जाय कि वे अपने हृदयके भावोंको इस रूपमें प्रगट करें जिससे उनपर विचार हो और न्याय किया जाय। मेरी समझमें सिवा

असहयोगके ऐसो और कोई वस्तु सामने नहीं दिखलाई देती। यह तर्कपूर्ण और क्षति रहित है। जो सरकार प्रजाकी न्यायपूर्ण मांगोंकी ओर ध्यान नहीं देती उसकी सहायता करना छोड़ देना प्रत्येक प्रजाका धर्म है।

असहयोगकी सफलता तभी हो सकती है जब इसके लिये आपसे आप हृदयकी प्रेरणा हो और जब इसका जोर इतना अधिक हो कि मनुष्य बड़ेसे बड़े कष्ट सहनेके लिये तैयार हो। यदि मुसलमानोंकी धार्मिक सत्तापर कड़ी चोट पहुंची है, यदि हिन्दुओंके हृदयमें मुसलमान भाइयोंके लिये सच्चा प्रेम है तो इस काममें सफलता प्राप्त करनेके लिये वे कोई भी बात उठा नहीं रखेंगे। असहयोगमें तीन फायदे हैं। एक तो यह सर्वोत्तम औषधका काम देगी अर्थात् मुसलमानोंके साथ जो अन्याय किया गया है उसका पूर्णतया प्रतिशोध इसके द्वारा हो जायगा, दूसरे इससे विदित हो जायगा कि मुसलमानोंकी मांगे न्याय-पूर्ण हैं या नहीं क्योंकि जितना अधिक न्यायका अंश उनकी मांगोंमें होगा मुसलमान उतनी ही अधिक तत्परता दिखलावेंगे, तीसरे हिन्दुओंके भावका पता लग जायगा कि हिन्दू इस विषयमें मुसलमानोंके साथ कितनी सहानुभूति दिखानेके लिये तैयार हैं।

मेरे कई मित्रोंने मुझे खिलाफतका साथ देनेसे रोका है। उनका कहना है कि मैं ब्रिटनका सच्चा दोस्त और अंग्रेजोंका उपासक हूं ऐसी अवस्थामें यह अनुचित प्रतीत होता है कि मैं

ऐसे लोगोंका साथ दूं जिनकी मांगोंकी तहमें अंग्रेजोंके प्रति घृणा और विद्वेषके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं और मुझे इसके लिये खेद भी है कि इस समय साधारण मुसलमानके हृदयमें अंग्रेजोंके प्रति किसी तरहका सद्भाव नहीं रह गया है। उनकी धारणा है कि तुर्कीके साथ जो अन्याय हुआ है उसमें अंग्रेजोंका सबसे अधिक हाथ है और उनकी यह धारणा निर्मूल भी नहीं है। पर यदि मेरे हृदयके भाव अंग्रेजोंके अनुकूल हैं यदि मैं अंग्रेजोंका मित्र हूं तो मैं अपने देशवासी मुसलमानोंका इससे अधिक मित्र हूं। मेरे हृदयमें उनकी भलाईकी अधिक कामना है। इसलिये यदि विचार कर देखा जाय तो अंग्रेजोंसे मुसलमानोंका हक मुझपर कहीं अधिक है। मेरा जातीय धर्म मुझे इस बातका आदेश देता है कि मैं मुसलमानोंका साथ दूं, उनकी भलाई करूं पर इसके लिये मैं अंग्रेज या किसी अन्य व्यक्तिको कष्ट न दूंगा। जो कुछ मैं अपने सगे भाईके लिये नहीं कर सकता उसे एक अंग्रेजके लिये कभी भी नहीं कर सकता। यदि मुझे बादशाहत भी मिलती हो तो मैं किसीको कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता। पर यदि मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ तो मैं उसके साथ सहयोग करना उसी प्रकार छोड़ दूंगा जैसे मैंने सगे भाईके साथ किया था। ब्रिटिश साम्राज्य इस समय पाप कर रहा है। उसके पापाचरणमें साथ न देकर मैं उसकी सेवा कर रहा हूं। बोर युद्धके समय विलियम स्टेड ब्रिटिश सरकारकी हारके लिये प्रार्थना

कर रहा था। उसका यह कारण था कि वह जानता था कि जिस राष्ट्रका वह अंग है वह बेईमानीके युद्धमें प्रवृत्त है। वर्तमान प्रधान मन्त्री (मिस्टर लायड जार्ज) ने उस युद्धका विरोध किया था यद्यपि उसके कारण उनका जीवन संकटमें पड़ गया था। उनकी शक्तिमें जहांतक संभव था उन्होंने अपनी सरकारको उसमें हाथ डालनेसे रोका था। यदि आज मैंने अपने भाग्यको मुसलमानोंके भाग्यमें बांध दिया है—जिनकी अधिकांश संख्या आज अंग्रेजोंकी विरोधिनी है—तो ऐसा मैंने ब्रिटिश सरकारके मित्रकी हैसियतसे किया है। इस तरह मुसलमानोंका साथ देनेका मेरा एकमात्र अभिप्राय यह है कि मैं ब्रिटनसे न्याय कराऊं और इस तरह संसारको यह बात दिखला दूं कि यदि कोई मनुष्य पूर्ण तत्परताके साथ यातना सहनेके लिये तैयार है तो ब्रिटिश सरकार उसके साथ अवश्य न्याय करेगी। मुसलमानोंके साथ होकर मैं तीन लाभ प्राप्त करना चाहता हूं। सत्याग्रहके कंटकाकीर्ण मार्गका अनुसरण करके मुसलमानोंके साथ न्याय कराना, संसारके सभी उपायोंके ऊपर सत्याग्रहकी प्रधानता स्थापित करना, हिन्दूओंके साथ मुसलमानोंकी मैत्री स्थापित करना और इसके द्वारा अन्तरंग शान्तिकी योजना करना। और सबसे बड़ा लाभ यह चाहता हूं कि मुसलमानोंके हृदयोंमें ब्रिटिश सरकारके प्रति जो असद्भाव आ गये हैं उन्हें निकालकर दूर करवा दूं क्योंकि यद्यपि इसमें अनेक बुराइयां हैं तथापि इसमें

क्षमता भी है। यह संभव है कि मैं इसकी सभी बातोंमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकूं। पर केवल इस बातकी संभावना पर ही प्रयत्न करना क्यों छोड़ दूं। फलाफल तो ईश्वरके अधीन है। उसमें तो मनुष्यका हाथ नहीं है। यह तो निर्विवाद है कि मेरा प्रत्येक लक्ष्य योग्य है। इसलिये मैं प्रत्येक हिन्दू तथा मुसलमानसे इस बातकी प्रार्थना करता हूं कि वह मुसलमानोंके ऊपर इस समय जो विपत्ति आ गई है उसमें उनका साथ दे और उनका भार हलका करे। मुसलमानोंने जिस संग्रामकी घोषणा की है वह सर्वथा न्यायपूर्ण है। इसका समर्थन सभीने किया है। भारत मन्त्री, बड़े लाट, बीकानेरके महाराज, लार्डसिंह सभी इसके साक्षी हैं। यही समय है कि हम लोग इन प्रमाणोंको सार्थक करें। जिनकी मांगें न्यायपूर्ण हैं वे केवल विरोध करके ही सन्तुष्ट नहीं रह सकते। संसारका इतिहास बताता है कि न्यायोचित मांगोंके लिये लोगोंने प्राण तक दे दिया है। मुसलमानोंके समान महत्वाकांक्षी तथा आत्माभिमानी जातिसे इससे कमकी आशा नहीं की जा सकती।

—— :*: ——

असहयोग समिति

(जून २३, १९२०)

जून ३ को एलाहाबादमें खिलाफत कमेटीने जिस असहयोग समितिकी नियुक्ति की है उसके विषयमें तरह तरहकी किं-बदन्ती सुनाई दे रही हैं। एक मित्र—जो उसमें उपस्थित थे—लिखते हैं:—इस कमेटीकी नियुक्ति असहयोग आन्दोलनको पूरी तरहसे चलानेके लिये की गई है और असहयोगसे सम्ब-न्ध रखनेवाली सभी बातोंके निपटारा करनेका इसे अधिकार दे दिया गया है मानों यह भारतके समस्त मुसलमानोंको प्रतिनिधि संस्था है और इसे अधिकारियोंके पास उनकी मांगोंके पेश करने तकका अधिकार है। हमारे मित्रने जिस भाषामें यह पत्र लिखा है उससे यही प्रगट होता है कि कमेटीके हाथमें यह अधिकार नहीं हो सकता है और इस तरहकी चर्चा उसके हकमें अनधिकार चेष्टा है।

जिस समय मैंने इस कमेटीकी स्थापनाकी आवश्यकता बताई थी मैंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि इस कमेटीका केवलमात्र तात्पर्य यह है कि वह देशको असहयोगका मर्म समझावे और उसे असहयोग स्वीकार करनेके लिये तैयार करे। यद्यपि यह पूर्णरूपसे प्रतिनिधि संस्था है और उसके

हाथमें पूर्ण अधिकार है तोभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह भारतके समस्त अच्छे तथा प्रभावशाली मुसलमानोंकी प्रतिनिधि संस्था है और न यह अभिप्राय ही था। उदाहरणार्थ उपाधिधारी मुसलमानोंसे इसे कोई सम्बन्ध नहीं पर इसके लिये कमेटीको दूषित नहीं बतला सकते। यह केवलमात्र उन लोगोंकी प्रतिनिधि संस्था है जो अपना पूर्णसमय और ध्यान असहयोगको सफल बनानेमें लगा सकते हैं जैसे असहयोग आन्दोलनका सङ्गठन करना, जातीय शिक्षा देना, तथा अहिंसाका प्रचार करना। इसलिये यह समिति केवल असहयोगके लिये काम करनेवालोंकी प्रतिनिधि सभा कहलायेगी। यह तो कभी भी सम्भव नहीं है कि सभी मुसलमान असहयोग आन्दोलनमें पूर्णरूपसे तत्परता दिखलावेंगे। कितनोंको इसकी योग्यतामें सन्देह है। कुछ लोग इसे निरर्थक दवा समझते हैं, और कितनोंका कहना है कि भारतकी वर्तमान अवस्थाके लिये यह उपचार इतना कठिन है कि कदाचित यह वर्दाश्त न कर सके, क्योंकि जिस त्यागकी आवश्यकता है उसके लिये भारत अभी तक तैयार नहीं है। कमेटीमें इस तरहकी आशंका करनेवाली कोई भी बातें नहीं हैं, यद्यपि अन्य प्रकारसे इसका प्रभाव सबसे बड़े मुसलमानसे भी अधिक हो सकता है जो इस कमेटीके सदस्य हैं। इसमें वही लोग सम्मिलित हैं जिनका असहयोगमें पूरा विश्वास है। जो लोग इसमें सम्मिलित हुए हैं

उन्होंने इस बातका पूरा वचन दिया है कि वे अन्तिम समय तक इसके साथ रहेंगे और इसको सफलताकी पूर्ण चेष्टा करेंगे। इसलिये इस कमेटीको अपना यश आपसे आप स्थापित करना है और इसकी सम्भावना कमेटीके कार्य तथा परिणामपर निर्भर है। यदि इसने कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया और यदि इसके कामसे किसी तरहका शुभ परिणाम नहीं निकला तो वहीं उसका अन्त हो जायगा। जो लोग इसके दायरेके बाहर हैं उनसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। शौकत अली सरल और मिलनसार आदमी हैं पर कट्टर हैं और किसीका उन्हें डर, भय या दबाव नहीं है। मौलाना हसरत मोहानीको केवल स्वदेशीकी ही धुन समाई हुई है, इस तरह वह भी बेकार हैं। डाकृर सैफुद्दीन किचलू अभी रङ्गरूट हैं जिसे अमृतसरके अतिरिक्त संसारका कोई अनुभव नहीं है। इसी तरह अन्य सदस्योंकी हालत है। मैं इन सबोंमें अच्छा हूं पर मैं सनकी हूं और बलात्कार घुस जाने वालोंमें हूं। इसलिये इसके सदस्योंके हस्ताक्षरसे जो सूचनायें निकाली जायंगी उनका प्रभाव इसके दायरेके बाहर बहुत कम पड़ेगा। इससे यह अभिप्राय नहीं निकलता कि यह कोई बात उपस्थित नहीं कर सकेगी। जब हमें कोई काम करना आवश्यक है और इसके लिये अन्य लोग तैयार नहीं हैं तो यह अपना काम (उस कामको) अवश्य करेगी। यदि हस्ताक्षर करानेके लिये बड़े बड़े लोगोंके पास जाया

जाय या उनसे प्रार्थना की जाय तो इससे दो बुराइयाँ प्रगट होंगी। पहले तो यह कि जनतापर अनुचित दबाव डाला जायगा और दूसरे असहयोगका असली रूप लोगोंकी दृष्टिसे छिप जायगा अर्थात् इसका असली रूप नहीं व्यक्त हो सकेगा। पर जनसमूह तथा अन्तरङ्ग कार्य सम्पादनके लिए कमेटी पूर्ण-रूपसे प्रतिनिधि संस्था है। मुसलमानोंके मतका मौलाना शौकत अली तथा मौलाना हसरत मोहानीसे बढ़कर प्रति-निधि दूसरा कोई नहीं हो सकता। अन्य सदस्य यद्यपि उतने प्रसिद्ध नहीं हैं तथापि उनमें तत्परता धैर्य्य, शान्ति, सचाई साहस तथा आत्मत्यागका सर्वोच्च गुण वर्तमान है।

कहीं कहींसे यह भी आक्षेप किया गया है कि मैं ही इस आन्दोलनका नायक बनाया गया हूं। यह अंशतः सच भी है। केवल अपनी नम्रता और सादगी दिखलानेके लिये मैं यह बात नहीं कह रहा हूं पर यही वास्तविक बात है। यदि जनताको इस बातका पक्का विश्वास हो जाय कि मैं ही इस आन्दोलनका नायक हूं तो इससे हानि होनेकी सम्भावना है। मैं इस आन्दोलनका नायक केवल इस अभिप्रायमें हूं कि मेरी रायका वजन सबसे अधिक है और असहयोगके पालनमें मेरी समता अभी कोई नहीं कर सकता। पर मैं मुसलमानोंका प्रतिनिधि किसी भी तरह नहीं हो सकता। मैं केवल उनके भावोंको जनता तक पहुंचा सकता हूं। यदि अकेला छोड़ दिया जाऊं तो मैं किसी भी प्रकार यह

आशा नहीं कर सकता कि मुसलमान जनता मेरा साथ देगी या मैं उन्हें साथ ले चल सकूंगा। यदि मैं धार्मिक विषयोंपर किसी अच्छे मुसलमानकी प्रतियोगिता करूं तो सिवा तिरस्कारके और कोई परिणाम नहीं निकल सकता। पर यदि मैं मुसलमान होता तो मैं निःसंकोच होकर मुसलमानोंकी बड़ीसे बड़ी सभामें अपने हृदयके भाव उपस्थित करता यद्यपि बड़ेसे बड़े धार्मिक मुसलमान मेरे विरोधके लिये उपस्थित रहते। मैं अपनेको दूरदर्शी कार्यकर्ता समझता हूं और उसके अनुसार मैंने भली भांति समझ लिया है कि इस विषयमें मेरा अधिकार एकदमसे नियन्त्रित है। मैं अपने अधिकारकी सीमाके पार नहीं जाना चाहता। मैंने जान कर कभी भी उस सीमाका उल्लंघन नहीं किया है। प्रत्येक समझदार मुसलमानको इस बातको कभी भी नहीं भूल जाना चाहिये कि मेरे अधिकार नियन्त्रित हैं और मैं इसके बाहर काम नहीं कर सकता। अनजानकारीभी इस आन्दोलनको असफल बनानेमें सहायक हो सकती है। खिलाफतके साथ मेरे सम्बन्धके कारण न तो किसीको उदासीन होना चाहिये और न भूल और नासमझी करनी चाहिये। यदि मेरे सहयोगसे इस काममें सफलता मिलनेकी सम्भावना है तो मुसलमानोंको और भी तत्परता और उद्योगसे काम करना चाहिये। मैं उपाय और युक्तियां भले ही बता सकता हूं पर उनको कार्यमें परिणत करना मुसलमान कार्यकर्त्ताओंके ही

हाथमें है। इस आन्दोलनको उन्हें पूरी तरह चलाना चाहिये और यदि कोई सच्चा सहायक और मित्र मिल जाता है तो उसका उपयोग करना चाहिये पर किसीपर निर्भर नहीं रहना चाहिये। यह आशा करना कि मैं असहयोगी तैयार कर सकता हूं व्यर्थ है असहयोगी तैयार करनेकी योग्यता और क्षमता मुसलमानोंमें ही है। चाहे मैं कितना भी त्याग क्यों न करूं मेरे त्यागसे मुसलमानोंके हृदयोंमें असहयोगका भाव नहीं घुस सकता और न वे धर्मके लिये त्याग हो कर सकते हैं। यह काम मुसलमान नेताओंको ही करना होगा और मुसलन जन समूहको असहयोगके लिये तैयार करनेके हेतु उन्हे ही त्याग करना होगा।

मेरी समझमें इतनेसे यह प्रश्न हल हो जाता है कि इस कमेटीमें हिन्दू नेता क्यों नहीं रखे गये हैं। खिलाफतके लिये सबसे बड़ी सभामें मुसलमानोंकोहीं अधिकाधिक संख्या रह सकती है। मेरा नाम भो इसमें अनुचित है पर आवश्यक है क्योंकि जिस काममें हाथ डाला जारहा है उसमें मेरी अपार योग्यता है। मैंने असहयोगको खूब समझा है और अपनाया है। मैंने इसपर आचरण करके पूर्ण अनुभव भी प्राप्त कर लिया है। असहयोगका जो प्रस्ताव दिल्ली कांफरंसमें उपस्थित किया गया था उसको मैंने ही रचा था। इसलिये मैं इस कमेटीमें विशेषज्ञकी हैसियतसे हूं नकि हिन्दूकी हैसियतसे। मेरा काम केवल सलाह देना है। मैं कट्टर हिन्दू हूं और मेरी दृढ धारणा

है कि प्रत्येक हिन्दूको असहयोग आन्दोलनमें मुसलमानोंका अन्ततक साथ देना चाहिये। इसलिये कमेटीको और भी लाभ हो सकता है। पर इस लाभसे और मेरे सदस्य होनेसे कोई संबध नहीं है क्योंकि यदि मैं कमेटीमें न होता तोभी हिन्दू मुसलमानोंका साथ देते ही।

खिलाफतके संबंधमें हिन्दुओंका क्या कर्तव्य होना चाहिये इस विषयपर मैंने अपना मत प्रगट कर दिया था। इस स्थानपर उसके विषयमें कुछ लिखना केवल पुनरावृत्ति होगी। पर मैं अपनी स्थिति इसके साथही साथ स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैं मुसलमानोंकी मांगको व्यवहारिक दृष्टिसे भी न्यायपूर्ण समझता हूं, इसलिये मैं असहयोग आन्दोलनमें उनके साथ अन्तिम हद तक जानेके लिये तैयार हूं। और मेरा यह निर्णय ब्रिटिशके प्रति मेरी राजभक्तिके सर्वथा अनुकूल है। पर मैं हिंसाके किसी भी काममें मुसलमानोंका साथ नहीं दे सकता। मान लीजिये कि सन्धिकी शर्तोंमें परिवर्तन करानेकेलिये वे अफगनिस्तानसे भारतपर धावाकी योजना करते हैं या किसी तरह शस्त्र उठाते हैं तो मैं उनका साथ नहीं दे सकता। मेरी यही धारणा है कि प्रत्येक हिन्दूका यह कर्तव्य है कि वह भारतपर किसी तरहका आक्रमरण न होने दे चाहे उसका उद्देश्य कितना भीअच्छा क्यों न हो पर मुसलमानोंका साथ वह अन्त समयतक देता रहे चाहे उसके लिये उसे कितनी भी आपत्तियां क्यों न उठानी पड़ें यदि मुसलमान असहयोगके कार्य क्रमको तत्परताके

साथ स्वीकार करते हैं। केवल इस तरहके सशस्त्र युद्धकी सम्भावनाको रोकनेके अभिप्रायसेही मैंने असहयोग आन्दोलनको चलाया है और मुसलमनोंका साथ दिया है।

——:※:——

अनुपम अस्त्र

(अगस्त ४, १९२०)

बम्बईके मुजफ्फराबाद्में जुलाई २९, १९२० को मुसलमानों-की एक महती सभामें असहयोगपर व्याख्यान देते हुए महात्मा-जीने निम्न लिखित बातें कही थीं:—

अब व्याख्यान देनेका समय नहीं रहा। हमलोग काफी व्याख्यान दे चुके। अब तो असहयोगको लेकर काम करके दिखाना है। इस बातको सदा स्मरण रखना चाहिये कि हमारी सफलताके लिये दो बातें नितान्त आवश्यक हैं। पहली बात तो यह है कि हमें हर तरहसे हिंसाके भावसे दूर रहना होगा और अहिंसाका राज्य स्थापित करना होगा और दूसरे हमें हर तरहके त्यागके लिये तैयार रहना पड़ेगा। जहां कहीं हिंसा प्रगट होगी वहां असहयोगका चलना या चरितार्थ होना अस-म्भवसा है। हिंसाका भाव उदय हुआ कि मनुष्यके हृदयमें क्रोध आया और क्रोध आया कि वह अन्धा हुआ, कर्त्तव्याक-र्त्तव्यका ज्ञान भूल गया और व्यर्थमें अपनी अमूल्य शक्तिका

ह्रास करने लगा। क्रोधका दमन करनेमें शक्तिका संचय होगा और इस शक्तिके सदुपयोगसे असम्भव काम भी संभव हो जायगा। जनसमूह उत्तेजित होकर जिन उपद्रवोंको कर डालता है अर्थात् आग लगा देना, लूट लेना, मारडालना, इत्यादि बात असहयोगसे कोसों दूर भागती हैं। इस असहयोग व्रतमें यह पहलेसे ही मान लिया जाता है कि इसको ग्रहण करनेवाला अपनी इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार रखेगा और कमजोरियोंका दमन करेगा। इसलिये यदि जनताने अपने ऊपर अधिकार नहीं रखा और किसी तरहकी दुर्बलता दिखाई तो मैं उसी समय सरकार-का पक्ष ग्रहणकर लूँगा और जनताको मुट्ठीमें करने तथा दबाने-के हर एक तरीकेसे काम लेनेमें उसकी सहायता करूँगा। जिस समय जनता उत्तेजित होकर कुमार्गमें प्रवृत्त हो जायगी और हाथसे बाहर हो जायगी उस समय मेरे सामने दोनों ओर बुराई ही दिखलाई देगी और दो बुराईमेंसे एक बुराईको हमें अंगीकार करना होगा। ऐसी अवस्थामें मैं सरकारकी तरफ झुकना ही उचित समझूँगा क्योंकि उसका साथ देनेसे उस समय एक बुराईका तो नाश अवश्य हो जायगा, अर्थात् उपद्रवका दमन हो जायगा। पर जनतामें मेरा पूर्ण विश्वास है। मुझे पूर्ण आशा है कि उन्होंने इस बातको भलीभांति समझ लिया है कि इस युद्धमें विजय पानेका एकमात्र शस्त्र अहिंसा है। यदि इसकी अन्य उयोगिताओंको अलग रखकर केवल साधारण बुद्धिसे विचार किया जाय तोभी यही प्रतीत होता है क्योंकि यदि हम इच्छा

भी करें तो आज हममें उतनी शक्ति नहीं कि हम सरकारके पशुबलका सामना आत्मबलसे कर सकें और उसे रोक सकें। विजयकी नशामें यह सरकार पागल हो रही है और उसी पागलपनमें उसने इस समय धर्मपर यह कुठाराघात किया है।

अनुपम अस्त्र

असहयोग शस्त्रमें जो बल है उसका मुकाबला करनेवाला कोई अस्त्र नहीं है अर्थात् इसका सानी कोई नहीं। बेईमानी तथा दगाबाजीसे जिस सरकारने इस तरहके अन्यायका समर्थन किया है उसकी शक्तिका दमन करनेके लिये इसके पास काफी धार्मिक सत्ता है। इसलिये सरकार जबतक अपनी बेईमानीसे बाज नहीं आती, इसके लिये प्रायश्चित्त नहीं करती, उसे छोड़ नहीं देती, तबतक हमलोगोंमेंसे प्रत्येकका यही धर्म होना चाहिये कि उसकी हर तरहसे सहायता करना छोड़ दें पर इस बातका सदा ध्यान रखें कि हमलोगोंकी सामाजिक स्थितिपर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इसीलिये असहयोगके प्रथम चरणमें वे ही बातें रखी गई हैं जिनसे जनताकी शान्तिमें किसी तरहकी बाधा उपस्थित होनेकी कमसे कम सम्भावना हो। और जो इसमें भाग लेना चाहते हैं उन्हें त्याग भी कमसे कम करना है। यदि उनकी हार्दिक इच्छा है कि वे इस बदनीयत सरकारकी सहायता न करें और उससे किसी तरहकी कृपाकी

आकांक्षा न करें तो उन्हें उचित है कि उपाधियों तथा अवैतनिक पदोंका परित्याग करके उसका साथ छोड़ दें। साथ ही उपाधियोंका धारण और अवैतनिक पदोंपर काम करना किसी बड़ी प्रतिष्ठाका काम नहीं रह गया है। वकील वास्तवमें अदालतोंके अवैतनिक अफसर हैं। उन्हें उचित है कि वे उस सरकारकी सहायता करना छोड़ दें जो अन्यायपूर्ण और बदनीयत सरकारकी मर्यादाकी रक्षामें तत्पर रहती है। जनताको चाहिये कि वे तुरन्त पञ्चायती अदालतें खोल लें और अभियुक्तोंका विचार उन्हींमें करावें। इसी तरह अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपने लड़कोंको सरकारी स्कूलोंसे हटा लें और राष्ट्रीय विद्यालयोंके स्थापनाकी योजना कर उनमें शिक्षा दें या प्राइवेट शिक्षाकी ऐसी व्यवस्था करें जिससे सरकारसे किसी तरहका सम्बन्ध न हो। अधिकारसे मदान्ध सरकार इन बातोंपर हंसे क्योंकि उसका भ्रम है कि अदालतें और शिक्षालय तो हमारे लाभके लिये ही उसने बनाया है। पर इस बातमें उसे लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि इन बातोंका नैतिक असर अवश्य पड़ेगा और उसे नहीं दूर किया जा सकता। चाहे सरकार अभिमानके मदमें कितना भी चूर्ण क्यों न हो गई हो उसे इसके सामने सिर झुकाना ही पड़ेगा।

स्वदेशी

स्वदेशीको असहयोगका अंग बनानेमें मुझे आशङ्का है।

स्वदेशी मेरे लिये उतनाही प्यारा है जितना मेरा प्राण। पर यदि स्वदेशीका अलग उत्थान नहीं हो सकता तो मैं खिलाफतकी सहायतासे उसका उत्थान नहीं देखना चाहता। पर असहयोगका प्रधान साधन स्वार्थ त्याग है इसलिये स्वदेशीमें असहययोगमें आ जाता है क्योंकि स्वदेशीके प्रचारमें भी असीम आत्मत्यागकी आवश्यकता है। सच्चा स्वदेशीमें उत्तम वस्त्रोंकी अभिलाषाको त्यागनेका अभिप्राय टपकता है। इसलिये जनतासे मेरा अनुरोध है कि अब यूरोप तथा जापानकी बारीकियोंको त्याग दीजिये। उन महीन कपड़ोंकी चाह कम कीजिये, अब अपने देशके बने मोटे कपड़ोंमें मन रमाइये जो आपकी बहिन बेटियोंके हाथसे काते और आपके जुलाहे भाइयोंके हाथसे बुने रहते हैं और जो मोटे तथा खुरखुरे रहकरभी देखनेमें अतिशय सुन्दर प्रतीत होते हैं। यदि देश सचेत हो गया है, यदि उसने अपने धर्म और मर्यादा पर आनेवाली विपत्तिको देख लिया है, उसका अनुभव उसे हो गया है तो निश्चय वह अभीसे विना किसी सोच विचारके पूरी तरहसे स्वदेशीको अपनायेगा और यदि देशने स्वदेशीको अपनानेमें पूर्ण तत्परता दिखाई तो मैं आपको पक्का विश्वास दिलाता हूं कि हमारे हाथमें इसके द्वारा यह अमोघ अस्त्र आ जायगा जिसके कारण एक बार सारे विश्वमें हलचल मच जायगी। इसलिमे मेरा अनुरोध है कि हमारे मुसलमान भाई इस काममें अग्रसर हों और बारीकी तथा

सुन्दरताकी चाह छोड़कर मोटे कपड़े को अपनावें जिसे उनकी माताओं तथा बहिनोंने तैयार किया है और जो इसलिये परम पवित्र है। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दूलोग इस काममें भी हमारे मुसलमान भाइयोंका अनुकरण करेंगे। इस स्वार्थ त्यागमें देशके प्रत्येक व्यक्तिको, नरनारी, बालक युवा तथा वृद्ध, सबको बराबर तथा पूर्ण उत्साहसे भाग लेना चाहिये।

देशकी आवाज पर

(जुलाई २१, १९२०)

इलाहाबादकी खिलाफत कानफरेन्समें डाक्टर तेजबहादुर सप्रूने मुसलमानोंके साथ सहानुभूति प्रगट करते हुए, किन्तु 'असहयोग' का विरोध करते हुए एक जोशीली वक्तृता दी थी जिसके उत्तरमें महात्मा गांधीने 'यङ्ग इण्डियामें' विचार-पूर्ण लेख प्रकाशित किया है। इस लेखके अधिकांश भागका हिन्दी अनुवाद हम नीचे देते हैं :—

डाक्टर सप्रूके विचारोंकी जड़में यह भाव छिपा हुआ है कि बेपढ़े लिखोंके असहयोग करनेसे कोई लाभ न होगा, बल्कि अशान्ति और गड़बड़ फैल जायेगी। मेरी रायमें असहयोग

चाहे जो करे अवश्य लाभदायक होगा। अगर वायसरायका दरबान यह कहे कि हुजूर मैं सरकारकी नौकरी अब नहीं कर सकता, क्योंकि आपने मेरे राष्ट्रीय गौरवको चोट पहुंचाई है, और इस्तीफा दे दे तो यह कार्य सरकारके अन्यायके विरुद्ध जोरदारसे जोरदार स्पीच देनेकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली और प्रभाव-जनक होगा।

किन्तु जबतक देशके सबसे बड़े लोगोंसे असहयोग करनेकी प्रार्थना नहीं की गई तबतक दरबानसे प्रार्थना करना अनुचित है और चूंकि मेरा इरादा है कि अगर आवश्यकता पड़ी तो दरबानोंसे भी मैं अन्यायी सरकारसे नाता तोड़ लेनेके लिये प्रार्थना करूंगा, इसलिये मैं इस समय जजोंसे और कार्यकारिणी कौंसिलोंके मेम्बरों (Executive Councellors) से यह अपील करूंगा कि वे उस विरोधमें शामिल हों जो कि इस समय भारतके साथ दोहरा अन्याय—पञ्जाब और खिलाफतके सवाल—किये जानेके कारण समस्त देशमें उठ रहा है। क्योंकि यह दोनों राष्ट्रीय-मान-अपमानके सवाल हैं।

* * * *

जिस समय जनताको सरकारमें विश्वास होता है और जब सरकार प्रजाकी इच्छाओंके अनुसार चलती है उस समय न्याय और शासन-विभागके सरकारी कर्मचारी सम्भवतः देशकी कुछ सेवाकर सकते हैं। लेकिन जब सरकार प्रजाकी इच्छाओंके

अनुसार नहीं चलती और बेईमानी तथा अत्याचारकी सहायता करने लगती है तब न्याय और शासन-विभागके सरकारी कर्मचारी अपनी अपनी जगह पर कायम रहनेसे बेईमानी और अत्याचार करनेमें सहायक हो जाते हैं। सबसे साधारण काम जोकि उस समय इन उच्च पदाधिकारियोंको करना चाहिये, वह यह है कि बेईमान और अत्याचार करनेवाली सरकारके सहायक न रहें।

न्याय विभागके कर्मचारियोंके सम्बन्धमें यह आक्षेप किया जा सकता है कि वे राजनीतिसे परे हैं। मैं भी मानता हूं कि परे हैं और परे होना चाहिये भी; किन्तु यह बात सच तभी मानी जाती है जबकि सरकार प्रजाके हितके लिये अधि-कांश लोगोंकी सम्मतिके अनुसार चलती हो। राजनीतिमें भाग न लेनेका मतलब यह होता है किसी राजनीतिक दलका पक्ष न लें, किन्तु जबकि तमाम देशका एक विचार है उस समय उसका पक्ष लेना पड़ता है। जिस समय तमाम देशके साथ अन्याय किया गया हो, उस समय देशका पक्ष लेना किसी राजनीतिक दलका पक्ष लेनेके समान नहीं है उस समय जीवन और मरणका प्रश्न पेश होता है। उस समय प्रत्येक देशवासीका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उस सरकारकी सेवा करना छोड़ दे जो कि बुरा व्यवहार और राष्ट्रकी इच्छाओंकी उपेक्षा करती हो। जजोंका भी उस समय यह कर्तव्य होता है कि वे राष्ट्रका अनुकरण करें, यदि वे अपने आपको देशका सेवक मानते

हों। यह सच है कि ये जगहें बड़ी कोशिशोंके बाद मिली हैं और वे लाभदायक हैं इसलिये नहीं कि उनके वास्ते कोशिश की गई है, बल्कि इसलिये कि उनसे देशके हित होनेकी आशा की जाती है। जब यह नौकरियां इस गुणसे शून्य हो जाती हैं, वे लाभदायक नहीं रह जातीं और जैसा कि आजकल है, नुकसान पहुंचानेवाली हो जाती हैं—उनके प्राप्त करनेमें चाहे जितनी मुशकिल क्यों न पड़ी हो और आरम्भमें वे चाहे कितनी ही फायदेमन्द क्यों न रही हों।

अपने प्रसिद्ध देशवासियोंसे जो ऊंची ऊंची जगहों पर हैं, मैं यह प्रार्थना करूंगा कि यदि उन्होंने अपनी अपनी जगहें छोड़ दीं तो यह संग्राम शीघ्र ही समाप्त हो जायगा और शायद इस तरहसे वह ख़तरा भी कम हो जाय, जो कि जनताके असहयोग करने पर हो सकता है। अगर खिताबवाले अपना खिताब वापस कर दें और आनरेरी काम करनेवाले अपनी आनरेरी जगहें छोड़ दें और अगर ऊंचे ओहदे पर काम करनेवाले अपने ओहदेसे इस्तीफा दे दें और चुने जानेवाले मेम्बर कौन्सिलोंका बायकाट कर दें तो सरकारको फौरन ही होश आ जाय और वह प्रजाकी इच्छाओंके मुताबिक फौरन ही काम करने लगे क्योंकि उस समय सरकारके सामने एकमात्र नितान्त निरङ्कुश शासनका रास्ता रह जायगा और इसका मतलब होगा सैनिक एकाधिपत्य (Military Dictatorship)। पर दुनिया अब इतनी आगे बढ़ गई है कि ग्रेट ब्रिटन इस बातके

करनेका शान्ति-पूर्वक साहस न कर सकेगा। जिन तदबीरोंकी मैंने तजवीज की है उनके अनुसार चलनेसे एक अत्यन्त शान्ति-जनक क्रान्ति हो जायगी जिसके समान समस्त संसारमें शायद आज तक नहीं हुई। अगर एक मर्तबा यह बात समझ ली जाय कि असहयोग एक अचूक शस्त्र है तो फिर रक्तपात और हर एक प्रकारकी और उद्दण्डताका अन्त हो जाय।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय असहयोग जैसे भारी शस्त्रका प्रयोग काफी कारणोंके मौजूद न होने पर न करना चाहिए। लेकिन मैं यह कहता हूं कि इस्लामका इतना अधिक अपमान किया गया है कि वह एक सदी तक दुहराया नहीं जा सकता। इस्लामको इस समय उठाना चाहिये, नहीं तो "सदाके लिये" या कमसे कम एक सदीके लिये जरूर गिर जाना पड़ेगा। जलियांवाला बागका कत्ल, उसके बादके अत्याचार, हन्टरकमेटीकी लीप पोत, भारत सरकारका डिसपैच, मि० मान्टेगूका पत्र—जिसमें उन्होंने वाइसराय और उस समयके लाट साहबका समर्थन किया था—सरकारका उन कर्मचारियोंका बरखास्त करनेसे इन्कार करना, जिन्होंने मार्शललाके जमानेमें पंजाबियोंकी जिन्दगीको नर्कसे भी अधिक दुःखमय बना दिया था इत्यादि इत्यादि ऐसे काम है कि जिनसे अधिक अन्याय-पूर्ण कामोंकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते। ये काम वास्तबमें भारतके लिये एक सिलसिले वार अत्याचारोंकी श्रेणी है। भारतवर्षमें

अगर कुछ भी आत्म-गौरवका अंश पाया जाता है तो उसे अपनी तमाम दौलतका बलिदान करके इस अपमानको मिटाना चाहिये और अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो वह अपनी आत्माको रोटीके टुकड़ोंके लिये बेच डालेगा।

विशेष कांग्रेस।

सितम्बर १५, १९२०)

कांग्रेसको इतने गम्भीर तथा महत्वपूर्ण विषयपर विचार करनेका कभी भी अवसर नहीं प्राप्त हुआ था। इस विशेष अधिवेशनका महत्त्व सब कांग्रेसोंके ऊपर रहेगा। लाला लाजपतरायकी देख रेखमें इसने बड़ा ही महत्त्वशाली काम किया है। असहयोग प्रस्तावके विरोधके लिये नेता लोग जितने दृढ़ और कटिवद्ध थे उतना विद्रोह कभी भी नहीं देखनेमें आया था। इसके साथ ही साथ विरोधियों और विपक्षियोंके मतको भी, जनताने जिस तत्परता और धीरता तथा शान्तिके साथ सुना वह कांग्रेसके इतिहासमें अवर्णनीय है। विषय निर्धारिणी समितिमें जो प्रस्ताव स्वीकृत हो गया उस प्रस्ताव पर भी नेताओंने इतना भीषण विरोध आज तक कभी नहीं दिखलाया था।

मिसेज वेसेण्टने भारतके लिये जो सेवायें की हैं उनकी

ख्याति चारों ओर है। पण्डित मदनमोहन मालवीयका नाम तो जनता पर जादू कर देता है। देशसेवामें जितना आत्मत्याग तथा परिश्रम पण्डितजी ने किया है वह सब जानते है। श्रीयुत दासका दल नित्यप्रति शक्ति सम्पन्न तथा प्रभावपूर्ण होता जा रहा है। इस समय स्वर्गीय लोकमान्यकी अनुपस्थिति मेरे हृदयको नितान्त पीड़ा दे रही थी। लोकमान्यकी अनुपस्थितिमें मरहठा दलके नेता मिस्टर बैपटिस्टा थे और हिन्दू पत्रके सम्पादक मिस्टर कस्तूरीरङ्गा ऐयङ्गर मद्रास राष्ट्रीय दलके नेता थे। इन गण्यमान्य नेता तथा अन्य नेताओंने असहयोग प्रस्तावका दृढ़ताके साथ विरोध किया। मैंने जनताको पूरी तरह समझा दिया था और सावधान कर दिया था कि किसी प्रस्तावको स्वीकार करनेके पहले वे खूब सोच समझ लें और इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि असहयोगकी सफलता केवल दो बातोंपर निर्भर है। पहले तो यह कि जिस कार्यक्रमको मैंने उनके सामने रखा है उसे पूरी तरहसे अपनाना होगा तथा उसके लिये पूर्ण आत्मत्याग करना होगा और हर तरहका सङ्कट झेलना होगा। पर जनता इसके लिये तैयार थी, वह काम करना चाहती थी। मत प्रदानकी सूची सावधानीसे तैयार की गई। मत लेनेके लिये पण्डाल एक दमसे खाली कर दिया गया था। प्रत्येक प्रान्तके मतप्रदानके समय सभापति लाला लाजपतराय स्वयं मौजूद थे। ६ घण्टे समय लगे। मध्य प्रान्त तथा बरारको छोड़कर सभी प्रान्तोंने असहयोग प्रस्तावके पक्षमें मत दिया। मध्य प्रान्तवा-

लोंने ३० मत मेरे प्रस्ताव पर दिये और ३३ बाबू विपिनचन्द्र पालके सुधार पर। मतोंकी विस्तृत सूची नीचे दे दी जाती है:-

प्रान्त	पक्षमें	सुधारके लिये
बम्बई	२४३	६३
मद्रास	१६१	१३५
बङ्गाल	५५१	३६५
संयुक्त प्रदेश	२५६	२८
पञ्जाब	२५४	६२
आंध्रदेश	५६	१२
सिन्ध	३६	१६
दिल्ली	५६	६
बिहार	१८४	२८
बर्मा	१८	४
मध्यदेश	३०	३३
बरार	५	२८
	१८५५	४७३

मैंने जिस प्रस्तावको जनताके सामने रखा था उसमें खिलाफतके असहयोग प्रस्तावका पूरा समावेश था। मालगुजारी न देनेकी भी व्यवस्था थी और उपाधियों, अवैतनिक पदों, अदालतों तथा सरकारी शिक्षालयोंके पूर्ण वहिष्कारकी योजना थी। बाबू विपिनचन्द्र पालका सुधार था कि हमें एक कमी-

शनद्वारा अपनी मांगें इङ्गलैण्डके मन्त्रिमण्डलके सामने उपस्थित करनी चाहिये और इसी बीचमें हमें राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा पञ्चायती अदालतोंकी स्थापना कर लेनी चाहिये। कौंसिलोंके वहिष्कारके पक्षमें वे नहीं थे। यदि उनका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया होता तो हमें कौंसिलोंमें जानेके लिये चेष्टा करनी होती और इससे पुनः वही विरोधी और वाधा पहुंचानेवाली बातें हमारे मार्गमें खड़ी हो गई होतीं। इसका परिणाम यह होता कि आगामी निर्वाचन तकके लिये हमें अपने आन्दोलनको बन्द कर देना पड़ता। इसलिये विवादका प्रधान विषय था कौंसिलोंका वहिष्कार। पर कांग्रेसने बहुमतसे यही निर्णय किया कि कौंसिलोंका वहिष्कार नितान्त आवश्यक है। जिन लोगोंका विश्वास है कि कौंसिलोंके वहिष्कारसे स्वराज्यकी प्राप्तिमें किसी तरहकी वाधा नहीं पड़ सकती वे कांग्रेसके मन्तव्यको सफलीभूत बनानेके लिये पूरी तरहसे चेष्टा करेंगे।

मतोंकी जो सूची ऊपर दी गई है उससे स्पष्ट था कि देश असहयोगको हृदयसे चाहता है। इस प्रस्तावका कट्टर विरोध श्रीमती एनी बेसेण्टने किया था। उन्होंने जिस अदम्य उत्साह और दृढ़ साहससे इसका विरोध किया था उसका विवरण देना कठिन है, पर उनके पक्षमें बहुत ही कम लोग निकले। इस स्थानपर हम उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिताके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहते। कौंसिल, स्कूल और

अदालतोंके वहिष्कारके पक्षमें मेरी जो दलीलें हैं उन्हें मैं देशके समक्ष बारबार रख चुका हूं। कांग्रेसके रङ्गमञ्चपर इनके विरोधमें जो बातें कहीं गईं उन्हें सुनकर मैं जरा भी विचलित नहीं हुआ हूं। इनकी आवश्यकता और उपयोगितामें मेरा विश्वास पहलेकी भांति ज्योंका त्यों अटल है। फिर भी मैं बहुमतवालों और अल्पमतवालोंसे दो शब्द कहना चाहता हूं।

बहुमतवालोंसे मेरा कहना है कि विजयकी महत्ता नम्रताकी महत्ताकी सूचक है। आप लोगोंने अपने सिरपर बहुत भारी बोझ लाद लिया है। प्रत्येक मतदाताने अपनेको बांध दिया है कि यदि वह अभिभावक है तो अपने लड़कोंको सरकारी शिक्षालयोंसे तुरन्त हटा ले, यदि वह वकील है तो वह शीघ्रातिशीघ्र वकालत छोड़ दे, और पञ्चायती अदालतोंकी स्थापना करके मुकदमोंका निपटारा उन्हीं द्वारा करावे, यदि वह कौंसिलोंके लिये उम्मेदवार है तो उसे उचित है कि वह तुरन्त उम्मेदवारीसे नाम कटा ले, और यदि वह मतदाता है तो उसे उचित है कि वह मत न दे। उसे हर तरहसे चरखे और करघेका प्रचार करना होगा और केवल हाथके काते तथा हाथसे बुने सूतका कपड़ा पहनना होगा। अधिक मतके लोगोंने अहिंसा, आत्मत्याग तथा तालीमके व्रतको पूरी तरह स्वीकार किया है इसलिये उनका धर्म है कि वे अल्पमतवालोंके साथ आदर तथा विनयके साथ पेश आवें। उनके विरुद्ध वचन या कायसे किसी तरहकी हिंसा नहीं दिखलानी चाहिये। हमारी

चेष्टा होनी चाहिये कि अपने आचरण तथा स्वार्थत्यागके द्वारा उन्हें अपने मतमें परिवर्तित कर लें। जिन लोगोंने अल्पमत-वालोंका साथ दिया वे या तो कमजोर थे या तैयार नहीं थे। कितनोंको तो इसी बातकी आशंका थी कि क्या सरकारी शिक्षालयोंके वहिष्कारसे किसी बातका लाभ हो सकता है। पर जब वे देखेंगे कि सरकारी शिक्षालय खाली होते जा रहे हैं, राष्ट्रीय विद्यालय खुलते जा रहे हैं, वकील वकालत छोड़ दे रहे हैं पर भूखों नहीं मर रहे हैं और सभी सुविचारवान राष्ट्रदलके लोग कौंसिलोंका वहिष्कार करते जा रहे हैं तो असहयोगके कार्यक्रममें उनका विश्वास जम जायगा। वे अपनी कमजोरी छोड़ देंगे और असहयोग कार्यक्रमको स्वीकार करेंगे। इसलिये यदि अल्पमतवालोंका साम्प्रतिक विचार हम लोगोंके अनुकूल नहीं है तो हमें अधीर नहीं हो जाना चाहिये।

अल्पमतवालोंसे मुझे कहना है कि वे न्याययुद्धमें हार खा गये हैं। इस समय उन्हें यही योग्य है कि वे पूर्णतत्परताके साथ असहयोग कार्यक्रमको अपनानेके लिये तैयार हो जांय। पर जो लोग यह सोचते हैं कि बहुमत वाले जिस निर्णयपर पहुंचे हैं वह गलत और भ्रमपूर्ण है तो उन्हें पूर्ण अधिकार है कि वे उसके विरुद्ध आन्दोलन करें और उन्हें अपने मतमें लानेकी चेष्टा करें। इस बातकी प्रसन्नता है कि अल्पमतवालोंमें भी अधिक लोग ऐसे हैं जिन्होंने पंचायती अदालतों तथा राष्ट्रीय विद्यालयोंकी स्थापना स्वीकार कर ली है। कौंसिलोंके वहि-

ष्कारका प्रश्न वे कुछ दिनके लिये स्थगित कर देना चाहते हैं। पर मेरा कथन है कि जिस बातकी आवश्यकताको अधिक मतने स्वीकार कर लिया है उसे उन्हें भी स्वीकार कर लेना चाहिये और उसके सफल होनेमें सहायता देनी चाहिये।

इस कार्यक्रममें विदेशी मालका वहिष्कार भी आ गया है। इसके लिये मुझे खेद है। इसे इसमें क्यों शामिल किया गया इसके उल्लेख करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। पर मेरी आत्मासे इसका कोई विरोध नहीं था, और यह साबित करनेके लिये कि मैं हठी नहीं हूं मैंने इस प्रस्तावको भी उपस्थित करना स्वीकार किया, यद्यपि इसपर मुझे विश्वास नहीं है। स्वदेशीमें विदेशी वस्त्रोंका वहिष्कार आ जाता है। पर अन्य विदेशी वस्तुओंका वहिष्कार असम्भव है। पर यदि इसके स्वीकार करनेसे हम लोगोंकी विलासितामें कुछ कमी आ जाय तो हम लोगोंका बड़ा उपकार होगा। हम लोगोंका यह परम कर्तव्य है कि हम लोग उन विदेशी वस्तुओंका त्याग कर दें जो अनावश्यक हैं तथा उनको भी त्याग करनेकी चेष्टा करें जिनके स्थानपर हम अपने देशमें ही वस्तुयें तैयार कर सकते हैं।

असहयोगका प्रस्ताव

(दिसम्बर १५, १९२०)

कलकत्ताकी विशेष कांग्रेसमें महात्मा गांधीने असहयोगका प्रस्ताव उपस्थित करते समय निम्नलिखित भाषण किया था:—

मैं यह बात अच्छी तरहसे जानता हूं कि इस महान् सभाके सन्मुख यह प्रस्ताव रखनेसे मेरे सिर पर कितनी गम्भीर जवाबदारी आ पड़ती है। यदि आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे तो मेरी और साथ ही आपकी भी कठिनाइयां कितनी बढ़ जायंगी, यह भी मैं जानता हूं। यदि आप मेरे प्रस्तावको स्वीकार करेंगे तो इसका अर्थ यही होगा कि आप उस नीतिमें स्पष्ट परिवर्तन कर रहे हैं जिसका कि देश अपने अधिकारोंकी प्राप्ति तथा मान-रक्षाके लिये अभी तक अवलम्बन करता रहा है। मैं यह बात भी अच्छी तरह जानता हूं कि अपनी मातृभूमिकी सेवामें मुझसे कहीं अधिक समय बितानेवाले अधिकांश नेता इस प्रस्तावके विरुद्ध हैं। चाहे वे स्वयं कुछ भी भोगें, परन्तु सरकारकी राजनीतिमें क्रान्ति उत्पन्न कर देनेवाली कही जानेवाली इस नीतिका विरोध करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इन सब बातोंको अच्छी तरह समझ लेने पर, मैं आपके सन्मुख खड़ा हुआ हूं। परमात्माके

भय और देशके प्रति अपने कर्तव्य-पालनकी दृष्टिसे प्रेरित होकर मैं यह प्रस्ताव आपके सामने रखता हूं, आशा है कि आप इसे सफल करेंगे।

मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप कुछ देरके लिये इस बातको भूल जाइये कि मैं गान्धी हूं। मुझ पर दोष लगाये जाते हैं कि मैं बड़ा महात्मा हूं, और 'जो हुक्म' पानेका व्यवहार कराना मुझे पसन्द है। मैं बल-पूर्वक कहता हूं कि मैं न तो आपके सामने 'महात्मा' की तरह खड़ा हूं और न आपके पास 'जो हुक्म' पना चलानेकी आशासे आया हूं। मैं तो, मेरे अनेक वर्षोंके व्यवहारमें असहयोगका मुझे जो अनुभव हुआ है, उसका दिग्दर्शन कराने मात्रको आपके सामने खड़ा हुआ हूं। मैं इस बातको स्वीकार नहीं करता कि देशमें असहयोग एक नई वस्तु है। बहुत प्राचीन कालसे इसका प्रयोग किया गया है, और इस समय भी सैकड़ों सभाओंमें जिनमें हजारोंकी संख्यामें लोग उपस्थित थे, असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया जा चुका है। यही नहीं, हमारे मुसलमान भाइयोंने तो १ अगस्तसे इसे व्यवहारमें लाने योग्य स्वरूप भी दे दिया है। प्रस्तावके कार्यक्रमकी कई बातें थोड़े या बहुत जोशके साथ कार्यरूपमें परिणत भी होती जा रही हैं। मेरी आपसे पुनः प्रार्थना है कि आप इस महत्त्वके प्रश्न पर व्यक्तियोंको ध्यानसे हटा कर धैर्य और शान्ति-पूर्वक अपना निर्णय कीजिये।

केवल प्रस्ताव पास कर देनेसे ही आपका पीछा नहीं छूट सकता। प्रत्येक व्यक्तिका, प्रस्तावकी जिस जिस बातसे सम्बन्ध हो, उसका उसे पालन करना पड़ेगा। मेरा निवेदन है कि आप मेरी बातोंको धीरज धर कर सुनिये। न तो ताली बजाइये, न हुर्रे हुर्रे कीजिये। मेरे लिये यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं इन पर विशेष ध्यान नहीं देता। परन्तु तालियोंसे विचार-प्रवाह रुकता है; और इनसे तथा हुर्रेसे बोलने तथा सुननेवालेके बीच बँधा हुआ क्रम टूट जाता है। अतएव आपका मत चाहे जो कुछ हो, किन्तु किसी वक्ताको हुर्रे करके बैठा न दीजिये। असहयोगकी कल्पना अभ्यास और आत्म-संयमकी साधना पर निर्धारित है और धैर्य और शांतिका धारण करना असहयोगका लक्षण है।

जब तक हमारी प्रवृत्ति पूर्व पश्चिम जैसे विरुद्ध विचारों तकको आपसमें निभा लेने योग्य नहीं बनाई जायगी तबतक असहयोग असम्भव है। क्रोधके वायुमण्डलमें असहयोगका नियम नहीं हो सकता; कड़वे अनुभवोंसे क्रोधको दबा देना यही एक महत्वकी बात मैं ३० वर्षमें सीखा हूं। दबा कर रखी गई उष्णतामेंसे जिस प्रकार शक्ति पैदा होती है उसी प्रकार संयममें रखे हुए क्रोधमेंसे भी ऐसा बल उत्पन्न किया जा सकता है जो सारे संसारको हिला डाले। मैं कांग्रेसमें आनेवालोंसे एक ही सेनाके सैनिक-मित्रकी भांति पूछता हूं कि हमें अपनेमें परस्पर सहिष्णुता उत्पन्न करना और एक

दूसरेके मत चाहे जितने विरोधी हों, तो भी उन्हें निभो ले जाना सीखनेसे बढ़ कर क्या कोई अन्य शिक्षा हो सकती है?

मुझसे कहा जाता है कि मैं अपना प्रस्ताव रख कर भारी विरोध पैदा कर रहा हूं; अपने प्रस्तावसे मैं देशके राजनीतिक जीवनमें फूट पैदा कर रहा हूं। कांग्रेस किसी एक विशेष दलकी संस्था नहीं है, प्रत्येक मतवादीके लिये कांग्रेसका मंच खुला होना चाहिये। अपने पक्षको संख्या कम है, इसलिये किसीको कांग्रेस छोड़ कर जानेकी आवश्यकता नहीं है। समयके अनुसार देशको अपना मत उपयोगी सिद्ध कर बहुमतको अपनी ओर कर लेनेकी आशा रखनी चाहिये। आप मेरी अपनी नीतिको पसन्द न करेंगे तो मैं कांग्रेस छोड़ कर चला नहीं जाऊंगा, आज मेरे पक्षमें अल्पमत होगा तो जबतक बहुमत मेरी ओर नहीं हो जाता तबतक मैं बराबर कांग्रेसमें अपने मतका प्रचार करता रहूंगा।

इसमें तो किसीका भी मतभेद नहीं है कि खिलाफतके साथ अन्याय हुआ है। चाहे जितना आत्म-बलिदान करना पड़े, मुसलमान उसे करके यदि आज अपनी लाज नहीं रखेंगे तो इज्जतके साथ न रह सकेंगे और अपने हजरत पैगम्बरके धर्मका पालन न कर सकेंगे।

पञ्जाब पर जुल्म हुआ है, और जिस क्षण एक भी पञ्जाबीको पेटके बल रेंग कर चलना पड़ा, उस क्षण यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सारा भारतवर्ष रेंग कर चला। यदि

हमें भारतके मानको कलङ्कित होनेसे बचाना है तो इस अत्याचारको मिटा देने पर ही हमारा छुटकारा होगा। खिलाफत और पञ्जाबके अत्याचारोंका न्याय पानेके लिये हम महीनोंसे प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु अभीतक ब्रिटिश सरकारको झुका न सके। क्या जनता अपने क्रोधका थोथा प्रदर्शन कराके ही चुप रह जाना पसन्द करेगी? सभापति (लाला लाजपतराय) ने अपने भाषणमें पञ्जाबके अत्याचारोंका जो दिग्दर्शन कराया है क्या उससे अधिक विवेचन आपने कभी सुना है।

ऐसी दशामें कांग्रेस अपने अस्तित्वकी न्यायता कैसे सिद्ध कर सकेगी यदि वह न्याय करनेसे मुँह मोड़नेवाले अधिकारियोंको न्याय करनेके लिये बाध्य नहीं कर सकती? जो हाथ हमारे भाइयोंके खूनसे रङ्गे हुए हैं उनसे सहजहीमें कुछ न मिल सकेगा। केवल इसी कारणसे मैं यह अपनी असहकारिताकी योजना आपके सन्मुख रख कर आपसे आग्रह करता हूं कि इसके अतिरिक्त आप और योजना स्वीकार न कीजिये। मैं आपसे यह इसलिये नहीं कह रहा हूं कि मुझे अपनी योजना पर आग्रह है। मेरा तात्पर्य यही है कि खूब विचार कर लेनेके बाद मेरी योजनाकी अपेक्षा यदि आपको दूसरी योजना उच्च कोटिकी न दिखाई दे तो आप इसे स्वीकार कीजिये। मैं यह दावेके साथ कहता हूं कि इस योजनाको जनतासे पूरा समर्थन मिला है; और यह मैं फिर दावेके साथ कहता हूं कि यदि आप इस योजनाके अनुसार कार्य करें तो

आपको स्वराज्य एक ही वर्षमें प्राप्त हो सकता है। इस वृहत् सभाका प्रस्ताव पास करके बैठ रहना ही काफी नहीं है; प्रत्युत दिन प्रतिदिन अधिकाधिक जोशके साथ इसको व्यवहारमें लाया जाय, तभी सफलता सम्भव है। देशकी वर्तमान परिस्थिति पर पूरा ध्यान रख कर ही इस प्रस्तावका कार्यक्रम निश्चित किया गया है। असहयोगके सिवा एक और उपाय जनताके सामने न्याय-प्राप्तिका था; और वह था तलवार खींचनेका। परन्तु हिंदुस्तानके पास इस समय तलवार नहीं है; मैं जानता हूं कि यदि उसके पास तलवार होती तो उसने असहयोगकी सलाहको सुना भी न होता।

परन्तु मैं आपको यह बतला देना चाहता हूं कि यदि आप अन्याय-परायण हाथोंसे, मार-काट द्वारा, न्याय करा लेना चाहते हों तोभी आत्म-बलिदान, संयम तथा व्यवस्थाकी बड़ी आवश्यकता है। मैं देशको व्यवस्था और आत्म-बलिदानमें पारङ्गत हुआ देखनेके लिये उत्सुक हूं। बुद्धि-बलमें हम किसीसे पीछे नहीं हैं, परन्तु मैं देखता हूं कि हममें व्यवस्था और आत्म-त्याग नहीं। मैं देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक केवल यह परीक्षा करनेके लिये सफर कर रहा था कि देशमें राष्ट्रीयताके भाव पैदा हुए हैं या नहीं, राष्ट्रीय वेदी पर अपना धन अपने स्त्री-पुत्र एवं अपना सर्वस्व बलिदान करनेके लिये देश तैयार है या नहीं। और यदि जनता आज निःशङ्क होकर अपना सर्वस्व होम देनेके लिये तैयार हो तो मैं इसी

क्षण आपके हाथमें स्वराज्य सौंपवा देनेको तैयार हूं। जनता इतना त्याग करनेके लिये तैयार है? उत्सुक है? समर्थ है? हमारे पदवीधर एवं मानके भूखे लोग अपने खिताब और ओहदे छोड़नेके लिये, अपने अपने बच्चोंको सरकारी या सरकारसे सहायता पानेवाले स्कूलोंसे उठानेके लिये तैयार हैं? मेरा तो कहना है कि जो स्कूल और कालेज केवल सरकारके लिये क्लर्क ढालनेके कारखाने मात्र हैं उनमेंसे यदि लड़के न उठाये गये तो समझना चाहिये कि स्वराज्य हमसे अभी कोसों दूर है। यह बात कभी नहीं निभ सकती कि विदेशियों द्वारा शासित कोई भी देश, एक हाथसे उसकी कृपाओंको स्वीकार करता जाय और दूसरे हाथसे, शासक जाति उसके सिर जो बोझ और जिम्मेदारी डाले, उसे ठुकराता जाय। विजेताओंकी ओरसे की गई कोई भी कृपा विजित जातिके लाभके लिये नहीं, प्रत्युत शासक-वर्गके लाभके लिये होती है। जिस समय पराधीन जातिको यह बात सूझ जावे उसी समय उसे चाहिये कि वह विजयी राष्ट्रको स्वेच्छानुसार सहायता देना बन्द कर दे। इसी मुख्य सिद्धान्त पर हमारे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्यके संग्रामकी सफलता निर्भर है, फिर वह स्वातन्त्र्य साम्राज्यकी छत्र-छायामें हो या उससे बाहर। मेरी इच्छा है कि आप इस बातको अच्छी तरह समझ लें, और यदि आपकी दृष्टिमें उचित न दिखाई दे तो मेरे प्रस्तावको स्वीकार न करना ही आपका कर्त्तव्य है। मैं हिन्दू और मुसलमानोंके वास्तविक ऐक्यको ब्रिटिश साम्राज्यके

सम्बन्धसे हज़ारों गुना अधिक कीमती समझता हूँ; और यदि कोई मुझसे इनमेंसे किसी एकको पसन्द करनेके लिये कहे तो मैं साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेकी अपेक्षा हिन्दू-मुसलमानोंके ऐक्यको ही श्रेयस्कर समझूंगा, अर्थात् मुसलमानोंके ऐक्यके लिये मैं साम्राज्यसे सम्बन्ध तोड़नेको तैयार हूं। इसी प्रकार यदि मुझसे कोई पूछे कि मैं पञ्जाबके सम्मानकी रक्षा करना—जिसका अर्थ है भारतके सम्मानकी रक्षा करना—पसन्द करूंगा या ब्रिटिश साम्राज्यसे अपना सम्बन्ध कायम रखना, तो मैं निस्सन्देह पञ्जाबकी—भारतके सम्मानकी—रक्षा करना पसन्द करूंगा और उसके साथ आनेवाली अवस्था स्कूलों, अदालतों तथा वकालतों आदिका बन्द होना, यहां तक कि अराजकताको भी, विना किसी सङ्कोचके स्वीकार कर लूंगा। यदि आपकी अन्तरात्मामें भी वैसी ही अग्नि जल रही हो, यदि इस्लामकी इज्ज़त अक्षत रखनेके लिये आप मेरे ही जैसे उत्सुक हों और यदि पंजाबकी इज्ज़तको निष्कलङ्क करनेके लिये बेचैन हों तो विना किसी सङ्कोचके आपको यह प्रस्ताव स्वीकार करना चाहिये।

परन्तु इतने ही पर इतिश्री नहीं है, मुख्य विषयकी तो मैंने अभी चर्चा ही नहीं की है; वह है कौंसिलोंका पूर्णतया वहिष्कार। यदि कांग्रेसकी इस बैठकमें मतभेद होगा तो केवल इसी प्रश्न पर। कौंसिलोंमें जाकर स्वराज्य मिलेगा या बाहर रह कर? क्या देशका विश्वास है कि कौंसिलों द्वारा स्वराज्य मिलेगा? इस विषयमें मैं अभी कुछ न कहूंगा।

कौंसिलोंका वहिष्कार न करनेके पक्षमें जो जो दलीलें दी जायंगी उनका उत्तर मैं पीछेसे दूंगा। अभी तो मेरा यही कहना है कि यदि ब्रिटिश सरकार और उसके वर्तमान राजनीतिज्ञों परसे आपका विश्वास विलकुल उठ गया हो, यदि आप इस बातको मानते हों कि ब्रिटिश सरकारको उसके दुष्कृत्योंके प्रति तनिक भी पश्चात्ताप नहीं हुआ, तो आप यह कैसे मान सकते हैं कि इन कौंसिलोंसे आपको स्वराज्य मिलेगा? विदेशी मालके बायकाटकी बात इस प्रस्तावमें है। यद्यपि इससे मैं सहमत नहीं हूं, तोभी समर्थन कर रहा हूं, क्योंकि यह स्वदेशीका एक आवश्यक अङ्ग है और यह अन्तःकरणका विषय नहीं है। जबतक कि सूई और आलपीनोंतकके लिये हमें विदेशियोंका मुंह ताकना पड़ता है, जबतक हम स्वयं अपनी आवश्यकताओंको पूरा नहीं कर सकते और अपने पाँवों पर खड़े नहीं हो सकते, तब तक विदेशी मालके वहिष्कारमें सफलता मिलना सम्भव नहीं है। परन्तु यदि देश लक्ष्य पर पहुंचनेके लिये इतना अधीर हो उठा है और चाहे जो त्याग करनेके लिये तैयार है तो मैं स्वीकार करूंगा कि आप विदेशी मालका सम्पूर्ण बहिष्कार करके पलक मारने जितनी देरमें अपना स्वराज्य प्राप्त कर लेनेमें समर्थ हैं। वहिष्कार शब्दसे मेरे प्रस्तावके कार्य-क्रमकी समतौलतामें कुछ धब्बा आ जाता है; परन्तु मुझे तो देशके सन्मुख व्यवहारिक कार्य-क्रम रखना है और मैं स्वाभाविक तौरसे

स्वीकार करता हूं कि यदि विदेशी मालका बहिष्कार आपसे हो सके तो यह एक अमोघ अस्त्र है।

अन्तमें मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे इस प्रस्ताव पर मेरे व्यक्तित्वका खयाल छोड़ कर खूब विचार कर लेनेके पश्चात् निर्णय दीजिये। मैंने देशकी जो कुछ सेवा की है उसका हृदयमें तनिक भी खयाल न लाइये; उसका यहाँ पर कुछ मूल्य नहीं है। मेरा लेशमात्र भी दावा नहीं है कि मैंने आपके सामने जो कार्य-क्रम रखा है उसमें गलती है ही नहीं, मैं केवल इतना ही दावा कर सकता हूं कि इस कार्य-क्रमके तैयार करनेमें मैंने अत्यन्त परिश्रम किया है, खूब विचार किया है और कार्य-क्रमको व्यवहार योग्य बनानेकी ओर सदैव लक्ष्य रखा है।

उक्त भाषण अंग्रेजीमें हुआ था। महात्माजी जब बोलनेके लिये खड़े हुए थे तब लोगोंने 'हिन्दी, हिन्दी' की पुकार कर उनसे हिन्दीमें भाषण करनेकी प्रार्थना की थी; जिस पर आपने वचन दिया था कि पहले अंगरेजीमें बोलनेके बाद उसका सार हिन्दीमें समझा दिया जायगा। तदनुसार हिन्दीमें भाषण करते हुए उसमें महत्त्व-पूर्ण बात यह कही कि हम कुर्बानी करके सारे संसारको यह बतलाना चाहते हैं कि यदि खिलाफत और पञ्जाबके जुल्म मिटाये नहीं जाते हैं तो हिन्दुस्तान अब इस सल्तनतके नीचे रह नहीं सकता।

कांग्रेसमें आक्षेपोंका उत्तर

कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें असहयोगके प्रस्तावपर जो आक्षेप हुए थे उनका महात्मागान्धीने निम्नलिखित उत्तर दिया था—

मैं जानता हूं कि आप लोगोंके प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य है और मेरे प्रस्तावके विरुद्ध जो बहुत सी शंकायें उठाई गई हैं, उनमेंसे कुछका मुझे उत्तर भी देना है। आप आदर और ध्यानसे एकको छोड़ कर सभी व्याख्यान सुन चुके हैं। मुझे अत्यन्त दुःख है कि आप लोगोंने जमनादास द्वारकादासकी वक्तृता सुननेसे इन्कार किया है। आप लोगोंने पंडित मालवीय, मि० जिना और श्रीमती बेसेण्टके भाषण सुने हैं। आपने श्रीमती बेसेण्ट और दूसरे वक्ताओंके तर्कोंको ध्यानसे सुना है। उन सबोंने देशकी अत्यन्त सेवा की है। कितने ही वर्षों तक ये सब कांग्रेसके नेता रह चुके हैं और आप लोगोंकी शक्तिभर सेवा की है। मुझे विश्वास है कि आप लोग इनके तर्कोंको उचित मान देंगे, परन्तु इसके साथ ही साथ मैं आप लोगोंको यह बतलाना चाहता हूं कि यद्यपि मैं अपने निर्णयकी त्रुटियोंको सुधारनेके लिये तैयार हूँ, तोभी इन व्याख्यानोंने मेरे हृदयमें इस प्रस्तावके विरुद्ध जरासा भी अविश्वास उत्पन्न नहीं किया है।

अव्यवहारिक

मि० जिना और मि० दासने यह बतलाया है कि मेरा प्रस्ताव अव्यवहारिक है। क्या वास्तवमें वह व्यवहारमें लाने योग्य नहीं है? मैं आप लोगोंके प्रति यह कहनेका साहस करता हूँ कि इस समय इस कार्य-क्रमको प्रत्येक आदमी व्यवहारमें ला सकता है। उसमें "धीरे धीरे" शब्द जोड़ दिया गया है और मि० दासने स्वयं उसपर जोर देकर कहा है कि प्रस्तावकी दो बातों—अर्थात् अदालत और स्कूलोंके बायकाट—की अव्यवहारिकताको हटानेके लिये ही ऐसा किया गया है। मेरी सम्मति इससे भिन्न है, क्योंकि हम लोग कमजोर हैं और तैयार नहीं हैं इसी लिये यह शब्द जोड़ा गया है। मैं मानता हूं कि इस विशेषणको जोड़ देनेके कारण दोनों बातें बिलकुल स्थगित की जा सकती हैं, परन्तु ऐसा न होना हम लोगोंके क्रोधकी मात्रा पर निर्भर है, जिसने राष्ट्रके अङ्गमें ज्वाला उत्पन्न कर दी है, इससे भी अधिक वह सच्चे कार्य्यकर्ताओंके इस कार्य्य पर निर्भर है जो कि वे देशके सामने रखेंगे। आप लोग इस बात पर विश्वास रखें कि जबतक सेण्ट्रल खिलाफत कमेटी द्वारा संचालित असहयोग कमेटीका अस्तित्व है, तबतक ऐसी ही और इसी प्रकारकी कई युक्तियाँ लगातार आप लोगोंके सम्मुख स्वीकृतिके लिये रखी जायंगी और राष्ट्रके हितके नाम पर और आपके देश-प्रेमके नाम पर अनेक तर्कें और युक्तियाँ आप लोगोंके सामने पेश की जायंगी जिससे आप कार्य्यके लिये तत्पर

हो जायँ। गत डेढ़ महीनेके अनुभवके आधार पर मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूं कि देश हम लोगोंकी अपील पर अवश्य उठेगा। यह कार्य्यक्रम अव्यवहारिक नहीं है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति जो कि इसकी बातोंको व्यवहारमें लाना चाहता है आज ही व्यवहारमें ला सकता है। किसीके लिये इस कार्यक्रमका अनुसरण करना प्रकृत्या असम्भव नहीं। यदि कोई विदेशी मालका वहिष्कार करना चाहता है तो क्या यह असम्भव है?

विदेशी चीजोंका वहिष्कार

मेरी रायमें विदेशी मालका वहिष्कार व्यवहारके लिये असम्भव है, किन्तु दूसरी बातें नहीं हैं। मैंने आप लोगोंको वे कारण बतला दिये हैं जिनकी वजहसे यह वहिष्कारकी बात इस प्रोग्रामके अन्दर आ गई है। यद्यपि सिद्धान्तके रूपमें यह ठीक है, तोभी मैं देशके सामने केवल वही बातें रखना चाहता था, जिसे प्रत्येक आदमी जो कि इच्छुक और तैयार है, कार्यरूपमें परिणत कर सकता है।

मैं आप लोगोंसे एक भी बात छिपाना नहीं चाहता। मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि यदि आप मेरे असहयोग प्रस्तावको व्यवहारमें लाना चाहते हैं तो आप लोगोंसे उम्मीद की जाती है और यह बात बार बार आप लोगोंसे जोरके साथ कही जायगी कि यदि आप लोगोंके लिये किसी भी प्रकारसे वकालत छोड़ देना और बच्चोंको स्कूलसे निकाल लेना सम्भव मालूम हो तो आप लोग कल ही ऐसा करनेसे पीछे न हटेंगे,

परन्तु ,यदि शीघ्र ही ऐसा करनेकी आपमें शक्ति नहीं है, यदि आप तैयार नहीं हैं तो "धीरे धीरे" का जो विशेषण जोड़ दिया गया है, उससे आपको सोचनेका समय मिलेगा। मैं इस बातका वह अर्थ, जो कि कई श्रोताओंने बतलाया है, नहीं पसन्द करता। वे समझते हैं कि लड़के तब स्कूल छोड़ेंगे जब राष्ट्रीय स्कूल खोल दिये जायंगे और वकील तब वकालत बन्द करेंगे जब पञ्चायती सभाएँ स्थापित कर दी जायंगी। मेरी रायमें ऐसा करना मानों बिना नींव डाले मकान खड़ा करना है। जब तक लड़के पढ़ानेके लिये न मिल जायँ, तब तक मैं सुन्दर इमारत अथवा फूसकी झोपड़ी बनाना ठीक नहीं समझता। जबकि कोई राष्ट्र युद्ध कर रहा हो, चाहे वह युद्ध रक्तपातसे पूर्ण हो या रक्तपातसे रहित, देश भरके स्कूल और कोर्ट खाली कर दिये जाते हैं। मैंने स्वयं दो युद्धोंमें भाग लिया है, उनमें स्कूल और कोर्ट बन्द कर दिये गये थे। मुअक्किलोंको अपने व्यक्तिगत झगड़ोंके सोचनेका समय न था और बालकोंके माता-पिताओंने सोच लिया कि देशके इतिहासमें यह महत्व-पूर्ण समय है। बुरी बातोंको सिखानेकी अपेक्षा कुछ दिनों तक अपने बच्चोंको अशिक्षाकी दशामें ही रखना उचित है। ये दोनों बातें हमारे भावोंकी गहराईका पता लगानेके लिये परीक्षा स्वरूप हैं यदि राष्ट्रमें भाव हैं तो वह इन्हें स्वीकार कर कार्य्यमें लग जायगा।

पहलेसे सूचना दिये जानेके विषयमें बहुत कुछ कहा गया है। यदि जैसी परिस्थिति पहले थी वैसी ही अब भी होती तो यह ठीक समझा जाता। परन्तु शायद मि० पाल और मि० जिना दोनोंके ध्यानसे यह बात निकल गई है कि नोटिसका प्रश्न रक्तपातमें नई बातोंके शामिल करने ही पर उठता है। और खास बात है स्वराज्यकी मांग। यदि हम लोगोंकी स्वराज्यकी मांग नई होती तो यह तर्क ठीक होता। आत्माभिमानी जातिके समान तब हम लोगोंका कर्तव्य होता कि हम ब्रिटिश जातिको नोटिस दें, किन्तु मेरे प्रोग्राममें यह मांग इस ढङ्गसे नहीं रखी गई है। मैंने कहा है कि स्वराज्यके विना गत वर्षकी पञ्जाबकीसी घटनायें नहीं रोकी जा सकती हैं। इस कारण स्वराज्यकी मांग स्वतन्त्र मांग नहीं है। कांग्रेसकी इच्छा स्वराज्य लेनेकी केवल इसीलिये है कि वह पञ्जाबकीसी दुर्घटनाओंको रोक सके। मेरी रायमें इसमें कोई गलत बात नहीं है। मि० जिना और मालवीयजी दोनों व्यक्तियोंने मि० पालके प्रस्तावको मान लिया है। उस प्रोग्राममें भी कुछ बातें ऐसी हैं जो कि कलसे ही कार्यमें परिणत की जायँगी। मि० पालका प्रस्ताव जिस बातमें मेरे प्रस्तावसे पृथक् है वह यह है कि कुछ बातें कुछ दिनोंके बाद व्यवहारमें लाई जायँगी। जबतक मिशन (जिसे मि० पाल इङ्गलैण्ड भेजनेको कहते हैं) अपना काम करता रहेगा तबतक असहयोगकी कुछ बातें जनताके कार्य्यके लिये नियत

कर दी जायँगी। मेरी रायमें कांग्रेसके मानकी रक्षाके लिये यही नोटिस काफी है। इससे राष्ट्रकी धाककी भी हानि न पहुंचेगी।

कौंसिलोंका बायकाट

मैं वहिष्कारके विषय पर अब कुछ कहूंगा। मैं यह स्वीकार करूंगा कि आजतक कौंसिलोंके जानेके पक्षमें मैंने एक भी युक्ति नहीं सुनी। जो दलीलें अभीतक पेश की गई हैं उनका सार यही है कि गत ३५ वर्षोंमें हम लोगोंने कौंसिलोंके द्वारा कुछ कार्य किया है और नई कौंसिलें हम लोगोंके आन्दोलनका फल हैं, अतएव हम लोग वोटरोंपर प्रभाव रखनेके कारण उनमें जाकर शासनमें या राज-प्रबन्धमें रुकावटें डाल सकेंगे। मैं पहलेकी दोनों बातें स्वीकार करता हूं, किन्तु कौंसिलोंमें जाकर सरकारके असम्भव कर देने पर मुझे विश्वास नहीं है। इङ्गलैण्डके इतिहासके एक विद्यार्थीकी हैसियतसे मेरा यह अनुमान है और इसे वहां भी सब लोग स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक संस्था रुकावटें डालनेसे और भी उन्नति करती है। जब आप लोग कौंसिलोंमें चले जायँगे तब सरकार राष्ट्रीय दलवालोंको कौंसिलके बाहर बाहर देख कर खुश न होगी। मेरी बात पर विश्वास कीजिये, सरकार चाहती है कि राष्ट्रीय दलवाले कौंसिलोंमें जायँ। आप लोग मेरी बात केवल उतनी ही दूर तक मानिये जहांतक

वह सच है। चाहे मेरा कहना बिलकुल ठीक न हो, लेकिन वह आपके सामने है। मेरी रायमें सार्वजनिक व्यक्ति देशकी जो सेवा करना चाहते हैं वह कौंसिलोंसे बाहर रह कर ही कर सकते हैं और बाहरकी सेवायें कौंसिलोंमें की हुई सेवासे कहीं बढ़ कर होंगी। स्वर्गीय और हमारे एकमात्र मित्र लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकके अनन्त शक्तिका कारण क्या है? आप लोग सोचते होंगे कि यदि वे कौंसिलमें गये होते तो जनता पर वही अद्वितीय प्रभाव स्थापित किये रहते जैसा कि वे अन्ततक किये रहे।

भगवान तिलक और असहयोग

भगवान तिलककी राय वक्ताओंने आपको बतला दी है। मुझे शोक है कि इस प्रोग्रामके विषयमें उनकी सम्मतिसे हम लोग वञ्चित हैं। लेकिन चूँकि आप लोगोंके सामने इसका जिक्र हो चुका है अतएव मेरा यह दुःखपूर्ण कर्तव्य हो गया है कि मैं भी उनकी सम्मति आपको बतलाऊं। उनके स्वर्ग-वासके एक पक्ष पूर्व उनके ही इच्छानुसार मैं भाई शौकत अलीके साथ उनके पास गया था। उन्होंने कहा था—"मेरी रायमें कौंसिलोंमें जाकर आवश्यकतानुसार रुकावट डालना और आवश्यकतानुसार सहयोग करना ही उचित होगा।" परन्तु जब मि० शौकत अलीने उनसे कहा कि आपने दिल्लीमें मुसलमानोंको जो वचन दिया है उसका पालन कैसे होगा,

तब उन्होंने झटपट यह जोड़ दिया कि यदि मुसलमानोंने कौंसिलोंका बायकाट किया तो मैं आपको अपना वचन देता हूं कि मेरी पार्टी मुसलमानोंका साथ देगी। मैं इस शहादतकी कीमतको बढ़ानेकी जरूरत नहीं समझता क्योंकि मैं जानता हूं उनका नाम मोहित करनेवाला है और हम लोगोंके लिये, जो कि यह जानते हैं कि उन्होंने स्वराज्यके लिये कितना परिश्रम किया उनकी हर एक बात माननीय होगी।

इन कौंसिलोंके क्या अर्थ हैं। मैं आप लोगोंके और नेताओंके सामने पञ्जाब तथा खिलाफतके अन्यायोंको इन कौंसिलोंकी परीक्षाके लिये रखना चाहता हूं। क्या आप लोगोंको विश्वास है कि कौंसिलोंमें जाकर आप सरकारको खिलाफतका अन्याय दूर करने और पञ्जाबकी घटनाओं पर पश्चात्ताप करने पर बाध्य कर सकते हैं। हमारे माननीय भ्राता और नेता पण्डित मालवीयजीने कहा है कि कांग्रेस सब-कमेटी जो कुछ चाहती है वह शीघ्र ही मंजूर हो जायगा, क्योंकि बहुतसे अफसर चले गये हैं, जो बच गए हैं वे भी शीघ्र ही चले जायगे। अप्रेल तक वाइसराय भी चले जायँगे। मैं आदर-पूर्वक कहना चाहता हूं कि जब मैंने उस रिपोर्टको लिखना शुरू किया था तब मेरी ऐसी इच्छा नहीं थी। उस समय जब कि बहस हो रही थी मैंने जोरके साथ यह कहा था कि इन अफसरोंको इनके अत्याचार और अयोग्यताके लिये बर्खास्त करना चाहिये, न कि इसलिये कि उनका समय पूरा हो गया है। और यदि अफसर और वाइस-

राय अवधिके पूरे हो जाने अथवा और किसी कारणसे जा रहे हैं और अन्यायोंके कारण नहीं, तो उनके जाने न जानेसे मेरा कोई मतलब नहीं। मैं उनके हृदयको पश्चात्ताप करते हुए शुद्ध और पवित्र देखना चाहता हूं। परन्तु मैं न तो ऐसा हृदय ही पाता हूं और न वह सहृदयता जो मेरी समझमें अमृतसर-कांग्रेसके समय पर जाहिर होती थी। इसी कारण उस समय मैंने सहयोगका समर्थन किया था। किन्तु अब तक मैं देखता हूं कि पञ्जाबके और खिलाफतके सम्बन्धमें न्याय नहीं किया गया है, तो मुझे यह विदित हो गया कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और भारत सरकारने भारतकी जनताका भला नहीं चाहा है। पश्चात्तापके बदले भारतवासियोंको चैलेञ्ज दिया गया है कि यदि तुम अँग्रेजोंके शासनमें रहना चाहते हो, तो उसके बदलेमें तुम्हें अत्याचार सहने पड़ेंगे। मैं इन अत्याचार करनेवालोंसे यह कहूंगा कि यह कोर्ट और यह शिक्षा तुम्हींको मुबारक रहे।

स्कूलोंका बहिष्कार

मैं स्कूलोंके खुलने तक चुपचाप बैठनेके विरुद्ध हूं। आवश्यकता आविष्कारोंका कारण है। जब पढ़नेके लिये लड़के होंगे और स्कूलोंकी आवश्यकता पड़ेगी तब मैं आपको वचन देता हूं कि मेरे माननीय मित्र पण्डित मालवीयजी स्वयं स्थान स्थान पर जायंगे और राष्ट्रीय स्कूलोंके खोलनेके लिये चन्दा एकत्रित करेंगे। मैं भारतीयोंके मस्तिष्कको अशिक्षित रखना

नहीं चाहता। मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतवासी उचित रूपसे शिक्षित किया जाय। उसकी शिक्षा ऐसी हो जिससे वह अपने राष्ट्रके गौरव और आत्माभिमानको समझ सके। उसे ऐसी शिक्षा न मिले जो उसे गुलाम बनाती हो"।

लोक-मत

और बहुतसी बातें कहने योग्य हैं। किन्तु मैं केवल दो बातों पर ही जोर दूँगा। जनता हम लोगोंकी बारीक बातोंको नहीं समझ सकती। कुछ लोग कौंसिलोंमें जाकर असहयोग करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि सुधारी हुई कौंसिलोंमें असहयोग होगा। किन्तु यदि देशके प्रतिभाशाली व्यक्ति कौंसिलोंमें प्रवेश करनेसे इन्कार कर दें तो मैं वचन देता हूं कि सरकारकी आँखें खुल जायँगी। शर्त यह है कि जो लोग कौंसिलोंमें न जायँ वे घरमें अकर्मण्य होकर न रहें। वे देशके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोने तक चक्कर लगावें और राष्ट्रके प्रत्येक कष्टको सरकारके नहीं, बल्कि जनताके सामने पेश करें। यदि मेरा प्रोग्राम व्यवहारमें लाया गया तो कांग्रेस प्रतिवर्ष इन कष्टोंको जनताके सामने ज़ाहिर किया करेगी। परिणाम यह होगा कि हम पर किये गये अन्यायोंकी ज्यों ज्यों संख्या बढ़ती जायगी त्यों त्यों राष्ट्रके हृदयमें ज्वाला उत्पन्न होती जायगी। राष्ट्र उच्च बनेगा और अपनी तमाम क्रोधाग्नि और शक्तिको एकत्रित करके अत्यन्त प्रबल हो जायगा।

मुसलमानोंका निर्णय

कृपा कर एक दूसरी महत्त्व-पूर्ण और निश्चित बात पर ध्यान दीजिए। मुस्लिम लीगने यह प्रस्ताव पास किया है कि मुसलमान कौंसिलोंके लिये न खड़े होंगे। क्या आप चाहते हैं कि हमारे राष्ट्रीय शरीरका चतुर्थांश अङ्ग एक ओर जाय और तीन चौथाई दूसरी ओर? यदि वे एक ही ओर चलते तो मैं उनका अर्थ समझ सकता। किन्तु जब ये एक दूसरेके खिलाफ जा रहे हैं तो हम यह अवश्य कहेंगे कि यह सब ठीक नहीं है। यदि मुसलमान कौंसिलोंका वहिष्कार कर दें तो क्या हिन्दू लोग कौंसिलोंमें जा और रुकावट डाल कर कुछ लाभ उठा सकेंगे। मुसलमान अपने इस्लामके धार्मिक भावोंके कारण कौंसिलोंमें जाना और मातहतमें रहनेकी शपथ लेना पाप समझते हैं। व्यवहारिक राजनीतिके वे प्रेमी जो यहाँ प्रति वर्ष एकत्रित होते हैं इस निश्चित बातको न भूलें। यदि वे समझते हैं कि मुसलमानोंको अपनी रायके अनुकूल बना लेंगे और मुसलमानोंका यह निश्चय केवल इच्छा मात्र है तो मेरा प्रस्ताव व्यर्थ सिद्ध हो सकता है। परन्तु यदि आपका विश्वास है कि मुसलमान जोशसे भरे हैं और वे अपने साथ किये गये अन्यायको अनुभव कर रहे हैं और ये भाव समयकी गतिके साथ घट जानेके बदले दिन प्रतिदिन बढ़ते जायँगे, तो आपको मानना पड़ेगा कि मुसलमानोंकी कार्य-शक्ति बढ़ती जायगी, चाहे हिन्दू उनकी मदद करें अथवा नहीं।

ये दो बातें हैं और इनमेंसे एकका चुन लेना इस महासभाके लिये आवश्यक है। इसलिये मैं आप लोगोंसे कहना चाहता हूं कि मैंने इस बड़े आन्दोलनको विना विचार किये नहीं खड़ा किया है। मुझे इस बातमें किसी भी तरहका आनन्द नहीं हो सकता कि मैं, जो कि नितान्त विनीत और त्रुटि-पूर्ण हूं, देशके सर्वोत्तम नेताओंके विरुद्ध खड़ा होकर गलतियाँ किया करूं। किन्तु मैं इस बातको अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं प्रगट रूपसे देख रहा हूं कि यदि हम हिन्दू और मुसलमानोंकी मित्रताके बन्धनोंको दृढ़ बनाना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि यह मित्रता सदा कायम रहे तो हमारे लिये आवश्यक है कि जब तक मुसलमान सत्य मार्ग पर चलेंगे, जब तक वे उचित साधनोंका उपयोग करेंगे, जब तक वे सीमाके भीतर अपनी माँग रखेंगे और जब तक वे शारीरिक शक्तिका प्रयोग करनेसे हाथ खींचे रहेंगे तबतक हमें उनका साथ देना बहुत जरूरी है। और बहुतसी बातें कही गई हैं, जिनका उत्तर मैं दे सकता था। किन्तु मैंने आपका बहुत समय ले लिया है। मैंने अपने तर्कोंको स्पष्ट-रूपसे आप लोगोंके सामने रखा है। मैंने निर्णय-कर्ताके समान, यदि मेरे लिये निर्णय-कर्ता होना संभव है, अपनी बात आप लोगोंके सामने रखी है। मैं पण्डित मालवीयजीका बड़ा कृतज्ञ हूं। मेरे और उनके बीचमें जो संबन्ध है उसे देश नहीं जानता है। मैं सम्मानके साथ उनका अनुसरण करनेके लिये अपने प्राणतक देनेके लिये तैयार हूं। परन्तु

जब पवित्र कर्तव्य और सिद्धान्तकी बात आ पड़ती है तब मेरी समझमें मैं उनका अनुसरण करनेपर विवश नहीं हूं। और मैं जानता हूं कि वह भी यह आवश्यक न समझेंगे कि मैं, जो कि उनका सम्मान करता हूं, यदि मैंने कोई दूसरा मार्ग निश्चित किया है तो, उनका अनुसरण करूं, क्योंकि मैं बड़ी गम्भीरताके साथ इस पण्डालमें जितने लोग बैठे हैं, उनमेंसे प्रत्येकसे कहता हूं कि वे स्वतन्त्र निर्णय करें। मेरे व्यक्तिगत प्रभावमें आकर मेरा अनुसरण न करें। यदि आप लोग इस प्रस्तावको पास करना चाहते हैं तो अपनी आँखें खोलकर ऐसा कीजिये।

यदि आप लोग देशके लिये और मुसलमानोंकी मित्रताके लिये जरासा भी त्याग करनेके लिये तैयार हैं तो आप इस प्रस्तावको अवश्य स्वीकार करेंगे। यदि आप लोग इन बातोंको पूरी नहीं कर सकते तो अवश्यमेव इस प्रस्तावको रद्द कर दीजिये।

कलकत्ता विशेष कांग्रेसमें स्वीकृत असहयोगका प्रस्ताव।

खिलाफतके प्रश्नका न्याययुक्त निपटारा करनेमें भारत सरकार तथा ब्रिटिश सरकार दोनोंने अपने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया। प्रधान मन्त्रीने भारतीय मुसलमानोंके साथ जो वादा किया था उसे जानबूझकर तोड़ा। इसलिये मुसलमानोंके इस धार्मिक सङ्कटको मिटानेके लिये प्रत्येक गैरमुसलमानको उचित है कि वह उनकी सहायता करे।

इसके साथ ही साथ १९१९ के अप्रेल मासमें तथा उसके बाद पञ्जाबमें अधिकारियोंकी ओरसे जो अत्याचार किये गये उनके प्रतीकारका कोई उपाय नहीं किया गया और न उन अपराधी अधिकारियोंके दण्डकी ही कोई व्यवस्था की गई बल्कि उन निर्दोष व्यक्तियोंकी नृशंस हत्या तथा क्रूरतापूर्ण दमनके लिये सर माइकल ओडायरकी प्रशंसा की गई जो उन अत्याचारोंके लिये पूर्णरूपसे दोषी हैं और प्रजाकी यातनाके लिये जिम्मेदार हैं। इस सम्बन्धमें लार्ड सभामें जो विवाद हुए उनसे यही प्रगट हुआ कि लार्ड सभाके सदस्य भारतके साथ जरा भी सहानुभूति नहीं रखते और पञ्जाबमें जो अत्याचार तथा दमन किये गये उनके वे पूरी तरहसे पक्षपाती हैं। बड़े लाटने हालमें जो सूचनायें निकाली हैं उनसे भी यही प्रगट होता है कि खिलाफत तथा पञ्जाबके मामलेमें भारत सरकारको जरा भी खेद या परिताप नहीं है।

इस कांग्रेसका यह दृढ़ मत है कि जबतक उपरोक्त दोनों अन्यायों तथा अत्याचारोंका प्रतीकार न हो जाय भारतमें सच्ची शान्ति और सन्तोष नहीं स्थापित हो सकता और इस तरहकी घटनाओंकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिये यह आवश्यक है कि पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना हो। कांग्रेसका यह भी निश्चय है कि इन दोनों अत्याचारोंके निवारण तथा स्वराज्यकी स्थापनाके लिये एकमात्र शस्त्र अहिंसात्मक असहयोग रह गया है।

इसलिये यह कांग्रेस आदेश करती है कि :—

(१) उपाधियां तथा इज्जतके इस तरहके अन्य चिह्न लौटा दिये जायं और अवैतनिक पदोंसे स्तीफा दे दिया जाय तथा स्थानीय संस्थाओंसे भी सम्बन्ध तोड़ दिया जाय।

(२) सरकारी जलसा या दरबारमें शरीक न हुआ जाय।

(३) सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों तथा कालेजोंमेंसे छात्रोंको धीरे धीरे हटा लिया जाय और इन स्कूल और कालेजोंके स्थानपर भिन्न भिन्न प्रान्तमें राष्ट्रीय विद्यालय खोले जायं।

(४) धीरे धीरे वकील तथा मुवक्किल सरकारी अदालतोंको छोड़ दें तथा वकीलोंकी सहायतासे पंचायती अदालतें स्थापित की जायं तथा मुकदमोंका निपटारा उन्हींके द्वारा हो।

(५) मेसोपोटामियामें सैनिक, क्लर्क तथा मजूर बनकर जानेसे प्रत्येक भारतीय इनकार कर दे।

(६) उम्मेदवार लोग इन नयी कौंसिलोंसे अपनी उम्मेदवारी हटा लें तथा यदि कांग्रेसकी आज्ञाकी अवज्ञा करके कोई उम्मेदवार खड़ा हो तो मतदाता उसे वोट न दें।

(७) विदेशी मालका वहिष्कार

असहयोग तालीम और आत्मत्यागका शस्त्र है। इनके विना कोई भी राष्ट्र सच्ची उन्नत्तिके पथपर नहीं चल सकता और इस तरहकी तालीम तथा आत्मत्यागके लिये तैयार हो

जानेके लिये सबको अवसर मिलना चाहिये। इसलिये यह कांग्रेस आदेश करती है कि स्वदेशी कपड़ेका पूर्णरूपसे प्रचार हो। पर, चूंकि भारतकी मिलें जितना सूत और जितना कपड़ा तैयार कर सकती हैं उतनेसे भारतीयोंकी मांग पूरी नहीं हो सकती और न तो निकट भविष्यमें ही उनके द्वारा इसकी पूर्तिकी सम्भावना है, इसलिये यह कांग्रेस आदेश देती है कि चरखे और करघेका पुनः प्रचार किया जाय और जिन लोगोंने इस कामको छोड़ दिया है वे इसे पुनः उठा लें।

रहस्यका दोष

(दिसम्बर २२, १९२०)

भारतवर्षमें 'रहस्य' की पापपूर्ण प्रचलित प्रथा बहुत बुरी है। जिस भयको हम जानते ही नहीं उसके उपस्थित हो जानेकी सम्भावनासे हम कांप उठते हैं और सबके सामने कुछ कहनेसे डर जाते हैं और एक दूसरेसे फुस फुसाने लगते हैं। इसका सबसे अधिक प्रचार मैंने बङ्गालमें देखा। जिसे देखिये वही एकान्तमें बात करनेके लिये उत्सुक रहता है। मैंने अनेक स्थानोंपर इस बातका अनुभव किया है कि जब कभी दो नवजवान आपसमें बातें करने लगते हैं तो

आरम्भ करनेके पहले वे चारों ओर अच्छी तरहसे देखभाल लेते हैं कि उनकी बातोंको कोई तीसरा सुननेवाला तो नहीं है। इससे मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ है। जिस किसी अजनबीको ये लोग देखते हैं उसे खुफियेका आदमी समझ लेते हैं। मुझसेभी अनेक लोगोंने कहा कि अजनबियोंसे बचकर रहियेगा। मेरी वेदना अन्तिम सीमा तक पहुंच गई जिस समय मुझसे यह कहा गया कि छात्रोंकी सभामें जिस अज्ञान छात्रने सभापतिका आसन ग्रहण किया था वह भी गुप्तचर मालूम होता है। यहां तक कि दो हिन्दुस्तानी नेता जिनकी भारतीय समाजमें बड़ी प्रतिष्ठा है सरकारके भेदिये समझे जाते हैं।

मैं कई वर्षोंसे राजनैतिक क्षेत्रमें इस तरहके रहस्य भेदको पाप समझता आया हूं। यदि हमारा यह विश्वास ठीक है कि हम जो कुछ करते हैं या कहते हैं, उसे ईश्वर अवश्य देखता है तो फिर हमें किसीसे कोई बात छिपानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि ईश्वरके सामने हमारे हृदयमें अपवित्र विचार आ ही नहीं सकते, उनका कहना सुनना तो दूर रहा। रहस्यभेद तथा अप्रकाशका उदय गन्दगी या अपवित्र विचारसे होता है। मनुष्यकी प्रकृति है कि वह गन्दगीको छिपाना चाहता है। हम लोग गन्दगीको छूना या देखना नहीं चाहते, हम लोग उसे आँखोंकी ओट कर देना चाहते हैं। यही बात हमारी बातचीतके सम्बन्धमें भी होनी चाहिये। मेरा तो यहां

तक कहना है कि हमें उन बातोंको सोचना तक नहीं चाहिये जिन्हें हम संसारकी आंखोंसे छिपाना चाहते हैं।

रहस्यकी इस अभिलाषाका परिणाम यह हुआ है कि हम कायर हो गये और हममें बोलनेका साहस नहीं रह गया। इस गोपन करनेकी प्रवृत्ति और रुचिको शीघ्रातिशीघ्र दूर करनेका एकमात्र उपाय यही है कि हमें हर तरहका विचार प्रगटमें करना चाहिये, किसी भी व्यक्तिके साथ गुप्त बातें नहीं करनी चाहिये और गुप्तचरोंसे डरना नहीं चाहिये। उनकी उपस्थितिसे हमें किसी भी प्रकार भयभीत नहीं होना चहिये और सबको अपना समान मित्र समझना चाहिये और अपने मनके भावोंके जाननेका पूर्ण अधिकारी समझना चाहिये। मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि इस प्रकार सब बातोंको प्रगटमें सोचने तथा उसकी व्यवस्था करनेसे मुझे बहुत ही अच्छा और सन्तोष जनक परिणाम मिला है। पग पगपर मेरे साथ खुफिये रहे हैं, जहां कहीं मैं गया हूं वे मेरा पीछा करते रहे हैं। पर इससे मैं जरा भी घबराता नहीं था। उन्हें मैं मित्रकी भांति समझता था और उनसे सहायता लेता था। बादको अपनी इस भूलके लिये (मेरा पीछा करनेकी भूलके लिये) उन्होंने मुझसे क्षमा मांगी है। जो कुछ मैंने उनके सामने कहा, समाचार पत्रोंमें प्रगट कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब मेरे साथ खुफिया पुलिस नहीं देखनेमें आती और न अब वे मेरा पीछा करते हैं। कदाचित सरकारको भी मेरे पीछे गुप्तचरोंको

इस प्रकार लगाकर अधिक लाभ नहीं हुआ है। मुझे जहां तक विदित हुआ है ये सरकारी एजेंट मेरा पीछा करके केवल प्रचलित प्रथाको चरितार्थ करते हैं (अर्थात् राजनैतिक नेताओंके पीछे गुप्तचरोंका लगा रहना आवश्यक है) नहीं तो किसी भी प्रकारसे ये लोग मुझे तंग नहीं करते। मैं अपने जीवनका अनुभव प्रत्येक बंगाली नवयुवक और भारतीयके समक्ष उपस्थित करना चाहता हूं। जो लोग यह समझते हैं कि मेरा उच्च पद मुझे अपराधियोंकी संख्यामें पड़नेसे बचाता है वे भूल करते हैं, इसका बहुत कुछ श्रेय मेरी स्पष्टवादिताको है। यह साधारण सी बात है। जिस समयसे आप गुप्तचरसे डरना छोड़ दें और उसे गुप्तचर न समझें उसी समयसे वह आपको असुविधा जनक नहीं प्रतीत होगा। इसका परिणाम यह होगा कि खुफिया विभाग कायम रखनेमें सरकारको शर्म मालूम होगी या यदि उसे शर्म न मालूम हुई तो स्वयं गुप्तचर लोग उस कामसे घबरा जायंगे जिसमें उनकी शक्तिका किसी भी तरह प्रयोग नहीं होता।

असहयोग साफ करनेका यन्त्र है। वह रोगके लक्षणको नहीं देखता बल्कि उसके कारणको देखता है। खुफिया विभाग उस मरजका लक्षण है जिसका कारण रहस्य या भेद है। यदि रहस्य या भेदको दूर कर दें तो फिर गुप्तचर विभागकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। और बिना किसी अन्य प्रयासके यह आपसे आप ही उठ जायगा। कायरताकी बीमारी-

का एक लक्षण प्रेस कानून है। यदि हम लोग अपने भावोंको स्पष्ट व्यक्त कर दें तो प्रेस कानून आप ही मर जायगा। आरम्भमें इस साहसके लिये यातनायें भोगनी पड़ेंगी। श्रीयुत राजगोपाला-चारीने मतदाताओंको राय देते हुए यंग इण्डियामें एक लेख लिखा था। कलकत्ताके सर्वेंट पत्रने उसका सारांश प्रकाशित किया है। मैंने सुना है कि उस लेखको उद्धृत कर देनेके लिये उसे कड़ी चेतावनी दी गई है। मैंने यह भी सुना है कि कलकत्तामें मैंने जो भाषण किया था उसका बहुतसा अंश केवल इसलिये निकाल दिया गया कि वह कुछ कड़ा था। उसके कारण पत्रोंपर कुछ आपत्ति आ सकती थी। यदि सम्पादकको इस बातका साहस नहीं कि जिस बातको वह उचित समझता है उसे बिना किसी सोच विचारके, बिना किसी डर भयके प्रकाशित करे तो उसे समाचार पत्रोंसे सम्बन्ध त्याग देना चाहिये।

असहयोग समाचारपत्रों तथा छापाखानोंसे समुचित सहायता लेनेके लिये सदा तैयार रहता है पर वह उनपर निर्भर नहीं रहता और न उसे रहना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो कुछ समाचार हम छापते हैं सरकारकी अनुमतिसे छापते हैं। यदि उसके प्रचारका अभिवाञ्छित प्रभाव पड़ा तो सरकार अपनी जड़ मजबूत बनाये रखनेके हेतु उसका प्रचार रोकेगी। इस बातकी आशा कौन कर सकता है कि सरकार अपने ही हाथसे अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारेगी। उसके हाथमें

दोही तरकीबें हैं या तो वह अपनेको सुधारेगी या प्रजाको दबावेगी।

साधारणतया भारत सरकार सदृश जालिम सरकारकी नीतिमें सुधारके पहले दमनके ही तरीकोंसे काम लिया जाता है। पर सरकार उन भावोंको दबाने या प्रचारसे रोकनेकी सबसे कम चेष्टा करेगी जिसके द्वारा उसका नाश हो सकता है या उसे पश्चात्ताप करनेके लिये मजबूर किया जा सकता है। इसलिये हमें अपने भावोंके प्रचारके लिये उचित उपायोंको ढूंढ निकालना चाहिये, जब तक प्रेस इतना निर्भय नहीं हो जाता कि परिणामका भय न करके वह भावोंको दृढ़ताके साथ प्रकाशित करता है चाहे वे भाव उनके मतके प्रतिकूल हों पर यदि उनसे स्वतन्त्रता मिल सकती हो। यदि किसी सम्पादकके दिलमें कोई नये विचार उठते हैं या भारतके उद्धारके लिये उसे कोई नई तरकीब सूझती है तो वह उसे लिख डाले, सैकड़ों उसकी नकल कर डालें, हजारों उसे सुनें और लाखोंको सुनावें इस तरह असहयोग विना प्रेसके वारके भयके अपना काम मजेमें चलाता जायगा। अपने हृदयके भावोंको गुप्त रखना ही पाप है। जिस पत्रमें अपने भावको आदमी नहीं प्रगट कर सकता उस पत्रको चलाना अपनी शक्तिका ह्रास करना है। यदि सम्पादक होकर किसीने अपने हृदयके भावोंको दबा रखा तो वह अपने पद और तज्जनित अधिकारकी हत्या करता है।

कलकत्तेका भाषण

(दिसम्बर २२, १९२०)

१२ दिसम्बर १९२० को कलकत्तेके कुमारटोली पार्कमें महात्मा गान्धीने जो व्याख्यान दिया था, वह इस प्रकार है:—

आरम्भमें महात्मा गान्धीने उपस्थित लोगोंसे यह पूछा कि आप लोगोंमें ऐसे भी कुछ लोग हैं जो हिन्दी नहीं समझते? इस पर लोगोंने अङ्गरेजीमें व्याख्यान देनेका आग्रह किया। तब महात्माजीने कहा कि जो लोग हिन्दी नहीं जानते हैं उनके लिये मुझे अङ्गरेजी बोलने दीजिये। थोड़ा अङ्गरेजीमें उन्हें समझा दूंगा। यह कह कर आपने अङ्गरेजीमें अपना व्याख्यान आरम्भ किया जो इस प्रकार है—

मित्रो, आप लोगोंमेंसे इतने आदमी सीधी सरल हिन्दुस्तानी नहीं समझ सकते, वह हिन्दुस्तानी भाषा नहीं जानते जो इस देशकी राष्ट्रभाषा होनेवाली है। इसी एक बातसे पता लगता है कि हम लोगोंके अधःपातकी सीमा हो चुकी है, हम लोग इतने गिर गये हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं और इसीसे यह मालूम होता है कि असहयोगकी कितनी बड़ी आवश्यकता है। कारण सरकारसे असहयोग करनेका अर्थ ही यह है कि हम लोग आपसमें सहयोग करें। पर असहयोग तबतक

संभव ही नहीं है जब तक हमारी अपनी राष्ट्रभाषा सिद्ध न हो। आज मैं आप लोगोंको यहां शान्ति-युक्त क्रमिक असहयोगके बारेमें कुछ बतलानेवाला हूं। असहयोगके साथ शान्तियुक्त और क्रमिक ये दो विशेषण हैं और इनका होना अत्यन्त आवश्यक है। इन विशेषणोंको मत भूलिये। असहयोगका शान्तियुक्त होना मेरे कार्यक्रमका प्राण है। मैं इसे धर्म समझता हूं। मुसलमानोंने इसे पालिसी या कार्यसाधिका नीतिके तौरपर स्वीकार किया है। हिन्दुओंके लिये भी यह पालिसी ही है। असहयोगका शान्तियुक्त होना चाहे धर्मकी बात हो चाहे पालिसीकी, इसके द्वारा ही आप लोगोंको इस्लामके उद्धारका कार्यक्रम साधना होगा। जब तक आप लोग असहयोगके शान्तियुक्त होनेकी बात अच्छी तरह समझ न लेंगे, जबतक इसको आप लोग न मानेंगे तब तक इस्लामका उद्धार नहीं हो सकता, तब तक भारत स्वाधीन नहीं हो सकता। विशृंखल बलप्रयोगका अर्थ समस्त राष्ट्रका अपमान है। इतिहास जिन्होंने पढ़ा है वे जानते हैं कि बलप्रयोगके प्रत्येक प्रयत्नके साथ इस देशका फौजी खर्च बढ़ा है—बेहिसाब बढ़ा है। हम लोग जो इतने पक्के गुलाम बने हैं इसका कारण हमारा विशृंखल बलप्रयोग तथा हमारी कुछ भ्रमपूर्ण धारणाएँ हैं। ब्रिटिश हिन्दुस्तानका सारा इतिहास इस बातकी गवाही देता है कि हम लोग सफलताके साथ कभी बल-प्रयोग नहीं कर सके। बल-प्रयोग यदि सफल हो तो वह भी हमारी वर्तमान

दुर्दशासे अच्छा है। हिन्दुस्तानका बलप्रयोगसे कुछ बननेवाला नहीं है। बङ्गालके गवर्नरने उस स्वराज्यकी हँसी उड़ाई है जिसकी साधना पद्धतिका वर्णन मैंने अपनी पुस्तकमें किया है और उस पुस्तकको पढ़नेकी सिफारिश की है। मैं भी आप लोगोंसे कहता हूं कि उस पुस्तकको जरूर पढ़िये। मैंने कांग्रेसमें कहा था कि असहयोगका कार्य-क्रम सिद्ध करनेसे एक वर्षमें स्वराज्य मिल जायगा। उस पुस्तकमें जो बातें लिखी हैं वे यदि हो जायँ तो एक वर्षकी भी जरूरत नहीं, एक दिनमें स्वराज्य मिल जायगा। आज मैंने भारतके सामने असहयोगका जो कार्य-क्रम रखा है वह उस पुस्तकमें दिये हुए कार्यक्रमका एक जरासा हिस्सा है। यदि मेरे देश-भाई स्वराज्य चाहते हैं तो वे सरकारको अकेला छोड़कर उसे प्राप्त कर सकते हैं। हम लोग स्कूल, कालेजोंमें जाकर, अदालतोंमें अपने मामले पेशकर तथा विदेशी व्यापारमें अपनी पूंजी लगाकर सरकारके साथ सहयोग करते हैं। यह सरकार नष्ट हो जायगी जिस घड़ी हम ये बातें छोड़ देंगे और उसी दिन हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जायगा। असहयोगका शान्तियुक्त होना हमारे कार्यक्रमका प्राण है। कर न देनेकी बात भी इसमें है, पर मैं जानता हूं कि आज यह बिलकुल असंभव है। हम लोगोंने अपना जीवन एक विदेशी भाषाके सीखनेमें नष्ट कर डाला है, हमने अपने जीवनके ३५ वर्ष मिल्टन आदिसे स्वतन्त्रता सीखनेमें गँवा दिये हैं और ऐसा करके हम लोगोंने अपने आपको जनतासे अलग

कर लिया है। इसलिये जब हम सर्वसाधारणके पास कोई बात लेकर जाते हैं तो वे हमें दुरदुराते हैं। हम लोगोंने जो शिक्षा पाई है उसीने हमारी यह दुर्गति की है। मर्यादा ही सफलताका साधन है। इसलिये हमारा कार्यक्रम क्रमयुक्त भी है और यह विश्वास रखिए कि मैं सर्व-साधारणके मनका जितना हाल जानता हूं उतना और कोई नहीं जानता। यदि मैं यह समझता कि लोग टैक्स न देनेकी जिम्मेदारी उठा सकते हैं तो मैं जरूर कहता कि टैक्स देना बन्द कर दीजिये। यह बात भी याद रखिये कि इस्लामके उद्धारसे ही भारतका उद्धार होनेवाला है। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि जिन लोगोंके साथ रहकर मैंने काम किया है वे आज मेरे साथ नहीं हैं। यह देखकर मुझे दुःख होता है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीकी आवाज आज सुनाई नहीं देती है। उनके और मेरे मतोंके बीच आज उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके जितना अन्तर है। पर मतोंके बीच अन्तर होनेसे ही परस्पर शत्रुताका भाव या व्यवहार होना कहीं भी उचित नहीं है। मुझे स्मरण है जब मैं बालक था तब सुरेन्द्रनाथ देशकी वह सेवा कर रहे थे जिसका हमें कृतज्ञ होना चाहिये। यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि किसीने एक वोटरके कान काट लिये और किसीने कौंसिलके एक उम्मेदवार पर मैला फेंका। ये बातें हमारे कामके लिये बहुत ही अपयशकारी हैं। जब तक यह भाव न बदलेगा तब तक आप अपने धर्मकी रक्षा नहीं कर सकते और न स्वाधी-

नता पा सकते हैं। हम लोग एक पद-दलित राष्ट्र हैं। हम लोग यह भी नहीं जानते कि हमें अन्न, वस्त्र कैसे मिलेगा। किसी पर जोरजुल्म या अत्याचार मत करिये। दिल्लीमें शवपर अत्याचार किया गया। यह भाव बहुत ही बुरा है। यह कार्यक्रम हँसी खेल नहीं है। मैंने स्पेशल कांग्रेसमें कहा था कि इस कार्यक्रमसे एक वर्षमें स्वराज्य मिल जायगा। अब तो नौ महीने ही रह गये। यदि हम सच्चे नमकहलाल हैं, यदि हम कुरानशरीफको मानते हैं, यदि हम भगवद्गीताकी कुछ इज्जत समझते हैं, यदि हमें अपने पूर्वजोंका कुछ अभिमान है, यदि भारतके शिक्षित लोग कहना मान लें तो नौ महीनेमें स्वराज्य मिल जायगा। सरकारकी प्रतिष्ठा नष्ट कर देना ही स्वराज्य पाना है। यह कितनी लज्जाकी बात है कि मुट्ठीभर अङ्गरेज जो १० लाखसे अधिक नहीं हैं, ३१ करोड़ मनुष्योंके राष्ट्र पर राज्य करते हैं। उन्होंने हमारे आपसमें—हिन्दू और मुसलमानोंमें—फूट डालकर राज्य किया है। हिन्दू और मुसलमानोंको एक होना चाहिए। मैं बनियई एकता नहीं चाहता, सच्ची एकता—निःस्वार्थ एकता—चाहता हूं। हिन्दू इस बातपर विश्वास रखें कि इस्लामका उद्धार, मक्का-मदीनेका उद्धार, सीरिया, फिलस्तीन और मेसोपोटामियाका उद्धार सुलतान और खलीफेका उद्धार ही काशीका उद्धार है। यही गोवंशका भी उद्धार है। मैंने अलीबन्धुओंसे पवित्र मैत्री की है। मैं गौको किसीसे कम नहीं मानता। मेरे हिन्दू-

त्वकी परीक्षा हो रही है। मुझे विश्वास है कि मैं इसमें हार न जाऊँगा। इस्लामके उद्धारकी इच्छा करिये, लेने देनेकी बातें नहीं। जो देता है उसे मिलता भी है। नेकीका बदला नेकी ही होती है। हिन्दू भाई अलीबन्धुओंसे आकर क्यों कहें कि गोरक्षा करो। गौके प्राण अलीबन्धु नहीं बल्कि ईश्वर बचावेगा। यदि आप लोग गौको बचाना चाहते हों तो अपने राजाओंको देखिये कि वे क्या कर रहे हैं? गोमांस और मद्य लाकर अपने मेहमानोंको खुश करते हैं। मैं चाहता हूं कि गौके प्राण पहले हिन्दुओंके हाथोंसे बचें। यदि आप लोग पञ्जाबके अपमानका प्रायश्चित्त करना चाहते हों, यदि उन स्त्रियोंके अपमानका प्रतिशोध करना चाहते हों, जलियांवालमें जिनके चेहरे परसे बुरका हटाकर उनका अपमान किया गया, यदि उन बच्चोंका खयाल आपको है जो धूपके कारण मर गये, यदि आपको उन १५०० भाइयोंका कुछ खयाल है जो जलियांवाला बागमें मारे गये तो भारतके विद्यार्थियो, उठो, पुरुष बनो और सरकारी स्कूल, कालेजोंको लात मार दो। इसीमें पंजाब और भारतमाताकी सम्मान-रक्षा है। पर तुम्हारा यह कर्तव्य हो कि भारतकी स्त्रियोंकी तथा निर्दोष मनुष्य मात्रकी तुम रक्षा करो। जिस सरकारको अपने किये पर कुछ भी पछतावा नहीं हुआ उसकी उन अदालतोंको छोड़ दो जिन्होंने निरपराध मनुष्योंको फांसी पर लटकाया है। यदि हमारी गुलामी पहले दरजेको न पहुंच गई हो तो एक दिनमें भारतके सब स्कूल, कालेज खाली

हो जाते, अदालतें सूनसान हो जातीं और वकील घर बैठ रहते। हमारी कापुरुषताने यह अन्याय किया है। शिक्षित भारत-वासियोंको अब यह समझना होगा। सर्वसाधारण तो असहयोगी हैं ही। स्त्रियोंने तो असहयोगको जिस श्रद्धाके साथ स्वीकार किया है उससे मेरी आशा बढ़ी है। डाकोरसे लेकर मैं यहां तक देखता आ रहा हूं। सहस्रों स्त्रियां एकता, स्वराज्य और असहयोगके झण्डेके नीचे आ खड़ी हो गई हैं। उन्होंने अपने आभूषण उतार कर असहयोगपर न्योछावर किये हैं। भारतकी स्त्रियां आत्मशुद्धि, स्वार्थत्यागका उपदेश सुननेके लिये उत्सुक रहती हैं। वे इसके लिये तैयार रहती हैं। उनका अन्तःकरण शुद्ध है। वकीलों और विद्यार्थियों तथा अध्यापकोंको अपना अन्तःकरण शुद्ध करना चाहिये। सर्व-साधारणका अन्तःकरण शुद्ध है। मुझे यह मत बतलाइये कि उनमें बुद्धि नहीं है। वे भारतको समझते हैं। यदि स्त्रियां और सर्व-साधारण जनता—जो तैयार हैं—बहिष्कार कर दें तो हम लोग बङ्गालकी खाड़ीमें झोंक दिये जायँगे। मैं भारतमें सर्वत्र भ्रमण करके अब बङ्गालमें आया हूं और इस सभाके द्वारा बंगालके शिक्षितोंसे कहता हूं कि अब तैयार हो जाओ, विलम्ब मत करो मैंने जो कुछ कहा है, खूब सोच-समझकर और पूरे विश्वास[illegible]साथ कहा है। पंजाबकी चर्चा मैंने प्रतिशोध बुद्धिसे नहीं की मैं अंगरेजोंका शत्रु नहीं हूं। सहस्रों अँगरेज स्त्री पुरुष [illegible] मित्र हैं, उनके साथ मैं रहा हूं। मेरी राजनीति धर्म-र[illegible]त नहीं है।

धर्म-रहित राजनीति वाहियातपन है। बङ्गालके विद्यार्थियोंकी परीक्षाका समय है। जब सब प्रान्त सो रहे थे तब बङ्गाल जाग रहा था। यदि उसने भौतिक बलका प्रयोग न किया होता तो बङ्गाल जीत जाता। उस वीरताको याद करो—बमकी वीरता नहीं, उन गौरव-पूर्ण कार्यों को याद करो और दुर्बलता त्याग दो। राष्ट्रीय शिक्षाका कार्य फिर आरम्भ करो और सब प्रान्तोंके आगे बढ़ो। ईश्वर तुम्हें शक्ति दे।

नव युग

(फरवरी २, १९२१)

कलकत्ताके मिर्जापुर पार्कमें विद्यार्थियोंकी एक महती सभामें भाषण देते हुए महात्माजीने कहा था :—

सभापति महोदय तथा मित्रो, माताकी पुकारका जिस उत्साहके साथ बङ्गालके नवयुवकोंने उत्तर दिया है उसके लिये उन्हें बधाई दिये विना नहीं रह सकता। मैं जानता था कि कलकत्ताके छात्र अपने प्राणप्रिय नेता श्रीयुक्त दासकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि वे आकर हम लोगोंको मार्ग दिखावें। मैं उन्हें भी बधाई देता हूं कि उन्होंने आपकी अभिलाषा पूरी की और मैं आपको पुनः बधाई देता हूं कि आपने उनके

बताये मार्गका अनुसरण किया। पर इस बातको मैं और आप लोग भलीभांति जानते हैं कि आपका और श्रीयुत दासका कार्य अभी आरम्भ मात्र हुआ है। हम लोग नवीन युगके बीचमें हैं और नये जीवनमें जो कुछ कठिनाइयां उपस्थित होती हैं तथा झेलनी पड़ती हैं उन सबका अनुभव हम कर रहे हैं। केवल कालेजोंको खाली कर देनेसे ही मेरा, आपका, दास महोदयका तथा सारे भारतका काम पूरा नहीं हो गया। पहले तो सबसे आवश्यक बात यह है कि जिन कालेजोंको आप छोड़ आये हैं उनमें जानेकी अभिलाषा फिर न करें और इसके लिये यह दास महाशयका कर्त्तव्य है कि वे आपके लिये काम तलाश करें कि जिसे इस परीक्षाके समयमें आप पूरा करें।

केवल मात्र मार्ग

इस समय यह आवश्यक हो गया है कि आप तथा दास महोदय दोनों मिलकर ऐसा तरीका निकालें जिससे उस कामको पूरा कर दें जिसे आप लोगोंने आरम्भ किया है। जिन छात्रोंने सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों तथा कालेजोंका परित्याग किया है, उन्होंने अपना कर्तव्य एक तरहसे पूरा कर दिया है। पर उस पूर्तिको सदा उसी अवस्थामें रखनेके हेतु, उस कामको जारी रखनेके हेतु आपकी सेवाओंको स्वराज्य प्राप्तिके लिये उपयोगी बनानेके आप उपाय और मार्ग

ढूंढ़ निकालना आवश्यक है। इस बातका मुझे अवर्णनीय खेद है कि जिस बङ्गालके नवयुवक छात्रोंने इतना उत्साह दिखलाया है, अपने कर्तव्यके पालनमें इतनी तत्परता दिखलाई है उसी बङ्गालमें कालेजों तथा स्कूलोंके अध्यापकों, प्रिंसिपलों, हेड-मास्टरों तथा ट्रस्टियोंके कानमें जूं तक नहीं रेंगे। वे अपने उच्च (?) पदसे एक कदम भी खिसकना अपमानजनक समझते हैं। इस बातका स्मरण दिलाकर मैं उनके देशप्रेमपर किसी तरहका आक्षेप नहीं कर रहा हूं। मैं जानता हूं और मुझे इस बातका पक्का विश्वास हो गया है कि उनकी समझसे आप लोगोंने गलत मार्गका अनुसरण किया है। उनका कहना है कि श्रीयुक्त दासने विद्यार्थियोंको विवेकसे काम लेनेकी राय न देकर उन्हें जोशमें लाकर स्कूल तथा कालेजोंको छोड़ानेमें अदूरदर्शिता की है। उनका विश्वास है कि असहयोगके लिये देशको निमन्त्रित करनेमें मैंने भारी भूल की। और लड़कोंको सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलोंको छोड़नेकी राय देकर तो मैंने भूलकी पराकाष्ठा कर दी।

जो कुछ अनुभव मुझे हो रहा है या हुआ है, जो कुछ मैंने सुना है या पढ़ा है, और वृद्धजनोंके प्रति मेरे हृदयमें श्रद्धा और आदरका जो भाव है इन सबके होते हुए भी मैं आपके सामने दृढ़तासे कह सकता हूं कि जिस मार्गका मैंने अनुसरण किया है वही प्रशस्त मार्ग है। यदि हम लोग अपने मनके अनुरूप स्वराज्यकी स्थापना करना चाहते हैं, यदि

हम लोग भारतके लुप्त गौरवका पुनरुत्थान करना चाहते हैं, यदि हम लोग इस्लाम धर्मकी मर्यादा रख लेना चाहते हैं, जो इस समय कच्चे धागेमें लटक रहा है, तो हमें इस (वर्तमान) सरकारसे साफ कह देना है कि इसे हमारी मददकी आशा नहीं करनी चाहिये और जिस सरकारपरसे हमारा विश्वास उतर गया उससे हमें भी सहायता नहीं लेनी चाहिये। आप लोगोंमेंसे जिनके हृदयमें अब भी संशय रह गया है वे यही कहेंगे कि इस तरहके व्याख्यान तो हजारों बार सुननेमें आये। बात भी सच है। पर मैक्समूलरने किसी संस्कृतके श्लोकके आधारपर लिखा है कि जबतक सम्पूर्ण जनता स्वीकार न कर ले सच्ची बातको सदा दोहराते रहना चाहिये। वही मैं भी कर रहा हूं। मैं सच्ची बातको समस्त नेताओंके समक्ष दोहराता रहूंगा जबतक कि वे उसे स्वीकार नहीं कर लेते। जो कुछ मैं सदासे कहता चला आया हूं वही यहां भी कहता हूं कि जबतक भारतवर्ष असहयोगके लिये पूरी तरहसे तैयार नहीं हो जायगा। उसे स्वराज्यकी प्राप्ति अर्थात् अपनी खोयी हुई मर्यादाकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस स्थितिमें हम लोग हैं उस स्थितिमें इस सरकारके साथ किसी भी अन्य प्रकारका युद्ध हम नहीं कर सकते।

असहयोग प्रत्येक भारतीयके हृदयमें बस गया है। आज करोड़ोंकी संख्यामें भारतवासी इस आन्दोलनमें चले आ रहे हैं। ऐसा कभी भी नहीं हुआ था। पर इसका कारण यह

नहीं है कि इस आन्दोलनसे मेरा नाता है। बल्कि इसका कारण यह है कि असहयोग उनके साथ उत्पन्न हुआ है और उन्हींके साथ बढ़ा है। यह प्रत्येक धर्मका अङ्ग है और यही कारण है कि इस गिरी और निरीह दशामें भी असहयोगके सहारे हम उठ खड़े हो रहे हैं। असहयोगके ही प्रतापसे हममें बल, साहस, पौरुष और आशा तथा विश्वासका सञ्चार हुआ है।

संशयका कारण

हम लोगोंकी शिक्षाके विधायकोंने इस आन्दोलनको अभीतक नहीं अपनाया हैं। मैं अतिशय विनम्र भावसे कह सकता हूं कि उनके हृदयमें संशय है। जनताके समान उनके हृदयोंमें वह आगकी लपटें नहीं उठ रही हैं। पश्चिमी सभ्यताकी हवा उनमें व्याप्त है। मैंने अर्वाचीन सभ्यताके लिये पश्चिमी सभ्यताका भी प्रयोग किया है। मैं चाहता हूं कि मैं आपको इन दोनों शब्दोंका भेद बता दूं। सबसे पहले मैं यह कह देना नितान्त आवश्यक समझता हूं कि पाश्चात्यका मैं विरोधी नहीं हूं। हममें कितनी ही बाते हैं जिनके लिये मैं पाश्चात्योंका कृतज्ञ हूं। पाश्चात्य साहित्यसे हमें बहुत कुछ ज्ञान मिला है। पर एक जबर्दस्त शिक्षा हमें इसी पाश्चात्यने दी है। उसने हमें सिखलाया है कि यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा देश पूर्ण विकासको प्राप्त कर सके, तो अर्वाचीन सभ्यताके वर्षोंके अनुभवने

मुझे यही सिखाया है और उसीको मैं अपने देश भाइयोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहता हूं कि आप पश्चिमी सभ्यतासे घृणा कीजिये। वह अर्वाचीन सभ्यता क्या है? भौतिक पदार्थोंकी उपासना। हमारे हृदयमें वर्तमान पशुबलकी सेवा स्वीकार करना ही अर्वाचीन सभ्यताका सबसे प्रत्यक्ष फल है। अर्वाचीन सभ्यता प्रतिक्षण बस उसी आर्थिकवादकी उपासना करना सिखाती है।

अर्वाचीन सभ्यता

यदि मुझे अपने देशका पूर्ण ज्ञान न प्राप्त होता यदि इन शिक्षितोंकी भांति मैं भी अपने देशवासियोंकी अवस्थासे भलीभांति परिचित न होता तो इन लोगोंकी भाँति मैं भी भ्रममें पड़ गया होता। आप लोगोंको भलीभांति विदित है कि मैं बीस वर्षतक उस देशमें रह चुका हूं जिसने आधुनिक सभ्यताकी हर तरहसे नकल की है, जो हर तरहसे उसका प्रतिरूप बन गया है, जो पूर्ण उत्साहके साथ भौतिकताकी उपासना करता आया है। मैं उस देशमें रह चुका हूं जो नये जीवनका नयी तरक्कीका दम भर रहा है। दक्षिण अफ्रीकामें कुछ संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुष विद्यमान हैं। उस राष्ट्रके अर्वाचीन सभ्यताकी पूर्णरूपसे योजना की गई। १९०८में उसकी दशा हमें साफ साफ कह रही थी कि ईश्वर भारतकी इससे रक्षा करे।" दक्षिण अफ्रीकासे मैंने यही सबक सीखा है। तबसे आजतक

मैं बराबर उसी पाठको दोहराता आया हूं। भारतकी प्राचीन सभ्यतामें मेरा इतना अटल विश्वास रहा है कि उसने उन प्रकाशशून्य समयोंमें, जब मेरे चारों ओर निराशा और संशयके काले बादल फैल रहे थे, मेरी रक्षा की और मुझे बचाया।

धर्म युद्ध

मैं जानता हूं कि विरोध अपनी काली आंखें हम लोगोंकी ओर रह रह कर फेर रहा है। हम लोगोंने तो अभी रास्ता भर तैयार किया है। यदि हमको इस परसे होकर मञ्जिल तै करना है तो हमें उसी विश्वासके अनुसार चलना होगा जिसके सहारे हमने गत सितम्बरमें इस युद्धको आरम्भ किया था। आप लोगोंको आधुनिकताकी हवा लगी है, आपके हृदयोंमें उसीके भाव समाये हुए हैं फिर भी मैं आपके सामने दृढ़ता और साहसके साथ कह सकता हूं कि यह युद्ध एक-दमसे धर्म युद्ध है। मैं इस बातको भी दृढ़तासे कह सकता हूं कि इस धार्म्मिक युद्धको राजनीतिमें घुसानेका मेरा एक-मात्र अभिप्राय यही है कि मैं राजनीतिको आत्मबलका सहारा देना चाहता हूं। और हमारी राजनीतिका जितना ही अधिक आधार आत्मबल होगा उतना ही अधिक तीव्रगामी हमारा राजनैतिक विकास होगा। मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि भारतकी जनता ब्रिटिश शासनसे तङ्ग आ गई है, इसीलिये मुझे

विश्वास हो रहा है और मैं दावेके साथ कह रहा हूं कि एक वर्षमें स्वराज्य मिल सकता है।

आठ महीनेमें स्वराज्य

इस वर्षमेंसे चार मास बीत गये। पर इतने दिनोंके बीचमें हमारी आशा आज जितनी बलवती हो उठी है उतनी बलवती कभी भी नहीं हो उठी थी। आपसे मेरी आशा और मेरा साहस और भी दृढ़तर हो गया है। मेरा पौरुष भी बढ़ गया है। यदि ईश्वरने शौकत अली और मुहम्मद अलीको कुशलसे रखा तो मैं इस सालके भीतर ही भीतर इस देशमें स्वराज्यका झण्डा खड़ा कर दूंगा। पर यदि ईश्वरकी यही इच्छा है कि मैं इस वर्षके भीतर ही इस संसारको छोड़कर चला जाऊं तो मैं इसी आशापर मरूंगा कि मेरे बाद भी आप लोग इसी सालके भीतर राष्ट्रीय झण्डेको अवश्य खड़ा कर देंगे।

यह काम उतना कठिन नहीं है जितना कठिन आप इसे सोच रहे होंगे। केवल कठिनाई हमारे विश्वासकी है। कठिनाई इस बातकी है कि हमें विश्वास हो गया है कि हम कौंसिलोंके भीतर रहकर स्वराज्यकी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। कठिनाई इस बातकी है कि हमें विश्वास हो गया है कि जब तक हम कमसे कम १६ वर्ष ट्रेनिङ्ग (शिक्षा) न पा लें हम स्वराज्यके योग्य नहीं हो सकते और यदि हम लोगोंका यह विश्वास इसी तरह दृढ़ रह गया तो मैं भी यही दावेके साथ कह सकता हूं कि

सैकड़ों वर्षोंमें भी स्वराज्यकी अभिलाषा पूरी नहीं नहीं हो सकती। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुझे इन बातोंकी आवश्यकता नहीं है, हमें विश्वास, साहस तथा पराक्रमकी आवश्यकता है, और मुझे विश्वास हो गया है कि जनसाधारणमें इस समय ये बातें आ गई हैं और इसीलिये मेरी आशा और भी बलवती होती जा रही है कि इस वर्षके भीतर ही भीतर हमें स्वराज्य मिल जायगा।

भारतीय जनसमूह

कांग्रेसकी अपीलका क्या अभिप्राय है? कांग्रेसकी अपीलका अभिप्राय है कि आपके और मेरे तथा भारतके समस्त शिक्षित वर्ग तथा समस्त व्यवसायी वर्ग—जिनकी संख्या भारतकी जनसंख्यामें समुद्रके जलमें बूंदके समान है—उनके सामने एक जांच उपस्थित कर दी है। इस बातका विश्वास मानिये कि कांग्रेस भारतको इनके पंजोंसे निकाल उसे स्वराज्य प्राप्त करा देगी और स्वतन्त्रताका झण्डा खड़ा कर देगी चाहे आप उसकी सहायता करें या न करें। समस्त भारतवर्षके प्रतिनिधि ये शिक्षित वर्ग ही नहीं हैं। यदि आज समस्त शिक्षित समुदाय संशयमें पड़कर अलग जा खड़ा हो तोभी भारत आशान्वित बना रहेगा। शिक्षित समुदाय आशा, विश्वास, धैर्य्य तथा पराक्रम भले ही छोड़ दे पर भारत नहीं छोड़ सकता। यही आशा मुझे दृढ़ बना रही है। यही मेरे अंग प्रत्यंगको उत्साहित कर

रही है। पर मैं इस बातकी दृढ़ आशा करता हूं कि यदि बङ्गालके नवयुवक अपने स्थानसे डिगे नहीं, यदि वे इस स्थानपर अटल खड़े रहे जहां उन्होंने अपना कदम डाला है तो निश्चय जानिये कि एक दिन इन मास्टरों, हेडमास्टरों, प्रिंसिपलों तथा ट्रस्टियोंका भ्रम अवश्य दूर हो जायगा और आशाकी गर्मी इनके रक्तमें नया जोश पैदा कर देगी।

बुरी नकल

बङ्गालके नवयुवको, मुझे आपसे यही कहना है कि जिस अवस्थाको आपने अङ्गीकार किया है उस पर डटे रहना। चाहे जो कुछ हो जाय अपने निर्णयको नहीं बदलना। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि श्रीयुत दास महोदय अपने वचनको तोड़नेवालोंमें नहीं हैं। उन्हें १०,००० की मिलनेकी आशा हो गई है और किसी बङ्गाली जमींदारने उन्हें, १०,००० साल देनेका वादा किया है। कई एक मारवाड़ी सज्जनोंने भी वचन दिया है। उन्हें और भी सहायता मिल जायगी। इस प्रकार आपके मार्गमें आर्थिक कठिनाई नहीं रही और आर्थिक कठिनाई तो सबसे पीछेकी बात है। आवश्यकता है स्थानकी जहां राष्ट्रीय कालेजकी स्थापना की जाय। अध्यापकोंकी आवश्यकता है। मैं यहीं पर आप लोगोंसे यह भी कह देना चाहता हूं कि जिन लोगोंने सरकारी विद्यालयोंका बहिष्कार किया है उन्हें अपने सामने उसी शिक्षाका आदर्श नहीं रखना चाहिये। यह नकल

बुरी होगी। जिस तरहसे भारतीय स्वराज्यको हम आजकलकी स्वतन्त्रताकी बुरी नकल नहीं रखना चाहते उसी तरह आप भी इस बातको ध्यानमें रखियेगा कि आपके राष्ट्रीय कालेज वर्तमान विद्यालयोंकी नकल नहीं होते। आप शानदार इमारतोंके प्रलोभनमें न पड़ जाइयेगा। आप कुर्सियों और मेजोंकी चकाचौंधमें मत आ जाइयेगा। आपको आदर्शकी तरफ दृष्टि फेंकनी होगी। आपको देखना होगा कि आपके शिक्षकोंमें उत्साहित करनेका माद्दा है या नहीं। आपको देखना होगा कि पर्याप्त उत्साह तथा साहस ग्रहण करनेके लिये आपके पास पौरुष है कि नहीं। इतना जानकर आरम्भ करनेके बाद आपको असन्तोष नहीं होगा। पर यदि आप इस भ्रममें हैं कि श्रीयुत दास महोदय आपके लिये शानदार भवनोंका निर्माण करेंगे और जिस विलासितामें आप शिक्षा पा रहे थे उसके लिये साधन संग्रह कर देंगे तो आप भूलते हैं और ऐसी दशामें आपको असन्तोष होना स्वाभाविक है।

नया मन्त्र

आज मैं आप लोगोंके सामने नये मन्त्रको उपस्थित करना चाहता हूं। यदि आप एक वर्षके भीतर स्वराज्य पाना चाहते हैं, यदि आप इस वर्षके भीतर स्वराज्यकी प्राप्तिमें योगदान करनेकी अभिलाषा रखते हैं तो मैं आपसे यही कहूंगा कि जिन तरीकोंको मैं आपके सामने उपस्थित कर रहा हूं उन्हें स्वीकार

कर आप उन लोगोंका मार्ग प्रशस्त और काम सरल कर दीजिये जो इस स्वराज्यकी स्थापनाकी चेष्टा कर रहे हैं। यदि आपकी धारणा है कि जिस प्रकार आपकी शिक्षा हो रही थी उसी प्रकारकी शिक्षाको प्राप्तिसे ही आपको स्वराज्य मिल सकता है तो आप भ्रममें हैं। विना यातना सहे, विना विपत्ति भोगे, विना आत्मत्याग किये किसी देशने स्वराज्य नहीं प्राप्त किया है, नया जीवन नहीं लाभ किया है। आत्मत्यागकी परिभाषा जो मेरे समझमें आ सकी है वह यह है कि 'अपनेको हर तरहसे पवित्र बनाना।' असहयोग पवित्र करनेका ही मन्त्र है और यदि आत्माकी पवित्रताके लिये दैनिक परिचर्याको बदलनेकी आवश्यकता हो तो उसको बदल देना चाहिये। यदि मैं भ्रममें नहीं हूं तो बङ्गालका मुझे जो कुछ अनुभव है उससे मैं कह सकता हूं कि आप लोग पीछे नहीं हटेंगे बल्कि तत्परता दिखावेंगे।

चरखा कातना

आज तक जो शिक्षा हमें मिलती आ रही है उसमें दो बातका नितान्त अभाव है। जिन लोगोंने हमारी शिक्षाकी यह प्रणाली नियत की वे शरीर और आत्माकी शिक्षा भूल ही गये। आपको आत्माको वलिष्ठ बनानेकी शिक्षा नहीं मिल रही है।............

असहयोगका आन्तरिक अभिप्राय क्या है। यह सरकार जिस बुराईमें प्रवृत्त है और जो बुरा आचरण कर रही है उसमें इसका साथ न देना। यदि हम लोग जान बूझकर बुराईसे दूर

हट रहे हैं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि हम लोग ईश्वरकी ओर जा रहे हैं। यहींसे आत्माकी शिक्षा आरम्भ होती है। यह देखकर कि, शारीरिक शिक्षासे भी हम वञ्चित हो गये हैं, भारत गुलाम हो गया है क्योंकि चरखेकी उपयोगिता वह भूल गया और भारतने अपनेको अति सहजमें बेंच दिया इसलिये मैं साहसके साथ आप लोगोंके सामने चरखेको रखते नहीं घबराता। इसलिये मेरा यही अनुरोध है कि इस वर्ष आपका केवलमात्र कर्तव्य यही होना चाहिये कि आप चरखेमें लग जाइये और जहां तक हो अधिकसे अधिक सूत तैयार कीजिये। इस प्रकार स्वराज्यकी प्राप्ति करके तब आप अपनी शिक्षा आरम्भ करें। बङ्गालके प्रत्येक नवयुवक और युवतीको चरखा कातना अपना परम कर्तव्य समझ लेना चाहिये। मैं इस बातको आपके सामने विगत यूरोपीय युद्धके अनुभवके आधार पर रख रहा हूं।

युद्धमें सेवा

जिन्हें विगत यूरोपीय युद्धका कुछ भी हाल मालूम है वे भली भांति जानते हैं कि यूरोपके बालक और बालिकाओंने स्कूल और कालेजोंको छोड़ दिया था, और राष्ट्रकी रक्षाके लिये जिन कामोंकी आवश्यकता प्रतीत हुई उसे करने लग गये थे। कितने सिलाईका काम करते थे और कितने 'बैजें' तैयार कर रहे थे। कितने घरोंमें तो छोटे छोटे बच्चे भी काम करनेमें लग गये थे। यहां भी यही हो रहा था। जिस समय

खैरागढ़के किसानोंके युवकोंको मैं रङ्गरूटमें भर्ती होनेके लिये उत्साहित करने लगा सरकारने मेरे कामको बहुत पसन्द किया यद्यपि कितनी ही अवस्थामें यह उनके अभिभावकोंकी इच्छाके प्रतिकूल था। पर अब वह समय नहीं रहा। आज जब मैं उन्हीं नवयुवकोंको देशोद्धारमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रोत्साहित कर रहा हूं, मातृभूमिके उद्धारके लिये उन्हें अपनी ओर खींच रहा हूं तो चारों ओरसे आवाज आ रही है कि मैं पाप कर रहा हूं, बुराई कर रहा हूं, उचित है कि इन लड़कोंको छोड़ दिया जाय कि वे अपनी बुद्धिके अनुसार काम करें। पर बङ्गालके नवयुवको और नवयुवतियो! यदि आपकी आत्मा इस बातको स्वीकार करती है, यदि आपकी अन्तरात्माकी प्रेरणा है कि आप अपना इस सालका समय भारतकी स्वराज्य प्राप्तिमें लगावें, तो आपको चरखा लेकर बैठ जाना चाहिये क्योंकि मैं इतनी बात दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि जब तक प्रत्येक नर नारी चरखा लेकर नहीं बैठ जायगा विदेशी कपड़ोंके वहिष्कारका प्रश्न पूर्णतया नहीं हल हो सकता। इन ३५ वर्षोंमें कांग्रेस अनेक तरहकी धागा बुनती आ रही है। आइये इस वर्ष हम लोग उस सच्चे धागेको बुनें जिसकी हमें वास्तविक आवश्यकता है। यदि आप भूखोंको अन्न और नङ्गोंको वस्त्र देना चाहते है, तो सिवा सर्वव्यापी चरखेके प्रचारके कोई और मार्ग नहीं है। इसलिये बङ्गालके नवयुवको! जो आदेश मैं करता हूं उसे आप स्वीकार कीजिये। यदि हम लोगोंने विदेशी वस्त्रोंका पूर्णतया वहिष्कार

कर दिया, तो हम लोग कामन्स सभाके उन पचास सदस्योंकी भारी शक्तिको व्यर्थ कर देंगे जिनके बलपर लङ्काशायर फूला नहीं समाता और जो जापानने अपनी क्रूर दृष्टि भारत पर लगाई है उसे भी लाचार और विवश कर देंगे। जब तक कि भारतके अन्न और वस्त्रकी समस्या हल न हो जाय, भारतकी आर्थिक समस्या नहीं हल हो सकती। अन्य बातोंके विना तो काम चल भी सकता है पर विना अन्य वस्त्रके तो एक क्षण भी नहीं चल सकता। भारत सदृश विस्तृत देश—जिसकी लम्बाई १६०२ मील है और जिसकी चौड़ाई १५०० मील है प्राचीन तरीकेको अख्तियार किये विना किसी भी तरह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके राज्यत्वकालमें बङ्गालने तथा समस्त भारतने जो कुछ किया उसके लिये यदि आप इस समय प्रायश्चित्त करना चाहते हैं तोभी आपके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आपके उन पापोंका यही प्रायश्चित्त होगा कि आप पुरानी कलाको फिर उठाईये और भारतको पर्याप्त सूत्रसे पाट दीजिये जिससे कपड़ेका दाम इतना गिर जाय कि फिर भारतको दूसरोंका मुंह नहीं ताकना पड़े।

आर्थिक आवश्यकता

बङ्गालके नवयुवको! यदि आप एक वर्षके भीतर स्वराज्य पानेके अभिलाषी हैं और यदि आप उसके लिये प्रयत्नशील

भी हैं तो आप उस मनुष्यकी सलाह बिना किसी आशङ्काके स्वीकार लेंगे जिसने प्राय: १२ वर्षोंतक इसमें अनुभव प्राप्त किया है और इसकी उपयोगिताके विषयमें बाल भर भी नहीं डिगा है। भारतके आर्थिक प्रश्नोंपर जितना अधिक मैंने विचार किया है, भारतीय कपड़ेके मिलवालोंकी जितनी अधिक बातें मैंने सुनी है मुझे विश्वास हो गया है कि भारतका आर्थिक सुधार तबतक नहीं हो सकता जबतक प्रत्येक घरमें चरखेका प्रचार पूरी तरहसे नहीं होगा। किसी मिलवालेसे जाकर बात कीजिये। वह आपको साफ बतला देगा कि यदि भारत अपनी मांग भारतीय मिलोंद्वारा ही पूरी करना चाहता है तो उसे कमसे कम ५० वर्ष लगेंगे। और इनके कथनकी पुष्टिमें इस प्रकार कर देता हूं कि आज हजारों जुलाहे करघोंपर काम कर रहे हैं पर इन मिलोंसे काफी सूत न मिलनेके कारण उन्हें विवश होकर विलायती सूतका सहारा लेना पड़ता है। इसलिये बङ्गालके नवयुवकोंसे यही प्रार्थना है कि स्कूल और कालेजोंको छोड़कर आप आशा और विश्वासके साथ आगे बढ़िये और चरखेको अपना लीजिये और जबतक स्वराज्य नहीं मिल जाता तब तक इसे अपनाये रहिये। इसके बाद और बातोंकी चिन्ता की जायगी।

हिन्दीकी आवश्यकता

मेरा एक अनुरोध और है। राष्ट्रीय विद्यालयोंद्वारा जो

सच्ची शिक्षा हमें मिल सकती थी उसकी हमने सदा उपेक्षा की। हिन्दी भाषा हमें जरूर सीख लेना चाहिये। इसके विना हम उन प्रान्तोंमें सर्वथा बेकार और अनुपयोगी हो जाते हैं जहां एकमात्र हिन्दीका प्रचार है। इसलिये सुविधाके समय हमें हिन्दी सीख लेना आवश्यक है। चरखा चलानेसे जो समय बच जाय उसका प्रयोग हमें इसीमें करना चाहिये। यदि आप तत्पर होकर करें तो आप यह दोनों काम सिर्फ महीने दो महीनेमें सीख सकते हैं। इस प्रकार सजधज कर आप भारतके कोने अंतरेमें जा सकते हैं और जनताके समक्ष आपने विचारोंको उपस्थित कर सकते हैं। क्या आप इस बातकी कभी भी सम्भावना समझते हैं कि आप अंग्रेजी भाषाका प्रचार जनसाधारणमें करके अंग्रेजीको बोलचालका माध्यम बना सकते हैं? बाइस करोड़ हिन्दुस्तानी केवल मात्र हिन्दी भाषा जानते हैं अन्य किसी भाषामें उनका प्रवेश नहीं। यदि आप इन बाइस करोड़ आदमियोंके हृदयमें प्रवेशकर जाना चाहते हैं तो आपके लिये केवलमात्र सहारा हिन्दी भाषाका है। यदि आप इस वर्ष यही करते गये, यदि आपने इन नौ महीनेको इन्हीं दो कामोंमें बिताया तो निश्चय मानिये कि सालका अन्त होते न होते आपमें वह साहस, वह शक्ति, वह बल, वह धैर्य्य, वह पराक्रम आ जायगा जो आपमें पहले कभी नहीं था। हजारों छात्र ऐसे हैं, जिन्हें मैं जानता हूं, जिन्हें यदि सरकारी नौकरी मिलनेकी सम्भावना नहीं रहती जो निराशा घेर

लेती है। यदि आप भी सरकारके गुलाम बन कर नहीं रहना चाहते तो अंग्रेजीकी शिक्षा आपके किस काम की? मैं अंग्रेजी भाषाके साहित्यिक मूल्यको घटाना नहीं चाहता। मैं उन बहुमूल्य और असंख्य रत्नोंकी उपेक्षा नहीं करना चाहता जो अंग्रेजी भाषाकी पुस्तकोंमें छिपे पड़े हैं। मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि अंग्रेजी भाषामें किसी भी तरहसे कम उपयोगिता है। पर मैं इतनी बात दृढ़तासे कह सकता हूं कि भारतको स्वराज्य दिलानेमें अँग्रेजी भाषाका बहुत ही कम हाथ है, उससे बहुत ही कम सहायता मिल सकती है।

मातृभूमिके लिये सर्वस्व

आपको अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बढ़ाना किसी भी तरह आवश्यक नहीं है इससे आपके स्वराज्यके मार्गमें किसी तरहकी सहायता नहीं मिल सकती। इसलिये मैंने गुजरातके नवयुवकोंको सलाह दी है कि कमसे कम ६ मास या १२ मास तक आप लोग पढ़ने लिखनेकी सभी सामग्रीको ताखपर रख दीजिये, चुपचाप चरखा कातिये और हिन्दी भाषा सीखिये और इन कामोंमें पूर्ण योग्यता पानेके बाद राष्ट्रकी सेवाके लिये तैयार हो जाइये। जबतक हमारे कार्यकर्ता भारतके कुल साढ़े सात लाख ग्रामोंमें न बस जायं जबतक प्रत्येक ग्रामोंमें हम लोग सरकारी संस्थाओंके मुकाबिलेकी संस्था न खोल लें, जबतक कांग्रेसके प्रतिनिधि प्रत्येक ग्रामोंमें न हो जायं, तबतक राष्ट्रीय

महासभाका आदेश पूरा नहीं हो सकता और जबतक भारतके नवयुवक मातृभूमिकी पुकार पर उठ न खड़े होंगे तबतक यह सम्भव भी नहीं है। आज माने पुकारा है, भारतके सारी सन्तानोंको पुकारा है, उठना न उठना उनके हाथमें है। पर मुझे पूरा विश्वास है कि भारतके प्रत्येक युवा और युवती माकी इस पुकारपर उचित ध्यान देंगे। तुरत उठ खड़े होंगे। मैं आपको पक्का विश्वास दिलाता हूं कि सालके अन्तमें आपको इस बातके लिये पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा कि आपने अपना अमूल्य समय अनुपयोगी काममें लगाया। आज जो कुछ मैं आपसे कह रहा हूं वर्षके अन्तमें आप उसे पूर्णतया चरितार्थ हुआ पायेंगे अर्थात् आपके इस त्याग और परिश्रमसे भारतकी मर्यादाकी रक्षा होगी, इस्लाम धर्मके मर्यादाकी रक्षा होगी, समस्त राष्ट्रके मर्यादाकी रक्षा होगी और स्वराज्यकी स्थापना होगी। बङ्गालके नवयुवको और युवतियो! ईश्वरसे मेरा यही अनुरोध है कि वह आपको आवश्यक साहस, दे, आशा दे, विश्वास दे, जिससे आप इस आत्मत्याग और आत्मपूतके काममें विना किसी संशय या विघ्न बाधाके आगे बढ़ सकें। ईश्वर आपकी सहायता करे।

——*——
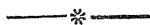
भारतके अंग्रेजोंके नाम पत्र

(अक्तूबर २७, १९२०)

प्रियमित्र,

मेरी इच्छा है कि प्रत्येक अँग्रेज इस अपीलको पढ़े और अच्छी तरहसे विचार करे।

पहले आपसे मैं अपना परिचय करा दूं। मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार दूसरे किसी भारतवासीने इतनी अधिक मिन्नतके साथ ब्रिटिश सरकारके साथ सहकारिता नहीं की है जितनी मिन्नतके साथ गत २९ वर्षोंसे मैंने अपने सार्वजनिक जीवनमें की है और ऐसी कठिन अवस्थामें कि यदि दूसरा कोई होता तो वह राजविद्रोही हो जाता। आप विश्वास रखिये कि मैंने ब्रिटिश सरकारके साथ जो सहकारिता की थी वह आपके कानून द्वारा दिये जानेवाले दण्डोंके भयसे नहीं की थी और न किसी प्रकारकी स्वार्थसिद्धिके लिये की थी। मैंने केवल स्वेच्छासे ऐसा किया था और मैं समझता था कि ब्रिटिश सरकारके सब कार्योंका परिणाम भारतका कल्याण है। मैंने साम्राज्य-हितके लिये चार बार अपनी जान खतरेमें डाली है। पहली बार बोर-युद्धमें जब मैंने एक ऐम्बुलेन्स-कोरका भार ग्रहण किया जिसके कार्योंका

वर्णन जेनरल बुलरके खरीतेमें हैं। दूसरी बार नेटालमें जुलू विद्रोहके समय। इस बार भी मेरे अधीन उसी तरहकी ऐम्बुलेन्स-कोर थी।

तीसरी बार जब मैंने गत महासमरके प्रारम्भमें एक ऐम्बुलेन्सकोरका सङ्गठन किया था और उसमें इतना अधिक परिश्रम करना पड़ा कि मुझे पार्श्वशूल (फेफड़ेके एक भागमें पीड़ा) रोग हो गया। चौथी बार जब दिल्लीकी वार कानफरेन्समें लार्ड चेम्सफोर्डके सामने कीहुई प्रतिज्ञाके अनुसार मैंने सैनिक भर्ती करनेका काम किया था। और खेड़ेमें सैनिक भर्ती करनेमें इतना परिश्रम पड़ा कि मुझे ऐसा भयंकर आमाशय रोग हो गया कि मेरे जीनेकी कोई आशा नहीं रह गई थी। मैंने ये सब बातें इसी विश्वास पर कीं कि साम्राज्यमें सर्वत्र समान-रूपसे बर्त्ताव किया जायगा। यहीं तकके नहीं, गत दिसम्बर मासमें भी मैंने विश्वास-पूर्ण सहकारिता करनेके लिये यथासाध्य जोर दिया था। मेरा पूर्ण विश्वास था कि मि० लायड जार्ज अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मुसलमानोंके साथ सद्व्यवहार करेंगे और पञ्जाब पर किये गये अधिकारी वर्गके अमानुषिक अत्याचारोंके लिये पञ्जाबियोंकी हानि पूरी करेंगे। पर मि० लायड जार्जकी दगाबाजी और आपके द्वारा उनका समर्थन होते और पञ्जाबकी ज्यादतियों पर कुछ ख्याल न होते देख सरकारकी और उस जातिकी सदिच्छा परसे जो उसका समर्थन करती है, बिलकुल विश्वास उठ गया है।

यद्यपि आपकी सदिच्छा परसे मेरा विश्वास उठ गया है तथापि मैं आपकी वीरताको स्वीकार करता हूं और मैं जानता हूं कि आप जिस बातको न्याय और तर्क द्वारा नहीं मानेंगे उसे आप वीरता द्वारा मानेंगे।

तो देखिये यह साम्राज्य भारतके लिये क्या है :—

भारतका वैभव ग्रेट-ब्रिटनके लिये आत्मसात् करना।

हमेशा बढ़नेवाला फौजी खर्च और सैनिक प्रबन्ध जिसमें सर्वत्रसे अधिक खर्च होता है।

भारतकी दीनताका विना खयाल किये हर विभागमें मन-माना फजूल खर्च करना।

समस्त प्रजा-वर्गको निःशस्त्र करके नामर्द बना देना, इस डरसे कि कहीं वे सशस्त्र होने पर आपकी जातिके जो मुट्ठीभर जान आदमी यहाँ रहते हैं, उनकी जानके ग्राहक न बन जायँ।

शासन-भार वहन करनेके लिये मादक वस्तुओंका व्यापार करना।

क्रमशः अधिकाधिक दमनशील व्यवस्थाका निर्माण करना जिसमें वह आन्दोलन दबा रहे जो एक राष्ट्रकी मर्मान्तिक यन्त्रणाका द्योतक है।

आपके राज्यमें रहनेवाले भारतवासियोंके साथ अवनत करनेवाला वर्त्ताव करना।

और पञ्जाबके शासन तथा मुसलमानोंके धार्मिक भावको आघात पहुंचा कर आपने हमारे भावोंकी पूरी अवहेलना की है।

मैं जानता हूं कि यदि हम लड़नेको तैयार होते और आपके हाथोंसे शासनाधिकार छीनना चाहते तो आप कुछ भी परवा नहीं करते। आप जानते हैं कि हम लोग शक्ति-हीन हैं, वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि आपने इसका निश्चय कर लिया है कि हम लोग मैदान जङ्गके योग्य नहीं हैं। अतः रणक्षेत्रमें बहादुरी दिखाना हमारे लिये असम्भव है। आत्माकी वीरता दिखाना अभी तक हमारे लिये बाकी है। मैं जानता हूं कि आप इसका भी जवाब देंगे। मैं वही वीरता दिखानेका उद्योग कर रहा हूं। असहकारिताका अर्थ और कुछ नहीं, केवल आत्मत्यागका अभ्यास करना है। हम आपके साथ क्यों सहयोग करेंगे, यदि हम यह जानते हैं कि आपके शासनसे हमारा देश दिन दिन दासताकी जञ्जीरमें जकड़ा जा रहा है। मेरे व्यक्तिगत प्रभावसे लोग इस आन्दोलनमें सम्मिलित नहीं हो रहे हैं। जब आप इस बात पर विचार करने लगें तो मेरा और अली बन्धुओंका विचार छोड़ दीजिये। यदि मैं इतना बेवकूफ होता कि मुसलमानोंके विरुद्ध अपनी आवाज उठाता तो मेरा व्यक्तिगत प्रभाव कुछ नहीं कर सकता, उसी तरह यदि अलीबन्धु भी हिन्दुओंके विरुद्ध आवाज उठावें तो उनका भी व्यक्तिगत प्रभाव काम नहीं आवेगा, जिनका नाम सुनते ही लोगोंमें जानसी आ जाती है। हम लोग जब कोई बात कहते हैं तो हजारों लाखोंकी संख्यामें आदमी आकर हमारी बातें सुनते हैं, क्योंकि हम उस देशकी आवाज उठाते हैं जो आपके पैरों तले कुचला जा रहा है। अलीबन्धु

भी मेरे जैसे आपके दोस्त थे और जैसा मैं अब भी हूं। मेरा धर्म मुझे आपके प्रति कोई कुचेष्टा करनेसे मना करता है। यदि मुझमें शक्ति हो भी तो मैं आपके ऊपर हाथ नहीं उठा सकता। मैं अपनी सहनशीलता द्वारा आपके ऊपर विजय पानेकी आशा करता हूं। अलीबन्धु यदि उनसे हो सकेगा तो अपने देश या धर्मको रक्षाके लिये तलवार खींच सकते हैं। पर उन लोगोंने और मैंने भारतवासियोंकी चेष्टामें एक स्वरसे आवाज उठानेका निश्चय किया है।

इस राष्ट्रीय भावके उठते हुए उबालको दबा देनेके लिये आप प्रतिकार खोज रहे हैं। मैं आपको यह सुझानेका साहस करता हूँ कि उसके दबानेका एकमात्र उपाय उसके कारणोंको दूर करना है। अब भी आपमें शक्ति है। भारतीयों पर किये गये अत्याचारोंके लिये आप प्रायश्चित्त कर सकते हैं। अपनी प्रतिज्ञायें पूरी करनेके लिये आप मि० लायड जार्जको बाध्य कर सकते हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उनके बचनेके बहुतसे मार्ग हैं। आप अच्छे वायसारायको स्थान देनेके लिये वर्तमाम वायसरायको अवसर ग्रहण करनेके लिये बाध्य कर सकते हैं। आप सर माइकेल ओडायर और जनरल डायरके सम्बन्धमें अपने विचार बदल सकते हैं। जनसमाज द्वारा पूर्ण उचित रूपसे निर्वाचित सभी प्रकारकी संस्थाओंके प्रतिनिधियोंको बुलाकर १० वर्षके भीतर भारतके उत्तम समाजकी इच्छाके अनुसार स्वराज्य देनेके उपाय ठीक

ठीक करनेके लिये सरकारको बाध्य कर सकते हैं।

पर जब तक आप प्रत्येक भारतवासीको यथार्थमें अपने समान और भाईकी दृष्टिसे न देखेंगे तब तक ऐसा कर नहीं सकते। मैं आपका पृष्ठ पोषण नहीं चाहता, केवल मित्रकी भाँति इस गंभीर समस्याको सम्मान-जनक रीतिसे हल करना चाहता हूँ। दूसरा हल करनेका तरीका अर्थात् दमन भी आपकी पहुँचमें है। मैं भविष्यवाणी करता हूं कि यह निष्फल होगा। यह आरम्भ हो चुका। अपने स्वतन्त्र विचार रखने और उन्हें स्वतन्त्र-रूपसे प्रगट करनेके लिये सरकारने पानीपतके दो वीर पुरुषोंको कैद कर लिया है। ऐसा ही मत प्रगट करनेके लिये तीसरेका विचार लाहोरमें हो रहा है। अवध जिलेका एक कैद किया जा चुका है। आपको जानना चाहिये कि आपके बीचमें क्या हो रहा है। हमारा उद्योग दबावकी आशासे परिचालित हो रहा है। मैं आपको सलाह देता हूँ कि अच्छे मार्ग पसन्द कीजिये और भारतके जिस जनसमाजका आप नमक खा रहे हैं उसका साथ दीजिये। देशवासियोंकी उच्चाकांक्षाओंके रोकनेका उपाय सोचना देशके प्रति अकृतज्ञता है।

भवदीय—

मोहनदास कर्मचन्द गांधी

गांधीजीके पत्रका उत्तर

(दिसम्बर १५, १९२०)

महात्माजीने अंग्रेजोंके नाम जो पत्र लिखा था उसका मिस्टर पोपले तथा मिस्टर फिलिपने निम्नलिखित उत्तर दिया है :—

प्रिय मिस्टर गांधी, आपने भारतवर्षके अंग्रेजोंके नाम जो पत्र लिखा है उसके लिये हम लोग आपके कृतज्ञ हैं तथा जिस उदार पर पुरअसर भाषाका आपने प्रयोग किया है उसके लिये भी हम लोग आपके कृतज्ञ हैं। जो ध्वनि आपने निकाली है उसको पकड़नेके लिये हमारी अन्तरात्मा उठती है। हम लोग किसी संस्थाके प्रतिनिधि नहीं हैं पर हम लोगोंकी भावना है कि जैसा हम लोग सोचते हैं उसी तरह हमारे लाखों देशवासी तथा भारतमें रहनेवाले कतिपय अंग्रेज सोचते हैं। आपका पत्र पढ़कर हमारी यही धारणा हुई है कि हम लोग नहीं वरन् आप भारतके दुश्मन हो सकते हैं।

हम लोग आरम्भमें ही लिख देना चाहते हैं कि हम लोगोंको ब्रिटिशकी यह नीति नहीं पसन्द है कि वह अन्य जातियोंको दबाकर ब्रिटनके लाभके लिये उनपर प्रभुत्व स्थापित करे तथा उनको लूटे, उनके साथ अनादरद्योतक व्यवहार करे, मादक द्रव्योंका प्रचार करे, दमनकारी कानून बनावे, इस तरहकी शासन व्यवस्था करे जिससे अमृतसरके सदृश शोचनीय

घटनायें उपस्थित हों। इस तरहकी बातोंका अन्त हम लोग भी हृदयसे चाहते हैं और इसमें आपके साथ हैं। हम लोग इस बातको भलीभांति समझते हैं कि ब्रिटिश शासनकी ओरसे कुछ ऐसी कार्रवाइयां हो गई हैं जिनके लिये हम लोगोंको भी उतना ही खेद और पश्चात्ताप है जितना आपको तथा जिनकी हम उतनी ही निन्दा करते हैं जितनी आप, जिनसे इस तरहके अनर्थ हो गये, जिनसे चित्तमें अशान्ति और क्षोभ साधारणतः उत्पन्न हो जाता है और उसीके वशवर्ती होकर आपने ब्रिटिश जनताके विरुद्ध ये बातें कह डाली हैं। पर हम लोगोंका निजी अनुभव जहांतक गया है उससे हम लोग इस बातको दृढ़तासे कह सकते हैं कि ऐसी अनवस्थित दशामें काल तथा समयके अनुसार काम करके भी—जिसके लिये आपने खेद प्रगट किया है और जिसका हमें भी खेद है—उनका आदर्श ऊंचा है अर्थात् उनका आदर्श है कि ब्रिटिश साम्राज्य बराबरीके अधिकार रखनेवालोंका सुसंगठित गुट हो जो अपनी स्वतन्त्र इच्छासे प्रेरित होकर इसमें सम्मिलित हों तथा हर अवस्थामें एकमत, एक विचार तथा एक आदर्शके हों और इस स्वतन्त्र गुटका लक्ष्य विश्वव्यापी स्वतन्त्रताकी स्थापना करना हो। हमारे अधिकांश देशवासियोंका यह भाव है कि ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा इस लक्ष्यकी पूर्ति हो सकती है और यही हम लोगोंका विश्वास है। यही कारण है कि हम लोग ब्रिटिश साम्राज्यमें अपनी अटल श्रद्धा तथा विश्वास बनाये रखते हैं।

हमारे देशवासियोंके हृदयमें भारतीयोंके प्रति जो अनुदार और उद्धत विचार तथा भाव हैं उसके लिये हम लोगोंको हृदयसे खेद है। यह प्रायः अधिकांश अंग्रेजोंमें देखनेमें आया है। हम लोग भारतीयोंको अपना बराबरीका भाई समझते हैं, कितने भारतीयोंको हम लोग अपना गुरु मानते हैं और हम लोग भारतमें स्वामी न होकर नौकरकी ही हैसियतसे रहना चाहते हैं। हम लोग भारतमें ऐसी शासन प्रणाली देखना चाहते हैं जिस पर भारतीय अंग्रेजोंकी लोलुपता और कुचेष्टाका कोई बुरा असर नहीं पड़ सके तथा अंग्रेजोंकी जातिगत भावनाओंका असर पड़ सके और उसके अनुसार हम लोग अत्यन्त उदारता पूर्ण नीतिके साथ शासन चलाना चाहते हैं। हम लोगोंकी हार्दिक इच्छा है कि भारतके सभी मत तथा सभी फिरकेके नेतागण एकत्रित हों और स्वराज्यक लिये विधान बनावें। जिस किसी बातसे भारतकी अधिकसे अधिक भलाई हो सकती है उसमें हम लोग आपके साथ हैं। हम लोगोंको आपके साथ मेल करके भारतकी शिक्षा आदिकी उन्नति करनी चाहिये। पर इस बातका हम लोगोंको अत्यन्त खेद है कि आप एक नये युगकी स्थापनाके फेरमें पड़े हैं जिनमें आप लोगोंको मिलनेकी शिक्षा न देकर अलग होनेकी शिक्षा दे रहे हैं।

यहां तक तो हम लोगोंने उन बातोंकी चर्चा की है जिनमें हम आपसे सहमत हैं, पर स्पष्टवादिता यह भी चाहती है कि आपके कार्यक्रमकी जिन बातोंसे हम लोगोंका मत नहीं मिलता उन्हें भी

हम लोग स्पष्ट तथा प्रगट कर दें। यों तो आपके पत्रमें अनेक ऐसी छोटी छोटी बातें हैं जिनके लिखनेमें आपने ब्रिटिश जनताके साथ न्याय नहीं किया है फिर भी उनमें तीन प्रधान बातें हैं और इन्हींपर हमलोग कुछ लिखना चाहते हैं। आप आत्मबलको जगाना चाहते हैं और आप उसीपर ज्यादा जोर देते हैं। हम आपके इन भावोंकी श्रद्धा करते हैं और हृदयसे इनकी बढ़ती चाहते हैं और स्वयं प्राप्त करना चाहते हैं। पर आत्मबलपर निर्भर करके भी आपने अपना भाग्य उन लोगोंके साथ कैसे जोड़ा है जो आपके ही शब्दोंमें समय पड़नेपर रक्तपातके लिये तलवार तक उठा सकते हैं? यह बात हमलोगोंकी समझमें नहीं आई।

आप भारतमें राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचार करना चाहते हैं। यह बड़ी ही उत्तम बात है और हम लोग हृदयसे आपकी सराहना करते हैं। पर आप वर्तमान शिक्षालयोंमें भारतीय भाव न भरकर—जिसे आप कलसे ही करना आरम्भ कर दे सकते हैं—बोलपूर सदृश सैकड़ों विद्यालयोंकी स्थापना न करके, जिनमें इन विद्यालयोंसे छात्र निकाल निकालकर भर दिये जायँ, आप इन छात्रोंको ऐसे मार्गसे ले जा रहे हैं और उन्हें ऐसे बालुकामय मैदानमें इकट्ठा कर रहे हैं जहां उनका विकास होना तो दूर रहा उनके मस्तिष्क एकदमसे सूख जायंगे। अर्थात् हमलोग देख रहे हैं कि आप कुछ कालके लिये छात्रोंको शिक्षासे सर्वथा वञ्चित रखना चाहते हैं। क्या आप-यही उचित समझते हैं कि जबतक उत्तम और सर्वतोपूर्ण शिक्षा

प्रणालीकी स्थापना न हो जाय तब तक इन अपूर्ण शिक्षालयोंको भी तोड़ देनेमें भारतका तथा इन नवयुवकोंका कल्याण है ?

आप हिन्दू मुसलमानोंमें मेल कराना चाहते हैं। आप मुसलमानोंकी न्यायोचित मांगोंकी पूर्ति करनेकेलिये अपने मुसलमान भाईयोंका साथ देना चाहते हैं। यह आप बहुत ही उचित काम कर रहे हैं और हमलोग भी आपसे सहमत हैं तथा आपके साथ हैं। पर आपके दलमेंसे कुछ लोगोंकी यह इच्छा है—जिस इच्छाको उन्होंने सरकारके सामने जोरदार शब्दोंमें उपस्थित किया है—कि वे चन्द विदेशी जातियां जो पहले भी तुर्कीके शासनके अधीन रही हैं आज भी उसी शासनके अधीन कर दी जायं जो भार अंग्रेजोंके भारसे कहीं भारी और हानिकर है। क्या इसमें आप किसी तरहकी आपत्ति नहीं देखते। क्या आपको यह कभी भी स्वीकार है कि मध्य एशियाके कुछ जातियोंको दासताकी शृङ्खलामें कसकर आप भारतको स्वतन्त्र कर दें।

हमारे पत्रका सारांश यह है कि आपने अपने पत्रमें जो भाव प्रगट किये हैं उनसे हमलोग एकदमसे सहमत हैं अर्थात् आपके साथ हमलोगोंकी पूर्ण सहानुभूति है। हमलोग इस बातको हृदयसे चाहते हैं कि भारतवर्षको अवश्य स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिये जिससे वह उन वस्तुओंका विकास कर सके जो उसके अन्दर छिपी पड़ी हैं और जो सर्वोत्तम हैं क्योंकि इस विश्वको ऐसी वस्तुओंकी अब भी आवश्यकता है।

हमलोग आपके साथ तथा उन अन्य लोगोंके साथ सहयोग करनेके लिये तैयार हैं जो भारतको अपने सर्वोत्तम ध्येयतक पहुंचनेमें सहायता करते हैं। क्या आप इस बातपर दृढ़ मत हैं कि यदि शिक्षालयोंको चलानेके लिये हमें सरकारसे सहायता मिलती है तो आप हम लोगोंका साथ नहीं देंगे? हमलोगोंको विश्वास है कि आप दूसरे आन्दोलनको भी जन्म दे सकते हैं जो असहयोगसे कहीं पुरजोश हो सकता है।

हमलोगोंने स्पष्टतया उन तीन बातोंकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया है जिन्हें हमलोग आपके भारतोत्थानके मार्गमें बाधक समझते हैं। पर आपके आदर्शोंसे हमलोग पूर्णतया सहमत हैं और जहां तक हो सकेगा हमलोग उसकी सहायता करनेके लिये भी तैयार हैं। और हमलोगोंकी समझमें यही एक उपाय है जिससे हमलोग संसारके सामने यह व्यक्त कर सकेंगे कि हम ब्रिटिश राज्यकी स्वतन्त्र प्रजा हैं।

बंगलोर
नवम्बर १५, १९२०

आपका हितेच्छु
एच. ए. पोपले
जी. ई. फिलिप्स

प्रत्युत्तर

(दिसम्बर १५, १९२०)

मैंने अंग्रेजोंके नाम जो पत्र लिखा था उसका उत्तर मिस्टर पोपले और मिस्टर फिलिपने दिया है। जिस मित्रताके भावसे प्रेरित होकर उन्होंने उस पत्रको लिखा है मैं उसकी हृदयसे प्रशंसा करता हूं। पर हमारे और उनके मतमें आकाश पातालका अन्तर है और उसपर मतैक्य नहीं हो सकता। जबतक मुझे इस बातका विश्वास था कि बुराइयोंके रहते भी ब्रिटिश साम्राज्य संसार और भारतके कल्याणके लिये चेष्टा कर रहा है तबतक मैं उसका साथी बना रहा। पर अब वह विश्वास जाता रहा। ब्रिटिश जातिने पंजाब और खिलाफतके अत्याचारोंका समर्थन किया है। यह बात मैं मानता हूं कि कुछ अंग्रेज ऐसे भी हैं जो इसके विरुद्ध हैं पर एक तो उनकी संख्या नितान्त अल्प है दूसरे उन्होंने विरोध तो अवश्य किया पर केवल विरोध प्रगटकर वे उसी पापाचारमें योग दे रहे हैं अर्थात् आप भी सहायक होनेके पापी बन रहे हैं। और बहुधा ऐसाही देखनेमें आता है कि जब किसी राष्ट्रमें बुराई अधिक रहती है और भलाई कम तब स्वभावतः उसमें लोगोंको फंसानेके लिये अपनी भलाईको ही सामने ला रखता है। यह शैतानकी तर-

कीवें हैं। पर क्या ऐसा करना उचित है और ऐसी अवस्थामें समझदार आदमीको क्या करना चाहिये। इसके प्रतीकारका एकमात्र उपाय यही है कि वह उससे घृणा करने लगे। मैं उन अंग्रेजोंसे प्रार्थना करूंगा, जिन्हें आदर्शपर विश्वास है, कि वे भी असहयोगमें भाग लें। जिस समय अंग्रेजोंके साथ वोअर युद्ध हो रहा था मिस्टर डवल्यू० टी० स्टेडने सदा अंग्रेजोंके पराजय-की प्रार्थना की। मिस हावहाउसने बोअर लोगोंको युद्ध जारी रखनेके लिये उत्साहित किया था। इस हिसाबसे देखें तो यही प्रतीत होता है कि वोअरोंके साथ जो अन्याय किया गया था उसके प्रति भारतके साथ किये गये अन्याय कहीं भीषण हैं। बोअर लोगोंने अपने अधिकारके लिये युद्ध किया और रक्त बहाया। इसलिये यदि हम युद्धके लिये तैयार हैं. यदि रक्त-पात हम कर सकते हैं तब तो हमारे अधिकारकी सुनवाई हो सकती है और संसार भी हमारा आदर कर सकता है।

पर मिस्टर पोपले और फिलिपने इस बातपर एतराज प्रगट किया है कि मैंने उन लोगोंका साथ दिया है जो आवश्यकता पड़नेपर रक्तपातके लिये भी तैयार हो सकते हैं। पर इसमें मैं कोई बुराई नहीं देखता। उनके अधिकार भी उसी तरहके हैं जैसे मेरे हैं। तो क्या किसी अधिकारकी प्राप्तिके लिये अहिंसाका युद्ध चलाकर रक्तपात बन्दकर देना श्रेयस्कर नहीं है। जो लोग भारतीयोंकी माँगोंकी महत्ता समझते हैं वे इस अहिंसात्मक आन्दो-लनमें भारतीयोंका साथ देकर ईश्वरकी आज्ञाका पालन करेंगे।

इनका एक दूसरा एतराज भी है। वह अधिक जोरदार है। यदि मुसलमानोंकी मांगें न्यायपूर्ण नहीं हैं तो उनका साथ देकर मैं अन्याय कर रहा हूं। मुसलमान लोग यह नहीं चाह रहे हैं कि किसी गैरमुसलमान या गैरतुर्की जातिका राज्य स्थापित हो जाय। भारतके मुसलमान भी आत्मनिर्णयके विरोधी नहीं है पर उनका कहना है कि आत्मनिर्णयके नामपर हम मेसोपोटामिया आदि प्रदेशोंका नाश नहीं देख सकते। आर्मेनियां-वालोंकी स्वतन्त्रताकी ओटमें तुर्की और उसके साथी मुसलमानोंको नीचा दिखानेका जो प्रयत्न किया जा रहा है उसके वे घोरविरोधी हैं और उसके प्रतीकारके लिये वे अन्त समय तक लड़ेंगे।

तीसरा एतराज शिक्षा संबन्धी है। मैं उन सभी विद्यालयोंका विरोधी हूं जो सरकारकी सहायतासे चलते हैं। यह मैं जानता हूँ कि किसी समय ये रुपये हमी लोगोंके थे। पर मैं एक प्रश्न पूछता हूं। मान लीजिये कि किसी डाकूने हमें लूट लिया, हमारा धर्म विगाड़ डाला और हमारी इज्जत बरबाद कर दी। वही डाकू पादरियोंको रुपया देता है कि वे इससे हमारी शिक्षा दीक्षाकी व्यवस्था करे। क्या पादरी यह काम धर्मतः उचित समझता है ?

अंग्रेज जाति भारतका द्रव्य चूस रही थी। मैं भी जानता था और अन्य लोग भी जानते थे। उसपर हमने कुछ नहीं कहा। पर पंजाबके अत्याचारोंसे हमारी मर्यादा लुट गई

और खिलाफतके साथ अन्याय करनेसे हमारा धर्म लुट गया। यह दोनों असह्य था। मेरे उपरोक्त शब्द कड़े हैं। पर इससे मुलायम शब्द मेरे भावको व्यक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। यह कहना व्यर्थ है कि सरकारी विद्यालयोंके बहिष्कारसे नवयुवकोंकी शिक्षाका व्यवस्था नहीं रह जायगी और उनका मानसिक विकास रुक जायगा। जहाँतक संभव है राष्ट्रीय विद्यालयोंकी स्थापना बराबर होती जा रही है।

मिस्टर पोपले और मिस्टर फिलिपको भ्रम है कि पञ्जाब तथा खिलाफतके साथ जो अत्याचार और अन्याय किये गये हैं उनको हमारी दृष्टि बहुत अधिक करके समझ रही है अर्थात् हम सच्ची जांच नहीं कर रहे हैं। पर यह बात नहीं है। मैं तो इन मित्रोंसे दावा करके कहता हूं कि भारतमें ब्रिटिश शासनसे यदि कोई लाभ हुआ है तो उसे मुझे बतलाइये। मैं पुनः उस प्रार्थनाको दोहराता हूं। और यदि मुझे विश्वास हो गया कि खिलाफत तथा पञ्जाबके विषयमें मेरी धारणा गलत है तो मैं उसके सुधारनेके लिये तैयार हूं।
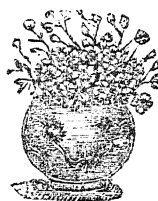
एक सिविलियनका पत्र

(फरवरी २३, १९२१)

अभी हालमें महात्मा गांधीने भारतके अगरेजोंके नाम एक पत्र लिखा था। भारतीय सिविल सर्विसके कर्मचारी मिस्टर फ्रीमेंटल तथा महात्मा गांधीके बीच उसके सम्बन्धमें जो पत्र व्यवहार हुआ है उसे हम नीचे दे देते हैं :—

फ्रीमेण्टल साहबका पत्र।

महात्मा गांधी साहब, आपने गत वर्ष भारतके अंग्रेजोंके नाम जो पत्र लिखा था, उसके पढ़नेका सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ था पर अभी हालमें ही मेरे हाथमें हिन्दीका एक पत्र आया जिसमें उसका छायानुवाद छपा था। मैंने उसी छाया-नुवादको अंशतः पढ़ा है। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि सब घटनाको सामने रख कर क्या कभी आपने विचार किया है? यदि आपने नहीं विचार किया है तो अब विचार कीजिये कि आप उसके अनुसार हमपर क्या प्रभाव डाल सकते हैं?

अगस्त १९१४ तथा नवम्बर १९२० के बीचमें हजारों अङ्ग-रेजोंने युद्धमें केवल न्यायके नाते भाग लिया। इनमें मैं उन अङ्गरेजोंका शुमार नहीं करता जो ब्रिटनकी नौकरीमें थे, या जिन्होंने देशप्रेमसे अभिभूत होकर युद्धमें भाग लिया, या

जिन्होंने केवल संग्रामिक रुचि दिखलानेके हेतु युद्ध किया। इन लोगोंके हृदयोंमें विजयकी लेशमात्र भी आकांक्षा नहीं थी। इस तरहके किसी भी युद्धमें इन लोगोंने भाग न लिया होता, यदि ये लोग उन युद्धोंको अनुचित समझते। पर इन लोगोंने प्रसन्नतासे मृत्युका मुकाबिला किया—केवल इतना ही नहीं क्योंकि इससे तो सब कष्टोंका एक बारगी ही अन्त हो जाता—बल्कि वे लोग आहत होकर विना किसी रक्षा और सहायताके मरुस्थलमें पड़े रहे, जर्मन अफसरोंकी कैदमें पड़कर अनेक तरहकी यातनायें भोगते रहे। कितने तो आहत हुए और पुनः युद्धस्थलमें जाकर लड़े और फिर फिर घायल हुए। जिन लोगोंको उस युद्धसे बच कर लौट आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ वे लोग ६ वर्ष पहले तो चैनके साथ अपनी साधारण जीविका चलाते थे पर आज वेही अनादर पा रहे हैं, बेइज्जती उठा रहे हैं, क्योंकि स्वतन्त्रताकी पुकारपर उन्होंने अपना सब कुछ त्यागकर युद्धमें भाग लिया था। इस तरह जान बूझकर जलती आगमें कूद पड़नेका उनका एकमात्र अभिप्राय यही था कि वे किसी सार्वजनिक सिद्धान्तका प्रतिपादन कर रहे थे। इन लोगोंके मुकाबिलेमें आपने क्या त्याग किया है? आपको और किस प्रकारकी क्षति उठानी पड़ी है कि आप अपनी अवस्थाको सर्व प्रधान रखना चाहते हैं मानों आपने बड़ा त्याग किया है और बड़ी क्षति उठाई है और उसके आधार पर दूसरों पर कटाक्ष करते हैं।

एक प्रधानता आपमें है और उसे मैं स्वीकार करता हूं। पर उसकी उंचाई कितनी है? आपको अलफोन्स डाडेट और आल्प पहाड़की यात्राका वृतान्त अवश्य स्मरण होगा। फ्रांसकी यात्रा करते समय मार्सेलोज और पेरिसके बीच आपने इस पहाड़ीके सिलसिलेको अवश्य देखा होगा। आल्प पहाड़ीपर चढ़नेके लिये उसमें उत्साह था और त्याग था, साथ ही उसकी तैयारी भी पूरी थी। पाहड़पर चढ़नेके लिये जिन साधनों और सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है सभी उसके साथ थे। उसने असीम साहस दिखाया और अपने जानकी परवा न करके वह पहाड़के सिरे तक पहुंच गया। वह इतने ऊंचे पर चढ़ गया कि वहांसे वह अपने नगरकी ठण्ढी सड़क तक देख सकता था। पर यह माउण्ट ब्लैंक नहीं था। इसकी उंचाई उसके दसवें हिस्सेके बराबर भी नहीं थी। ठीक वही अवस्था आपकी है। आपकी दृष्टि जहां तक जा सकती थी उसकी परिधिमें यह सबसे ऊंचा स्थान है और यहां तक आप पहुंच गये हैं। इसके ऊपर चढ़नेके लिये आपको पुनः एक बार नीचे उतरना पड़ेगा। पर आप उसके लिये तैयार नहीं हैं। एक बात और है जिससे आपका सिद्धान्त पृथक प्रतीत होता है। मैं उस भ्रमपूर्ण और छिछले सिद्धान्तके बारेमें बहुत सोचना निरर्थक समझता हूं। न तो इसके पक्षमें इतिहासकी कोई घटना है और न मानव समाजका अनुभव ही इसके अनुकूल है। भला राजनीतिके अन्तरात्माकी प्रेरणा क्या कर सकती है। इस तरहके आशावादसे कब तक

काम चल सकता है। मुझे यह एकदमसे खफ्त मालूम होता है। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि ब्रिटिशका भारतके साथ निम्नलिखित प्रकारसे सम्बन्ध स्थापित हुआ। भारतवालोंने अंग्रेज और फरासीसियोंको बुलाया, व्यवसायके लिये सम्बन्ध स्थापित किया और रक्षाके लिये सैनिकोंको बुलाया। उन्हें विश्वास था कि ब्रिटनसे उन्हें कुछ नया लाभ हो सकता है। इसी प्रलोभनमें पड़कर उन्होंने धीरे धीरे अनेक प्रदेश ब्रिटनको दिये। इस तरह अनेक प्रान्तोंका मालिक बनकर ब्रिटनने अपनी नीति चलाई। इतनी बड़ी घटनाको केवल मजाक नहीं समझ लेना चाहिये कि बस जबानसे कहा और सब कुछ हो गया। इसमें किसी तरहकी कठिनाई नहीं उपस्थित हुई। क्या इन बातोंको इसी आधार पर मान लेना एक तरहकी बेवकूफी नहीं है।

यद्यपि आपके सिद्धान्तोंमें वह बात नहीं है जो देखनेमें तो अति कठिन मालूम होती है पर सिद्धान्तका पूर्णता उसमें रहती है। इस तरहके सिद्धान्तको सदा अनवरत विकास होता रहता है और इससे सदा लाभकी प्रत्याशा रहती है। फिर भी आपका सिद्धान्त नीच होते हुए भी उन लोगोंके सिद्धान्तोंसे श्रेष्ठ है जिनके शस्त्र झूठ, तलवार और बमके गोले हैं। आप अपने सिद्धान्तके दायरेके अन्दर किसी तरहकी हिंसा नहीं होने देना चाहते। इसके लिये हम आपके कृतज्ञ हैं। सचमें आपकी विचित्र आस्था दिखलाई देती है। साधारण तौर पर आदमी यही समझेगा कि आपके हाथमें कोई जादूका ऐसा डण्डा है

जिसके हिलाते ही या छूते ही सारी झूठी माया दूर हो जायगी। पर आपकी इस तरह की बातोंमें आकर यदि कोई आपको सच मान ले तो वह भारी धोखेमें पड़ सकता है। इसके लिये कहीं दूर नहीं जाना होगा। अभी हालमें ही कनाटके ड्यूकके नाम आपने जो खुली चिट्ठी लिखी थी क्या उसमें इस तरहके दो झूठ नहीं थे। यदि समाचार पत्रोंके सम्वाद सच और प्रामाणिक हैं तो आपके विषयमें यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आप तो स्वयं झूठसे बचते हैं पर यदि आपके ही सामने कोई झूठ बोले तो आप इसकी कोई परवा नहीं करते। कच्चीगढ़ीकी घटना आपको भूली नहीं होगी जिस समय उस सार्वजनिक सभामें खिलाफतके स्वयं सेवकने यह वृतान्त सुनाया कि एक अंग्रेज अफसरने किसी पठानको पटककर उसे अतिशय निर्दयता और बेरहमीके साथ मारा तो आपने उसपर विश्वास कर लिया। अंग्रेजोंकी प्रकृतिसे अच्छी तरह परिचित रहकर भी आपने उस स्वयं सेवकको हलाहल झूठ बोलनेके लिये दोषी नहीं ठहराया और न उसे डाटा डपटा बल्कि आपने उसे सच मान लिया और उसका उल्लेख भी कर डाला। ट्रिब्यून पत्रने तो उस झूठी घटनाके लिये क्षमा मांग ली। देखें आप क्या करते हैं। आपको भी क्षमा मांगनी ही होगी। आपकी जिम्मेदारी क्या है? केवल किसी झूठी घटनाका समर्थन करके उस पर मुहर दे देना। पर उसकी क्या वकअत हो सकती है। मुमकिन है आपकी दृष्टिमें उसकी कोई वकअत हो!

पर इस तरहके झूठके लिये खुले तौरसे माफी मांगना आपकी दृष्टिमें सचाईकी हत्या करना है। इसलिये आप तो कभी भी तैयार नहीं हो सकते। कदाचित "दीर्घसूत्रता और अदूरदर्शिता' शब्दका जो अभिप्राय हम लोग ग्रहण करते हैं वह आपकी समझमें आही नहीं सकता। भला यह कब सम्भव है कि स्पष्टवादी आदमी अपने अनुयायियोंको बुरा आचरण करते देखकर उन्हें रोकनेकी चेष्टा नहीं करेगा और अधिक काल तक उन्हें उसी आचरणमें प्रवृत्त रहने देगा। आप यही कर रहे हैं। पर आप तो स्पष्टवादी ही नहीं। क्योंकि यदि आपमें स्पष्टवादिताका लेश भी होता तो आप १६ वर्षसे कम उम्रके छोटे बालकोंको इस प्रकार जबर्दस्ती स्कूल छोड़नेके लिये दबाव डालते देख लोगोंको अवश्य रोकते। पर हम लोगोंको यह आशा कभी नहीं करनी चाहिये कि आप इन बातोंकी परवा या देखरेख करेंगे।

जिस स्थानपर आप हैं वहांसे आप इस स्थानको देख ही नहीं सकते। यद्यपि यह अत्यन्त साफ और सहजमें ही समझमें आ सकता है।

यदि आपने मेरे पत्रके भावको अच्छी तरह समझ लिया है तो आप भलीभांति समझ सकते हैं कि मैं आपको सिद्ध या महात्मा नहीं समझता। इस तरहके आदमीमें किसी तरहके आत्मबलकी उत्कृष्टताको स्वीकार करना पागलपन होगा। आपके पक्षमें कोई कारण नहीं था, आपमें ऐसी कोई बात नहीं थी कि आप अंग्रेजोंके नाम इस तरहका खुला पत्र लिखते। पर

जब आपने पत्र लिख ही दिया तो उसका उत्तर देना मैं अपना हक समझता हूं।

मैं यह नहीं कहता कि आप अपना कदम पीछे हटावें। इसका केवल मात्र यही कारण नहीं है कि यह बेकार होगा, इसका यही कारण नहीं है कि मेरी आन्तरिक अभिलाषा फलवती होगी और संसार आपको सच्ची मूर्ति देख लेगा, इसका यह कारण नहीं है कि मैं जानता हूं कि आपके हृदयमें क्या पक रहा है। आप केवल मौका ढूंढ़ रहे हैं कि आप सरकारके साथ किसी तरह सुलह कर लें जिसे आप शैतानी सरकार कहते हैं। इसका कारण यह है कि आप ठीक मार्गसे चल रहे हैं, और यदि आप उसी पर कुछ दूरतक और चलते रहेंगे तो आपको सब बातें प्रगट हो जायंगी। अभी तक तो केवल मात्र आप ही जानते हैं कि यह सत्य मार्ग किस तरहका है। आपके भाव ठीक हैं। पर उनके साथ जो अयोग्य धारणायें हैं उनका त्याग कर डालना नितान्त आवश्यक है। आप तो सरकारके साथ युद्ध करके उसकी सत्ता स्वीकार करते हैं। हमारी तो यह प्रार्थना है कि आप उसकी सत्ता भी स्वीकार करना छोड़ दें। आपको उचित है कि आप एक कदम और आगे बढ़ जायँ और इस सरकारकी अवज्ञा करें। हम लोगोंमेंसे जो लोग शिक्षाको प्रिय केवल शिक्षाके अभिप्रायसे समझते हैं इस बातको देखकर अतिशय दुःखी हो रहे हैं कि लोग उपाधियोंके प्रलोभनमें पड़कर शिक्षाकी प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। यह सन्ताप और भी बढ़ जाता है यदि हम

लोग यह देखते हैं कि सरकारी नौकरियोंके लिये इसकी ओर इतनी तत्परता दिखाई जा रही है। ऐसे लोग सरकारकी सहायतासे मुक्त स्वतन्त्र शिक्षालयोंको देखकर अतिशय प्रसन्न होंगे। इसके बाद दूसरी बुराई मुकदमेंबाजीमें है। इस बुराईको मैंने उसी समय समझा था जिस समय पहले पहल इस देशमें उतरा। आज बारह वर्षकी बात है। पर इस बातकी प्रसन्नता है कि आपने भी इस बुराईको स्वीकार किया है। यह ठीक ही है। मेरे जिलेमें इसी मुकदमेबाजीके कारण थोड़े ही महीनोंमें दो हत्यायें हो गईं। पर अदालतोंके बहिष्कारके लिये यह भाव होना चाहिये कि इस तरहकी मुकदमेबाजीमें बुराई है न कि इस लिये कि सरकारको इससे आमदनी होती है इसलिये ये सरकारको प्रिय हैं। दूसरी बात गृहशिल्पकी है। स्वराज्यके साथ चरखेको जोड़ना लड़कपन है। पर यदि इसके द्वारा आप अपने देशवासियोंको शारीरिक श्रमकी उपयोगिता बतला सकें, उन्हें इस बातकी शिक्षा दे सकें, कि अपने परिश्रमसे अपने घरको संवारना अधिक उत्तम है तो आप अपने देशका बहुत कुछ उपकार करेंगे। इस प्रकार यदि वे मशीनके बने कपड़ेको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगें तो उनका बड़ा उपकार होगा। पर जो काम आपने अपने सामने रखा है उसमें जाति विद्वेषको कोई स्थान नहीं है। यदि इसे आप सफलता पूर्वक चला सकें, तो इसमें आपको कठिनाई अवश्य उठानी पड़ेगी। पर इससे जो उपकार होगा वह ब्रिटिश शासनके उखाड़ फेंकनेसे कहीं उपयोगी होगा।

आपका—

१२ फरवरी १६२१ — ए० एफ० फ्रीमेण्टल
भारतीय सिविल सर्विस

महात्माजीका उत्तर

महाशय, मुझे आपका पत्र अभी मिला। मैं आपके पत्रका सविस्तर उत्तर नहीं देना चाहता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करेंगे।

आपने मेरे उस पत्रको अच्छी तरह नहीं पढ़ा था। आपने उसके अनुवादको भी नहीं पढ़ा था। केवल छायानुवादके कुछ अंशको पढ़ लिया था। क्या इतनी जानकारीके ही आधारपर आपने इस पत्रकी आलोचना करना युक्तियुक्त और संगत समझा? यदि आप मेरे पत्रको आदिसे लेकर अन्ततक पढ़ गये होते तो आपको विदित हो जाता कि मैंने सरकारकी या अंग्रेज जातिकी जो सेवायें की हैं उनकी चर्चा मैंने अपने ऊपर उठायी यातनाओंके वर्णनके लिये नहीं किया है। फिर भला यह दिखलानेके लिये कि ये सेवायें निस्वार्थ हैं मैं ऐसा कभी कैसे करता। उनके उल्लेख करनेका एकमात्र अभिप्राय यही था कि मैं सर्वसाधारणको यह बात दिखला देना चाहता था कि अनुकूल अवस्था न होने पर भी अन्त समय तक मैं ब्रिटिश सरकारका भक्त बना रहा। मेरी सेवायें निस्वार्थ नहीं थीं क्योंकि उन सेवाओंके द्वारा मैं अपने देशवासियोंका उपकार करना चाहता था, उन्हें स्वतन्त्रता दिलवानेमें सहायता करना चाहता था। इसलिये ब्रिटिश जातिकी वीरता तथा पौरुषका

वर्णन करना व्यर्थ था। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि ब्रिटिश लोग बड़े ही साहसी और वीर होते हैं और सहनशीलता भी उनमें हद दर्जे की होती है पर राष्ट्रीय निस्वार्थता उनमें जरा भी नहीं है। न तो मुझे तब ही विश्वास था और न आज संसार ही इस बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार है कि यह युद्ध न्यायके लिये लड़ा गया था। ब्रिटनने निःस्वार्थ होकर अपनी सन्तानका रक्त नहीं बहाया। आप लोग जर्मनीको पददलित करना चाहते थे और उसमें सफल प्रयत्न भी हुए। अंग्रेज जाति जर्मनोंको जितना पतित और नीच बतलाती है उतने पतित और नीच वे नहीं हैं और यदि वे विजयी हो गये होते तो आप लोगोंकी धारणाके अनुसार आज संसारका अन्त भी न हो गया होता।

आप सोचते हैं कि हम इस समय किसी ऊंचे टीलेपर खड़े हैं। पर इसका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मेरी समझमें तो इस समय मैं एक ऐसे ज्वालामुखीके ऊपर खड़ा हूं जो अभी फटने चाहता है। पर मैं अपनी शक्तिसे उसे ठण्ढा तथा पोढ़ बनानेकी चेष्टामें लगा हूं। यह संभव है कि मेरी सफलता होनेके पहले ही वह फट जाय क्योंकि अनेक सुधारकोंके सम्बन्धमें वैसा ही हुआ है।

मेरा आदर्श आपको खलता है। यदि आपने मेरे लेखोंको पढ़नेका कष्ट उठाया होता तो आपको विदित हो जाता कि मेरे सिद्धान्त पूर्णरूपसे व्यवहारिक हैं।

आपने लिखा है कि मैं हृदयसे (तहमें) सहयोगी हूं। मैं इसे स्वीकार करता हूँ। तीस वर्षतक जो व्यक्ति ब्रिटनका कट्टर भक्त रहा है वह सहयोगीके सिवा और क्या हो सकता है। मैं प्रत्येक अवसरकी प्रतीक्षामें हूं जब कि मैं इस सरकारके साथ सुलह कर सकूं। पर मैं आपको पक्का विश्वास दिलाता हूं कि मैं तबतक किसी तरहसे भी सहयोग करनेके लिये तैयार नहीं हूं जबतक खिलाफतका प्रश्न ठीक तरहसे नहीं हल हो जाता, जबतक मुसलमानोंका चित्त नहीं शान्त हो जाता, जबतक पञ्जाबके अत्याचारोंके लिये काफी पश्चात्ताप नहीं प्रगट कर दिया जाता, और जबतक अंग्रेज जातिके हृदयसे यह भाव नहीं दूर हो जाता कि हम भारतके शासक और अभिभावक हैं। भारत अपने बीच अंग्रेजोंका सहर्ष स्वागत करता है पर मित्रकी हैसियतसे, साथी सङ्गीकी हैसियतसे, बराबरीकी हैसियतसे। पर यदि वे भारतको अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये लूटना चाहते हैं तो वे हम लोगोंका सहयोग नहीं पा सकते।

आपने मुझ पर सत्यसे विचलित होनेका दोषारोपण किया है। पर इसमें आपका दोष नहीं है। केवल आपकी अनजानकारीका दोष है। आपका यह कहना सच है कि मैंने कच्चीगढ़ीकी घटनापर पूर्ण विश्वास कर लिया था। पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं था क्योंकि जिस व्यक्तिने मुझसे उस घटनाका वर्णन किया था उसने शपथपूर्वक सब बातें

कही थीं। पर ज्योंही मुझे उसकी झुठाईका पता लगा मैंने अपने हस्ताक्षरसे उसे प्रकाशित किया। आप यङ्ग इण्डियाकी फाइल उठाकर देखें तो आपको मालूम हो जायगा। अन्तमें मेरा निवेदन है कि आप असहयोग आन्दोलनको पढ़ें और समझें। आप देखें कि यह अंग्रेजोंके खिलाफ नहीं उठाया गया है। यह धार्मिक आन्दोलन है और पवित्रताका आंदोलन है। इस आन्दोलनका जन्म बेईमानी, अन्याय, झूठ तथा अनाचारको दबाने तथा भारतको स्वराज्य दिलानेके लिये किया गया है। आप इसे स्वीकार करेंगे कि अविश्वास और भयके स्थानपर विश्वास और निर्भयताकी स्थापना करना ठीक है।

यह आन्दोलन इसी तरहकी असुखकर अवस्थाका अन्त करनेके लिये उठाया गया है। और इसीलिये इस उद्योगमें मैं आपका सहयोग चाहता हूं।

भवदीय—
मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

——*——

असहयोगका विरोध।

(अगस्त ४, १९२०)

जनताको असहयोगके मार्गसे निवारण करनेके लिये सर नारायण चन्द्रावर्कर आदि सज्जनोंने अपने हस्ताक्षरसे जो सूचना पत्र निकाला है उसे मैंने बड़े गौरसे पढ़ा है। मुझे आशा थी कि अपना मत प्रतिपादन करनेके लिये ये महाशय लोग असहयोगके विरुद्ध कुछ भारतीय बातें लिखेंगे। पर सूचनापत्र पढ़कर मुझे खेदमात्र हुआ। सिवा धर्म और इतिहासके तोड़ मड़ोरसे भ्रमात्मक भाव उत्पन्न करनेके उनमें कुछ नहीं है। सूचना पत्रमें लिखा है,—"हमारी धार्म्मिक अवस्था असहयोगके प्रतिकूल मत देती है और हमारी मातृभूमिकी परम्परा भी यही बात बतलाती है। इतना ही क्यों जिस किसी धर्मसे संसारका कल्याण और उद्धार हुआ है सभी धर्म यही विरोधी मत प्रगट करते हैं।" इसके विरुद्ध मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि भगवद्गीता असहयोग मन्त्रसे भरा है। इसमें अन्धकारकी शक्तिसे असहयोग करनेकी दीक्षा दी गई है। उसका शब्दार्थ माने यह अवश्य होता है कि क्षत्रिय अर्जुनको न्याययुक्त युद्धमें भाग लेनेके लिये तथा रक्तपात करनेके लिये प्रेरित किया गया था और बेईमान कौरवोंको दण्ड देनेके लिये

खड़ा किया गया था। तुलसीदासजीकी रामायणमें भी यही बात है। उन्होंने सन्तोंको सलाह दी है कि असन्तोंसे घृणा करें। यहूदियोंका धर्म ग्रन्थ जेन्द अवेस्ता क्या है। उसमें भी तो आमुंज और अब्राहमके अनवरत संग्रामका वर्णन है और इन दोनोंमें सुलह या सन्धि नहीं होती। जिन लोगोंकी यह धारणा है कि बाइबिल असहयोगसे परहेज करती है उसमें असहयोगका कहीं नाम निशान नहीं है वे ईसामसीह और बाइबिल धर्मको नहीं समझ सके हैं। इसामसीह असहयोगियोंमें सर्वप्रधान हैं। विना किसी तरहका आराम लिये हुए उन्होंने सदूकीज और फरीसाज़का विरोध किया और सत्यके प्रचारके लिये विना सोच विचारके उन्होंने पुत्रोंको पिताओंसे अलग कर लिया। इस्लाम धर्मके नबी मुहम्मद साहबने क्या किया? जब तक उन्होंने देखा कि प्राण जानेका भय नहीं है उन्होंने पूर्ण साहसके साथ अनवरत परिश्रमसे मक्कावालोंका सामना और विरोध किया और जब उन्होंने देखा कि यहां रहनेसे हमारे और हमारे अनुयायियोंकी व्यर्थ जानें जायंगी तो वे मक्काको त्यागकर मदीना भाग गये और जब उन्होंने देखा कि हमारी शक्ति इतनी प्रबल हो गई है कि हम अपने शत्रुओंसे खुले मैदानमें शस्त्र धारण करके लड़ सकते हैं तो वे लौट आये। प्रायः सभी धर्म ग्रन्थोंमें यह बात पायी जायगी। जैसे उन्होंने न्यायप्रिय तथा धार्मिक जनोंके साथ सहयोग करनेकी मन्त्रणा दी है उसी तरह अन्यायियों तथा अधार्मिकोंके साथ असहयोग करनेकी मन्त्रणा दी है। कोई

कोई धर्म तो इससे भी आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने तो यहां तक कह डाला है कि यदि असहयोगसे काम न चले तो बुराईके सामने सिर झुकानेसे बचनेके लिये तलवार उठा लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। उपरोक्त सूचना पत्रमें जिस हिन्दू धर्मकी चर्चा की गई है उसमें असहयोगकी बातें भरी हैं और असहयोगियोंका कर्तव्य भी पूर्णतः बतलाया गया है। प्रह्लादने अपने पितासे असहयोग किया था, मीराबाईने अपने पतिसे और विभीषणने अपने भाईसे।

इतना तो हुआ धार्मिक प्रभावके बारेमें। अब व्यवहारिक दृष्टिसे लिखा गया है कि राष्ट्रोंके इतिहासको उठाकर देखनेसे यही विदित होता है कि जब कभी असहयोग अस्त्रका प्रयोग किया गया तो इसकी कभी भी सफलता नहीं हुई और न इससे किसी तरहका लाभ हुआ। पर इसके लिये हमें दूर नहीं जाना होगा। दक्षिण अफ्रिकाके जेनरल बोथाका उदाहरण ही हमारे पक्षमें काफी प्रमाण है। लार्ड मिलनरने अफ्रिकन कौंसिलोंको सुधारका जो रूप दिया और जिसे देकर उन्होंने अफ्रिकावालोंको सन्तुष्ट करना चाहा जेनरल बोथाने उसका बहिष्कार किया। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकारको सिर झुकाना पड़ा और सम्पूर्ण शासन प्रणालीको अफ्रिकावालोंके अनुकूल बनाना पड़ा। रूसकी दुखीबर्स जातियोंका इतिहास भी यही बतलाता है। उनकी संख्या नितान्त कम थी। पर उन्होंने असहयोग किया। उनकी दृढ़तासे संसारके सभी सभ्य राष्ट्र चकित हो गये और कनाडाने उन्हें अपने यहां बुलाकर स्थान दिया जहां वे

आज दिन फूल और फल रहे हैं। भारतवर्षसे भी अनेकों ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जहां जमींदारों अथवा तालुकदारों-की ज्यादतीसे घबराकर प्रजाने असहयोग किया और अन्तमें उन जमींदारों और ताल्लुकदारोंको उनके सामने सिर झुकाना पड़ा। इतिहासमें तो ऐसे उदाहरण कहीं नहीं मिलते जहां पूरी तरहसे सुव्यवस्थाके साथ असहयोग किया गया हो और वह सफल न हुआ हो।

यहां तक तो हमने रक्तपातरहित शान्तिमय असहयोगके उदाहरण इतिहासके आधारपर दिये हैं। इसके अतिरिक्त रक्त-पात सहित भी अनेक असहयोग हुए हैं। इतिहासमें उनके भी अनेक उदाहरण पड़े हैं। पर मैं इस बातको विना संकोचके स्वीकार कर सकता हूं कि हिंसायुक्त असहयोगकी असफलताके भी अनेकों उदाहरण पड़े हैं और इस बातकी जानकारीके कारण ही मैंने देशके सामने शान्तिमय अहिंसात्मक असहयोगका कार्यक्रम रखा है। यदि इस कार्यक्रमको पूरी तरह चलाया गया तो इसमें सफलता निर्विवाद है पर यदि इसमें सफलता न भी मिली तो इससे किसी तरहकी क्षति होनेकी सम्भावना नहीं है। मान लीजिये कि इस असह-योग व्रतको स्वीकार करके एक व्यक्तिने भी यदि असहयोग किया और सरकारी नौकरीका त्याग किया तो केवलमात्र जीविका त्याग देनेके कारण वह किसी तरह नुकसानमें न रहेगा। वह नफेमें ही रहेगा। यही इस असहयोग व्रतका धार्मिक अंग

है। यदि इसका राजनैतिक प्रभाव देखना है तो इसके लिये अनुयायियोंकी आवश्यकता है। इसलिये असहयोग व्रतमें मुझे किसी तरहका खटका नहीं दिखाई देता। यदि कहींसे आशंका है तो जनताके उत्तेजित हो जानेपर हिंसा कर बैठने की। पर केवल आशंकामात्र है। इसलिये समस्त राष्ट्रको नपुंसक बनानेसे हिंसाकी संभावनाका सामना करना श्रेयस्कर और उचित है।

असहयोगका धार्मिक तत्व

(अगस्त २५, १९२०)

सर नारायण चन्द्रावर्कर सदृश विद्वान और पण्डितप्रवरके साथ वादविवाद करनेमें मुझे हार्दिक खेद है। पर क्या करूं मेरी भी लाचारी है। मैं असहयोगका जन्मदाता हूं। इसीलिये मैं विवश हो जाता हूं कि मैं इसके समर्थनमें अपने प्रमाणोंको पेश करूं और गण्यमान पुरुषोंसे विरोध करूं जिनके प्रति मेरे हृदयमें असीम श्रद्धा है। जिस समय मैं मलाबारमें भ्रमण कर रहा था मुझे सर नारायणका उत्तर मिला जो उन्होंने मेरे उस पत्रके उत्तरमें लिखा था जिसे मैंने उनके बम्बईके सूचनापत्रकी आलोचनामें लिखा था। मैं इस पत्रको आद्यन्त पढ़ गया। पर

अन्तमें मुझे खेद हुआ कि इसमें ऐसी कोई बात नहीं थी जिससे मुझमें परिवर्तन हो। उनके पत्रसे जो अभिप्राय मैं निकाल सका उससे मुझे यही विदित हुआ कि गीता, बाइबिल तथा कुरानको हम दोनों भिन्न भिन्न दृष्टिसे पढ़ते हैं या भिन्न भिन्न अर्थ लगाते हैं। उनके पत्रसे प्रगट होता है कि अहिंसा, राजनीति और धर्म शब्द को जिस अभिप्रायमें मैं लेता हूं वे नहीं लेते। मैं इस पत्रमें यही दिखलानेकी चेष्टा करूंगा कि भिन्न धर्मोंको पढ़ कर मैंने क्या भाव ग्रहण किया तथा भिन्न शब्दोंके क्या अभिप्राय हो सकते हैं।

कुछ लिखनेके पूर्व मैं सर नारायणको इस बातका विश्वास दिला देना चाहता हूं कि अहिंसाके विषयमें मेरा मत जरा भी नहीं बदला है। जिस अर्थ और भावमें मैं अहिंसा शब्दको पहले ग्रहण करता था, उसीमें अब भी ग्रहण करता हूं। मेरी धारणा है कि जब ईश्वरने मनुष्यको निमार्ण करनेकी, बनानेकी शक्ति नहीं दी है तो उसे छोटेसे छोटे जीवके नाशका अधिकार कहांसे हो सकता है। जो महापुरुष सबका निर्माता है, जो प्राण दान कर सकता है, उसीको मारने और उस प्राणके संहारका भी अधिकार है। अहिंसा शब्दका मेरी दृष्टिमें यह अर्थ निकलता है कि केवल घृणाके भावसे दूर रहनाही अहिंसा नहीं है बल्कि अहिंसा शब्दके पूरे मानेको चरितार्थ करनेके लिये हमें प्रेमका प्रसार करना चाहिये और अपने साथ बुराई और पापाचरण करनेवालेके साथ भी नेकी

और दयाका वर्ताव करना चाहिये। पर इसके माने यह नहीं है कि बुराई करनेवालेके बुरे आचरणमें हम उसकी सहायता करें या उसकी बुराईको चुपचाप बरदाश्त करते जायं। बल्कि इसके प्रतिकूल अहिंसाजनित प्रेम तो यही कहता है कि आपको पापीके साथ सहयोग नहीं करना चाहिये, उसके साथसे सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये, यद्यपि इससे उसको हानि पहुंचे या किसी तरहका शारीरिक कष्ट हो। उदाहरणार्थ यदि मेरा पुत्र पापका जीवन व्यतीत करता है तो मैं उसकी सहायता नहीं करूंगा क्योंकि ऐसा करनेसे मैं भी उसके पापाचरणको बढ़ा रहा हूं। यदि मुझे मेरे पुत्रसे सच्ची सहानुभूति है, असल प्रेम है तो मुझे यही उचित है कि मैं उसके साथसे हर तरहकी सहानुभूति हटा लूं। उसके साथ तर्क कर लूं यद्यपि ऐसा करनेसे उसकी जानपर आ बीते। पर इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। और जब वह अपने इस पापाचरणके लिये पश्चात्ताप करता है, खेद प्रगट करता है तो उसे फिर अपनी छातीसे लगा लेना चाहिये। यह भी अहिंसाजनक प्रेमकी परिभाषासे सिद्ध है। पर किसी तरहके बल प्रयोगसे दबाव डालकर मुझे अपने पुत्रको भी नहीं हटाना चाहिये। जहां तक मैं समझ सका हूं 'फजूल खर्च बेटे' वाली कहानीसे यही शिक्षा निकलती है।

असहयोग निष्क्रिय नहीं है। इसमें कार्यदक्षता है। बलिक इसकी कार्यदक्षता पशुबल या हिंसाके परिश्रमसे कहीं

कड़ी है। असहयोगके लिये निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम देना भ्रमात्मक है। मैं जिस अभिप्रायमें असहयोग शब्दका प्रयोग करता हूं उसमें इसको अहिंसात्मक होना होगा अर्थात् न तो इसमें प्रतिहिंसाको स्थान है, न बदलेकी गुंजायश है, न मन-मैल करनेकी गुंजायश है और न घृणाकी गुंजायश है। इससे यही परिणाम निकलता है कि जिस जेनरल डायरने निर्दोषोंकी हत्या की उसके साथ हाथ मिलाकर मैं भी उसी तरहका पाप कर रहा हूं। पर मान लीजिये कि वही जेनरल डायर कल बीमार पड़ा कराह रहा है और मृत्युसे अन्तिम संग्राम कर रहा है और सेवा शुश्रूषा करके मैंने उसे जिला दिया। ऐसी अवस्थामें मैं असहयोगकी क्षमादान और प्रेमकी शक्तिको प्रगट कर रहा हूं। पर इसके माने सहयोग नहीं है। इस शब्दके इस तरहके प्रयोगमें मेरा सर नारायण चन्द्रवर्करसे मतभेद है। यदि कोई सरकार पापाचरणमें प्रवृत्त है और यदि मैं समझता हूं कि उस सरकारके साथ सहयोग करनेसे मैं उसके पापाचरणसे उसको निवारण कर सकूंगा तब मैं एक नहीं हजार बार उसके साथ सहयोग करनेके लिये तैयार हूं। पर यदि मैं देखता हूं कि उसे उस मार्गसे नहीं लौटा सकता बल्कि मेरे सहयोगसे उसके पापाचरणकी मात्रा बढ़ती जायगी तो मैं उसके साथ सहयोग नहीं कर सकता। इसी तरह यदि उसे पापमें प्रवृत्त देखकर भी मैंने उसकी उपाधि धारण की, या प्रदत्त

उपाधि रखी, उसकी किसी तरहसे सहायता की, उसके अदालतोंमें गया या उसके स्कूलमें अपने लड़कोंको भेजा, तो जो हाथ जालियांवाला बागमें बेगुनाहोंके रक्तसे रङ्गे गये है उन हाथोंसे मोती जवाहिरका पुरस्कार भी मेरे लिये भीख मांगनेकी टोकरीसे बुरा है। जिस सरकारने हमारे सात करोड़ मुसलमान भाइयोंके धार्म्मिक भावों पर भीषण आघात किया है उसके मुंहसे मीठे मोठे शब्दोंके सुननेसे तो अच्छा वही होगा कि उसके हाथों मुझे कड़ीसे कड़ी सजा मिले।

इसी प्रकार गीताका जो अभिप्राय हम लेते हैं वह सर नारायणके अर्थसे एकदम भिन्न प्रतीत होता है। मैं इस बातको नहीं स्वीकार करता कि गीतामें कहीं भी यह उपदेश दिया गया है कि अच्छे कामको सफल या चरितार्थ करनेके लिये मनुष्यको रक्तपात भी करना चाहिये। गीतामें प्रधान वर्णन हमारी अन्तरात्माकी पाप और पुण्य वृत्तियोंके युद्धका है। महापुरुष श्रीकृष्णचन्द्रने इसके साथ ऐतिहासिक घटनाको जोड़कर केवल यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि कर्त्तव्य पालनमें मनुष्यको अपने प्राणोंतककी परवा नहीं करनी चाहिये। गीतामें इस बातको प्रधान शिक्षा दी गई है कि मनुष्यको परिणामकी परवा न करके अपना कर्तव्य कर्म करते रहना चाहिये, क्योंकि हम मनुष्य देहधारी हैं, इससे हमारी शक्ति परिमित है। इस परिमित शक्तिद्वारा हम अधिकसे अधिक अपने कामोंकी ही देखरेख तथा नियन्त्रण कर सकते हैं। गीतामें प्रकाश और

अन्धकारमय जीवन (हिंसा और अहिंसा) का विस्तृत विवरण दिया गया है और स्पष्ट बतलाया गया है कि इन दोनोंमें किसी प्रकारकी परस्पर समता नहीं है।

जहांतक मेरी बुद्धि जा सकती है मैंने निरूपण करके देखा है तो मुझे यही प्रतीत हुआ है कि ईसा राजनैतिक पुरुषोंमें सबसे प्रधान था। उसकी नीति सदासे यही रही, "जैसाको तैसा"। उसने शैजनके साथ वही व्यवहार किया जो उसके योग्य था। उसने उससे कभी भी घृणा नहीं की पर साथ ही उसके पापाचारका कभी साथी भी नहीं बना। उस समयकी राजनीतिके अनुसार वह प्रजाका कल्याण करना चाहता था और उसकी सफलताके लिये वह प्रजाको इस बातकी शिक्षा देता फिरता था कि पुरोहितों और धर्माध्यक्षोंकी चिकनी चुपड़ी बातोंमें आकर भ्रममें मत पड़ जाओ। उस समय नागरिक जीवनके निर्माण और संगठनका अधिकार इन्हींके हाथमें था। इस समय शासन प्रणालीकी व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उसका असर हमारे जीवनके प्रत्येक अंगपर पड़ता है। इसके कारण हमारी स्थिति तक डावां डोल रहती है। इसलिये यदि हम राष्ट्रका कल्याण करना चाहते हैं, तो धर्मके नामपर हमें सरकारकी कार्रवाइयोंमें भाग लेना चाहिये, और उनपर सदाचारिक प्रभाव डालकर उन्हें सदाचारिक नियमोंके अनुसार शासन करनेकेलिये मजबूर करना चाहिये। जेनरल डायर बूचड़पनेका काम करके लोगोंके मन तथा आचरण पर असत्

प्रभाव डालना चाहता था। पर जो लोग असहयोग प्रचारमें लगे हैं, जिन्होंने इस मन्त्रमें दीक्षा ली है वे आत्मत्याग, आत्मबलि, तथा आत्मपवित्रतासे सदाचारिक असर डालना चाहते हैं। मुझे यह पढ़कर विस्मय हुआ कि सर नारायणने जेनरल डायरको हत्याकी बातोंकी तुलना असहयोगसे की है और दोनोंको समान रूप दिया है। मैंने उनके अभिप्रायको समझनेके लिये पूरी चेष्टा की पर मुझे खेद है कि मैं उनके अभिप्रायको साफ साफ नहीं समझ सका।

——:※:——

धर्माधिकारियोंका कर्तव्य

(अगस्त १८, १९२०)

प्राचीन भारतमें अच्छे शासनका प्रमाण था राजाका आत्मबल तथा निर्भीक धर्माध्यक्षोंकी देखरेख। धर्माधिकारी प्रजाके प्रतिनिधि और संरक्षक होते थे जहां धर्माधिकारियों द्वारा शासनप्रणाली नियन्त्रित रही है। उस समयके धर्माधिकारियोंके निर्भीक और न्याययुक्त निर्णयसे वर्तमान सरकारकी नीतिकी तुलना करनी चाहिये। इस सरकारमें मर्यादाका (Prestige) भ्रमात्मक। भाव इस प्रकार भर गया है कि वह पंजाबके

अत्याचारोंके संबन्धमें समस्त राष्ट्रकी मांगोंकी अवहेलना कर रही है।

३९० ईस्वीमें पूर्वीय साम्राज्योंका राजा थियोडोसस था। थेसिलोनिकासे उसे समाचार मिला कि वहांकी प्रजाने उसके किसी कर्मचारीको मार डाला है। क्रोधसे वह अन्धा हो गया, उसने जांच करना भी निरर्थक समझा। एकदमसे आज्ञा दे बैठा कि इस कर्मचारीकी हत्याका बदला रक्तपातसे लिया जाय। उसके कर्मचारियोंने धोखा देकर प्रजाको तमाशामें बुलाया और वहां विना किसी विचारके दोषी और निर्दोष सबकी हत्या कर डाली। इस नृशंस हत्याकाण्डका समाचार मिलनके विशप, अम्ब्राजके कानोंतक पहुंचा। इससे उसे इतनी वेदना और कष्ट हुआ कि शोक तथा क्रोधके मारे उसने मठ छोड़ दिया और गांवमें जाकर रहने लगा और थियोडोससका मुंह देखना तक नहीं चाहा। पर पीछे उसे विदित हुआ कि यदि मैं इस तरह चुप होकर बैठ रहूंगा तो मुझे भी पाप पड़ेगा कि मैंने मौन धारणकर राजाके पापाचारमें सहायता की। इससे उसने उसके पास एक व्यक्तिगत पत्र लिखा और उसमें हत्याकी भीषणता तथा बर्बरताका पूरी तरहसे वर्णन किया। इससे सम्राटको पश्चात्ताप हुआ और सम्राटने निश्चय किया कि उसके प्रतिशोधके लिये जनताको चुपचाप हरजाना दे दिया जाय। पर जब विशप सम्राटसे मिला और सम्राटने बातचीतमें उससे अपनी इच्छा प्रगट की तो उसने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि पाप आपने

खुलो तौरपर किया है उसका प्रायश्चित्त इस तरहसे गुप्त हरजाना देनेसे नहीं हो सकता और न इससे ईश्वरको ही शान्ति मिल सकती है। अन्तमें थियोडोससने बिशपको उन कड़ी शर्तोंको स्वीकार की और उसने राजपदके सभी चिह्न उतार दिये तथा अफसोसके साथ अपने पापोंके लिये प्रार्थना मांगी। इस घटनाका उल्लेख करके प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता गिबनने ठीक ही लिखा है :—"इस घटनासे राजाओंको शिक्षा लेनी चाहिये कि यद्यपि मनुष्यकी शक्तिके ऊपर उनका अधिकार है तद्यपि ईश्वर उनके कामोंकी देखरेख करता है। इसलिये राजाओंको धर्मके मार्गका पूर्णतया अनुसरण करना चाहिये।"

इस घटनासे केवलमात्र राजाके कर्तव्यका निर्देश ही नहीं हो जाता बल्कि इससे यह भी प्रगट होता है कि साहसी प्रजा राजाके क्रूर अत्याचारोंका विरोध किस प्रकार कर सकती है। बिशप अम्बोजने थियोडोससको धर्म मन्दिरमें तबतक आनेकी आज्ञा नहीं दी जबतक अपने पापोंके लिये वह प्रायश्चित्त न कर ले। इस तरहके अनेक उदाहरण यूरोपीय इतिहासमें पड़े हैं जिनसे प्रगट होता है कि अवसर पड़ने पर ईसाईयोंने भी न्याय करानेके लिये राजाके साथ किस तरह असहयोग किया था।

यदि सरकार अत्याचार करती ही जाती है तो प्रजाका कर्तव्य स्पष्ट है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या ईसाई हो। भिन्न भिन्न देशोंमें, भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न भिन्न मतवालोंने इस कर्तव्यको भिन्न भिन्न प्रकारसे पूरा किया है। यूरोप तथा

भारतवर्षमें इस कर्तव्यका पालन उस जमानेमें अति कठिन था जब यहां राजाओंका राज्य था। पर वर्तमान युगकी शासनप्रणाली-में यह इतना कठिन नहीं रह गया है। पर उन्नत आत्मा किसी भी अवस्थामें दबना नहीं जानती। जब उसने एक बार भी अपना कर्तव्य साफ देख लिया। महरठोंके इतिहासमें भी इसका एक प्रमाण मिलता है।

नारायणराव पेशवा मारा गया। लोगोंको शक हुआ कि इस पाप कर्ममें रघुनाथरावका हाथ है क्योंकि यही उसका एक-मात्र चचा उसका उत्तराधिकारी था। पर रामशास्त्री आदि मन्त्रियोंने यह स्थिर किया कि जबतक रघुनाथरावके पक्षमें थोड़े भी प्रमाण मिलें उसके हकका प्रतिपादन करना उचित है। पर जब रामशास्त्रीको स्वयं रघुनाथराव द्वारा यह बात मालूम हुई कि उसने अपने भतीजेकी हत्यामें योगदान किया है तो उन्होंने रघुनाथरावसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दियाः—"न तो मैं तुम्हारी नौकरी चाहता हूं और न मैं पूना शहरमें कदम रखूंगा, जबतक शासनका भार तुम्हारे हाथोंमें रहेगा।" मिस्टर ग्राण्ट डफने लिखा है कि उसने अपना वचन अन्ततक निबाहा और शहर छोड़कर गांवमें रहने लगा।

रामशास्त्रीके समान व्यक्ति ही राजाको असभ्यसे सभ्य बना सकते हैं और अपने पदकी मर्यादाका पालन कर सकते हैं।

कुछ एतराजोंका उत्तर

(अगस्त १८, १९२०)

मद्रासका स्वदेशमित्रम् तामिलभाषाके दैनिकपत्रोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली है। उसके पढ़नेवाले भी बहुत अधिक हैं। इसलिये उस पत्रमें जो बातें प्रकाशित होती हैं उनका सम्मान करना चाहिये। इस पत्रके सम्पादकने असहयोगके मार्गमें कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां बतलाई हैं। इसलिये मैं अपनी योग्यताके अनुसार उन एतराजोंका उत्तर दूंगा।

सम्पादक महोदयने लिखा है कि मैंने असहयोग आन्दोलनके अन्तिम दो कार्यक्रमको छोड़ दिया है। न जाने यह सूचना उन्हें कहांसे मिली। उनके सम्बन्धमें मैंने केवल इतना ही कहा था कि उनका लक्ष्य दूर है और आज भी मेरा वही मत है। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि इसके प्रत्येक कार्यक्रममें बाधा है। पर अन्तिम दो कार्यक्रम भीषण विघ्नबाधाओंसे परिवेष्ठित हैं और उनमेंसे अन्तिम तो अतिशय कण्टकाकीर्ण है। पर प्रत्येक कार्यक्रम इसी हिसाबसे रखा गया है जिससे कमसे कम खतरा उठाना पड़े। अन्तिम दोनों कार्यक्रममें तबतक हाथ नहीं लगाया जायगा जबतक कमेटीके सदस्योंको इस बातका पक्का विश्वास न हो जाय कि जनता उनके अधिकारमें इतना हो गई

है कि यदि सैनिक नौकरीसे स्तीफा दे दें या प्रजा मालगुजारी देना बन्द कर दे तो किसी तरहकी हिंसाकी प्रवृत्ति नहीं दिखलाई जायगी। मेरा यह पक्का विश्वास है कि जनताको हम लोग इसके लिये अवश्य तैयार कर सकते हैं। जिस दिन जनताको इस बातका विश्वास हो जायगा कि उद्धत सरकारका सिर नीचा करनेके लिये हिंसा सर्वथा अनावश्यक है और यह काम शान्तिमय असहयोग द्वारा ही सफल हो सकता है उसी समयसे वे विरोध प्रगट करनेके लिये भी हिंसाका भाव नहीं प्रदर्शित करेंगे। सच बात यह है कि अभी तक हम लोगोंने दत्तचित्त होकर जनतासे काम नहीं लिया है और न तालीमकी शिक्षा दी है। यदि किसी दिन हमें स्वराज्यकी प्राप्ति करना है, यदि हमें स्वतन्त्र राष्ट्र होना है तो यह आवश्यक है कि हम लोग जनताको इसकी तालीम दें। मेरी समझमें वर्तमान समय बहुत ही उपयुक्त है। पंजाबके साथ जो अत्याचार किये गये हैं उन्हें प्रत्येक भारतवासी अपने ऊपर किये गये अत्याचारके बराबर समझता है। खिलाफतके साथ जो अन्याय किया गया है उसकी वेदना प्रत्येक मुसलमानके हृदयमें हो रही है। इसलिये इस बातकी आशा की जा सकती है कि यदि यत्न किया जाय तो जनता इस समय संगठित होकर चलनेके लिये तैयार है।

सम्पादकने लिखा है कि यदि जनताके साथ देनेका प्रश्न है तो जनता मालगुजारी न देनेके लिये सबसे पहले तैयार हो

सकती है। मैं भी इस बातको स्वीकार करता हूं। पर जबतक जनता इस बातके लिये तैयार न हो जाय कि सम्पत्तिके विक-जाने तथा नीलाम हो जानेपर भी वह हिंसाके लिये तैयार न होगी तबतक यह हो नहीं सकता है। पर जबतक ये बातें नहीं हो जातीं तबतक इस बातको हाथमें लेना कठिन है।

मैं इस बातको भी स्वीकार करता हूं कि यदि आज ही सैनिकों और सिपाहियोंको सरकारी नौकरीसे स्तीफा देनेके लिये कहा जाय और यदि वे आज नौकरीसे हट जायं तो सङ्कट उपस्थित होनेकी संभावना है, क्योंकि जबतक डाकुओं, चोरों तथा बदमाशोंसे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न हो जाय तबतक हमें इन्हें हटाना भी नहीं उचित है। पर मेरा भी यही कहना है कि यदि हम आज पुलिस और सेनाको एक दमसे हटानेको तैयार हैं तो हमें अपनी रक्षाकी भी पूरी व्यवस्था कर लेनी होगी। यदि पुलिस और सैनिक लोग देशभक्तिमें आकर स्तीफा दें तो मुझे पूरी आशा है कि वे राष्ट्रीय दलमें शामिल होकर भी वही काम कर सकते हैं। उस दशामें वे आजकलकी भांति केवल नौकर बनकर काम नहीं करेंगे पर वे उस समय राष्ट्रके जान माल और स्वतन्त्रताके सच्चे रक्षक समझे जायंगे और अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरहसे निबाहेंगे। असहयोग आन्दोलनका उद्देश्य अपने आप सब बातोंको ठीक कर देनेके लिये ही हुआ है। यदि आज छात्रगण सरकारी स्कूलोंको छोड़ दें तो मुझे पूरी आशा है कि कल ही राष्ट्रीय स्कूलोंकी

काफी संख्यामें स्थापना हो जायगी। यदि आज वकील लोग अदालतोंको त्यागकर वकालत करना छोड़ दें तो वे दूसरे ही दिन पंचायती अदालतोंकी स्थापना कर लेंगे और इस प्रकार राष्ट्रके हाथमें अभियोगोंपर विचार करने तथा अभियुक्तोंको दण्ड देनेका सहज और सुविधा जनक मार्ग मिल जायगा। मैं यहीं यह भी लिख देना चाहता हूं कि खिलाफत कमेटीने इन कठिनाइयोंको भली भांति समझ लिया है और प्रत्येक कठिनाईका सामना करनेके लिये उपयुक्त प्रबन्ध करती जा रही है।

प्रबन्धक विभागकी नौकरियोंके त्यागमें किसी तरहकी बाधा उपस्थित होते नहीं दिखाई देती, क्योंकि जबतक कोई व्यक्ति अपने बलसे या अपने मित्रोंके द्वारा अपनी जीविकाका पूरा प्रबन्ध न कर लेगा तबतक वह नौकरीसे स्तीफा नहीं देगा।

लोगोंने स्कूलोंके वहिष्कारके मर्मको नहीं समझा है और एतराज किया है। इसे मैं स्वीकार करता हूं कि हमारे बालकोंकी शिक्षामें जो व्यय होता है वह हमारे ही जेबसे जाता है। पर जिसके द्वारा इस शिक्षाकी व्यवस्था की जा रही है उसमें यदि दोष आ गया है तो उसका फल हमें भी भोगना पड़ेगा। जिस समय छात्र स्कूलों और कालेजोंको छोड़ छोड़कर अलग हो जायंगे, उस समय शिक्षक लोग विद्यालयोंमें रह कर क्या करेंगे। पर थोड़ी देरके लिये

मान लीजिये कि वे स्तीफा नहीं देते तो क्या मर्यादा और धर्मके मुकाबिले रुपयेकी अधिक प्रतिष्ठा है।

कौंसिलोंके वहिष्कारके सम्बन्धमें लोग कहते हैं कि यदि असहयोगी उसे छोड़ भी दें तो भी नरमदलवाले तो उसमें जायंगे ही और इस तरह कौंसिलोंका काम नहीं रुक सकता। पर इसकी मुझे कोई परवा नहीं है। मुझे केवलमात्र चिन्ता इस बातकी है कि असहयोगी उसमें न जायं, क्योंकि आप स्वयं सहयोग करके दूसरेको असहयोग करनेके लिये कैसे कह सकते हैं। आप कौंसिलोंमें बैठकर उसके चपरासीको स्तीफा देनेके लिये कैसे कहेंगे?

एक सलाह

(दिसम्बर १, १९२०)

मुझे निम्न लिखित गुमनाम सलाह मिली है :—

"महात्मा,

'एक रमणीकी सलाह सुनिये। उसे आप रद्द कर दीजिये, पर रद्द करनेके पहले उस पर खूब विचार कर लीजिये, ज्ञान तथा प्रबोधके लिये सर्वज्ञ परमेश्वरसे विनय कीजिये। एक ओर ध्यान लगाना बल पैदा करता है, पर हर जगह बाटना निर्बलता है। अपने असहयोगको केवल तीन बातोंमें रखिये—

अर्थात् विदेशी चीजों, पुलिसकी नौकरी तथा सेनामें। इसीसे आप भीतरकी सब फूटोंको दूर कर अपने उद्देश्यको सबल कर सकेंगे जिससे स्वराज्यकी शीघ्र प्राप्ति हो सकेगी। अपने उद्योगको विशेष कर, पूर्ण-रूपसे नहीं, सीमान्त प्रदेशोंकी जातियोंमें फैलाइये—सिक्खों, पञ्जाबियों, डोंगरों, और गोरखोंमें। इतिहासके शिक्षानुसार गुप्त समितियों द्वारा काम कीजिये, डंका पीट कर नहीं। हड़ताल कीजिये, पर पहले धमकी मत दीजिये; हड़ताल कीजिये तो मूलमें, शाखाओं पर नहीं। परमात्मा आपके कार्यको तुरन्त सिद्ध कर हमारे उद्देश्यको शीघ्र सफल करे। श्रीमती एफ०"।

चिट्ठीमें तारीख नहीं है। यह ऐसी लिखी है कि स्त्रीकी हो ही नहीं सकती। कारण भारतकी स्त्रियां इस चिट्ठीकी स्त्रीसे कहीं अधिकतर वीर हैं। चिट्ठीके लेखकने परमात्माकी चर्चा की है, पर ब्रिटिश सङ्गीनका भय उसे बना है और इसलिये वह सिक्खों तथा गोरखोंके हथियारोंका उपयोग चाहता है। उसने असहयोगको अच्छी तरह समझा नहीं है। अपने भयकी अवस्थामें वह यह नहीं देखता कि ब्रिटिश पाशविक बलके बदले दूसरा पाशविक बल आनेसे भारतकी बुराइयोंकी वास्तविक औषधि नहीं हो सकती। यदि लोहेसे भारतके भाग्यका निर्णय होनेवाला है तो वह सिक्ख, गोरखोंका नहीं होना चाहिए, बल्कि समस्त भारतका। यह एक ऐसी महत्वकी शिक्षा है जो यूरोपसे

मिलती है। यदि पाशविक बलका ही राज्य रहेगा तो भारतवासियोंको या तो समर-कौशल सीखना चाहिये या सदाके लिये उसके पैरों पर सिर झुकाना चाहिए जो तलवार भांज रहा है, चाहे वह परदेशी हो या स्वदेशी। फिर ऐसी अवस्थामें सैकड़ों आदमी मूक पशु बने रहेंगे। असहयोग लोगोंमें उनके गौरव और शक्तिकी जागृति करता है। यह उन्हें यही समझा कर हो सकता है कि यदि तुम भीतरकी आत्माको जानने लगोगे तो तुम्हें पाशविक बलसे भय करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

डोंगरों, सिक्खों गोरखों तथा भारतकी अन्य वीर जातियोंको हम अँगरेज सैनिकोंसे युद्ध करनेके लिये नहीं कहते, बल्कि इसलिये कि जब अँगरेज हमें जीतनेमें लगें तब वे उनकी सहायता न करें। हम अपनी सैनिक जातियोंको बता देना चाहते हैं कि ब्रिटिश अफसरकी आज्ञा मान कर तलवार फेर कर वे अपनी तथा हमारी गुलामी बढ़ा रहे हैं। वह समय आवेगा जब उक्त लेखकका दल विनष्ट हो जायगा, सैनिक जातियां शान्तिका प्रयोजन समझने लगेंगी।

चिट्ठीका लेखक जब कहता है कि केवल विदेशी चीजों, पुलिस तथा सेनाकी ओर ध्यान दो तब मुझे उस पर सन्देह होता है। इस प्रकार त्याग कर वह आभ्यन्तरिक एकता चाहता है, अर्थात् उन्हीं श्रेणियोंके प्रायश्चित्तसे जो अभी तक लोक नेता बने हैं—पर असहयोगका सारा युद्ध इन्हीं श्रेणि-

योंके चारों ओर लगा है। अभी यह मतभेद मालूम हो सकता है, पर प्रायश्चित्त कार्य हो जाने पर यह एकता अवश्य प्राप्त करेगा।

हमारे खुले संग्रामसे कैसी सफलता हुई यह लेखक नहीं समझ सका है। मेरी रायमें इस समय लोग जैसी निर्भीकता और खुले तौरसे काम कर रहे हैं वैसी निर्भीकतासे और कभी किसी समय नहीं किया। राज्यद्रोहके अति कृत्रिम कानूनका भय उन्होंने प्रायः त्याग दिया है। गुप्त समितियोंका वर्णन कर लेखक पुराने जमानेकी बात बताता है। अपवित्र गुप्त पद्धतिसे तुम इस राष्ट्रको पूर्ण रूपसे उन्नत नहीं कर सकते। हमें चाहिए कि हम साहससे खुल्लमखुल्ला कार्य कर गुप्त तथा आचार-भ्रष्ट पुलिस विभागको निरस्त्र करें। मूलोच्छेद न करें तो वह असहयोग ही नहीं है। जब खुल्लमखुल्ला ईमानदारीसे आप असहयोग कर ब्रिटिश सरकारके ध्वंसक वृक्षको सींचना छोड़ देंगे तो उसका मूलोच्छेद अवश्य हो जायगा। उक्त लेखक ईश्वरका नाम व्यर्थ ही लेता है जब गुप्त पद्धतिकी भी वह सलाह देता है।

एक संशय

—*—

(सितम्बर २५, १९२०)

जिस समय मैं चम्पारनमें काम कर रहा था मेरे साथ बाबू जनकधारी प्रसाद भी काम कर रहे थे। उन्होंने बड़े ही उत्साह और तत्परतासे मेरी सहायता की थी। उन्होंने मेरे पास लम्बा चौड़ा पत्र लिखा है। उस पत्रमें उन्होंने दिखलाया है कि भारतवर्षके सामने इस समय बड़े ही महत्वका विषय आ पड़ा है और उस मिशनको उसे पूरा करना है। इस मिशनकी पूर्ति यदि वह किसी उपायसे कर सकता है तो वह एक मात्र असहयोग है। साथ ही उन्होंने कई आशंकायें भी प्रगट की हैं जिनका वह खुला उत्तर चाहते हैं। उनका पत्र इतना बड़ा है कि उसे उद्धृत नहीं कर सकता। इसलिये मैं उसे रोक रहा हूं पर मैं उनकी आशंकाओंका उत्तर देना उचित समझता हूं। उनके प्रश्नोंको मैं ज्योंका त्यों उद्धृत कर देता हूं—

(१) क्या असहयोग आन्दोलनसे अंग्रेज और भारतीयोंके बीचमें घृणाका भाव नहीं उत्पन्न हो रहा है। क्या यह निखिल प्रेम और भ्रातृत्वके आधार पर है?

(२) क्या शैतानी, राक्षसी आदि शब्दोंके प्रयोगसे विराद्-राना भाव नहीं निकल जाता और घृणाका भाव उदय हो आता है?

(३) क्या असहयोग आन्दोलन कर्मणा और वचसा पूर्णतः शान्तिमय और अहिंसात्मक नहीं होना चाहिये ?

(४) क्या यह आन्दोलन हाथसे बाहर नहीं हो जायगा और हिंसा हो जायगी ?

उसी तरह क्रमशः मैं उत्तर भी दे देता हूं :—

(१) इस आन्दोलनसे जातिगत विद्वेष नहीं उठ रहा है। मैंने पहले ही कह दिया है कि इसमें बुराईयोंका उल्लेख पूर्ण नियन्त्रणके साथ किया जाता है। आप केवल उपेक्षा करके ही बुराईको नहीं दूर कर सकते। मैं निखिल भ्रातृभावकी स्थापना करना चाहता हूं। इसी लिये मैंने इस असहयोग आन्दोलनको उठाया है ताकि अपनेको पवित्र करके भारतवर्ष संसारको वर्तमान दशामें सुधार और परिवर्तन लाये।

(२) "शैतानी और राक्षसी" शब्द अवश्य कड़े हैं पर उपयुक्त हैं। सरकारकी वर्तमान दशाके ये सच्चे द्योतक हैं। साथ ही उनका प्रयोग तो किसी व्यक्ति विशेषके लिये किया नहीं जाता। उनका प्रयोग तो ब्रिटिश शासन प्रणालीके लिये किया जाता है। यदि हम लोग पाप और बुराईसे दूर रहना चाहते हैं तो हमें उनसे अवश्य ही परहेज करना चाहिये। पर असहयोग द्वारा हम लोग बुराई और बुराईमें करनेवालेमें अन्तर निश्चित कर लेते हैं। यदि मैं अपने भाईकी किसी कार्यवाहीको शैतानी कहूं तो इसके माने यह नहीं है कि मैं अपने उस भाईसे घृणा करता हूं। असहयोग हमें सिखलाता है कि यदि हमारा

कोई भाई बुरा काम भी करता है तो हमें उससे प्रेम करना चाहिये पर इससे यह तात्पर्य नहीं निकलता कि हम लोग उसके बुरे आचरणकी भी अवज्ञा करें और उनपर ध्यान न दें।

(३) असहयोग आन्दोलन पूर्णतः अहिंसात्मक है और उसी आधार पर चलाया जा रहा है। यह बात मैं माननेको तैयार हूं कि प्रत्येक असहयोगीने अभी तक इसके मर्मको पूर्णतया नहीं समझा है। पर इससे यही प्रगट होता है कि हम लोगोंके अन्तर्गत बुराई और दुर्बलता है। इस आन्दोलनमें जोश अवश्य है और यह जोश अन्त समय तक रहेगा। जिस मनुष्यमें जोश नहीं है उसे मनुष्य नहीं कहना चाहिये क्योंकि उसमें किसी तरहकी भावना नहीं उठ सकती।

(४) इस बातको भी मैं स्वीकार करता हूं कि इस आन्दोलनमें रक्तपात और हिंसा होनेकी संभावना है। पर केवल इस तरहकी आशंकाके आधार पर तो अहिंसात्मक असहयोगका त्याग नहीं किया जा सकता। यदि इस तरह डरकर रहना है तब तो हमें स्वतन्त्रताकी कभी चर्चा नहीं करनी चाहिये क्योंकि उसमें भी इस तरहकी बुराइयां भरी हैं।

——※——

डाहका मन्त्र
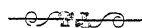
(दिसम्बर २९, १९२०)

इण्डियन इण्टरप्रेटर पत्रके सम्पादकको असहयोगमें बुराई ही बुराई देखनेमें आती है। वह सदा (प्रत्येक अङ्कमें) उसके विरोधमें कुछ न कुछ लिखता ही है। मेरी यह इच्छा है कि पत्रोंके सम्पादक सार्वजनिक विषयों पर मत प्रगट करनेके पहले उन्हें अच्छी तरहसे समझ लिया करें। इण्डियन इण्टर-प्रेटर ईसाई धर्मका पत्र है। इसलिये साधरणतः यह आशा की जा सकती है कि जो पत्र इस तरह धार्मिक रूप धारण करके चलता है उसने तो धर्म सम्बन्धी प्रश्नोंपर पूर्ण विवेचन कर लिया होगा। एक लेखमें इस पत्रने लिखा है:—"भारतवर्ष सर्वव्यापी घृणाके द्वारा एकता नहीं स्थापित कर सकता। इस आन्दोलनको समीक्षा परीक्षा करनेसे विदित होता है कि आदर्शवादी मिस्टर गांधीने यही तरीका हथियाया है" मिस्टर स्टोक्सको हम निरपेक्ष निरीक्षक ही कह सकते हैं। उन्होंने इस आन्दोलनकी गतिकी परीक्षा की है। उनका कहना है कि इसमें घृणाके भाव नहीं हैं। मैंने भी बार बार इस बातपर जोर दिया है पर यदि किसीके हृदयमें पक्षपातने अपना दृढ़ आसन जमा लिया है तो उसका निकलना जरा कठिन है।

और इस वर्तमान समयमें समाचार पत्रके सम्पादक जिस जल्दी-बाजीसे आगे बढ़नेकी और किसी निर्दिष्ट परिणाम पर पहुँ-चनेकी चेष्टा करते हैं उसमें वे लोग अनजानमें पक्षपातसे भर जाते हैं और बिना उस बातको अच्छी तरहसे समझे ही अथवा पर्याप्त प्रमाण प्राप्त किये बिना ही कुछ न कुछ परि-णाम निकाल लेते हैं।

समान सङ्कट—हिन्दू और मुसलमानोंको इस एकताकी जड़ समान सङ्कट है अर्थात् दोनोंको एकही बातको आशंका है और वही दोनोंको एकताके सूत्रमें बांध रही है। मैं भली-भांति जानता हूं कि संकटके अतिरिक्त आत्माको पवित्र करनेवाला दूसरा उत्तम मन्त्र नहीं है। सङ्कटमें अजनबी भी मित्र बन जाते हैं। और हम लोग तो अजनबी नहीं हैं, एक ही भूमिपर उत्पन्न हैं एकही तरहके जलवायुमें पले हैं और एकही वसुन्धराका अन्न खाते हैं।

इण्डियन इण्टरप्रेटरने निम्नलिखित प्रश्न किया है :—"क्या मिस्टर गान्धी बिना किसी सङ्कोच और विचारके यह निश्चय रूपसे कह सकते हैं कि भारतमें ब्रिटिश शासन भार स्वरूप है और बुराइयोंसे भरा है और भारतवासियोंको यह बात भलीभांति समझा देनी चाहिये ? उनकी समझमें इसमें इतनी अधिक बुराई आगई है कि इसके उपकारोंकी उन अपकारोंके सामने कोई गणना नहीं हो सकती। क्योंकि असहयोग आन्दोलनकी सार्थकता इसी आधारपर सिद्ध की

जा सकती है।" मेरा उत्तर जोरदार शब्दोंमें है और मैं उनके प्रश्नोंको स्वीकार करता हूं। जबतक मुझे यह विश्वास था कि सब मिलानकर मिलजुमिला ब्रिटिश सरकारके उपकार अपकारोंसे अधिक हो जाते हैं तबतक मैं उसके साथ सम्बन्ध रख सका क्योंकि कितनी ऐसी बुराइयां हैं जिन्हें मैं अस्थायी समझता था। और उस सम्बन्धके लिये मुझे किसी तरहका खेद या पश्चात्ताप भी नहीं है। पर जब मेरी आंखे खुल गईं और मैंने ब्रिटिश साम्राज्यका असली रूप देखा तब उसके साथ सम्बन्ध बनाये रखना मैंने पाप समझा और जबतक वह अपनी बुरी चेष्टायें नहीं छोड़ता मैं उसका साथ नहीं दे सकता। मुझे इसकी मार्मिक वेदना रहती है और मैं अतिशय प्रसन्न हूंगा जिस दिन हमें कोई यह बात बतला देगा कि मैं भूला था और मेरा यह वर्तमान भाव उसी भूलके कारणसे है। लगातार रुपयोंका निचोड़, पञ्जाबको दबानेकी चेष्टा, मुसलमानोंके साथ विश्वासघात ये तीनों बातें, मेरी समझमें तीन तरहके डाके हैं जो भारतपर डाले गये हैं। इन बातोंको देखकर ब्रिटिश शासनके लाभको मैं शाप समझता हूं। यदि ब्रिटिश राज्यने शान्तिके ब्याजसे हम लोगोंपर अपना शासन न चलाया होता तो आज अन्य राष्ट्रोंकी भांति हम लोग भी बहादुर और साहसी तो होते। वर्तमान अवस्थाकी भांति लाचार और पंगु तो न होते। हमारी जो दुर्दशा की गई है, हम लोग जिस नीची श्रेणीपर गिरा दिये गये हैं उसके

अनुसार रेल और तारोंके लाभ किसी गणनाके नहीं हैं और कोई भी विचारवान पुरुष, जिसे अपनी मान मर्यादाका जराभी ख्याल है, इस तरहकी बातोंको कभी भी नहीं स्वीकार करेगा। शिक्षाके जो फायदे बतलाये जाते थे वे तो अब प्रत्यक्षमें हमारी स्वतन्त्रताके मार्गमें उन्नतिके बाधक हो रहे हैं। बात यह है कि असहयोग अहिंसात्मक होनेके कारण धार्मिक और पवित्र करनेवाला हो गया है। उसके कारण राष्ट्रकी शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। यह राष्ट्रकी बुराइयों और कमजोरियोंको बतला रहा है और उन्हें दूर करनेका उपाय भी बतलाता जा रहा है। यह आन्दोलन आत्म विश्वासपर बहुत कुछ निर्भर करता है। मत परिवर्तन तथा शक्ति उत्पादनके लिये यह सबसे बलिष्ठ अस्त्र है। इस आन्दोलनमें भाग लेने वाला व्यक्ति जानबूझकर सङ्कटमें पड़ता है अर्थात् उसे मोल लेता है इसलिये इसमें आकर कोई ज्यादती करही नहीं सकता और किसी बातके लिये अधीर हो ही नहीं सकता। एक राष्ट्रमें सहन शीलता जितनी अधिक होगी स्वतन्त्रताकी तरफ वह उतनी ही तेजीसे बढ़ सकेगा। चूंकि असहयोगी पहलेही बुराईसे दूर रहनेकी प्रतिज्ञा करता है इससे वह किसीभी प्रकारसे उसे स्वीकार नहीं कर सकता और न उसमें भाग ले सकता है।

फीजीसे एक आवाज—एक पत्र, जिसे अन्यत्र प्रकाशित किया गया है इस अन्दोलनका पूर्णतः समर्थन करता है। इस

सम्बाददाताने उन कारणोंका भली भांति दिग्दर्शन कराया है जिनकी वजहसे हमारे देशवासी अधिक संख्यामें फीजीसे लौट आये हैं और लौट रहे हैं। फीजीमें भारतीय महिलाओंपर भी मुकद्दमा चालाया जाता था और उन्हेंभी जेलकी सजा दी जाती थी। यदि स्त्री कोई अपराध करे तो उसे दण्ड न देनेका कोई कारण नहीं है। पर जो कुछ समाचार प्रकाशित हुए हैं उनसे यही प्रगट होता है कि फीजीमें भी विचारकी व्यवस्था पंजाबके मार्शल लाके विचारकी व्यवस्थासे एक दम मिलती जुलती थी। अर्थात् वहांके निवासी कुछ आजाद हो जानेके निमित्त आन्दोलन उठा रहे थे इसलिये इस दमनके द्वारा उन्हें सदाके लिये दबा देनेकी चेष्टा की गई थी। मुझे एकदम आशा नहीं है कि कांग्रेस डेपुटेशन भेजकर हमलोग फीजीमें संत्रस्त अपने देशी भाईयोंका कुछ भी लाभ कर सकेंगे। फीजी सरकारमें मेरा लेशमात्र भी विश्वास नहीं है। जांच आदि करनेमें वह डेपुटेशनको किसी तरहकी सहायता नहीं देगी। यह भी संभव है कि भारत सरकार ही इस डेपुटेशनको भारतसे आगे न बढ़ने दे। मेरी समझमें फीजीकी घटनायें भी असहयोग आन्दोलनकी शीघ्रताके लिये प्रेरित कर रही हैं। जो लोग फीजीसे लौटकर भारत आते हैं उनकी देखभालकी तो हमें फिकर रखनी चाहिये। उन्हें निःसहाय नहीं छोड़ देना चाहिये कि उन्हें निराशा हो जाय और इस तरह लाचार होकर वे फिर लौट पड़ें। मुझे यह जानकर अतिशय प्रसन्नता हुई है कि जो लोग लौटकर आये हैं उनकी देखरेख

मिस्टर ए. बी. टकर कर रहे हैं जो अभी पुरीसे सहायताका काम समाप्त करके लौटे हैं और स्वयं मिस्टर अण्डरूज श्रीयुत बनारसी दास चतुर्वेदीको लेकर उनका निरीक्षण कर रहे हैं।

मेरे लिये एक कदम काफी है
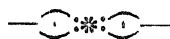
(दिसम्बर २९, १९२०)

मिस्टर स्टोक्स ईसाई हैं। वह परमात्माके प्रकाशके सहारे चलना चाहते हैं। उन्होंने भारतवर्षको अपना घर बना लिया है। आपने कोटागिरिमें अपना निवासस्थान बनाया है और एकान्तमें रहकर पहाड़ी जातियोंके उद्धारमें ही वे अपनी सारी-शक्ति लगा रहे हैं। वहींसे निरपेक्ष होकर वे असहयोगको गति भी देख रहे हैं। उन्होंने कलकत्ताके सर्वेण्ट तथा अन्य पत्रोंमें असहयोगपर तीन लेख लिखे हैं। जिस समय मैं बङ्गालमें दौरा कर रहा था मैंने इन लेखोंको पढ़ा था। मिस्टर स्टोक्स असहयोग आन्दोलनके पक्षमें हैं पर पूर्ण स्वाधीनताके परिणामको सोचकर वे डर जाते हैं अर्थात् उन्हें इस बातकी आशंका है कि यदि ब्रिटिश भारतको एकदमसे छोड़कर चले जायंगे तो यहां अनेक तरहके उपद्रव उठ खड़े होंगे। उन्हें भय लगता है कि भारतपर

तुरन्त ही विदेशियोंके आक्रमण होने लगेंगे, जैसे उत्तर पश्चिमसे अफगान और पहाड़ी गुर्खे भारतपर एक साथ ही टूट पड़ेंगे। पर कार्डिनल न्यूमनके शब्दोंमें मैं उस भविष्यकी बातकी चिन्ता नहीं करता। मेरे लिये तो एक कदम आगे बढ़ना ही काफी है। यह आन्दोलन पूर्णतः धार्मिक है। जो लोग ईश्वरमें विश्वास करते हैं और इसलिये उससे डरते हैं, उनका धर्म है कि परिणामकी चिन्ता किये बिना ही वे बुराई और पापसे दूर हो जायं। उन्हें इतना विश्वास तो अवश्य होगा कि अच्छे कामका परिणाम सदा अच्छा होता है। यही गीतामें लिखित "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का सिद्धान्त है। ईश्वर नहीं चाहता कि कोई मनुष्य भविष्यकी चिन्ता करे। उस मनुष्यको सदा सत्यका अनुसरण करना चाहिये यद्यपि कभी कभी इससे जीवन संकटमय हो जाय। वह मनुष्य जानता है और समझता है कि सद् जीवनमें प्राण त्याग देना उचित है पर राक्षसी जीवन यापन करके जीवित रहना ठीक नहीं। इसलिये जिसके हृदयमें यह पक्का विश्वास हो गया है कि यह सरकार राक्षसी हो गई है उसके लिये इस सरकारसे संबंध छोड़ देनेके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह गया है।

अब हमें इस बात पर विचार करना चाहिये कि यदि आज ब्रिटिश लोग भारतको एकदमसे छोड़कर चले जायँ तो भारतके हकमें बुरीसे बुरी क्या बातें हो सकती हैं। मान लीजिये कि ब्रिटनके संबन्ध छोड़ते ही एक तरफसे पठान और दूसरी तरफसे

गुर्खोंने हमला शुरु किया। तो इससे क्या होगा। यह निश्चय है कि हमलोग उनकी हिंसाका सामना वर्तमान अवस्थासे अधिक योग्यतासे कर सकेंगे। मिस्टर स्टोक्स पशुबलसे बरी नहीं होना चाहते। अर्थात् पशुबलका त्याग उन्हें संभव नहीं प्रतीत होता। जिस समय सारा भारत एक संयुक्त राज्य हो जायगा उस समय राजपूत, मुसलमान तथा सिक्ख वीरोंकी शक्तियां किसी भी विदेशी लुटेरेको मार भगानेके लिये पर्याप्त होंगी। पर इससे भी किसी बुरी अवस्थाका अनुमान कीजिये। मान लीजिये कि बंगालकी खाड़ीसे जापान हमला करता है, पहाड़की ओरसे गुर्खोंका हमला होता है, और उत्तर पश्चिम मैदानसे पठान आक्रमण करते हैं। हमलोग उन्हें हराकर भगानेमें सफल नहीं होते। ऐसी अवस्थामें हम उनसे सुलह कर लेंगे और अवसर मिलते ही उन्हें मार भगावेंगे। मेरी समझमें तो इस हीन और दीन अवस्थासे जहां हम जान बूझकर पाप और अत्याचारके सामने सिर झुका रहे हैं वह अवस्था कहीं अच्छी रहेगी।

पर मैं तो ऐसी किसी भी अवस्थाकी सम्भावना नहीं समझता। जैसा मिस्टर स्टोक्सका विश्वास है, यदि शान्तिमय अहिंसात्मक असहयोग द्वारा हमें सफलता मिली तो अंग्रेज चाहे चले जायं या रहें वे मित्रोंकी तरह पेश आवेंगे। मानव प्रकृतिकी उदारतापर मुझे पक्का भरोसा है चाहे वह अंग्रेज हो या अन्य कोई जाति। इसलिये मैं इस बातको माननेके लिये

भी तैयार नहीं हूं कि अंग्रेज यों एकाएक छोड़कर चले जायंगे।

पर मैं अफगान और गुर्खोंको भी तो ऐसा नृशंस और हृदयहीन लुटेरा नहीं समझता जिनके ऊपर पवित्र करनेवाले साधनोंका प्रभाव न पड़ सकता हो। यदि भारतमें आत्मबलका राज्य हो गया तो इसका प्रभाव उसके पड़ोसियोंपर अवश्य पड़ेगा। भारत इन बलिष्ठ पर निर्धन जातियोंकी अवस्था सुधारने-का यत्न करेगा और यदि आवश्यकता प्रतीत हुई तो इनकी सहायता भी करेगा। पर यह सहायता किसी तरहके भयसे प्रेरित होकर नहीं होगी बल्कि बिरादराना और पड़ोसियाना कर्तव्यका सूचक होगी। ब्रिटनके साथ ही साथ भारत जापानके साथ भी इसी समय निपट सकता था, यदि भारत किसी भी विदेशी वस्तुका, जिसे वह अपने घरमें तैयार कर सकता है, प्रयोग करना पाप समझता है तो इसके लिये जापान भारतवर्ष पर आक्रमण नहीं करेगा। भारतवर्षमें इतना पर्याप्त अन्न पैदा होता है कि वह अपना भरण पोषण अच्छी तरहसे कर सकता है, उसकी सन्तान अपनी आवश्यकता भर वस्त्र भी तैयार कर सकती है जिससे वह अपनी लज्जाका निवारण कर सके और सर्दी तथा गर्मीसे वह अपनेको बचा सके। विदेशी आक्रमणका भय उसी अवस्थामें उत्पन्न होता है जब हमारा उनके साथ इस तरहका व्यवहार रहे कि उनपर हमारी अधीनता प्रगट हो। इसलिये हमें आत्म निर्भरता भी सीखनी चाहिये।

इसलिये चाहे हमारी अन्तिम सफलता हिंसा द्वारा हो या अहिंसा द्वारा, पर हमारा भविष्य इतना अन्धकारमय और संकटापन्न नहीं है जितना मिस्टर स्टोकस समझ रहे हैं। हमारी वर्तमान निरीह और हीन दशासे तो कोई भी अवस्था सुखद हो सकती है। इसलिये हमारे हाथमें सिवा इसके कोई चारा नहीं रह गया है कि हम दत्तचित्त होकर शान्तिमय अहिंसात्मक असहयोगका सहारा लें और उसीके कार्यक्रमको पूरी तरहसे चरितार्थ करें।

ईसा और असहयोग

(जनवरी १९, १९२१)

प्रिय गांधीजी, मिस्टर लायल यहां आये थे। उनसे विदित हुआ कि आप मेरा कुशल मंगल पूछ रहे थे। इसके लिये मैं आपका अतिशय कृतज्ञ हूं। मैं आपकी कार्यवाहीका पर्यवेक्षण दत्तचित्त होकर कर रहा हूं। पर मुझे अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि मैं आपके असहयोग आन्दोलनके पक्षमें न हूं और न हो सकता हूं। मैं नित्यप्रति ईश्वरसे प्रार्थना करता हूं कि वह आपको आपकी भूल शीघ्र सुझा दे और आपको तथा हम सबको उचित काममें लगावे जिससे हम लोग भारतवर्षका

कल्याण कर सकें। आपके कई लेखोंको पढ़कर मैंने देखा है कि आप अपने आन्दोलनका समर्थन इस आधार पर कर रहे हैं कि यदि हमारा सबसे प्यारा भाई, मित्र या बन्धु भी बुराई करते दिखाई देता है और हर तरहसे समझानेपर भी बाज नहीं आता तो उस समय हमारा एक मात्र यही धर्म है कि हम उसके साथ किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखें क्योंकि उसके साथ सम्बन्ध रखनेमें हमें भी उसके साथी और सहायक होनेका पाप लगेगा।

पर ईसाई और हिन्दू धर्मका एक प्रधान विधान आपकी इस धारणाके प्रतिकूल व्यवस्था देती है। दोनों धर्मोंमें अवतारकी व्यवस्था है। यद्यपि कुछ अंशोंमें इन दोनोंमें मतभेद है पर दोनोंके अन्तर्हित भाव एक ही हैं कि जब ईश्वरने—जो पवित्रसे भी पवित्र है—पापाचारके कारण मनुष्यको यातनाओंमें जलते देखा, तब उसने अपनेको उनसे दूर नहीं रखा पर परम उदारताके साथ उनके बीचमें उतर पड़ा ताकि उनकी सहायताकर वह उन्हें पापसे बचावे और उनकी रक्षा करे। जीजस क्राइस्ट (ईसामसीह) ने जो परम-पवित्र और नाशसे रहित हैं—पापियोंके साथ काम करना अस्वीकार नहीं किया, बल्कि इसके प्रतिकूल बुराईसे घृणा करके तथा उसकी निन्दा करके भी—जिसे उन्होंने अपने समयके सबसे बड़े लोगोंमें देखा—उन्होंने विना किसी विचारके साधारणसे साधारण मनुष्यका साथ दिया, जिनमें फरीद थे, विदेशी शासकके घृणित मालगुजारी तहसीलने-वाले थे, और विश्व बदनाम पापाचारी भी थे। उन्होंने

पाण्डित्यपूर्ण कहावतों और निकटवर्ती उदाहरणों द्वारा उन्हें बुराईसे दूर करके सुपथपर लानेका उद्योग किया।

इससे मेरी यह धारणा है कि प्रत्येक विचारवान तथा देशभक्तका यह धर्म होना चाहिये कि वह इस "शैतानी और राक्षसी" सरकार—जैसा कि अकारण इसे बतलाया जा रहा है—के साथ हर तरहका सम्बन्ध जोड़ें और उसके साथ सम्बन्ध रखकर उसकी कार्यवाहीकी देखरेख करें तथा जहां उसमें दोष देखें वहां सुधार कर उसे पूर्ण बनानेकी चेष्टा करें। जिस तरह विगत वर्ष सत्याग्रह आन्दोलन जारी करनेकी भूलको जानते ही आपने स्वीकार की तथा उसे छोड़ा उसी प्रकार मेरी हृदयसे प्रार्थना है कि ईश्वर शीघ्र ही आपकी आंखें खोले जिससे आप अपनी इस भूलको देखें और असहयोगका त्यागकर सहयोगमें प्रवृत्त हों। इस पत्रका प्रयोग आप अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं।

राजकोट
२०-११-२०

आपका हितचिन्तक
एस० गिलेस्पी

मैंने इस पत्रको ज्योंका त्यों प्रकाशित कर दिया है। इसके प्रकाशित करनेका मेरा एक अभिप्राय और है। इस पत्रसे विदित हो जायगा कि यद्यपि मैं लगातार ब्रिटिश सरकारकी निन्दा करनेमें अनवरत चेष्टा कर रहा हूं फिर भी रेवरेण्ड गिलेस्पी सदृश अंग्रेजोंसे मेरी मैत्री अबतक चली आ रही है।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि उन्होंने जो कुछ लिखा है पक्के और दृढ़ विश्वासके कारण ही लिखा है। उन्होंने मुझे इस बातका श्रेय दिया है कि मैं पूर्ण विश्वासके आधारपर ही किसी काममें हाथ डालता हूं और उसमें दत्तचित्त रहता हूं। इतने पर भी ईसाई तथा हिन्दू धर्मकी उन्होंने जो व्याख्या की है उसमें मुझमें और उनमें उतना ही अन्तर है जितना उत्तर और दक्षिण-में हो सकता है। हिन्दू धर्मके बारेमें जितने अधिकारके साथ मैं लिख सकता हूं वे नहीं लिख सकते। हिन्दू धर्मके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिका यह धर्म है कि वह दुराचारीके साथ सहयोग करना छोड़ दे और उसके दुराचारमें भाग लेना या योग देना त्याग दे। प्रहलादने अपने पितासे सहयोग इसीलिये त्यागा कि उसका पिता दुराचारमें प्रवृत्त था। सीताने रावणकी सेवायें स्वीकार न कीं, भरतने अपनी माता कैकेयीको फटकारा था और जिस राज्य सिंहासनको उसने अपने कपटाचारसे प्राप्त किया था उसे भरतने स्वीकार नहीं किया। बाइबिलकी नीतिके बारेमें मैं उतनी दृढ़तासे नहीं लिख सकता। पर उसे पढ़कर मेरी जो धारणा हुई वह हिन्दू धर्मके भावसे बिलकुल मिलती जुलती निकली। जीजसने उन पापियोंका साथ न तो उनकी अधीनता स्वीकार कर दिया और न उनका संरक्षक होकर दिया। वह उनकी सेवा करनेके निमित्त उनसे मिला ताकि वह उन्हें सन्मार्गपर लावे और सच्चे ज्ञानका प्रचार उनमें करे। पर जिन लोगोंने उसकी बातें न सुनीं, वहांसे वह फौरन

चलता बना। जो लड़का लज्जास्पद पापाचारमें अपना जीवन व्यतीत करता है मैं उस पुत्रका मुंहतक नहीं देखना चाहता। प्रकाशमय असहयोगका तात्पर्य है प्रेमके कारण क्रोधसे अभिभूत होना। पर सेवाके निमित्त जो सहयोग किया जाता है, उसे मेरे मित्रने, बुराईके साथ किये गये सहयोगसे मिला दिया है अर्थात् दोनोंको एक कर दिया है और दोनोंका भेद नहीं प्रगट किया है। क्या ईसा मसीहने उन सूदखोरोंसे किसी तरहका उपहार स्वीकार किया होता, क्या अपने मित्रोंके लिये उन्होंने उनसे आर्थिक सहायता ली होती, क्या उन्होंने उन्हें आर्थिक सहायता दी होती जिससे वे अपनी हीन दशा और बढ़ाते? क्या उन्होंने धनवानोंकी, फारसीजकी और सदूकीकी, उनकी कार्रवाइयोंके लिये जो निन्दा की थी वह केवलमात्र दिखौआ था? पर मेरे मित्र रेवरेण्ड गिलेस्पीका कथन है कि मैंने अकारण इस सरकारको "राक्षसी और शैतानी" कहा है। यही हम लोगोंके मतभेदका घोर कारण है। जो सरकार चालबाज है, धोखेबाज है, विश्वासघाती है, और हत्यारी है यदि उसके लिये मैं "राक्षसी और शैतानी" से हलकी उपाधि दूं तो इसमें सत्यकी हत्या करूंगा। इतना पाप करके भी जो सरकार उसके लिये एकके बाद दूसरा झूठ बोलती जाती है वह राक्षसी नहीं तो और क्या कही जायगी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार स्पष्ट शब्दोंमें उसकी बुराइयोंका दिग्दर्शन कराकर मैं उसकी भलाई कर रहा हूं।

रेवरेण्ड गिलेस्पीका उत्तर

(फरवरी २३,१९२१)

प्रिय महात्माजी, फरवरी १२के यंग इण्डियाके पढ़नेसे प्रगट हुआ कि आपने मेरे पत्रको पढ़ा और उसकी आलोचना भी की। आपने इस सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उससे में अधिकांश सहमत हूं फिर भी एकाध बातें ऐसी हैं जिनके विषयमें मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरी इस बातसे सहमत होंगे। प्रत्येक ईसाईके लिये केवलमात्र अनुकरणीय परम पिता ईसामसीह हैं। पर उनकी आत्मा इतनी महान थी, वे इतने शुद्ध थे कि जब उन्होंने भली भांति देख लिया कि फरासी तथा अन्य जातियां प्रेमके द्वारा वशमें नहीं की जा सकतीं तो उन्होंने उनका एकदमसे तिरस्कार किया पर हम लोग ऐसा नहीं कर सकते। पहले तो हम लोग नरदेहधारी हैं और दूसरे हम लोगोंमें भी उसी तरहकी दुर्बलतायें और कमजोरियां हैं जैसी हमारे अन्य भाइयोंमें हैं। इसलिये उनको अपने मतका न होने तथा सन्मार्गका अनुसरण न करते देखकर भी हम उन्हें सहसा छोड़ नहीं सकते। उनके अवगुणयुक्त व्यवहारोंसे घृणा करते हुए हमें उनके सुधारकी चेष्टा करनी चाहिये। जिस पुत्रने अपना जीवन पापाचार और

बुराईमें बिताया है उसका मुँह देखना अवश्य पाप है फिर भी हमें उसके साथ सहयोग करना चाहिये। यह उसी तरहका सहयोग है जैसा उस "फजूल खर्च पुत्र" और पिताके संबन्धमें कहा गया है कि अपने लड़केकी फजूल खर्चीपर क्रुद्ध होकर भी जब वह सामने आता है तो प्रेमके वशीभूत होकर उसे छातीसे लगा लेता है। मेरा यही विश्वास है और यही कारण है कि मैं उस सरकारके साथ भी असहयोगके स्थानपर सहयोग चाहता हूं जो सरकार धोखेबाजी, हत्या तथा क्रूरताके लिये घोर अपराधी है।

इसी प्रसंगमें मैं यह बात भी कह देना चाहता हूं कि यदि वर्तमान सरकार प्रतीकार करनेके लिये तैयार नहीं है और न उसे अपने कियेपर पश्चात्ताप है और वह झूठी बातों द्वारा अपने अनाचारको छिपाना चाहती है तो क्या यह समय नहीं है कि हम लोग उसके पापों और अनाचारोंकी एक सूची तैयार करें और मय प्रमाणोंके नये वायसरायके सामने पेश करें। यदि वर्तमान सरकार सुधारके योग्य नहीं है तो कमसे कम इस नयी सरकारको तो एक अवसर अवश्य देकर देखिये कि यह क्या करती है। सहयोग त्यागके पूर्व इस तरहकी कार्रवाई सर्वथा उचित होगी।

अन्तमें मैं यह कह देना चाहता हूं कि छूआछूतके पाप पर आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बड़े भावसे पढ़ा और उस विषयसे मेरी आन्तरिक सहानुभूति है। जिस समय मैं इस

लेखको पढ़ रहा था मेरे हृदयमें यह भाव बराबर उठ रहे थे कि जब स्वयं भारतवासी अपने करोड़ों भाइयोंके प्रति इस तरहके अत्याचार करते हैं तो फिर चन्द सरकारी कर्मचारियोंके अपराधके लिये इस सरकारसे असहयोग करना उनके लिये भूल नहीं है। जो असहयोगी प्रभु ईसामसीहका हवाला देकर असहयोगका समर्थन करना चाहते हैं क्या उनसे यह नहीं कहा जा सकता कि आपको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि छूआछूतके प्रश्नपर प्रभुने क्या कहा था :—"तुम संकुचित हृदयवाले! पहले तू अपनी आंखोंकी धरन निकाल डालो, तब तुझे अधिकार होगा कि तू अपने भाईकी आंखोंकी सुई निकाल सकेगा।" आप इस पत्रका उचित प्रयोग कर सकते हैं।

पूर्ण सद्‌भावके साथ
आपका प्रिय—
एस० गिलेस्पी

इस पत्रको पढ़कर पाठक समझ जायंगे कि रेवरेण्ड गिलेस्पीने इस मामलेको और भी बिगाड़ दिया। मुझे पूर्ण आशा है कि "फजूल खर्च पुत्र" का जो हवाला रेवरेण्ड गिलेस्पीने दिया है उससे प्रत्येक असहयोगी सम्मत होगा और उन शर्तोंके अनुसार आचरण करनेके लिये तैयार हो जायगा। यदि यह फजूल खर्च सरकार बाइबिलके उसी "फजूल खर्च लड़के" के समान हो जाय तो प्रत्येक असहयोगी इससे प्रसन्न

होगा। यदि आनेवाली सरकार भारतीयोंकी भलाई करना चाहती है तो असहयोगी उसकी पूरी सहायता करनेकेलिये तैयार हैं। छूआछूतके सम्बन्धमें मिस्टर गिलेस्पीके विचार ठीक हैं। जिसके सिरपर छूआछूतका पाप सवार है उसे कोई भी अधिकार नहीं है कि वह इस सरकारकी निन्दा करे। यह तो संसार प्रचलित कहावत है कि जो न्याय करना चाहता है उसे अपना हाथ पवित्र रखना चाहिये। मिस्टर गिलेस्पी-को यह बातभी जान लेनी चाहिये कि जो लोग छूआछूतको कायम रखना चाहते हैं वे सहयोगियोंमें हैं। जहां आन्तरिक सुधार नहीं है, वहां असहयोगसे किसी तरहका सरोकार नहीं है।

असहयोगका अन्तस्तल

—:*:—

(सितम्बर ८, १९२०)

मिस अनी मेरी पीटर्सनने मेरे पास एक पत्र भेजा है। पत्रके प्रत्येक शब्द गम्भीर हैं। मैं चाहता हूं कि यंग इण्डिया-के पाठक उस पत्रको पढ़ें। इसलिये उस पत्रको मैंने इस लेखके अन्तमें प्रकाशित कर दिया है। मिस पीटर्सन बहुत कालतक भारतमें रह चुकी हैं उन्हें भारतकी अवस्थाका पूरा ज्ञान है। सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनाके लिये वे अपना

संबंध अपने मिशनसे त्यागनेवाली हैं। उनका यह पत्र व्यक्तिगत था पर उसमें अनेक ऐसी बातें थीं जिन्हें प्रकाशित करना उचित प्रतीत हुआ। इसीलिये मैंने उस पत्रके प्रकाशित करनेके लिये उनसे आज्ञा मांगी और उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

मिस पीटर्सनके पत्रसे सबसे बड़ी बात यह मालूम होती है कि यह असहयोग आन्दोलन किसी जातिविशेषका विरोधक नहीं है, चाहे वह यूरोपीय हो, अंग्रेज हो, या ईसाई हो। यह धर्म और अधर्मका युद्ध है, प्रकाश और अन्धकार युद्ध है।

यह मेरी दृढ़ धारणा है कि वर्त्तमान यूरोप ईश्वर अर्थात् ईसाई धर्मका प्रतिपादक नहीं रहा बल्कि उसमें शैतानकी आत्मा प्रविष्ट हो गई है। और जब शैतान अपना काम ईश्वरके नामपर करता है तो उसकी सफलताकी और भी अधिक सम्भावना रहती है। यही हाल वर्तमान यूरोपका है। वह नाममात्रको ईसाई है पर वह शैतानका सच्चा उपासक हो रहा है। ईसामसीहने कहा था कि यह संभव है कि ऊंट सूईकी छेदमेंसे बाहर निकल जाय पर धनी आदमीका प्रवेश ईश्वरके दरबारमें उतना सहज नहीं है। ईसामसीहका यह कथन सर्वथा सच है। जिन लोगोंको ईसाई धर्ममें दीक्षित होनेका अभिमान है, वे ही ईसाके चेले भौतिकवादसे आत्मवादकी उपासना करना चाहते हैं। इङ्गलैण्डका राष्ट्रीय गीत ही ईसाई धर्मके भावसे शून्य है बलिक उसका विरोधी है। जिस ईसामसीहने अपने अनुयायियोंको

यह उपदेश दिया था कि अपने दुश्मनोंसे उसी तरह प्रेम करो जिस तरह हम अपने शरीरसे प्रेम कर सकते हैं, उसी इसा-मसीहने अपने अनुयायियोंसे यह कभी न कहा होता कि अपनी चालबाजियोंसे उन्हें तंग करो। ईसाई धर्मपर डाक्टर वेलेसने हालमें जो पुस्तक लिखी है उसमें उन्होंने अपना पक्का विश्वास अंकित किया है कि वैज्ञानिक विकासने—जिसकी आज चारों ओर तूती बोल रही है—यूरोपकी आध्यात्मिक उन्नतिमें लेशमात्र भी सहायता नहीं की है। विगत यूरोपीय युद्धने भी भलीभांति दर्शा दिया है कि वर्तमान यूरोपीय सभ्यतामें शैतानकी आत्माका सबसे अधिक अंश है। विजयी राष्ट्रोंने सौजन्यके नामपर मानवी सदाचारके प्रत्येक नियमोंकी अवहेलना की है। प्रत्येक पापाचरणोंका आधार न तो धार्मिक है, न सदाचारिक है बल्कि पूर्णतः भौतिक है। पर भारतके मुसलमान और हिन्दू भारत सरकारके साथ जो युद्ध चला रहे हैं उसमें धर्म और मर्यादा उनके पक्षमें है। अभी लखनऊके कमिश्नर मिस्टर बिलोबीकी हत्याका समाचार मिला है। इस हत्यासे देशको बड़ाही दुःख हुआ है। पर सुननेमें आता है कि उसके तहमें भी धार्मिक भाव है। इस तरहके रक्तपातसे धर्मकी रक्षा करना आवश्यक है। पर जो लोग धर्मके नामपर आर्थिकवादकी उपासना कर रहे हैं उनके हृदयके बीचमें जो खोखलापन है उसकी पोल खोलना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है और जो लोग आर्थिक-वादके मुकाबिले आत्मवादकी अधिक श्रद्धा करते हैं उनके लिये

तो यह और भी आवश्यक है। जो आदमी जानबूझकर पापाचारमें प्रवृत्त है उसे हटाना उतना सहज नहीं है जितना उस आदमीको जो अनजानमें पाप करता है।

पर इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि राष्ट्रमें यदि दोष है तो उस राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिमें भी यही दोष हो। आज यूरोपके हजारों व्यक्ति वहांकी वर्तमान अवस्थाके कहीं आगे बढ़ गये हैं। मैं जो कुछ लिख रहा हूं यूरोपके नेताओंके बारेमें लिख रहा हूं क्योंकि उनके ही द्वारा यूरोपकी असली प्रवृत्तिका पता लगता है। इङ्गलैंड अपने नेताओंके द्वारा भारतीयोंके धार्मिक और राष्ट्रीय भावोंको अपनी चक्कीमें बुरी तरह पीस रहा है। इङ्गलैण्ड आत्मनिर्णयका झूठा ढोंग रचकर मेसोपोटामियाके तेलकी खानोंको हड़पनेकी चेष्टा कर रहा था पर अब लाचार होकर उसे उसका त्याग करना पड़ रहा है। फ्रांसकी वही अवस्था है। वह कैनिबलके निवासियोंको सैनिक शिक्षा दे रहा है। मेंडेटरी अधिकारका दुरुपयोग करके सीरियावालोंको कुचल रहा है। राष्ट्रपति विलसनके निर्णयकी १४ शर्तें हवाकी बातें हो गईं।

भारत आज शान्तिमय अहिंसात्मक असहयोगका संग्राम इन्हीं पापाचारोंके विरुद्ध चला रहा है। मिस पीटर्सन सदृश अंग्रेज रमणी यदि चाहती हैं कि इस तरहकी बुराइयां दूर हो जायं तो इसके लिये उन्हें असहयोगमें योग देना चाहिये। इस्लाम धर्मकी रक्षामें ही संसारके अन्य धर्मों की रक्षा है और भारतकी

प्रतिष्ठाके साथ ही अन्य दुर्बल राष्ट्रोंकी मर्यादाकी रक्षा हो सकती है।

मिस पीटर्सनका पत्र

मद्रास डेनिस मिशनकी मिस पीटर्सनने महात्मा गांधीके नाम निम्न-लिखित पत्र लिखा था। इस पत्रके प्रकाशित करनेमें वे सभी बातें छोड़ दी गई हैं जो महात्माजीसे व्यक्तिगत सम्बन्ध रखती थीं :—

प्रिय गान्धीजी,

आपने मेरा जिस प्रकार स्वागत किया, मेरे साथ जो दया दिखलाई उसके लिये मैं आपकी अतिशय कृतज्ञ हूं। मेरी लेखनीमें शक्ति नहीं कि मैं उस कृतज्ञताका प्रकाश कर सकूं। उस मुलाकातने मेरे भविष्यको बहुत कुछ निश्चित किया। मैंने तनमनसे भारतकी सेवा स्वीकार कर ली है। मैं यह भली भांति जानती हूं कि केवलमात्र ईसामसीहके मैं शरण हूं और उन्हींसे मेरा उद्धार है। मैं अब उनकी शरण छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहती। मैं उन लोगोंकी रक्षाके लिये उनसे प्रार्थना करूंगी जिन्हें इसकी आवश्यकता है। मैं उनसे सानुरोध प्रार्थना करती हूं कि वह हम ईसाइयोंको ऐसी शक्ति दे जिससे हम लोग उसके महत् नामको कलङ्कित न करें, जिस प्रकार मेरे कुछ देशवासी भारतमें कर रहे हैं। एक तरफ तो हम लोग उसके उस त्यागकी दोहाई दे रहे हैं, जिसके द्वारा उसने पापियोंपर विजय पाई और दूसरी ओर हम लोग उसके विचारोंकी हत्या कर रहे हैं। यदि हम लोग उसके सच्चे अनु-

यायी हैं, यदि उसमें हमारी अटल श्रद्धा भक्ति और अमिट विश्वास है तो हमें किसी सांसारिक शक्तिके सामने सिर नहीं झुकाना चाहिये और सदा गरीबों और दीनदुखियोंकी सहायता करते रहना चाहिये। पर हम लोगोंकी यह अवस्था नहीं है। इसलिये इस समय भारतके भविष्यके विकट प्रश्नमें तनमनसे लग जाना हमारे लिये ईसा मसीहके सच्चे अनुयायीका काम है।

मैं अकेली हूं और नाचीज़ हूं। मेरे कहने या करनेका कुछ अधिक प्रभाव नहीं पड़ सकता। हमारे देशवासी जिस तरंग-में आज बह रहे हैं और धर्मसंस्थाके लोग भी जिस तरह उनके साथी हो रहे हैं उसका विरोध मैं अकेली कर रही हूं। इसको कहाँ सुनवाई हो सकती है। यदि और भी अधिक संख्या होती तोभी किसी तरहके लाभकी सम्भावना नहीं की जा सकती। पर इससे क्या। यदि मेरा आत्मा यही कहता है कि संसार गलत मार्गपर चल रहा है तो मैं अकेली उसका विरोध करनेसे नहीं हिचकती।

इसलिये जब मैं लोगोंको यह कहते सुनती हूं कि असह-योग आन्दोलनको जारी करनेसे पहले आपको कांग्रेसके निर्ण-यकी प्रतीक्षा कर लेनी थी तो मुझे हँसी आती है। आपकी आत्माने देशके लिये एक सन्देश उपस्थित किया है। कांग्रेस आपके देशकी आवाज है अर्थात् वह आपके देशके अधीन है न कि उसके ऊपर है। इसलिये केवल बहुमत होनेसेही किसी-के हाथमें कोई विशिष्ट अधिकार नहीं आ जाता।

पर हमें बहुमतको अपने साथ लेनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिये। और इस समय यह काम सहज प्रतीत होता है क्योंकि कांग्रेस आपके साथ है। यदि आप मौन धारण करके बैठ गये होते और जनताके मनपर अपना प्रभाव न डाले होते तो क्या कांग्रेसका इस निर्णयपर पहुंचना सहज था? मेरी धारणा इसके विपरीत है।

जबतक आपके विषयमें मैं कुछ नहीं जानती थी मुझे ही इस बातका सन्देह था। पर आपसे मिलकर मेरी आशंका दूर हो गई। आपने मेरे दिलमें जमा दी। मेरे इस कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि खिलाफतकी समस्याका मेरे हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। यह असम्भव है। मेरे हृदयपर इस बातका बड़ा प्रभाव पड़ा है कि यदि आप मुसलमानोंकी न्या-योचित मांगकी पूर्तिके लिये मुसलमानोंको रक्तपात करनेसे रोक सके तो आप भारतका बड़ा उपकार करेंगे। यदि आपने हिन्दू और मुसलमानोंके मेल करानेमें सफलता प्राप्त की तो आपके हाथमें जबर्दस्त शक्ति आ जायगी। मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि भारतीय ईसाई भी आपका साथ दें क्योंकि इससे न केवल उनके देशकी मर्यादाकी रक्षा होगी बल्कि उनके धर्म और ईसाकी भी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। चाहे तुर्कोंके लिये मेरे हृदयमें कोई भाव न हों पर भारतके लिये मेरे हृदयमें सदिच्छायें भरी हैं। मैं देखती हूं कि भारतवर्ष इस समय जिस प्रकार कुचला जा रहा है उससे मुक्ति पानेके लिये

उसके पास असहयोगके अतिरिक्त अन्य कोई भी अस्त्र नहीं है।

मैं आपको विश्वास दिलाना चाहती हूं कि डेनमार्कके बहुतसे निवासी तथा संसारके प्रत्येक सच्चे ईसाई आपके इस संग्रामसे सच्ची सहानुभूति दिखावेंगे। ईश्वर न करे कि इस तरहका मुकाबला हिंसा और अहिंसा, झूठ और सत्य, पाप और पुण्य, अन्धकार और प्रकाश, बल और आत्माके युद्धमें जातपातका कोई प्रश्न उठे। इस तरहके भाव नहीं उठ सकते। इस तरहका युद्ध अखिल ब्रह्माण्डमें उठ रहा है। हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि हमारी संख्या कम है। ईश्वर हमारे साथ है।

देखनेमें तो पशुबलकी ही विजय प्रतीत होती है पर ऐसा कभी होता नहीं। अन्तिम विजय सत्यको ही मिलती है चाहे इसके लिये अधिक यातनायें भले ही भोगनी पड़ें। ईसा मसीहकी विजय कब हुई? जब वह फांसीपर लटका दिया गया। दुर्बल ही अच्छे हैं क्योंकि उन्हींके लिये इस पृथ्वीका राज्य बना है।

मैंने आपका मद्रासका भाषण पढ़ा। मुझे वह इतना उपकारी प्रतीत हुआ कि मैंने सोचा कि यह विविध भाषाओंमें पुस्तकाकार निकल जाना चाहिये। और इसे भारतके कोने कोनेमें बांटना चाहिये।

असहयोग आन्दोलन आरम्भ करके उसे इस तरह चलाना

चाहिये जिससे उसकी सफलतामें किसी तरहकी कसर न पड़े। यदि ऐसा न हुआ तो मुझे भय है कि इसका परिणाम बड़ा ही विकट और भयानक होगा! पर इसकी सफलता एक या दो दिनोंमें नहीं हो सकती। इसके लिये बहुत समय चाहिये और यदि आप जल्दी सफलता न पा सकें तो आपको निराश नहीं होना चाहिये। जिनके हृदयमें आशा भरी है उन्हें शीघ्रताकी कोई आवश्यकता नहीं।

सरकारी स्कूलों और कालेजोंका वहिष्कार मेरी समझमें सबसे बड़ी बात है। यदि हमलोग सरकारकी सहायता लेते हैं तो हमें उसके क्रमके अनुसार चलना होगा, उसके बनाये नियमोंका पालन करना होगा। आप तथा हमलोग—जिन्हें भारतसे सच्चा प्रेम है—इस बातको भलीभांति समझ गये हैं कि जिस तरहकी शिक्षा सरकारी शिक्षालयोंमें दी जा रही है वह भारतीयोंके लिये उपयोगी नहीं है और उसके द्वारा वे अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। इस आन्दोलनसे एका-एक आपसे आप राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापना हो जायगी। चाहे राष्ट्रीय स्कूल थोड़े ही हों। पर उनमें आत्मत्यागका सच्चा भाव हो। सच्ची और राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा ही भारतका उद्धार हो सकता है। इसका मेरे ऊपर इतना असर इसलिये पड़ा है कि मैं उस नगरकी रहनेवाली हूं जहांके लोगोंमें राष्ट्रीय शिक्षाका बड़ा महत्व है। डेनमार्कके राष्ट्रीय स्कूल—जिनके बारेमें आपने बहुत सुना होगा—वहांके राजाके

विरुद्ध ही खोले गये थे। पर सञ्चालकोंकी विजय हुई और उन्होंने राज्यकी मर्यादा स्थापित की। मैं आपके लिये ईश्वरसे हृदयसे प्रार्थना करती हूं।

आपकी—
अनी मेरी पीटर्सन

असहयोगका रहस्य

(अक्तूबर २०, १९२१)

इसमें कोई शक नहीं कि असहयोग एक ऐसी तालीम है जिसके द्वारा लोकमत विकसित और निश्चित होता जा रहा है। और ज्योंही उसका इतना संगठन हुआ कि उसके द्वारा मजबूती-के साथ कदम बढ़ाया जा सके, बस त्योंही स्वराज्यको मौजूद समझिये। अशान्त वायुमण्डलमें लोकमतका संगठन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार वे लोग कि जिन्हें मोपलाओंने जबरन् कलमा पढ़ाया, मुसलमान नहीं माने जा सकते, उसी प्रकार जो लोग अपनेको शौकसे या दबावसे असहयोगी कहते हैं, वे सच्चे असहयोगी नहीं हैं। वे सहायक नहीं, उलटा बाधक हैं। अगर हम लोगोंको जबरन् अपनी इच्छाके अनुसार चलाने लगे तो हमारा यह जुल्म होगा और वह नौकरशाहीके अङ्गभूत मुट्ठी भर अंग्रेजोंके जुल्मसे भी निहायत खराब होगा। उनका

भय तो एक मुट्ठीभर लोगोंका भय है, जो प्रतिकारका सामना करते हुए अपने अस्तित्वके लिये लड़ते हैं। पर हमारा भय तो बहुसंख्यक लोगोंका भय होगा इसलिये पहलेसे ज्यादह बदतर और वाकई ज्यादा ईश्वर-शून्य होगा। अतएव हमें अपने आन्दोलनमेंसे हर किस्मके जब्र और दवाबको बिलकुल हटा देना चाहिये। अगर हम केवल मुट्ठीभर ही हों, पर हों असहयोग सिद्धान्तके पक्के पाबन्द, और दूसरे लोगोंका मत हमारे मतके पक्षमें करते हुए हमें प्राण भी गंवाना पड़े तो उस हालतमें सचमुच हमसे अपने कार्य्यकी रक्षा बन पड़ेगी और उसी समय हम उसके प्रतिनिधि कहे जा सकेंगे। तोभी अगर हम दवाब डाल कर लोगोंको अपनी सेनामें दाखिल करें तो ऐसा करना मानों अपने कार्यको भ्रष्ट करना और ईश्वरको न मानना है। और अगर उस समय हम सफल होते हुए दिखाई दिये तो वह सफलता अधिक बुरी भीतिकी स्थापनाकी ही सफलता है।

अगर हम असहिष्णुता दिखाकर दूसरोंको अपना मत प्रगट करनेसे रोकें या दबावें तोभी हमारा काम बिगड़े बिना न रहेगा। क्योंकि उस अवस्थामें हम यह कभी न जान सकेंगे कि कौन तो हमारे साथ हैं और कौन खिलाफ हैं। इसलिये सफलताकी सबसे अनिवार्य शर्त यही है कि हम लोगोंको अपनी राय आजादीके साथ दिल खोलकर, प्रगट करनेके लिये उत्साहित करें। हमें अपने वर्तमान 'अधीश्वरों' से अगर कोई जरा भी सबक सीखना है तो वह यही है। उनके ताजीरात

हिन्दमें उन खयालतके लिये कड़ीसे कड़ी सजायें रखी गई हैं जिन्हें वे पसन्द नहीं करते हैं और उन्होंने हमारे कुछ बड़ेसे बड़े शरीफ देशभाइयोंको महज इसलिये गिरफ्तार किया है कि उन्होंने अपनी सच्ची राय प्रगट की है। हमारा यह असहयोग उस शासन-प्रणालीका खुलमखुल्ला पक्का प्रतीकार ही है। अतएव हम खास इसी लड़ाईमें जो कि मत प्रकाशनकी कैदके खिलाफ लड़ रहे हैं, खुद ही दूसरोंको अपनी राय माननेपर मजबूर करनेका अपराध न करें। इन विचारोंके प्रकट करनेका कारण यह है कि जब कोई सज्जन हमारे मतके प्रतिकूल अपनी राय प्रगट करते हैं तब उनका नाम प्रकाशित करनेमें मुझे बड़ा पशोपेश होता है। मैं उन्हें इस खयालसे प्रगट नहीं करता हूं कि इससे उन लोगोंके चित्तमें क्रोध होगा जो उन मतोंको नहीं चाहते हैं। हमको इतना साहस और उदारता अवश्य रखनी चाहिये कि हम खुद अपने प्रति तथा अपने विषयमें कही गई तमाम गन्दीसे गन्दी बातोंको सुन और पढ़ सकें। इससे हमें उनके विचारोंको बदलनेका मौका मिलता है। मैं यहां एक सज्जनकी भेजी हुई एक ऐसी ही डांटदार प्रश्न-मालिका उपस्थित करता हूं। प्रश्न हमारे प्रचलित आन्दोलनके सम्बन्धमें किये गये हैं और जन-समाजके सामने पेश किये जानेके योग्य हैं। लेखकने आरम्भ इस प्रकार किया है—"आप इस बातको तसलीम करेंगे कि आपको माननेवाले और न माननेवाले दोनों आपकी राजनैतिक हलचलके उद्देशके सम्बन्धमें किसी निर्णय

पर नहीं पहुंचे हैं। इस अवस्थामें क्या आप नीचे लिखे प्रश्नोंका उत्तर देकर उनकी बुद्धिपर प्रकाश डालनेकी उदारता दिखावेंगे?

सवाल—क्या आप वाकई महात्मा हैं?

जवाब—मुझे तो नहीं मालूम होता कि मैं हूं। हां, यह मैं जरूर जानता हूं कि मैं ईश्वरकी सृष्टिका एक विनम्र जीव हूं।

स०—अगर हां, तो क्या आप 'महात्मा' शब्दकी परिभाषा बतावेंगे?

ज०—किसी महत्मासे मेरा परिचय नहीं, अतएव मैं उसका लक्षण नहीं बता सकता।

स०—अगर नहीं, तो क्या कभी आपने अपने अनुयायियोंसे कहा है कि 'मैं महात्मा नहीं हूं।'

ज०—ज्यों ज्यों मैं इसके खिलाफ आवाज उठाता हूं त्यों त्यों उसका प्रयोग अधिकाधिक ही किया जाता है।

स०—क्या साधारण जनता आपके 'आत्म-बल' को प्राप्त कर सकती है?

ज०—उसके पास तो वह पहले ही बहुतायतसे है। एक दफा फरासीसी वैज्ञानिकोंका एक दल ज्ञानकी खोजमें निकला और घूमता-फिरता भारतमें पहुंचा। उन्होंने अपनी अपेक्षाके अनुसार उसे विद्वान्मण्डलीमें पानेका भगीरथ प्रयत्न किया: पर कृतकार्य न हुए। पर उन्हें अचानक वह एक नीच जातिके झोपड़ेमें मिल गया।

स०—आप कहते हैं कि यह 'यन्त्र-सामग्री' तो सभ्यताके लिए एक बला हो गई है। तब फिर आप रेलगाड़ी और मोटरमें क्यों सफर करते हैं ?

ज०—कुछ बातें ऐसी हैं जिनके फन्देसे, प्रयत्न करते हुए भी एक बारगी नहीं छूट सकते। यह पार्थिव शरीर मिट्टीका ढांचा ही जिसमें कि मैं बन्द कर दिया गया हूं, मेरे जीवनके लिए एक बला है; परन्तु मैं उसको सहन करनेके लिए मजबूर हूं, और उसका लतियल हो गया हूं जैसा कि ये महाश्य जानते ही हैं—पर क्या लेखकको दर हकीकत इस बातमें शक है कि 'इस पिछले महाभारतमें जो नर-संहार हुआ उसके लिए यह 'यन्त्र-युग' ही जवाबदेह है ?' विषाक्त गैस तथा अन्य दूषित वस्तुओंने एक इञ्च भी हमारी प्रगति नहीं की है।

स०—क्या यह बात सच है कि पहले आप रेलगाड़ीके तीसरे दरजेमें मुसाफिरी करते थे और अब आप स्पेशल ट्रेनों और फर्स्ट क्लासमें घूमते हैं ?

ज०—अफसोस! इन महाशयको सही सही खबर मिल गई स्पेशल ट्रेनोंके लिए तो यह महात्मापन जवाबदेह है और सेकंड क्लास तक पहुंचनेके इस अधःपातके लिए यह पार्थिव कलेवर।

स०—काउंट टालस्टायको आप किस दृष्टिसे देखते हैं ?

ज०—मैं उनको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखता हूं। अपने जीवनकी कितनी ही बातोंके लिए मैं उनका ऋणी हूं।

स०—आप स्वराज्यकी व्याख्या क्यों नहीं करते? क्या आप यह नहीं समझते कि कमसे कम अपने अनुयायियोंके लिए तो आप इस शब्दकी व्याख्या करनेके लिए वाध्य हैं?

ज०—पहली बात तो यह है कि यह शब्द ऐसा है कि जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। दूसरे, अगर प्रश्नकर्त्ता 'यंग इंडिया' की फाइल देखेंगे तो उसमें उनको अमली परिभाषा मिल जायगी। तथापि मैं यहां और भी व्याख्या करनेका प्रयत्न करता हूं। स्वराज्यका अर्थ है—मत प्रगट करने और कार्य करनेकी पूरी आजादी, बशर्तें कि दूसरेके मत-प्रकाशनके और कार्य करनेके अधिकारमें दस्तन्दाजी न की जाय। इसलिए इसके यह मानी है कि आमदनी और खर्चके तमाम मदोंपर हिन्दुस्तानियोंका पूरा कब्जा रहे और न दूसरे देश उसके काममें न वह उनके काममें दस्तन्दाजी कर सके।

स०—जब स्वराज्य प्राप्त हो जायगा तब आप क्या करेंगे?

ज०—मैं तो बड़ी लम्बी-चौड़ी छुट्टी लेना पसन्द करूंगा, जो शायद समुचित भी हो।

स०—स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर मुसलमानोंके राजनैतिक और धार्मिक हितोंकी हिफाजत किस तरह की जायगी?

ज०—उनके लिए किसी तरहकी हिफाजत की जरूरत नहीं रहेगी, क्योंकि हरएक हिन्दुस्तानी दूसरे हिन्दुस्तानीकी तरह ही आजाद रहेगा और उस हालतमें परस्पर सहिष्णुता, सम्मान और प्रेम होगा इसलिए परस्पर विश्वास भी होगा।

स०—क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि ३१ अक्तूबर १६२१ ई० या इस सालके अन्दर जो समय आप मुकर्रर कर रहे हैं, उस दिन सरकार अपना बोरिया-बिस्तरा बांध कर हिन्दुस्तानसे रवाना हो जायगी ?

ज०—सरकार तो एक प्रणाली है और मैं जरूर मानता हूं कि अगर भारतके हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई और यहूदी चाहें तो वह ३१ अक्तूबरके पहले ही मटियामेट हो सकती है। मैं तो अब भी यह आशा कर रहा हूं कि वे इस वर्षके समाप्त होनेके पहले ही इसका नाश कर देंगे। लेकिन उस नई शासन-प्रणालीमें किसी भी अंगरेज बच्चेको, जो हिन्दूस्तानमें उसका वफादार नौकर बन कर रहना चाहेगा, मुत्लक हिन्दुस्तान छोडनेकी जरूरत नहीं।

स०—क्या आप ऐसा खयाल नहीं करते कि सरकार इतनी कमजोर है कि वह आपके आन्दोलनको नहीं रोक सकती ?

ज०—हां, मैं जरूर ही ऐसा मानता हूं और वह तो दिन पर दिन कमजोर होती जा रही है।

स०—अगर खुद आपके लड़के पर (ईश्वर न करे) राजद्रोह का नहीं, पर खूनका मामला चलाया जाय, तो क्या आप उसको बिना ही सफाईके रहने देंगे ?

ज०—हां, वाकई मुझे भरोसा है, कि ऐसा करनेका साहस मुझमें है। अपने कितने ही प्रिय मित्रोंको ऐसी सलाह देनेकी कठोरता मैंने की है। और इसके पहले ही मैंने आन्ध्र

जिलेके अपने एक प्रिय मित्रको सलाह दी है कि आप अपने दीवानी मुकद्दमेमें हरगिज सफाई न दें-फिर आपकी चाहे तमाम कीमती जायदाद पर पानी क्यों न फिर जाय। यह दीवानी दावा उनपर महज राजनैतिक मत्सरके कारण दायर किया गया है।

स०—अगर कोई शख्स (मिसालके तौरपर) आपके लड़केके कुछ रुपये धोखा देकर छीन ले और रफूचक्कर हो जाय तो वह क्या करेगा ?

ज०—मेरा लड़का, अगर एक अच्छा असहयोगी है, तो निश्चय ही रुपये उस चोरके पास रहने देगा। नौ महीने पहले मौलाना शौकत अली के ६००) किसीने चुरा लिये। वे चुराने-वाले शख्सको जानते भी थे। पर उन्होंने उसका खयाल ही छोड़ दिया।

स०—आपके सत्याग्रहका पंजाब पर क्या असर हुआ ?

ज०—सर माइकल ओडायरने सत्याग्रहके सन्देशको पंजाब-में नहीं पहुंचने दिया। इससे कुछ पंजाबी लोग उत्तेजित हो गये ; और कुछ लोग अपनेको काबूमें न रख सके। सर माइकल ओडायर तो उनसे भी ज्यादा भड़क उठे। और अपने सहायकके द्वारा बेगुनाह लोगोंको कटवा डाला। लेकिन सत्याग्रह तो एक बड़ी ताकतवर पुनर्जीवन देनेवाली पौष्टिक दवा है और अब पंजाबमें वही सजीविता दिखाई देती है जो भारतके दूसरे प्रान्तोंमें है और वहांके लोगोंके तेज मिजाज होते हुए भी वह ऐसा

आत्मसंयम दिखला रहा है, जो दूसरे प्रान्तोंके लिये डाह करने योग्य है।

स०—क्या आप वाकई मानते हैं कि यह असहयोग शान्तिमय बना रह सकता है?

ज०—जरूर। सिन्ध, करनाटक और पूर्वबंगालमें, गिरफतारियोंके समय और बाद लोगोंने जो आश्चर्यजनक संयम दिखलाया है वह इस बातका सबूत है।

स०—हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बना लेने और उनके घरोंमें लूट-खसोट मचानेका प्रभाव हिन्दू-मुसलमानकी एकता पर कैसा पड़ा है?

ज०—इससे हिन्दुओंके धैर्यको गहरा धक्का पहुंचा है; परन्तु उन्होंने उसे सहन कर लिया है। उनके धीरजका ज्यों का त्यों बना रहना साबित करता है कि इस एकताका आधार ज्ञान है। मोपलाओंकी इस धर्मान्धताको कोई मुसलमान अच्छा नहीं कहता।

स०—मलाबारमें जो यह हिन्दू-मुसलमान एकतामें बिगाड़ हुआ उसका वास्तविक कारण क्या है?

ज०—जहां उत्पात हुआ है वहां एकता भंग नहीं हुई। मोपलाओंने आजतक कभी हिन्दुओंको अपना भाई न समझा होगा। उत्पातके कारण वही हैं जो १९१९ में पंजाबमें थे। मलाबारमें भी अभी हालमें असहयोगका सन्देश बिलकुल अनिश्चित रूपसे पहुंच पाया था कि हाकिमोंने उसकी गति बन्द कर

दी। मोपला लोग मलाबारके हिन्दुओंके साथ कभी खास तौरपर मेल-जोलसे नहीं रहे। वे पहले भी उन्हें लूट खसोट चुके हैं। इस्लामके सम्बन्धमें उनकी कल्पना बड़ी अपरिपक्व है। सरकारने उन्हें बिलकुल अंधेरेमें रखा और न मुसलमानोंने और न हिन्दुओंने उनकी हालत पर ध्यान दिया। वे जंगली और बहादुर परन्तु अज्ञान हैं। इससे उन्होंने खिलाफतके ध्येयको समझनेमें गलती कर दी और जंगलीपन एवं बेरहमीका यह धर्म-विरुद्ध काम कर बैठे। मोपलाओंके इस वर्तमान व्यवहारको देख कर इस्लाम या भारतके शेष मुसलमानोंकी पहचान करना अनुचित है।

स०—क्या आप बता सकते हैं कि आपने जो खिलाफतको और पंजाबके अत्याचारोंको एक सूत्रमें बांध दिया इसका क्या कारण है?

ज०—खिलाफतके अन्यायका जन्म पंजाबके अत्याचारोंके पहले हुआ है और मैंने उसे १९१८ में देहलीकी युद्ध परिषद्‌में अपनाया। (बड़े लाटके नाम मेरी खुली चिट्ठी देखिए) पंजाबके अन्यायको निश्चित स्वरूप मिलनेके पहले ही १९१९ में देहलीमें असहयोगका ख्याल उठा। जब यह साफ साफ पाया गया कि पंजाबके अत्याचारोंके लिए भी खिलाफतकी ही तरह तेज इलाजकी जरूरत है तब दोनोंकी जोड़ मिला दी गई।

स०—क्या आप बता सकते हैं कि जब कि दूसरे मुसलमानी

देशोंके मुसलमान उसकी चिन्ता करते हुए नहीं दिखाई देते तब भारतके ही मुसलमान क्यों जोश दिखाते हैं ?

ज०—मैं यह बात नहीं जानता कि भारतके बाहरके मुसलमान खिलाफतकी चिन्ता नहीं रखते; पर अगर वे नहीं करते हैं और भारतीय मुसलमान करते हैं तो मैं इसे इस बातका सबूत समझता हूं कि भारतके मुसलमानोंमें बाहरी मुसलमानोंकी अपेक्षा धार्मिक चैतन्यका अधिक विकास हुआ है।

स०—जब कि तुर्किस्तानके सुलतानने मुसलमानोंके तीर्थ-स्थानोंकी रक्षा की ही नहीं तब भी क्या वे खलीफा माने जानेका हक रखते है ?

ज०—इस सवालका जवाब देना एक हिन्दूके लिए कठिन ही है। तथापि अगर मैं उत्तर देनेकी धृष्टता करू तो तुर्कोंने खिलाफतकी रक्षा सैकडों वर्षोंतक बड़ी दिलेरीके साथ की है और इसीलिए उसपर उनका अधिकार है। सुलतानने चाहे गफलत की हो, पर तुर्कोंने नहीं की। खिलाफत आन्दोलन किसी व्यक्तिके लिए नहीं है; बल्कि एक भावनाके लिए है, जो कि भौतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक तीनों है। यदि तुर्क उसकी रक्षा नहीं कर सकते, अगर दुनियाके मुसलमान अपने मत-बल या सक्रिय सहानुभूतिके द्वारा तुर्कोंके कन्धेसे कन्धा नहीं भिड़ाते हैं तो इससे दोनोंकी ऐसी हानि होगी कि फिर उसका सुधार कभी न हो सकेगा। और अगर ऐसा हुआ तो यह सारे संसारके लिए एक घोर विपत्ति होगी। क्योंकि मेरा यह

विश्वास है कि इसलाम भी दुनियामें अपना वैसा ही स्थान रखता है जैसा कि ईसाई धर्म तथा दूसरे मजहब रखते हैं। शूरता यही चाहती है कि इस विपत्तिके मौके पर तुर्कोंके पक्ष-की पुष्टि की जाय।

स०—क्या अर्थ-शास्त्रका यह नियम कि मनुष्यको अच्छीसे अच्छी और सस्तीसे सस्ती चीजेंही खरीदना चाहिए, गलत है?

ज०—आधुनिक अर्थ-शास्त्रियोंका बनाया यह एक अत्यन्त निठुर सिद्धान्त है। और न हम किसी ऐसे वाहियात विचारसे मानवी व्यवहार चलातेही हैं। अंगरेज लोग कोयलेकी खानों पर (मिसालके तौर पर) इटालीके सस्ते लोगोंको छोड़ कर अधिक वेतन देकर अंगरेजको ही नौकर रखते हैं और यह ठीक भी है। इङ्गलैंडमें मजदूरी सस्ती करनेकी जरा भी कोशिश करनेका परिणाम क्रांति ही होगा। किसी ज्यादा वेतन पाने वाले परन्तु वफादार नौकरको इसलिए निकाल देना कि दूसरा उससे अच्छा और सस्ता नौकर मिल सकता है, मेरी नजरमें तो पाप है। फिर यह दूसरा नौकर चाहे उतना ही वफादार भी क्यों न हो। जो अर्थ-शास्त्र नीति और सदाचारका तथा मनुष्य-की भावुकताका ख्याल नहीं करता वह एक ऐसे मोमके पुतलेकी तरह है जो दिखाई तो सजीवसा देता है पर जिसमें जानका पता कोसों तक नहीं है। जब जब ऐसा आनबानका अवसर आ उपस्थित होता है तब ऐसे नये बनाये अर्थशास्त्रके नियम व्यवहारमें तोड़ डाले गये हैं और जो राष्ट्र या व्यक्ति उन्हें अपने

व्यवहारके मूलभूत सिद्धान्त मानते हैं, उनका सर्वनाश हुए बिना नहीं रहता। मुसलमान लोग अपनी धर्म-विधिके अनुसार पकाये खानेको ज्यादा कीमत दे कर लेते हैं और हिन्दू लोग उस भोजनको पानेसे इनकार कर देते हैं जो शुद्धता और पवित्रताके साथ न बनाया गया हो। दोनोंके इस संयममें जरूर कुछ उच्चता और श्रेष्ठता है। ज्योंही हम इङ्गलैंड और जापानका सस्ता कपड़ा खरीदने लगे, बस चौपट हो गये। अब हममें तभी जान आ सकती है जब हम खुद अपने ही पड़ोसियोंके द्वारा उनकी झोंपड़ियोंमें तैयार हुए कपड़ेको खरीदनेकी धार्मिक आवश्यकताको समझें और उसकी कद्र करें।

स०—क्या 'पहरा' रखना अहिंसात्मक है?

ज०—अधिकांश जगह वह अवश्य ही शांतिमय रहा है। पहरा रखनेमें हिंसाकी ओर प्रवृति हो जाना बहुत ही आसान बात तो है; परन्तु स्वयं-सेवकोंने सब जगह बहुत ही संयमसे काम लिया है।

स०—जब कि देशमें कितने ही लोग अर्धनग्न रहकर अपना जीवन बिता रहे हैं और इस जाड़ेके ख्याल-मात्र से उनके बदन ठिठुरने लगते हैं, ऐसी दशामें भी जब आप कपड़ोंकी होलियां जलाते हैं तब क्या आप इसकी खूबी (आध्यात्मिक अथवा जो कोई हो) समझते हैं?

ज०—हां, समझता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि उनकी अर्द्धनग्नताका कारण है—हमारे भारतीय जीवनके इस मूलभूत

सिद्धान्तकी अक्षम्य अवहेलना कि "जिस प्रकार हम अपने ही घरका बनाया भोजन पाते हैं उसी प्रकार हमें हाथका ही कता और बनाया कपड़ा भी पहनना चाहिए।" अगर मैं उन्हें अपने त्याग किये हुए विदेशी कपड़े दूं तो इससे उनकी व्यथाकी अग्र और भी बढ़ जायगी। लेकिन इन होलियोंसे उत्पन्न होनेवाली गरमी अगले जाड़े तक ठहरेगी और अगर ये होलियां बराबर तेजोके साथ होती ही रहीं-यहां तक कि एक भी विदेशी कपड़ेका टुकड़ा जलनेसे बाकी न रहे, तो फिर वह गरमी चिरस्थायिनी हो जायगी और फिर आगे आने वाली हरएक जाड़ेकी मौसम इस देशको अधिक ही अधिक बल-वीर्यवान् देखेगी।

कविवरकी चिन्ता

(जून १, १९२१)

१—रवीन्द्र बाबूका पत्र (१)

इस समय हिन्दुस्तानसे मेरे पास दिन दिन अधिक समाचार और समाचारपत्रोंके कटे हुए टुकड़े आ रहे हैं। इन्हें पढ़नेसे मेरे चित्तमें बड़ा क्षोभ और खेद हुआ है। मेरे मनमें यह शङ्का हो रही है कि मेरे लिए ऐसा समय आनेवाला है जब मुझे बड़ा हार्दिक कष्ट सहन करना पड़ेगा। मैं शक्ति भर

इस बातकी कोशिश कर रहा हूं कि मेरे देशमें एक छोरसे दूसरे छोरतक जो गहरा जोश फैला हुआ है उसके अनुकूल मैं अपने हृदयको बना सकूं। पर मेरा हृदय मुझे उसमें शामिल होनेसे रोकता है। मैं बहुत चाहता हूं कि इस रुकावटको दूर कर दूं, पर मेरा हृदय मुझे इसमें सहायता नहीं देता। लेकिन निराशारूपी अंधकारसे आशाका हलका प्रकाश उदय होकर मुझे बता रहा है कि तुम्हारा स्थान संसाररूपी समुद्रके किनारेपर मनुष्यमात्रके बीचमें हैं, वहीं तुम्हें शान्ति मिलेगी। और वहीं मैं भी तुम्हारे साथ रहूंगा।" इसी लिए मैं इस समय कई सर्वथा नये प्रकारके छन्द निकालनेकी कोशिशमें लगा हुआ था। यह सब बहुत तुच्छ बातें हैं जो समयके प्रवाहमें आप ही बह जायंगी। लेकिन जब मैं खेल खेलता हूं तो कुल सृष्टि आनन्दमें मग्न हो जाती है। क्या फूल और पत्तियां ईश्वरकी बनायी हुई कविता नहीं हैं? क्या मेरा अनन्त ईश्वर समय नष्ट करनेवाला नहीं है? ईश्वर परिवर्तनको आंन्धीमें तारों और नक्षत्रोंको फेंकता हैं। वह समयके प्रवाहमें अपनी कल्पनाओंसे भरी हुई युगरूपी कागजकी नावोंको बहाता है। जब मैं उसे खिजाता हूं और उससे प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे अपना एक छोटा अनुयायी बना रहने दे और अपने खेलकी नावोंपर मेरा भी कुछ माल लदने दे तो वह मुस्कुराता है और मैं उसके कपड़ेका किनारा पकड़कर उसके पीछे पीछे चलता हूं। पर भीड़के बीचमें चारों

ओरसे दबाये जाते हुए और पीछेसे धक्का खाते हुए मैं कहां पर हूं ? मेरे चारों ओर यह आवाज़ कैसी है ? अगर यह किसी गीतकी आवाज़ है तो मेरा सितार भी इसके स्वरमें स्वर मिला सकता है और मैं भी गानेमें शरीक हो सकता हूं क्योंकि मैं भी एक गवैया हूं, लेकिन यह अगर आवाज़ गानेकी नहीं बल्कि शोर गुलकी है तो मेरी आवाज़ टूट जायगी और मैं भौचक्का हो जाऊंगा। मैं इतने दिनोंसे असहयोगमें अपनी रुचिके अनुसार मधुर राग सुननेकी कोशिश कर रहा हूं। इसके लिए मैं सदा अपने कान खोले रहता हूं, पर असहयोगमें इतना ज्यादा शोर गुल है कि उसमें मुझे किसी गीतका आनन्द नहीं मिलता। उसका उद्देश्य बनाना नहीं बल्कि बिगाड़ना है। इसलिये उसके शोर गुलसे मुझे बड़ा खटका होता है और मैं अपने हृदयसे कहता हूं!—"अगर तुम अपने देशके ऐसे नाज़ुक वक्तमें अपने देशवालोंके साथ पैर नहीं बढ़ा सकते तो यह मत कहो कि मैं ठीक रास्तेपर हूं और बाकी सब गलत रास्तेपर हैं। तुम्हें सिर्फ यह चाहिए कि सिपाही बननेका दावा छोड़ दो, जाओ एक कोनेमें बैठकर कविता करो और जनताकी घृणा तथा अपमान सहनेको तैयार रहो।"

एक महाशयने इस आन्दोलनके पक्षमें अक्सर मुझसे यह कहा है कि आरम्भमें किसी आदर्शको स्वीकार करनेकी अपेक्षा अस्वीकार करनेका जोश अधिक प्रबल रहता है। यद्यपि वा-

स्तवमें बात ऐसी ही है पर मैं इस बातको सत्य नहीं मान सकता। हमें चाहिए कि हम अपने साथियोंको हमेशाके लिये चुन लें, क्योंकि वे हमारा साथ उस समय भी नहीं छोड़ते जब कि हम उनका साथ छोड़ना चाहते हैं। अगर हम एक बार भी नशा करके अपनेमें ताकत लाना चाहते हैं तो फिर बादको जब उस नशेकी खुमारी उतरती है तो हमारी रही सही ताकत भी जाती रहती है। इसके बाद हम शराब रूपी राक्षसकी शरणमें बारम्बार जाते हैं और उसके ज़रियेसे बरबादी करते हैं।

भारतवर्षमें ब्रह्म-विद्याका उद्देश्य मुक्ति और बौद्ध धर्मका निर्वाण रहा है। शायद यह कहा जाय कि ब्रह्मविद्या और बौद्ध धर्म दोनोंका उद्देश्य एक ही है। हां, दोनोंने एकही उद्देश्यके अलग अलग नाम रख लिये हैं, दोनों नामोंसे मनुष्यकी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियोंका पता लगता है। दोनों नाम सच्चाईकी ख़ास ख़ास शक्लोंपर ज़ोर देते हैं। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मंडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण सत्यके खंडनात्मक पक्षकी ओर खींचता है। बुद्धने अपने कुल उपदेशोंमें ॐ की सच्चाईके बारेमें मौन धारण किया है। उनके उपदेशोंसे यह ध्वनि निकलती कि हम आत्माका नाश करके इस खंडनात्मक मार्गके द्वारा स्वाभाविक तौरपर सच्चाईतक पहुंच सकते हैं। इसलिए बुद्ध भगवानने इस बातपर जोर दिया कि संसार दुःखमय है और इससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है। पर ब्रह्मविद्याने आनन्दपर

ज़ोर दिया है और यह कहा है कि हमारा कर्तव्य इस आनन्दको प्राप्त करना है। ब्रह्म विद्यामें भी यह कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान पानेके लिए आत्मसंयम और आत्मत्यागकी बड़ी ही आवश्यकता है। पर ब्रह्मविद्या ब्रह्मका विचार अपने सामने रखती है। इसका उद्देश्य न केवल अन्तमें ब्रह्मको प्राप्त करना है बल्की यह हर समय ब्रह्मका विचार अपने सामने रखती है, इसीलिए बौद्धयुगसे वैदिकयुगमें जीवनकी शिक्षाका आदर्श भिन्न था। वैदिक युगमें जीवनकी शिक्षाका आदर्श यह था कि जीवनका सुख पवित्र बनाया जाय और बौद्धयुगमें शिक्षाका आदर्श यह था कि जीवनका सुख बिलकुल मिटा ही दिया जाय। हिन्दुस्तानमें बौद्ध धर्मने उचितसे अधिक सन्यास और त्यागका आदर्श लोगोंके सामने रखा था। इस आदर्शका उद्देश्य यह था कि ब्रह्मचर्य्य, आत्मसंयम और भिन्न भिन्न प्रकारसे जीवनकी शक्तियां नष्ट की जायँ। किन्तु ब्राह्मणोंका वाणप्रस्थजीवन मनुष्यके सामाजिक जीवनके विरुद्ध नहीं बल्कि उसमें सहायता पहुंचानेवाला था। जिस तरहसे कि संगीतमें तम्बूरेका काम यह है कि वह गानेके समय प्रधान स्वरोंको निश्चित करे और गानेवालेको बेताल न होने दे उसी तरहसे वैदिक कालका वाणप्रस्थ जीवन भी सामाजिक जीवनको नियमबद्ध करता था और उसे इधर उधर भटकनेसे रोकता था। वाणप्रस्थाश्रम आनन्दमें अथवा आत्माके सङ्गीतमें मग्न रहता था। वाणप्रस्थ आश्रमको सर-

लता इस बातमें नहीं थी कि जीवन नष्ट कर दिया जाय बल्कि इसमें थी कि सुमार्गमें लगाया जाय।

असहयोगका आदर्श राजनैतिक संन्यास है। पर हमारे विद्यार्थी इसमें अपना बलिदान क्यों कर रहे हैं? इसलिये नहीं कि उन्हें पूर्ण शिक्षा प्राप्त हो बल्कि शिक्षासे बिलकुल रहित होनेके लिये ही इस आन्दोलनको नाशकारी कामोंमें एक विचित्र सुख मिलता है। पर इसका सबसे बुरा परिणाम यह होगा कि भयानक अत्याचार होने लगेंगे, क्योंकि मनुष्यका स्वाभाव जीवनके असली सिद्धान्तोंपरसे विश्वास उठाकर अनर्थकारी तथा नाशकारी कामोंमें विचित्र सुख प्राप्त करता है। यह बात पिछले युद्ध और हालकी दूसरी घटनाओंसे साबित हो गयी है। "नहीं" यह शब्द एकरूपमें त्यागका अर्थ सूचित करता है और दूसरे रूपमें उससे उद्दण्डता या हिंसाका अर्थ निकलता है। जैसे तूफानी समुद्र हिंसाका एक रूप है वैसे रेगिस्तान उसका दूसरा रूप है। यह दोनों जीवनके नाश करनेवाले हैं।

बंगालके स्वदेशी आन्दोलनके जमानेका मुझे वह दिन याद है जब नवयुवक विद्यार्थियोंका एक दल मुझसे मिलनेके लिये आया था। उन लोगोंने मुझसे कहा था कि यदि आप हमें बङ्गालके स्वदेशी आन्दोलनके जमानेकी आज्ञा दें तो हम लोग फौरन अपने स्कूल और कालेज छोड़ दें। मैंने जोरसे उन्हें ऐसा करनेसे मना किया। वे यह खयाल करके कि मेरे हृदयमें मातृभूमिका सच्चा प्रेम नहीं है नाराज हो वहाँ

से चले गये। पर जब यह जोश लोगोंमें पैदा भी न हुआ था उसके बहुत पहिले ही मैंने १०००) एक स्वदेशी भण्डार खोलनेके लिये दिये थे। उस समय मेरे पास अपनी गांठके ५) भी न थे। इसके लिये मुझे बहुत कष्ट सहना पड़ा। मैंने उन विद्यार्थियोंको स्कूल और कालेज छोड़नेकी सलाह इस लिए नहीं दी कि चाहे थोड़ी ही देरके लिए क्यों न हो खाली बैठना मुझे कभी नहीं भाता। मैं उस संन्यास या त्यागसे बहुत डरता हूं जो सच्ची बातोंकी ओरसे आंख बन्द करनेके लिए तैयार रहता है। इन विद्यार्थियोंका जीवन मेरे लिए बड़ी भारी वस्तु थी। मैं उनके सामने केवल एक खण्डनात्मक कार्यक्रम रखनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकता था, क्योंकि इस खण्डनात्मक कार्यक्रमका उद्देश्य यह था कि विद्यार्थियोंका जीवन उन संस्थाओंसे उखाड़ दिया जाय जिनके अनुसार वह बनाया गया है। हां, यह अवश्य है कि वह संस्थायें जैसी चाहिये वैसी नहीं हैं। कोई अच्छा प्रबन्ध किये बिना जो विद्यार्थी अपने स्कूलों और कालिजोंसे फुसलाकर हटा दिये गये हैं उनके ऊपर बड़ा अन्याय किया गया और उन्हें बड़ा नुकसान पहुंचाया गया है। यह नुकसान कभी न पूरा होगा। हां, सन्यास या त्यागकी दृष्टिसे तो यह हानि कुछ भी नहीं है। मैं चाहता हूं कि संसारसे वह सन्यास उठा दिया जाय जिसके धोखेमें आकर संसारके अनेक मनुष्य अपना सर्वस्व स्वाहा कर रहे हैं।

मैं इस बातको फिर दुहराता हूं कि मैं एक कवि हूं। मैं योद्धा नहीं हो सकता। मैं उन लोगोंके साथ एक होनेके लिये जो मेरे आस पास रहते हैं अपना सब कुछ दे सकता हूं। मैं सब मनुष्योंको सच्चे हृदयसे प्यार करता हूं और उनके प्यारकी कद्र करता हूं। पर दुर्भाग्यसे या सौभाग्यसे मैं अपनी नाव एक ऐसे स्थानपर खे रहा हूं जहांका प्रवाह मेरे विरुद्ध है। कैसे दुर्भाग्यकी बात है कि एक ऐसे समय में समुद्रके इस पार पूर्व और पश्चिमकी सभ्यताओंमें सहयोग होनेका उपदेश दे रहा हूं जब कि असहयोगका सिद्धान्त समुद्रके उस पार प्रचार किया जा रहा है। आप जानते हैं कि जिस तरह मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता, कि मनुष्यकी शारीरिक वस्तु ही सबसे बड़ी चीज है उसी तरह मैं पश्चिमकी सांसारिक सभ्यतापर भी विश्वास नहीं करता। पर इससे अधिक मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता कि मनुष्य अपना शरीर नष्ट कर दे और जीवनकी सांसारिक आवश्यकताओंकी कुछ भी परवा न करें। जरूरत इस बातकी है कि मनुष्यके शरीर और आत्मासे उचित सम्बन्ध स्थापित हो जिसमें कि आत्माके लिये शरीर वही काम करे जो बुनियाद इमारतके लिए करती है। मैं पूर्व और पश्चिमके सच्चे मिलनपर विश्वास करता हूं। प्रेम आत्माका अन्तिम सिद्धान्त है। हमें चाहिए कि हम भरसक इस सिद्धान्तपर अन्याय न होने दें और इसके झण्डेको विरोधकी परवा न करते हुए आगेको ले चलें। असहयोगका सिद्धान्त

बिना जरूरत इस सिद्धान्तपर कुल्हाड़ा चला रहा है। असहयोगकी आग ऐसी आग नहीं है जो हमें सुख पहुंचाये बल्कि एक ऐसी आग है जो हमारा घरद्वार माल असबाब सब कुछ जलाकर खाक कर देगी।"

रवीन्द्रबाबूका पत्र—२

"जो वस्तुएं स्थिर रहती हैं उनमें कोई जिम्मेदारी नहीं होती और उनके लिये किसी कानूनकी भी जरूरत नहीं है। जब आदमी मर गया तो उसकी कब्रपर पत्थर गाड़ना भी फजूल है पर संसार प्राणियोंका एक ऐसा समूह है जो एक आदर्शकी ओर सदा बढ़ रहा है। इसलिये उसके तमाम नियम एक सिद्धान्त पर होने चाहिये। इसीको सृष्टिका नियम कहते हैं।

मनुष्य समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ तभी हुआ जब उसने इस नियमको अर्थात् सहयोगके नियमको स्वयं खोज निकाला। इस नियमसे मनुष्यको एक साथ मिलकर आगे बढ़नेमें बड़ी सहायता मिली। उसे फौरन मालूम हो गया कि एक साथ मिलकर उन्नति करनेका नियम कृत्रिम नहीं बल्कि स्वाभाविक है। कविता छन्दोबद्ध इसलिए नहीं की जाती कि कविके विचार एक सीमा और नियमके भीतर आ जायं बल्कि कवितामें छन्द इसलिये रखे जाते हैं कि उसमें एक प्रकारकी शक्ति आ जाय। इसी तरह सहयोगका नियम सिर्फ इसलिए नहीं रखा गया कि मनुष्य एक नियम और सीमाके भीतर रहे बल्कि इसलिए कि उससे मनुष्यमें अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाय।

अबतक सहयोगका यह विचार अलग अलग जातियोंमें उन्नतिको प्राप्त हुआ है। इस सहयोगकी बदौलत उन उन जातियोंमें शान्ति स्थापित रही है और अनेक प्रकारकी बातें पैदा हुई हैं। पर इन सीमाओंके बाहर सहयोगका नियम काममें नहीं लाया गया है। इसीलिये संसार लगातार भिन्नताओं और विरोधोंसे पीड़ित रहा है। हम इस बातको मालूम करने लगे हैं कि हमारे सामने जो प्रश्न है वही प्रश्न समस्त संसारके लिये भी है। इस संसारकी कोई भी जाति दूसरी जातियोंसे अलग रहकर अपनी उन्नति नहीं कर सकती या तो संसारकी सब जातियां एक साथ जीयेंगी या एक साथ नाशको प्राप्त हो जायंगी।

इस सत्य सिद्धान्तको संसारके सब बड़े लोगोंने स्वीकार किया है। उन्होंने जो कुछ उपदेश दिया है उससे यही ध्वनि निकलती है कि संसारकी जातियां एक दूसरेसे अलग होकर न रहें। इसीलिये हम देखते हैं कि बुद्धका धर्म केवल हिन्दुस्तानकी सीमाके ही अन्दर न था। ईसामसीहका धर्म भी जेरूसलमकी सीमाको पार कर गया था।

क्या संसारके इतिहासके इस नाजुक जमानेमें हिन्दुस्तान अपनी सीमाओंके ऊपर नहीं उठ सकता और एक बड़ा आदर्श संसारके सामने नहीं रख सकता जिसमें कि भिन्न भिन्न जातियोंके बीच सहयोग और शान्तिका प्रचार हो? कमजोर विश्वासके आदमी शायद यह कहेंगे कि जबतक हिन्दुस्तान

मजबूत और दौलतमन्द न होगा तबतक वह संसारभरकी भलाईके लिये अपनी आवाज़ नहीं उठा सकता। लेकिन मैं इसपर विश्वास नहीं करता। यह समझना कि मनुष्यका बड़प्पन इस बातमें है कि उसकी सांसारिक शक्ति खूब बढ़ी चढ़ी हो और उसके पास खूब धन दौलत हो उसका अपमान करना है। जो लोग सांसारिक शक्तिसे हीन और निर्बल हैं उन्हींमें यह शक्ति है कि वे संसारको इस मिथ्या विश्वाससे बचावें। यद्यपि भारतवर्ष गरीब और गिरी दशामें है तथापि वह संसारको विपत्तिसे बचानेके योग्य हो सकता है।

सच्ची स्वतन्त्रता इस बातमें नहीं है कि मनुष्य अपने स्वार्थके लिये जो चाहे सो करे। सच्ची स्वतन्त्रता वही है जिससे संसारभरका स्वार्थ सिद्ध हो। इसी तरहसे जातियोंकी सच्ची स्वतन्त्रता इसमें है कि वे संसार भरके स्वार्थका खयाल रखें। स्वतन्त्रताका जो विचार आजकलकी सभ्यतामें फैला हुआ है वह अधूरा और कृत्रिम है। भारतवर्षमें सच्चा स्वराज्य तभी होगा जब इसकी शक्तियां स्वतन्त्रताके इस कच्चे और भद्दे आदर्शके विरुद्ध लगायी जायंगी।

प्रेमकी किरणोंमें वह स्वतन्त्रता और शक्ति है जो सच्चे ज्ञानरूपी फलको पकाती है, पर जोशकी आग हमारे लिये सिर्फ बेड़ियां ही बना सकती है। जो मनुष्य आत्मिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है वह हमेशा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये उद्योग करता है। हमारी स्वतन्त्रताकी आवाज़ इसी मोक्षके

लिये होनी चाहिये। जातीय आवश्यकताओंके नामपर इस स्वतन्त्रताके रास्तेमें रुकावटें डालना स्वयं जातिके लिये एक कैदखाना बनाना है, क्योंकि जातियोंके लिये मुक्तिका सच्चा रास्ता इसीमें है कि मनुष्यमात्र एक ही उद्देश्यकी ओर बढ़ते जायं।

सृष्टि ईश्वरकी अनन्त स्वतन्त्रताका परिणाम है। वही स्वतन्त्रता सच्ची स्वतन्त्रता है जिससे सत्यका प्रकाश होता है। हम अभी इस अवस्थातक पूरी तरहसे नहीं पहुंचे हैं पर जो लोग इस स्वतन्त्रताको एक बड़ी भारी बात समझते हैं जो इस पर विश्वास रखते हैं और इसके रास्तेमें आनेवाली रुकावटोंको दूर करना चाहते हैं वे उस आदर्शतक पहुंचनेके लिए मानों एक मार्ग तैयार कर रहे हैं। हिन्दुस्तान हमेशासे मनुष्यकी सच्ची आत्मिकशक्तिपर विश्वास करता आया है। इस आत्मिकशक्तिको प्राप्त करनेके लिये उसने अनेक तप, योग, व्रत इत्यादि किये हैं। इसीलिए मेरा विचार है कि असली भारतवर्ष केवल एक देश ही नहीं बल्कि एक आदर्श है। भारतवर्ष तभी विजय प्राप्त करेगा जब इस आदर्शकी विजय संसारमें होगी। वेदमें लिखा है कि "पुरुषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात्" अर्थात् सूर्य्यके समान तेजवाला परब्रह्म परमेश्वरका प्रकाश अन्धकार या तमोगुणके परे है। हमारा युद्ध भी इसी तमोगुणके साथ है। हमारा उद्देश्य यह है कि अनन्त परब्रह्मका प्रकाश हमारे अन्दर हो। परब्रह्मका यह प्रकाश सिर्फ

अलग अलग आदमियोंमें उत्पन्न होनेसे ही काम न चलेगा, उसका प्रकाश मनुष्यमात्रमें होना चाहिए। जिस तमोगुणका हम नाश करना चाहते हैं वह लोगोंका जातीय स्वार्थ है। भारतवर्षका आदर्श सदासे इस बातके विरुद्ध रहा है कि भारतवर्षकी जाति अपनेको दूसरी जातियोंसे अलग समझे और उनसे निरन्तर युद्ध करती रहे। इसलिए मेरी प्रार्थना यह है कि भारत संसारकी कुल जातियोंके साथ सहयोग करे। असहयोगका भाव मनुष्योंको एक दूसरोंसे अलग करता है और सहयोगका भाव मनुष्यमात्रको एकताकी ओर ले जाता है। हिन्दुस्तान हमेशासे यह कहता चला आ रहा है कि ऐक्य या एकता सत्य है और अनैक्य या विरोध माया है। यह एकता असहयोगके मार्गसे कभी नहीं प्राप्त हो सकती। आजकल हम लोग असहयोग आन्दोलनके द्वारा अपने हृदय और अपने मनको यूरोपकी ओरसे हटानेका जो उद्योग कर रहे हैं उससे मानों हम अपनी आत्माकी हत्या कर रहे हैं। अगर हम अपने झूठे जातीय अभिमानके जोशमें आकर यह कहें कि युरोपने कोई ऐसा काम नहीं किया है जिससे मनुष्यको अनन्त समयके लिए लाभ हुआ हो तो यही बात भारतवर्षके बारेमें भी कही जा सकती है, क्योंकि पूर्व और पश्चिमके लोग सत्यको भिन्न भिन्न दृष्टिसे और भिन्न भिन्न रूपमें देखते आये हैं। हमें चाहिये कि हम सारा झूठा अभिमान दूर कर दें और अगर संसारके किसी कोनेमें कोई दीपक जले तो हमें यह जानकर

प्रसन्न होना चाहिए कि इस दीपकका प्रकाश भी हमारे घरके प्रकाशका एक अंश है।

अभी हालकी बात है कि अमरीकाके एक बड़े प्रसिद्ध कला-तत्त्वज्ञने मुझे अपने यहां निमन्त्रण दिया। वह इटालीकी पुरानी कलाओंको बहुत पसन्द करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या आप हिन्दुस्तानके चित्रोंके बारेमें भी कुछ जानते हैं। तो उन्होंने फौरन जवाब दिया कि मैं शायद भारतीय चित्रोंको पसन्द करना तो दूर रहा उन्हें बहुत ही घृणाके साथ देखूँगा। मुझे इस बातका शक हो गया कि शायद उन्होंने कुछ ऐसे भारतीय चित्र देखे हैं जो उन्हें बिलकुल ही पसन्द नहीं आये हैं। इसके बदलेमें मैं भी उनसे युरोपकी कलाओंके बारेमें उसी तरहसे अपनी राय जाहिर कर सकता था पर मुझे यह कहते हुए अभिमान है कि ऐसा करना मेरे लिये असंभव था, क्योंकि मैं हमेशा पश्चिमीय कलाको घृणाकी दृष्टिसे देखनेको नहीं बल्कि उसे समझनेकी कोशिश करता हूं। मनुष्यकी बनायी हुई जिस चीजको हम समझने और उसमें आनन्द लेने लगते हैं वह चीज फौरन हमारी हो जाती है चाहे वह किसी देशमें क्यों न पैदा हुई हो। मुझे अपनी मनुष्यताका अभिमान होना चाहिये जब मैं दूसरे देशोंके कवियों और चित्रकारोंको अपना समझने लगूं। मुझे इस बातमें परम प्रसन्नता होनी चाहिए कि मनुष्यकी जितनी शक्ति और जितना बड़प्पन है वह सब मेरा है। इसलिए मेरे हृदयमें तब बड़ा दुःख होता है जब मैं

यह देखता हूं कि मेरे देशमें युरोपके साथ असहयोग करने और उसकी बातें अस्वीकार करनेकी आवाज़ उठायी जा रही है और इस बातका शोर मचाया जा रहा है कि पश्चिमीय शिक्षा हमें सिवा हानिके कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती। ऐसा कहना असत्य है। अंग्रेजी शिक्षासे नहीं बल्कि इस बातसे हमें नुक-सान पहुंचा है कि हम बहुत समयसे अपनी सभ्यताके सम्प-र्कसे अलग रहे हैं। इसीलिए पश्चिमीय सभ्यताका रङ्ग हमारे ऊपर अनुचित रूपसे चढ़ गया है। जब हमारे पास स्वयं बुद्धिकी पूंजी रहती तो बाहरी दुनियांके साथ विद्या और ज्ञानके सम्बन्धमें लेनदेन करनेसे पूरी तरहसे लाभ होता। पर यह कहनेसे कि इस तरहका लेनदेनका सिद्धान्त ही गलत है उससे एक बहुत बुरी तरहकी प्रान्तिकताको उत्साह मिलता है। पूर्व और पश्चिमके बीच जो अशान्ति और विरोध फैला है उसका कारण यह है कि पश्चिमने पूर्वको गलत समझा है। अगर पूर्व भी पश्चिमको गलत समझने लगे तो क्या इससे हालत सुधर जायगी? वर्तमान युगपर पश्चिमका कब्जा मजबूतीके साथ है। यह कब्जा इसलिये है कि ईश्वरने उसके हाथमें एक बड़ा उद्देश सौंपा है। हमसब पूर्व देशोंके रहनेवालोंको चाहिये कि हम उससे जो कुछ सीख सकते हैं सीखें, क्योंकि ऐसा करनेसे ही हम इस युगके आदर्शको पूरा कर सकते हैं। हम जानते हैं कि पूर्वके देशोंको भी अपना संदेशा यूरोपको सुनाना है और हमें यह भी मालूम है कि पूर्वके देशोंपर इस बातकी बड़ी ज़िम्मेदारी

है कि उसकी सभ्यताका प्रकाश बुझने न पाये। एक समय ऐसा जरूर आवेगा, जब पश्चिम इस बातको मालूम करेगा कि उसका एक घर पूर्वमें भी है।"

कविवर रवीन्द्रबाबूने उपरोक्त दो पत्रों द्वारा असहयोगके विषयमें अपना मत प्रगट किया है।

लार्ड हार्डिंजने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एशियाके महा-कविकी पदवी दी थी। पर अब रवीन्द्रबाबू न सिर्फ एशियाके बल्कि संसार भरके महाकवि गिने जा रहे हैं। यदि अभी नहीं तो कमसे कम बहुत जल्द उनका नाम संसार भरके महाक-वियोंमें गिना जाने लगेगा। दिनपर दिन उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ रहा है जिससे उनकी जिम्मेदारी भी दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। उनके हाथसे भारतवर्षकी सबसे बड़ी सेवा यह हुई है कि उन्होंने अपनी कविता द्वारा भारतवर्षका सन्देशा संसारको सुनाया है। इसीलिए रवीन्द्रबाबूको सच्चे हृदयसे इस बातकी चिन्ता है कि भारतवासी भारतमाताके नामसे कोई झूठा या सारहीन सन्देशा संसारको न सुनावें। हमारे देशका नाम न डूबने पाये, इस बातकी चिन्ता करना रवीन्द्रबाबूके लिये स्वाभाविक ही है। उन्होंने लिखा है कि मैंने इस आन्दोलनकी तानके साथ अपनी तान मिलानेकी भर-सक कोशिश की पर मुझे खेदके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इसमें मुझे निराश होना पड़ा। उन्होंने यह भी लिखा है कि असहयोग आन्दोलनके शोरगुलमें मुझे अपनी हृदय-वीणाके लिए

कोई उचित स्वर नहीं मिल सका। तीन जोरदार पत्रोंमें उन्होंने इस आन्दोलनके संबन्धमें अपना सन्देह प्रगट किया है। अन्तमें वह इस नतीजेपर पहुंचे हैं कि असहयोगका आन्दोलन ऐसा गंभीर और गौरव-पूर्ण नहीं है कि वह उस भारतवर्षके योग्य हो सके जिसे वह अपनी कल्पनाका आदर्श समझे हुए हैं। उनका मत है कि असहयोगका सिद्धान्त खंडन और निराशाका सिद्धान्त है। रवीन्द्रबाबूकी समझमें वह सिद्धान्त भेद-भाव और अनुदारतासे भरा हुआ है।

रवीन्द्रबाबूके हृदयमें भारतवर्षकी प्रतिष्ठाके लिए जो चिन्ता है उसके लिए हर हिन्दुस्तानीको अभिमान होना चाहिए। यह बहुत अच्छी बात हुई कि उन्होंने अपना सन्देह ऐसी सुन्दर और सरल भाषामें प्रगट कर दिया।

मैं रवीन्द्रबाबूके सन्देहोंका उत्तर बड़ी नम्रताके साथ देनेका प्रयत्न करूंगा। मैं रवीन्द्रबाबू या उन लोगोंको जिनके हृदय पर रवीन्द्रबाबूकी कवितापूर्ण भाषाका प्रभाव पड़ा है शायद विश्वास न दिला सकूं पर मैं उनका और कुल भारतवर्षको यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि असहयोगके उद्देश्यके सम्बन्धमें उनका जो कुछ सन्देह है वह बिलकुल निर्मूल है। मैं उन्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि यदि उनके देशने असहयोगके सिद्धान्तको स्वीकार किया है तो इसमें उनके शर्माने-की कोई बात नहीं है। अगर यह सिद्धान्त अमली तौरपर काममें आनेमें असफल हो तो सिद्धान्तका दोष न कहा जायगा,

क्योंकि अगर सच्चाईको असली तौरपर, काममें लानेवाले आदमी सफल होते हुए न दिखलाई पड़ें तो इसमें सच्चाईका कोई दोष नहीं है। हाँ, यह संभव है कि असहयोग आन्दोलन शायद अपने समयके पहले ही शुरू हो गया हो। तब हिन्दुस्तान और संसार दोनोंको उस उचित समयको प्रतीक्षा करनी चाहिए। पर हिन्दुस्तानके सामने तलवार और असहयोग इन दोको छोड़कर और कोई उपाय नहीं था। अपनी सहायताके लिए कोई उपाय चुनता है तो वह इन्हीं दोनोंमेंसे चुन सकता है।

रवीन्द्रबाबूको इस बातसे भी न डरना चाहिए कि असहयोग आन्दोलन भारतवर्ष तथा यूरोपके बीचमें एक बड़ी भारी दीवार खड़ी करना चाहता है। इसके विरुद्ध असहयोग आन्दोलनका मन्शा यह है कि आपसके आदर और विश्वासकी बुनियादपर बिना किसी दबावके सच्चे तथा प्रतिष्ठित सहयोगके लिए पक्का रास्ता तैयार किया जाय। यह आन्दोलन इसलिए चलाया गया है कि जिसमें हमसे कोई जबरदस्ती सहयोग न करा सके, हमारे विरुद्ध दल बांधकर हमें कोई नुकसान न पहुँचा सके और सभ्यताके नामसे तथा तलवारके ज़ोरसे आजकल जो तरीके हमारा खून चूसनेके लिए काममें लाये जा रहे हैं वे न लाये जा सकें। असहयोग आन्दोलन इस बातके विरोधमें किया गया है कि हमारी इच्छा बिना और हमारे जाने बिना हमसे बुराईमें सहयोग कराया जा रहा है।

रवीन्द्र बाबूको अधिकतर चिन्ता विद्यार्थियोंके बारेमें है।

उनका मत यह है कि जबतक दूसरे स्कूल न खुल जायं तबतक उनसे सरकारी स्कूल छोड़नेको न कहा जाय। इस बातमें मेरा उनसे पूरा मतभेद है। मैंने कोरी साहित्यकी शिक्षाको कभी परम आवश्यक नहीं समझा है। अनुभवसे मुझे यह मालूम हो गया है कि अकेली साहित्यकी शिक्षासे मनुष्यके चरित्रकी उन्नति रत्ती भर भी नहीं होती। मेरा यह भी विश्वास है कि चरित्र-निर्माणसे साहित्यकी शिक्षाका कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सरकारी स्कूलोंने हमें बुज़दिल, लाचार और अविश्वासी बना दिया है। उनके सबबसे हमारे हृदयमें असन्तोष तो उत्पन्न हो गया है पर उस असन्तोषको दूर करनेके लिए कोई दवा हमें नहीं बतलायी गयी है जिससे हमारे हृदयोंमें निराशाने घर कर लिया है। सरकारी स्कूलोंका उद्देश्य हमें क्लर्क और दो भाषिया बनाना था। वह पूरा हो गया है। किसी सरकारकी धाक तभी क़ायम रहती है जब प्रजा स्वयं अपनी इच्छासे उस सरकारसे सहयोग करती है। अगर सरकार हमें गुलाम बनाये हुए है और ऐसी सरकारके साथ सहयोग करना और उसे सहायता देना अनुचित है तो हमारे लिए यह जरूरी है कि हम उन संस्थाओंसे अपना नाता तोड़ दें जिनमें हम स्वयं अपनी इच्छासे अबतक सहयोग देते रहे हैं। जातिकी आशा उसके नौजवानोंपर निर्भर होती है। मेरा यह मत है कि अगर हमें इस बातका पता लग गया है कि यह सरकार पूरी तरहसे बुराईसे भरी हुई है तो अपने लड़कोंको

उसके स्कूलों और कालिजोंमें भेजना हमारे लिये पापका काम होगा।

मैंने जो प्रस्ताव जातिके सामने रखा है उसका खण्डन इस बातसे नहीं हो सकता कि अधिकतर विद्यार्थी पहली बारका जोश ठण्डा होते ही अपने स्कूलोंमें फिर वापस चले गये। उनका अपनी बातसे टल जाना इस बातका सबूत नहीं है कि हमारा यह प्रस्ताव गलत है। बल्कि इस बातका सबूत है कि हम किस क़द्र नीचे गिर गये हैं। अनुभवसे यह पता लगा है कि जातीय स्कूलोंके खुलनेसे बहुत ज्यादा विद्यार्थी उनमें भरती नहीं हुए। जो विद्यार्थी सच्चे और अपने विश्वासके पक्के थे वे विना कोई जातीय स्कूल खुले हुए सरकारी स्कूलोंसे बाहर निकल आये। मेरा पक्का निश्चय है कि जिन विद्यार्थियोंने पहले पहल स्कूल कालेज छोड़ा है उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है।

वास्तवमें रवीन्द्रबाबू जड़से ही असहयोग सिद्धान्तके विरुद्ध हैं। ऐसी हालतमें अगर उन्होंने स्कूल और कालेजोंसे विद्यार्थियोंके निकलनेका विरोध किया तो कोई बड़ी बात नहीं है। उनका ऐसा करना तो स्वाभाविक ही था। रवीन्द्रबाबूके हृदयमें ऐसी हर एक वस्तुसे धक्का पहुँचता है जिसका उद्देश्य खण्डन करना है। उनकी आत्मा धर्मकी उन आज्ञाओंके विरोधमें उठ खड़ी होती है जो हमें किसी वस्तुका खण्डन करनेके लिये कहती है। मैं उनका मत उन्हींके शब्दोंमें आपके सामने रख देता हूं। "एक महाशयने इस वर्तमान

आन्दोलनके पक्षमें मुझसे अकसर यह कहा है कि प्रारम्भमें किसी उद्देश्यको स्वीकार करनेकी अपेक्षा उसे अस्वीकार करनेका भाव प्रबल रहता है। यद्यपि मैं यह मानता हूं कि वास्तवमें बात ऐसी ही है, पर मैं इस बातको सच्ची नहीं मान सकता...भारत वर्षमें ब्रह्मविद्याका उद्देश्य मुक्ति या मोक्ष है पर बौद्ध धर्मका उद्देश निर्वाण प्राप्त करना है। मुक्ति हमारा ध्यान सत्यके मंडनात्मक पक्षकी ओर और निर्वाण उसके खंडनात्मक पक्षकी ओर खींचता है। इसीलिये बुद्ध भगवानने इस बातपर जोर दिया कि संसार दुःखमय है तथा उससे छुटकारा पाना हमारा धर्म है और ब्रह्मविद्याने इस बात पर जोर दिया कि संसार आनन्दमय है और उस आनन्दको प्राप्त करना हमारा परम कर्त्तव्य है।" इन वाक्यों और इसी तरहके दूसरे वाक्योंसे पाठकगण रवीन्द्रबाबूकी मानसिक वृत्तिका पता लगा सकते हैं। मेरी नम्र रायमें किसी बातका खण्डन या अस्वीकार करना वैसा ही आदर्श है जैसा किसी बातका स्वीकार करना या मण्डन करना। असत्यका अस्वीकार करना उतना ही जरूरी है जितना सत्यका स्वीकार करना। सब धर्म हमें यही शिक्षा देते हैं कि दो विरोधी शक्तियां हमपर अपना प्रभाव डाल रही हैं। और मनुष्यजीवनका प्रयत्न इसी बातमें रहता है कि वह लगातार स्वीकार करने योग्य वस्तुको स्वीकार और अस्वीकार करने योग्य वस्तुको अस्वीकार करता रहे। बुराईके साथ असहयोग करना हमारा उतना ही कर्त्तव्य

है जितना भलाईके साथ सहयोग करना। मैं साहससे कह सकता हूं कि रवीन्द्रबाबूने निर्वाणको केवल एक खंडनात्मक या अभाव सूचक दशा बतला कर बौद्ध धर्मके साथ बड़ा अन्याय किया है। हाँ, मैं मानता हूं कि उन्होंने यह अन्याय जान बूझकर नहीं किया। मैं साहसके साथ यह भी कह सकता हूं कि जिस तरह निर्वाण एक अभावात्मक दशा है उसी तरहसे मुक्ति भी अभावको सूचित करनेवाली एक अवस्था है। शरीरके बन्धनसे छुटकारा पाना या उस बन्धनका बिलकुल नाश हो जाना आनन्द प्राप्त करना है। मैं अपनी दलीलके इस हिस्सेको खतम करते हुए इस बातकी ओर ध्यान खींचना चाहता हूं कि उपनिषदोंके रचयिताओंने ब्रह्मका सबसे अच्छा वर्णन "नेति" किया है।

इसलिये मेरी समझमें रवीन्द्रबाबूको असहयोग आन्दोलनके अभावात्मक या खंडनात्मक रूपपर चौंकनेकी कोई जरूरत न थी। हम लोगोंने 'नहीं' कहनेकी शक्ति बिलकुल गंवा दी है। सरकारके किसी काममें 'नहीं' कहना पाप और अराजकता गिना जाने लगा था। जिस तरहसे कि बोनेके पहिले निराई करना बहुत जरूरी है उसी तरहसे सहयोग करनेके पहले जान बूझकर पक्के इरादेके साथ असहयोग करना हम लोगोंने जरूरी समझा है। खेतीके लिये जितनी बुआई जरूरी है उतनी ही निराई भी जरूरी है। वास्तवमें उस समय भी हर रोज निराई करना जरूरी है जब कि फसलें उगती रहती

है। इस असहयोग आन्दोलनके रूपमें जातिकी ओरसे सरकारको इस बातका निमन्त्रण दिया गया है कि जिस तरहसे हरएक जातिका हक और हर एक अच्छी सरकारका धर्म है उसी तरहसे इस सरकारको भी चाहिये कि वह जातिके साथ सहयोग करे। असहयोग आन्दोलन जातकी ओरसे इस बातकी नोटिस है कि वह अब और ज्यादा दिनोंतक दूसरोंकी संरक्षकतामें रहकर सन्तोष न करेगी। हिन्दुस्तानने तलवार या मारकाटके अस्वाभाविक और अधार्मिक सिद्धान्तके स्थान पर असहयोगके निर्दोष, प्राकृतिक और धार्मिक सिद्धान्तको ग्रहण किया है। अगर हिन्दुस्तान कभी उस स्वराज्यको प्राप्त करेगा जिसका स्वप्न रवीन्द्र बाबू देख रहे हैं तो वह सिर्फ शान्ति पूर्ण असहयोग आन्दोलनके द्वारा प्राप्त करेगा। वे चाहें तो संसारको अपना शान्तिपूर्ण सन्देशा सुनावें और इस बातका भरोसा रखें कि हिन्दुस्तान अगर अपनी बातका धनी बना रहेगा तो अपने असहयोग द्वारा उनके सन्देशको अवश्य सच्चा साबित करेगा। रवीन्द्रबाबू जिस देशभक्तिके लिये उत्सुक हो रहे हैं उसे अमली तौरपर पैदा करनेको ही यह आन्दोलन किया गया है। हिन्दुस्तान जो यूरोपके पैरोंके नीचे पड़ा हुआ है संसारको कोई आशा नहीं दिला सकता। स्वतन्त्र और जाग्रत भारत ही दुखी संसारको शांति और सुखका सन्देशा सुना सकता है। असहयोग आन्दोलन इसीलिये चलाया गया है कि जिसमें भारत वर्ष एक ऊंचे स्थानसे अपना सन्देशा संसारको सुना सके।

भेदनीति

(अप्रेल २०, १९२१)

बड़ी व्यवस्थापक सभामें होमसदस्य मिस्टर विंसेण्टने जो भाषण किया है उसे पढ़कर अत्यन्त दुःख होता है। मैं समझता हूं कि उनके चरोंने उन्हें एकदम अन्धेरेमें रखा है। उन्हें सच्ची बातका पता नहीं है। उनके भाषणसे अनजानकारी ही टपकती है अविवेक नहीं।

मिस्टर विंसेण्टने सरकारकी दमननीतिका जोरोंमें समर्थन किया है। अपना मत समर्थन करनेके लिये उन्होंने जो बातें कही हैं उन्हें या तो उन्होंने अपने मनसे गढ़ा है या असली बातको बहुत तोड़ मरोड़कर रखा है। उन्होंने असहयोगके उद्देश्यका उलटा अभिप्राय समझाया है और हम लोगोंको बहकानेकी चेष्टा की है।

उन्होंने कहा है :—"असहयोगियोंका अभिप्राय सरकारको पंगु बना देना है और उसके लिये ऐसा कोई भी असन्तोष फैलानेवाला उपाय नहीं है जिसे उन्होंने न किया हो।" इन दोनों बातोंमें सचाई केवल आधी है। असहयोग आन्दोलनका मुख्य काम सरकारको पंगु बना देना कहीं भी नहीं लिखा या कहा गया है। इसका प्रधान लक्ष्य आत्माको पवित्र बनाना

है। इसका परिणाम यह होगा कि जिस सरकारका अस्तित्व हमारी कमजोरी और हीनता पर है वह नष्ट हो जायगी। साथ ही यह कहना भी सर्वथा सच नहीं है कि असन्तोष फैलानेके कोई भी तरीके हम लोगोंने नहीं छोड़े। असन्तोष फैलानेके जितने जायज तरीके थे उनके प्रयोगके लिये हम लोग लाचार थे। पर असहयोगियोंने हर तरहसे असहयोग फैलानेकी चेष्टा नहीं की क्योंकि ऐसा करनेसे हम लोगोंको अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें ही हानिकी सम्भावना थी। जो कुछ मैं कह रहा हूं उसका पूरा प्रमाण मिस्टर विलियम स्मिथके अगले वाक्यके विरोधसे ही चल जायगा जिसे उन्होंने अपने मतके समर्थनमें कहा था :—"जहां कहीं मालिक और नौकरोंमें मनमोटाव देखा इन असहयोगियोंने झट अपने गुप्तचर या दूतको उन मजूरोंके पास भेजा और असन्तोष फैलाकर विरोधकी अग्नि प्रज्वलित कर दी।" यह केवल झूठ ही नहीं है बलिक यह कहकर मिस्टर विंसेण्टने असहयोगके विरुद्ध दोनोंको (मालिक और मजूदर) उभाडनेकी चेष्टा की है। असहयोगियोंने इस बातकी कहीं भी चेष्टा नहीं दिखाई है कि मालिक और मजूरोंके झगड़ेसे वे राजनैतिक लाभ उठानेकी चेष्टा करें। बल्कि उन्होंने इन दोनोंमें परस्पर मेल और सद्भाव स्थापित करनेका ही यत्न किया है। यदि हम लोग जानबूझकर मालिकोंसे मजूरोंको लड़ा दें तो हमसा बेवकूफ दूसरा कौन होगा। इससे तो हम लोग सरकार-का हाथ और भी मजबूत कर देंगे क्योंकि वह पूंजीवालोंका

पक्ष लेकर उन्हें उभाड़ देगी और मजूरोंको दबाना शुरू करेगी। उदाहरणों द्वारा आप ही देखा जा सकता है कि इस तरहके मालिकों और मजूरोंके झगड़ोंमें असहयोगियोंने कैसी सहायता की है। झरियाकी हड़ताल ले लीजिये। क्या उस हड़तालको समाप्त करने और मालिकों और मजूरोंमें समझौता करा देनेका श्रेय असहयोगियोंको नहीं हैं? कलकत्तामें भी असहयोगियोंकी ही बदौलत था कि हड़तालने इतना भीषण रूप नहीं धारण किया। पर यदि उनकी समझमें हड़तालियोंके संकट न्यायोचित हैं तो उनकी सहायता करनेमें कोई बात उठा न रखेंगे। पर अकारण हड़तालको वे कभी भी सहायता नहीं दे सकते। आगे चलकर मिस्टर विंसेंएट स्मिथने फिर कहा है:—"जहां कहीं जाति द्वेषका भाव उठा ये असहयोगी वहां आग लगानेके लिये फौरन तैयार हो जायंगे।" यह कथन भी नितान्त झूठसे भरा है। अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंमें जात पातका भेदभाव है। जालियांवाला बागकी स्मृति आज भी उसी तरह जागती है। इतने पर भी इन असहयोगियोंने शान्ति स्थापित करनेकी ही चेष्टा की है। उन्होंने हर स्थानपर अविवेकियोंके क्रोधको सम्हाला है। इस बातको मैं दृढ़तासे कह सकता हूं कि यदि अहिंसाकी शर्त न लगी होती तो आजतक न जाने कितना खून खराबा हो गया होता और ओडायर तथा डायरके भयकी किसीने परवा तक नही की होती। हां, हमलोगोंने एक भारी भूल की है। हमलोगोंने उस जूतेको

चाटना छोड़ दिया है जो हमें ठुकराता है और यह कहकर सहयोग त्याग किया है कि जबतक ठोकर मारनेवाला अपनी करनीके लिये पश्चात्ताप न प्रगट करे हमलोग अलग रहेंगे। असहयोगियोंको इस बातका श्रेय मिलना चाहिये कि उन्होंने जनताके क्रोधका लक्ष्य बदल दिया। जो क्रोध वे अंग्रेजों पर प्रगट करना चाहते थे उसे उन्होंने उस शासनप्रणालीकी ओर फेर दी जिसके वे अंग्रेज विधायक हैं।

पर यदि विंसेण्ट साहबने इस बातको पूरी तरह चरितार्थ नहीं कर दिया कि हमारा काम ही "फूट डालो और शासन करो" है तो उनको प्रशंसाही किस बातमें रह गई। उन्होंने कहा है :—"जहां कहीं जमींदारों और रैयतोंमें कलह हुआ—जैसा कि हमलोगोंने संयुक्तप्रदेशमें देखा है—वहीं इन असहयोगियोंके दूत पहुंच गये और अशान्तिका बीज बोने लगे।" मिस्टर विंसेंट स्मिथको यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि किसान आन्दोलनकी देखरेख पण्डित जवाहर लाल नेहरूके हाथोंमें है और उन्होंने सदा उन्हें शान्ति और धैर्यकी शिक्षा दी है। विंसेण्ट साहबने केवल जमींदारोंको असहयोगियोंका शत्रु बना देनेके लिये उपरोक्त बातें कही हैं। भाग्यवश जमींदार तथा किसान सभी इस बातको समझते हैं कि जबतक हमलोग न्याय पथपर हैं असहयोगियोंसे किसी बातको खटका नहीं है। आगे चलकर मिस्टर विंसेण्ट स्मिथने फिर कहा है:—"यह आन्दोलन पूर्णतया नाशकारी है। जहांतक मेरी

समझमें आया है विध्यात्मक कोई भी बात इसमें नहीं है।" यदि हम उस जर्राहको नाशकारी कह सकते हैं जो कि विषैले फोड़ेको अच्छा करनेके लिये उसे चीरता है तो हमलोग असहयोग आन्दोलनको भी नाशकारी कह सकते हैं। पर सर्जनके चीरफाड़का क्या अभिप्राय है? विध्यात्मक। रोगीके शरीरको अच्छा करनेके लियेही उसका सारा प्रयत्न रहता है। इसी तरह असहयोगियोंकी चेष्टाओंका अन्तिम लक्ष्य विध्यात्मक ही है। क्या शराबखोरी बन्द करना हानिकर है. क्या राष्ट्रीय स्कूल—जिन्हें असहयोगी खोल रहे हैं—नाशकारी है, क्या चर्खे और करघेका प्रचार राष्ट्रकी समृद्धिका घातक है। हां, विदेशियोंकी प्रभुता पर वे अवश्य कुठाराघात करते हैं चाहे वह प्रभुता लंकाशायरवालोंकी हो या जापानियोंकी हो।

इसके बाद बिसेण्ट साहबने जनसमूहके खिलाफ जातियोंको उभारनेकी चेष्टा की है। इसीके बाद ही उन्होंने भीतरी कलह और बाहरी चढ़ाईका भय दिखाकर दोनोंको लाचार बनानेकी चेष्टा की है। क्या हिन्दू मुस्लिम एकता इतनी कच्ची है कि अंग्रेजोंके तोपोंकी आवाज़ कानके बाहर होते ही हम लोग लड़ पड़ेंगे? अपनी रक्षा करनेकी हमारी क्षमता क्या साठ वर्ष पहले आजसे भी कम थी, पर विदेशियोंके कहनेके अनुसार तो जितनी हीनता और दुर्बलता हममें आज आ गई है उतनी कभी भी नहीं आई थी। स्वराज्यका अभिप्राय ही है कि उसमें आत्मरक्षाकी क्षमता हो। जो राष्ट्र अपनी रक्षाकी भी क्षमता

नहीं रखता वह अविलम्ब स्वराज्यके योग्य भी नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्धमें मिष्टर स्मिथके अज्ञानने ब्रिटिश शासनकी उस अयोग्यताको प्रमाणित कर दिया है जिसके कारण हम लोग यह चाह रहे हैं कि या तो इस शासनका अन्त हो या इसका सुधार हो। जिस उपायका मैंने प्रचार किया है, अर्थात् यन्त्रणा और आत्मबल उसके द्वारा, देश आज आत्म रक्षाके लिये तैयार हैं पर सर विलियम विसेण्टके सुधारोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिनके द्वारा देश संसारकी शक्तियोंका मुकाबिला करनेके लिये सौ वर्षमें भी तैयार हो सके। इस कसौटीपर कसनेसे यही ज्ञात होता है कि सुधार उस जंजीरको और भी कड़ी कर रहे हैं जिसमें बंधा भारत हर तरहसे लाचार हो रहा है। आगे चलकर मिष्टर स्मिथने पूंजीवालोंके नाशकी सम्भावनाकी चर्चा की है। इस सम्बन्धमें मिष्टर स्मिथको इस बातका स्मरण दिला देना चाहिये कि विदेशियोंकी इस प्रभुताने भारतकी समृद्धिका पूर्णतया नाश कर दिया और जिस रीतिसे चलनेकी सलाह मिस्टर विंसेण्ट देते हैं उससे तो भारतकी दरिद्रता और भी बढ़ जायगी।

जिस तरह मिष्टर स्मिथने असहयोगियोंके काम करनेके तरीकोंका उलटा विवरण दिया है उसी तरह उन्होंने उनके उद्देश्यका भी उलटा विवरण दिया है। शिक्षित समाजसे हमें काफी सफलता मिली है। मैं इस बातको स्वीकार करता

हूं कि व्यवहारमें जितनी तत्परता उन्होंने दिखलाई है उससे अधिक तत्परता वे दिखला सकते थे पर उनकी अधिकांश संख्या आज हमसे सहमत है और चूंकि उनके शरीरमें दुर्बलता है इसलिये वे उस त्यागका उतना ही ज्वलन्त उदाहरण नहीं रख सकते। जनताकी शिक्षाका प्रयत्न हम लोग आरम्भसे ही कर रहे हैं। वे ही हमारी सारी शक्ति हैं और प्रधान आधार हैं। क्योंकि उन्हींके द्वारा स्वराज्य मिल सकता है। धनिकों और शिक्षितोंसे ही हमारा काम नहीं चल सकता। वे लोग स्वराज्यकी सहायता कर सकते हैं। पर जिस दिन जनतामें आत्मसंयमका पूरा भाव आ जायगा और तालीम सीख जायगी उसी दिन हम लोग बिना किसी सोच विचारके उन्हें सलाह देंगे कि वे उस सरकारको मालगुजारी देना बन्द कर दें जिनसे उनकी देखभाल और रक्षाका ठीक प्रबन्ध नहीं किया है, जिसने उन्हें लूटा है, सताया है, और इस लूटको रोकनेकी प्रत्येक चेष्टाको दबाया है।

असहयोग आन्दोलनके साथ सरकारका जो व्यवहार रहा है उसके वर्णन करनेमें मिस्टर स्मिथने पूर्ण निर्लज्जता दिखलाई है। जिन असहयोगियोंने किसीको कष्ट नहीं दिया है बल्कि लोगोंको शान्ति भंग करने तथा हिंसा करनेसे रोका है उनके लिये भारतरक्षा कानूनका प्रयोग वे नहीं करना चाहते। बल्कि साधारण कानूनोंका प्रयोग असाधारण तरहसे कर रहे हैं क्योंकि उन्हें मालूम हैं कि असहयोगी सरकारी अदालतोंको

नहीं मानते इसलिये वे अपनी सफाई नहीं देंगे। इस असन्तोषका शमन कनेके लिये वे स्वराज्यकी व्यवस्था नहीं करेंगे क्योंकि इससे आरजकता फैलनेका भय है। उन्हें उन दो बातोंपर विचार करनेकी फुरसत नहीं है जो इस असन्तोषकी जड़ हैं और जिनका विष असन्तोषके रूपमें सारे भारतमें फैल रहा है अर्थात् पञ्जाब और खिलाफतके साथ किये गये अत्याचार और अन्याय। उन्होंने यह बतलानेका कष्ट नहीं किया कि यदि खिलाफतके साथ न्याय किया जायगा और पञ्जाबके अत्याचारोंका प्रतीकार किया जायगा तो भारतवर्षपर कौनसी विपत्ति आपड़ेगी।

उन्होंने अलीबन्धु, मिस्टर यांकूब अली तथा उनकी तुर्की पत्नीके सम्बन्धमें असम्बद्ध तथा अनर्गल बातें कह कर अपने इस असाधारण भाषणको कलङ्कित कर दिया है।

मुझे इस भाषणको पढ़कर जितना दुःख हुआ, उसकी आलोचना करनेमें मुझे उससे अधिक दुःख हुआ। मैं अपने जबानपर पूर्ण कब्जा रखता हूं फिरभी यह भाषण इतना कटु रहा है कि मुझे कहीं कहीं लाचार हो जाना पड़ा है। मैंने जिन विशेषणोंको लगाया है उससे मिस्टर विंसेण्ट स्मिथकी असली अवस्थाका पता लग जायगा।

मालवीयजी तथा शास्त्रीकी सफाईमें

—:*:—

(अक्तूबर २७, १९२०)

श्रीयुत सम्पादक यङ्ग इण्डिया,

महाशयजी, महात्माजीने अपने "स्कूल और कालेजोंका मायाजाल" शीर्षक लेखमें स्कूल तथा कालेजोंसे छात्रोंके बहिष्कारके प्रश्नपर असहयोगके कार्यक्रमकी विवेचना करते हुए इस बातको स्वीकार किया है कि लोगोंने इसे 'हानिकर' तथा "देशके स्वार्थके विरुद्ध" बतलाया है और कहा है कि श्रीयुत मालवीय इस विषयमें कट्टर शत्रु हैं। इतना लिखकर उन्होंने मालवीयजीके इस विरोधका कारण बतलाया है। आप लिखते हैं:—"जहां तक मैं समझ सका हूं मुझे यही मालूम हुआ है कि उनके विचारमें भारत सरकार केवलमात्र बुराइयोंका पुतला नहीं अर्थात् इसके विरोधी पञ्जाब और खिलाफतके अत्याचारोंकी पूरी मर्यादा नहीं समझ सके हैं।" आगे चलकर उन्होंने फिर कहा है:—"यह कहना अविचारपूर्ण होगा कि पञ्जाबके अत्याचारोंकी भीषणताका श्रीयुत मालवीयजी और शास्त्रीके हृदयोंपर वही प्रभाव न पड़ा हो जो मेरे हृदयपर पड़ा है। पर मेरे कथनका ठीक यही अभिप्राय है।" हम लोग महात्मांजीको इस बातका विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके प्रति हममें असीम श्रद्धा है। पर इससे दूसरोंके लिये जो श्रद्धा

होनी चाहिये उसमें कमी नहीं हो सकती। मिस्टर मालवीय तथा शास्त्रीके लिये हमारे हृदयमें किसी तरहका पक्षपात नहीं है। वे लोग अपनी सफाई दे सकते हैं। पर पण्डितजीका व्यवस्थापक सभामें भाषण, जलियांवाला बाग स्मारक फण्डके लिये जोशीली अपील, तथा बम्बई इम्पायर थियेटरमें उनका भाषण उस आक्षेपका विरोधक है जिसे महात्माजीने अज्ञानवश किया है।

श्रीयुत शास्त्रीने सर्वेण्ट आफ इण्डिया पत्रमें जो लेख लिखा है तथा पञ्जाबके अत्याचारोंकी जिन शब्दोंमें निन्दा की है उनसे उनकी उत्कट देशभक्ति प्रगट होती है। हां महात्मा गोखलेके शिष्य होकर उन्होंने कुछ नरमोसे अवश्य काम लिया है। इसी तरह दोनों महात्माओंने खिलाफतके साथ किये गये अन्यायपर भी काफी असन्तोष प्रगट किया है।

महात्मा गान्धी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा आत्मनिर्णयके कट्टर पक्षपाती हैं उन्होंने इसके पक्षमें अनेक बार लिखा भी है। इसलिये हम लोगोंको कभी भी विश्वास नहीं होता कि वे अपनी ओरसे किसी भी प्रकारकी चेष्टा करके इन दोनों व्यक्तियोंको रोकने या इनका मुंह बन्द करनेकी यत्न करेंगे। पर महात्माजीने जो लेख लिखा है उसका प्रकारान्तरसे यही अभिप्राय निकलता है। यह बात स्वीकार की जा सकती है कि एक ही कामके करनेके भिन्न भिन्न तरीके हो सकते हैं और उन तरीकोंके प्रयोगमें व्यक्तियोंका मतभेद हो सकता है। पर

महात्मा गान्धीके समान पूज्य नेता भिन्न भिन्न मतवालोंको अपना स्वतन्त्र मत प्रगट करनेसे रोकना चाहें यह तो कयासमें नहीं आता ।

इसलिये महात्माजोसे हम लोगोंको विनीत प्रार्थना है कि वे इस तरहकी द्विविधाजनक बातें न कहा करें। वे इस युगके बुद्ध हैं, उन्हें किसो तरहकी उत्तेजनाकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। उन्हें उचित है कि वे जो कुछ लिखें या कहें तर्कके आधारपर ही करें और तर्कका सहारा लेनेपर उन्हें विदित हो जायगा कि उन्होंने उन लोगोंके ऊपर उचित आक्षेप नहीं किया है और उसका वे प्रतिशोध करेंगे। हम लोगोंको पूर्ण आशा है कि महात्माजी जिस आत्मविश्वासकी स्वतन्त्रताका स्वयं उपयोग करना चाहते हैं उसका उपयोग हम लोगोंको भी करने देंगे यद्यपि हमारा उनसे मतभेद है।

भवदीय—

"स्वदेशी"

इस पत्रको मैं सहर्ष प्रकाशित करता हूं। उन दोनों देशभक्तोंकी जो सफाई इन लोगोंने दी है उसका मैं आदर करता हूं। अच्छा होता यदि वे अपना नाम भी प्रगट कर देनेकी अनुमति मुझे दे दिये होते। पर मैं इतना अवश्य लिख देना चाहता हूं कि ये सज्जन गुजराती हैं। इस बातका मुझे अभिमान है कि अन्य जातियोंकी तरह गुजराती भी मालवीयजी तथा

शास्त्रीजीके ऊपर किये गये किसी तरहके आक्षेपको सहनेके लिये तैयार नहीं हैं। पर मैं इन सज्जनोंसे कह देना चाहता हूं कि लाख चेष्टा करने पर भी आप इस तरहकी प्रतिष्ठामें मुझे लांघ नहीं सकते अर्थात् इन महानुभावोंके प्रति मेरे हृदयमें जो प्रतिष्ठा है उसे आप कभी भी नहीं पा सकते। इस समय सबसे प्रधान प्रश्नपर हम लोगोंका मतभेद है। मैंने इस भेद भावके कारणको समझनेके लिये अनवरत चेष्टा की और अन्तमें मैं इसी परिणामपर पहुंचा कि खिलाफतके अन्याय तथा पञ्जाबके अत्याचारोंके कारण उनके हृदयोंपर उतनी कड़ी चोट नहीं पहुंची है जितनी कि मेरे हृदयपर। चित्तकी वृत्तिका तौल काम है, शब्द नहीं। उनका निदान मेरे निदानसे भिन्न है। इन दोनों अन्यायों और अत्याचारोंसे मैंने यह भाव निकाला है कि वर्तमान सरकारसे मुझे किसी तरहकी आशा नहीं करनी चाहिये। पर उनका यह विश्वास नहीं है। इस लिये उनके मतसे जहां सरकारके साथ सहयोग संभव है वहीं मेरे लिये असम्भव है, जब तक सरकार अपनी करनीके लिये पश्चात्ताप न प्रगट करे। दो डाक्टर एक ही घोड़ेका इलाज दो तरहसे कर सकते हैं। एक तो केवल मलहम लगाकर अच्छा करना चाहता है पर दूसरा देखता है कि विना चीरा लगाये रोग जड़से नहीं जा सकता। इसलिये यदि दूसरा डाक्टर चीरा लगानेकी तैयारी करता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा करके वह पहले डाक्टरका अपमान

करता है। ऐसी अवस्थामें यदि उस डाक्टरसे कोई यह पूछे कि आपको चीरा लगानेकी आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई तो उसे यह कहनेका हक है—और इसमें वह न्याय कर रहा है—कि जिस डाक्टरने केवल मलहम लगाकर इस फोड़ेको अच्छा करना सोचा था उसे इसकी भीषणताका अनुभव नहीं हो सका यद्यपि उसने भी इसका वही नाम दिया। मैं इस पत्र-के लेखकोंको यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं दोरङ्गी बातें कभी नहीं कहता। और न मैं किसीकी स्वतन्त्रताका अपहरण करना चाहता हूं अथवा उनकी आत्मापर दबाव डालना चाहता हूं। यद्यपि मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरा निदान एकदम सही है और इस बीमारीके दूर करनेका जो तरीका हमने अखतियार किया है वह भी एकदम दुरुस्त है फिर भी मैं इस बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं कि मैं भ्रममें हो सकता हूं। जिस दिन मुझे पक्का विश्वास हो जायगा कि मैं भूल कर रहा हूं उसी दिन मैं उसे स्वीकार करनेके लिये तैयार हो जाऊंगा।

अन्तमें मैं यह कह देना चाहता हूं कि मैं जोश या आवेशसे काम लेना नहीं चाहता और अपने जीवनमें ऐसा न करनेका मैंने संकल्प कर लिया है। मैं सच्ची बातोंको साधारण भाषामें जनताके सामने रखता हूं। उसे वे समझें और जो उचित समझें करें।

उपहास और दमन ।

——*——

(सितम्बर १, १९२०)

पञ्जाब तथा खिलाफतके प्रति अपनी उद्दण्डतापूर्ण नीतिके कारण यदि बड़े लाटने इस कामको एक तरहसे असम्भव न कर दिया होता तो मैं उनको इस कामके लिये बधाई देता कि उन्होंने उस आन्दोलनका नाश करनेके लिये—जो उन्हें अभिमत नहीं है—दमनके स्थानपर उपहासका प्रचार किया। क्योंकि यदि उनके सम्पूर्ण भाषणमेंसे, असहयोगपर उन्होंने जो भाषण दिया है उसे निकाल कर अलग कर दिया जाय और उसपर विचार किया जाय तो वह साधारण प्रतीत होता है। वर्तमान समयके सभ्यराष्ट्रोंमें यह राजनीतिक चाल हो गई है कि लोग अपने दुश्मनोंका उपहास करते हैं। उनपर बौछारें छोड़ा करते हैं। और यदि इस तरहके उपहास अधिक काल तक जारी रहें तो इनके द्वारा पञ्जाबमें किये गये अधिकारियोंके अत्याचारका बहुत कुछ परिमार्जन हो सकता है। असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें मिस्टर मांटेगूके भाषणका जो अर्थ इन्होंने बतलाया है उसमें भी ऐसी कोई बात नहीं है जिसपर एतराज किया जा सके। इसे मैं भी स्वीकार करता हूं कि यदि कहीं हिंसाकी प्रवृत्ति दिखलाई जाती है तो उसे दमन

करनेके लिये काफी सैन्यबलका प्रयोग करना प्रत्येक सरकारके लिये जायज है।

पर मुझे अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि बड़े लाटने असहयोग आन्दोलनकी जो हँसी उड़ाई है उनको यदि उनके उस भाषणके साथ मिलाकर पढ़ा जाय जो उन्होंने खिलाफत तथा पञ्जाबके सम्बन्धमें किया है तो प्रत्यक्ष हो जाता है कि बड़े लाटने इस दुर्गुणको भी अपने मतलबके लिये गुण मान लिया है। उन्होंने अपना जालिमाना वर्ताव अंशतः भी नहीं छोड़ा है पर वे देख रहे हैं कि यह आन्दोलन इतनी सचाई और सफाईके साथ चलाया जा रहा है कि यदि हिंसात्मक उपायोंद्वारा इसे दबानेकी चेष्टा की जायगी तो इसके लिये उन्हें बेवकूफ ही नहीं बनना पड़ेगा बल्कि प्रत्येक विचारवान पुरुष उनसे घृणा करने लगेंगे।

बड़े लाटने उपहासद्वारा इस आन्दोलनके बन्द करनेके हेतु इसके लिये जो विशेषण लगाये हैं उनको भी समझ लेना चाहिये। उन्होंने कहा है:—"यह आन्दोलन, व्यर्थ है, असम्भव है, अव्यवहारिक है, भीतरसे पोला है और स्वप्न है।" अन्तमें उन्होंने इसे "बेवकूफियोंकी पराकाष्ठा" बतलाकर छोड़ दिया है। बड़े लाट साहब इतने अधीर हो गये थे कि उन्होंने इसकी हँसी उड़ानेमें अपनी शब्दावलीको ही समाप्त कर दिया।

पर अभाग्यवश जिस तरह यह आन्दोलन दमनसे भी फलता फूलता गया, उसी तरह उपहाससे भी यह बढ़ेगा

ही। कोई भी महत्वशाली आन्दोलन इस प्रकार नहीं मर सकता जबतक कि उसके प्रवर्तक अधीर, अज्ञान अथवा आलसी न हों। जिस आन्दोलनके प्रवर्तक कार्यदक्ष और कर्मशाल लोग हों उसमें पोलको स्थान कहां। जब प्रत्येक व्यक्तिका यह विश्वास है कि यदि जनताने साथ दिया तो इसकी सफलता अवश्यम्भावी है तो फिर इसे अव्यवहारिक किस तरह कह सकते हैं। यह निश्चय है कि यदि जनताने साथ नहीं दिया तो यह स्वप्न ही कहलायेगा। इसका सारा दारोमदार राष्ट्रपर है। यदि जनताने इसका अच्छी तरह साथ दिया तो वे इस उपहासको उलट दे सकते हैं। उपहास भी एक तरहका दमन है।

यदि दमन और उपहास उस आन्दोलनको नहीं दबा सके जिसके लिये उनका प्रयोग किया गया है तो इसका परिणाम यह होगा कि जनता उस अन्दोलनके प्रति श्रद्धा दिखलाने लगेगी।
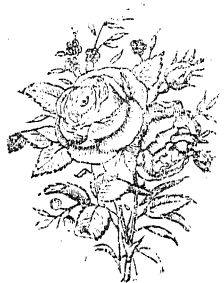
मद्रास मेलके प्रतिनिधिसे बातचीत

(अगस्त १६, १६२०)

सवाल—क्या आप अपने पिछले सालके सत्याग्रहके तजर्बेके बाद भी असहयोगकी सलाह देना ठीक समझते हैं ?

जवाब—बेशक ।

स०—पिछले साल सत्याग्रहके समय देशकी जो हालत थी क्या वह कुछ बदल गई है ?

ज०—लोग अब पहलेसे ज्यादा नियम पालक हो गये हैं और इनमें मैं उन साधारण लोगोंको भी शामिल करता हूं जिनसे मुझे देशके अलग अलग हिस्सोंमें मिलनेका मौक़ा मिला है ।

स०—क्या आपको विश्वास है कि सब लोग सत्याग्रहके तत्वको समझते हैं ?

ज०—हां ।

स०—और इसीसे आप असहयोग पर ज़ोर दे रहे हैं ?

ज०—हां, और इसके सिवा सत्याग्रहके नियमपालनमें सरकारी कानून तोड़नेका जो भय था वह असहयोगमें नहीं है, क्योंकि असहयोगमें हम कानूनोंके तोड़नेके आन्दोलनको सार्वजनिक रूप न देंगे । अबतक जो फल हुआ है वह बहुत उत्साह बढ़ानेवाला है । उदाहरणमें सिन्ध और दिल्लीमें अधिकारियोंने

लोगोंकी स्वतन्त्रतामें बाधक तथा चिढ़ानेवाली बातें कीं, फिर भी लोगोंने राजविद्रोहात्मक सभाओं और दीवारों पर इश्तहार न चिपकानेके सम्बन्धमें कमेटीकी आज्ञाओंका पालन किया है। इन सभाओं या इश्तहारोंमें कोई छेड़वाली बात न होनेपर भी अधिकारी भड़कते हैं।

स०—असहयोगसे आप सरकारपर क्या दबाव पड़नेकी उम्मीद करते हैं ?

ज०—मेरा विश्वास है और सब लोगोंको यह मानना पड़ेगा कि सहयोगके बिना—चाहे वह खुशीसे हो या जबर्दस्ती—कोई सरकार पलभर भी नहीं टिक सकती और अगर लोग किसी भी बातमें सहयोग न करें तो सरकारका सारा काम बन्द हो जाय।

स०—लेकिन इसमें एक बड़ा "अगर" लगा हुआ है ?

ज०—हां है।

स०—इसका आप क्या उपाय करेंगे ?

ज०—मैं अगर मगरके फेरमें नहीं पड़ता। खिलाफतका आन्दोलन ज्यादा लोगोंमें फैलनेपर लोग ज़रूर शामिल होंगे।

स०—पर आप तो लोकमतको अपने अनुकूल बना रहे हैं ?

ज०—नहीं। मैं जानता हूं कि मुसलमानोंको खिलाफतके संबन्धमें गहरी चोट लगी है। अब देखना यह है कि उनमें यहां तक भाव पैदा हुए हैं या नहीं कि वे असहयोगको सफल करनेके लिये काफी स्वार्थ त्याग कर सकें।

स०—आपने जैसी हालत देख और समझ रखी है उससे क्या आप असहयोगके आन्दोलनको उचित समझते हैं और आपका खयाल है कि मुसलमान बड़ी संख्यामें आपका साथ देंगे ?

ज०—हां।

स०—आपकी समझमें इस असहयोगसे क्या सरकारसे बिलकुल सम्बन्ध टूट जायगा ?

ज०—नहीं। मैं अभी यह चाहता भी नहीं। मैं असहयोगको वहांतक काममें लाना चाहता हूं जहांतक सरकार समझ ले कि लोग असन्तुष्ट हैं और खिलाफत और पंजाबके मामलेमें सरकार से लोगोंकी आशा पूरी नहीं हुई।

स०—गांधीजी! क्या आप जानते हैं कि मुसलमानोंमें भी ऐसे बहुत लोग हैं जो खिलाफतके मामलेमें बहुत असन्तुष्ट होनेपर भी असहयोगके पक्षमें नहीं हैं।

ज०—हां, लेकिन उनकी तादाद असहयोग स्वीकार करने-वालोंसे कहीं कम है।

स०—आपकी उपाधियां, नौकरियां और कौंसिलकी मेम्बरी छोड़ देनेकी अपीलको कितने लोगोंने सुना? इससे क्या यह प्रगट नहीं होगा कि आप लोगोंपर जरूरतसे ज्यादा विश्वास रखते हैं ?

ज०—नहीं, क्योंकि अभी तो काम शुरू ही हुआ है और यहांके लोग फूंक फूंककर पैर आगे धरते हैं, जल्दी किसी काममें

आगे नहीं बढ़ते। इसके सिवा असहयोगकी यह पहली सीढ़ी है जिसका समाजके केवल बड़े आदमियोंसे सम्बन्ध है, जो समाजमें प्रतिष्ठित गिने जानेपर भी संख्यामें बहुत थोड़े हैं।

स०—इन बड़े आदमियोंने आपकी अपील पूरी तरह मानी?

ज०—मैं अभी हां नहीं कुछ नहीं कह सकता; इस महीनेके अन्तमें मैं निश्चित उत्तर दे सकूंगा।

स०—क्यों आप नहीं समझते कि असहयोगके आन्दोलनसे ऊधम उत्पात हो सकते हैं जैसा कि सिविल कानून भंगके समय हुआ था?

ज०—पिछले सालका उपद्रव आन्दोलनके कारण नहीं बल्कि लोगोंके आन्दोलनके मूल सिद्धान्तोंके समझनेकी गलतीके कारण हुआ।

स०—क्या आपका खयाल है कि राजा और राजपरिवारके प्रति भक्तिभाव रखकर भी युवराजके आगमनके विषयमें असहयोगका समर्थन किया जा सकता है?

ज०—नहीं क्यों, युवराजके स्वागत बहिष्कारमें यदि कुछ अराजभक्ति हो तो वह वर्त्तमान शासनपद्धतिके प्रति है, युवराजके प्रति नहीं।

स०—युवराजके आगमनके बहिष्कार करानेमें आप क्या फायदा समझते हैं?

ज०—मैं यह दिखलाना चाहता हूं कि हिन्दुस्तानके लोग वर्त्तमान सरकारसे सहानुभूति नहीं रखते और पञ्जाब तथा

खिलाफतके मामले, तथा अन्य शासन सम्बन्धी बातोंमें भी वे सरकारकी नीतिके घोर विरोधी हैं। मेरे खयालसे युवराजका आगमन वर्त्तमान सरकारके प्रति अपना विरोध प्रगट करनेका एक दुर्लभ अवसर है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके आगमनसे बहुत बड़े राजनीतिक परिणामोंकी आशा की जाती है। यह एक राजनीतिक घटना होगी, साधारण नहीं, और भारतकी तथा इङ्गलैण्डकी सरकार भी इस आगमनको एक प्रथम श्रेणीकी राजनीतिक घटना बनाना चाहती है, अर्थात् इससे भारतपर अपना अधिकार दृढ़ करनेका काम लेना चाहती है। तब मेरी समझमें इस आगमनका बहिष्कार करना ही लोगोंका कर्त्तव्य है। यह आगमन दो सरकारोंके स्वार्थसाधनकी चाल है जिसकी सिद्धि लोगोंके हितकी बाधक है।

स०—क्या आपके कहनेका यह मतलब है कि भारतपर सरकारका अधिकार दृढ़ होनेमें देशका भला नहीं है और इस लिये आप यह बहिष्कार चाहते हैं ?

ज०—हां, वर्तमान सरकार जैसी दुष्ट सरकारका अधिकार भारतपर जमे इसमें सचमुच देशका कल्याण नहीं है। इस अधिकारको शिथिल करनेके लिये मैं यह नहीं चाहता कि इङ्गलैण्ड और भारतका परस्पर सम्बन्ध शिथिल हो। पर इस बन्धनकी मज़बूती मैं वहांतक चाहता हूं जहांतक उससे भारतका भला हो।

स०—क्या आप समझते हैं कि असहयोग और कौंसिलोंमें जाना इन दोनों बातोंका परस्पर मेल बैठता है ?

ज०—नहीं असहयोगका कार्यक्रम स्वीकार करनेवाला आदमी कौंसिलके लिये उम्मेदवार नहीं हो सकता।

स०—आपकी रायमें असहयोग स्वयं साध्य है या किसी साध्यका साधन है ; यदि साधन है तो साध्य क्या है ?

ज०—यह एक साध्यका साधन है और साध्य है वर्त्तमान सरकारको, जो बिलकुल अन्यायी हो गई है, न्यायी बनाना। न्यायी सरकारसे सहयोग करना ज़रूरी है और अन्यायी सरकारसे असहयोग करना भी उतना ही ज़रूरी है।

स०—कौंसिलमें जाना और प्रतिरोधनीतिसे काम करना या ईमानकी क़सम खानेसे इनकार करना आप असहयोग सिद्धान्तके अनुसार कैसा समझते हैं ?

ज०—असहयोगके सिद्धान्तसे यह प्रस्ताव ठीक नहीं, इससे समय और धनकी हानि होगी, और कुछ नहीं।

स०—मतलब यह कि असहयोगमें प्रतिरोध (Obstruction) का कोई स्थान नहीं है ?

ज०—नहीं।

स०—असहयोगके सिद्धान्तपर आप कोई दल भी बनाना चाहते हैं ?

ज०—मैं किसी दलका आदमी नहीं हूं। और मैं ऐसे धार्मिक आन्दोलनको दलबन्दीके झगड़ेमें डालना पसन्द नहीं करता। मैं किसी दल विशेषका स्वार्थ न चाहकर उन सब दलों और संप्रदायोंसे जो देशका भला चाहते हैं अपील करता हूं।

स०—गान्धीजी आपको शायद मालूम होगा कि बहुत लोग असहयोगके विरुद्ध हैं ; इसलिये नहीं कि वे सरकारसे डरते हैं या इसमें उनका कुछ स्वार्थ है, बल्कि इसलिए कि वे अन्तःकरणसे यही समझते हैं कि इस समय असहयोगका आन्दोलन जारी करनेसे हमारी राजनीतिक उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा पड़ेगी ।

ज०—हां जानता हूं और मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ है । अन्तःकरणसे उनका ऐसा खयाल है, पर उनका वह खयाल ग़लत है और मैं उन्हें यह समझानेकी कोशिश कर रहा हूं कि सरकारके साथ सहयोग करना बड़ी भारी भूल है ।

स०—क्या आप समझते हैं कि और सब वैध उपाय हो चुके अब केवल असहयोगका उपाय ही बाकी रह गया है ?

ज०—मैं असहयोगको गैरकानूनी नहीं समझता ; पर मेरा यह विश्वास कि वैध उपायोंमेंसे यही उपाय अब हम लोगोंके लिये बाकी रह गया है ।

स०—सरकारका सब काम बन्द कर डालनेके लिये ही इस उपायका अवलम्बन करना आप वैध समझते हैं ?

ज०—निस्सन्देह, यह उपाय अवैध नहीं है ; पर बुद्धिमान मनुष्य सभी वैध उपायोंको आजमानेकी जरूरत नहीं समझता, जब देखता है कि उनसे कोई लाभ नहीं । न मैं ही उस मार्गका निर्देश करता हूं । मैं क्रमपूर्वक असहयोगका प्रयोग इस हेतुसे कर रहा हूं कि असद्व्यवस्थासे सद्व्यवस्था विकसित हो । मैं असहयोगके मार्गपर एक कदम भी आगे न बढ़ूंगा जबतक मुझे

यह विश्वास न हो जाय कि देश उसके लिये तैयार है अर्थात् असहयोगसे अराजकता या अव्यवस्था न फैलेगी।

स०—पर आप यह कैसे जानेंगे कि अराजकता न फैलेगी!

ज०—उदाहरणार्थ, पुलिससे जब मैं यह कहूंगा कि अपने हथियार रख दो तो उससे पहले मैं यह जान लूंगा कि ऐसी हालतमें लोग चोर और डाकुओंसे स्वयं अपनी रक्षा कर सकेंगे या नहीं। गत वर्ष लाहौर और अमृतसरसे जब फौज और पुलिस चली गयी थी तब यही हुआ था। सरकारने जहां जहां अभाव-वश पुलिस आदिका बन्दोबस्त नहीं किया था वहां लोगोंने इसी प्रकारसे आत्मरक्षा की।

स०—आपने वकीलोंसे कहा है कि अदालतमें जाना छोड़ दो। इसमें आपको क्या अनुभव प्राप्त हुआ? क्या वकीलोंने आपकी बात मानी, और क्या आप यह समझते हैं कि ऐसे लोगोंके भरोसे आप असहयोगके सब सोपान पार कर जायंगे।

ज०—मैं यह नहीं कह सकता कि बहुतसे वकीलोंने मेरा कहा माना। कितने लोग मानेंगे यह अभी इतनी जल्दी बतलाया भी नहीं जा सकता। पर मैं केवल वकीलों या उच्च शिक्षा सम्पन्न लोगोंके भरोसे ही कमेटीको असहयोगके सब सोपानों-पर चलानेमें समर्थ होनेकी आशा नहीं रखता। असहयोगके जो अन्तिम सोपान हैं उनके सम्बन्धमें मुझे सर्वसाधारणसे ही अधिक आशा है।

अन्धकार

(अप्रेल २०, १९२०)

जब कभी मुझे विदित होता है कि मेरे बन्धुवर्ग असहयोग आन्दोलनके समझनेमें भूल कर रहे हैं मैं अपने मनमें निम्नलिखित वचनका स्मरण करता हूं:—"जब यह कुहरेका परदा हट जायगा तो हम लोग एक दूसरेको मजेमें पहचान लेंगे।" मेरे एक मित्रने सर्वेण्ट आफ इण्डियामेंसे कटिङ्ग भेजा है जिसमें असहयोग आन्दोलनकी चर्चा है। प्रस्तावों और उनके उद्देश्यों-को बराबर समझाते रहना बड़ाही वाहियात काम है। जिस तरह समय बीतता जायगा हमारी कार्रवाइयां ही सब बातोंको स्पष्ट करती जायंगी।

मेरे लिये तो जबतक सरकार अपनी बुराइयोंको दूरकर पश्चात्ताप नहीं करती, असहयोग स्थगित नहीं हो सकता। पंजाब और खिलाफतके साथ किये गये अत्याचार और अन्याय जबतक बिना प्रतीकारके पड़े रहते हैं तथा राष्ट्रकी बात सुननेके लिये सरकार जबतक तैयार नहीं होती तबतक तो असहयोग इसी तरह जारी रहेगा। उपाधियों, अदालतों, स्कूलों, कालिजों तथा कौंसिलोंका मायाजाल दूर करना नितान्त उचित था। जो कुछ परिणाम निकला है उससे मैं कह सकता हूं कि राष्ट्रने किसी

तरह सन्तोषजनक साथ दिया है। ऐसा एक भी उपाधिधारी और वकील नहीं है जिसने राष्ट्रीयताका भाव धारण करते हुए उपाधियोंका परित्याग नहीं किया है। स्कूल और कालेज भी काफी परिमाणमें छोड़ दिये गये हैं। छात्रोंमें जिस तरहका उत्साह दिखाई दे रहा है उसको अनुमान करके तो यही कहना पड़ता है कि अपनी वारीपर वे इस तरहका आत्मत्यागका उदाहरण पेश करेंगे कि राष्ट्र चकित और विस्मित हो जायगा। जिन लोगोंने कौंसिलोंका वहिष्कार कर दिया है वे जो सेवायें कर रहे हैं वह कौंसिलोंमें जाकर कभी भी नहीं कर सकते थे। उपाधियोंका त्याग बहुत थोड़ोंने ही किया है पर उन्होंने दूसरोंको मार्ग दिखा दिया है। ये सब बातें समाजमें उत्साह बढ़ानेमें पूर्ण सहायता दे रही हैं। अब इन लोगोंके लिये बातोंकी बहुत कम आवश्यकता है। जिन लोगोंने अदालतों, कौंसिलों, स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार किया है तथा उपाधियोंका परित्याग किया है उनकी कार्रवाई और आचरण ही लोगोंको तैयार करनेके लिये काफी है। इससे बढ़कर प्रचारका साधन और क्या हो सकता है। राष्ट्रीय विद्यालयोंकी दिन दिन बढ़ती हो रही है और लड़के सरकारी स्कूलोंको बराबर छोड़ रहे हैं। सरकारके अंक नितान्त भ्रमपूर्ण हैं। कौंसिलके किसी सदस्यने कहा था कि केवल ३००० छात्रोंने स्कूल छोड़ा। पर उस सदस्यने अपनी गणनामें राष्ट्रीय पाठशालाओंमें पढ़नेवाले छात्रोंका अनुमान नहीं किया। अदालतोंका त्याग भी धीरे धीरे बढ़ ही रहा है

वकील अदालत छोड़ते जा रहे हैं। उपाधियोंका परित्याग भी हो ही रहा है।......इस तरह जब कमजोर हृदयवालोंको भी विदित होने लगेगा कि यह आन्दोलन पूर्णतः धार्मिक है तो वे भी अपनी कायरताका परित्याग करेंगे और आकर शामिल हो जायंगे।

यदि दक्षिण अफ्रिकाके समान ही यहांकी घटनावली हुई तो मुझे किसी तरहका आश्चर्य नहीं होगा। विस्मय तो उसी समय होगा जब बातें उससे एकदम विपरीत होंगी। दक्षिण अफ्रिकाका सत्याग्रह आन्दोलन सर्वसम्मतिसे स्वीकृत होकर आरम्भ हुआ था। प्रथम चरणमें ही बहुतोंने कदम पीछे हटाया। केवल १५० ही ऐसे थे जो जेल जानेके लिये तैयार थे। हम लोगोंमें अधिकांशको यही विश्वास हो गया था कि अब कोई साथ न देगा। अन्तिम चरणका आरम्भ केवल १६ स्त्री पुरुषोंने किया। पर इसके बाद तो जनता तूफानकी तरह उमड़ पड़ी। समस्त प्रवासी भारतवासी उठ खड़े हुए। विना किसी सङ्गठनके विना किसी उद्योगके प्रायः ४०,००० जेल जानेके लिये तैयार हो गये। १०,००० तो जेल चले ही गये। इसका जो परिणाम हुआ वह सभीको विदित है। जिस हेतु इतना किया गया था वह मिल गया। आत्मसंयमके लिये पूर्ण तालीमके बाद रक्तपात रहित यह संग्राम चलाया गया और इसमें सफलता मिली।

यदि कोई यह कहे कि भारतवर्षमें यह सम्भव नहीं तो मैं

विश्वास करने या मान लेनेके लिये तैयार नहीं हूं। लार्ड केनिङ्गने एक बार जिन शब्दोंको कहा था उन्हींको मैं यहांपर दोहरा देना चाहता हूं—"कोई नहीं कह सकता कि इस भारत-वर्षके निर्मल और स्वच्छ आसमानके नीचे अंगुल भरका बाद-लका टुकड़ा कब प्रगट हो जायगा और बढ़ते बढ़ते क्या रूप धारण कर लेगा तथा उसका अन्तिम परिणाम क्या होगा। वह कब फट पड़ेगा, यह कोई नहीं कह सकता।" यह नहीं कहा जा सकता कि सारा भारत किस समय उठ खड़ा होगा। पर इतना तो मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि प्रत्येक कांग्रेसमैन जिनसे इस समय अपील की गई है इस वर्षके भीतरही भीतर इस आन्दोलनमें शामिल हो जायंगे और काम करने लगेंगे और राष्ट्रकी मर्यादा बढ़ायेंगे।

चाहे वे ऐसा करें या न करें पर राष्ट्रकी उन्नति इनके कारण नहीं रुक सकती। अशिक्षित नर नारी तथा साधा-रण जनता अपना भाग मजेमें निबाह रही है। शिक्षित समा-जसे जो अपील की गई थी उसका परिणाम यह हुआ कि इनका ही मार्ग वह साफ करता गया। उनके स्थानपर इन्होंने ही आवाजपर कदम आगे बढ़ाया। पर आरम्भ शिक्षित समु-दायसे ही किया जायगा। परीक्षाकी अग्निमें पहले उन्हींको तपना होगा। ईश्वरको धन्यवाद है कि अभी तक तो असह-योग अपनी स्वाभाविक गतिसे ही चलता जा रहा है।

स्वदेशीकी योजना पूर्णतया की जाती थी और वैसाही

हुआ भी। स्वदेशी असहयोगका एक अंश है। यह सबसे बड़ा अंश है, सबसे सुरक्षित है और इसका परिणाम भी निश्चित है। उसे और भी जल्दी आरम्भ कर सकते हैं। देशको तुरत हाथ लगा देना चाहिये। राष्ट्रको विदेशी वस्त्रोंके—विशेष कर ब्रिटिश वस्त्रोंके वहिष्कारकी उपयोगिता समझनी चाहिये। उसे इस बातको समझना चाहिये कि भारतकी स्वतन्त्रताके अपहरणका एकमात्र कारण देशी कपड़ेके व्यापारका भारतके हाथसे निकल जाना था और जिस दिन भारत वर्ष इस व्यापारको पुनः अपना लेगा उसी दिन वह फिर स्वाधीन हो जायगा। इसे इस बातको समझना चाहिये कि जिस दिन उसने चरखे और करघेका परित्याग किया उसी दिनसे उसकी कला मर्मज्ञता और उसकी रुचि भी दूर हो गई। उसको यह बात समझना चाहिये कि भारतकी दरिद्रता और हीनता अकालोंके अनवरत दर्शनका कारण जितना सैनिक व्यय नहीं है उतना कपड़ेके व्यापारका हाथसे चला जाना है। प्रत्येक प्रान्तोंमें चरखोंका जोरोंके साथ प्रचार होना चाहिये। और लोगोंको खद्दरके प्रयोगमें प्रसन्नता और आनन्द मिलना चाहिये।

ये सब बातें प्रायः हो रही हैं। पर इस राष्ट्रीय धर्मकी स्थापना करनेके लिये एक करोड़ रुपया तथा एक करोड़ आदमियोंकी आवश्यकता है। केवल एक दो चरखोंसे काम नहीं चल जायगा। कमसे कम छ करोड़ घरोंमें चरखा

चलना चाहिये। प्रश्न इस समय यह है कि भारतवर्षको अपनी आवश्यकता भर कपड़ा तैयार करलेना है। केवल एक करोड़ रुपयेसे ही यह काम नहीं साध्य है। पर यदि भारतवर्षमें एक करोड़ आदमी काम करनेके लिये तैयार हो जायं, कमसे कम २० लाख नर नारी चरखा लेकर बैठ जायं और तब एक करोड़ रुपया संग्रह हो जाय तो भारत स्वराज्यके योग्य हो सकता है। पर यह सब काम ३० जूनसे पहले पहले हो जाना चाहिये। इस तरहके प्रयाससे संपूर्ण राष्ट्रमें उच्चता, आत्म-निर्भरता, तथा आत्मतुष्टिके गुण आ जायंगे। यही गुण किसी भी राष्ट्रको राष्ट्र बना सकते हैं। यदि राष्ट्रने अपनी प्रेरणासे ही विदेशी वस्त्रोंके त्यागमें सफलता प्राप्त करली तो उसकी स्वराज्यके लिये पूरी योग्यता प्रगट हो जायगी। उस अवस्थाके उत्पन्न हो जाने पर मैं दृढ़तासे कह सकूंगा कि जिन किलों या दुर्गोंसे भारतकी जान मालका भय है वही उसकी सन्तानके क्रीड़ा-स्थल बन जायंगे। उस समय हमारा और अङ्गरेजोंका सम्बन्ध पवित्र सम्बन्ध हो जायगा। और इसीलिये लङ्काशायरके मत दाताओंकी हमें कुछ भी परवा नहीं होगी, उनके मतोंका महत्व उठ जायगा। और उनका एकमात्र, अभिप्राय भारतकी सहायता करना होगा। असहयोग आन्दोलन अङ्गरेजोंसे दो ही बात कहता है या तो आप आकर हमसे बराबरीके साथ मिलकर रहिये और हमारी सहायता

कीजिये या हमारा देश छोड़कर चले जाइये। इस आन्दोलनको केवल इसलिये उठाया गया है कि अङ्गरेजोंके साथ भारतीयोंका सम्बन्ध भारतीयोंकी मानमर्यादा और प्रतिष्ठाके अनुसार उच्च आधार पर निश्चित किया जाय।

आप चाहे इस आन्दोलनको जो नाम दीजिये। चाहे इसे स्वदेशी आन्दोलन कहिये या मद्यनिवारक आन्दोलन कहिये। मान लीजिये कि इतना समय खो दिया गया। मैं समस्त, अङ्गरेज, नरमदलके भाई तथा ब्रिटिश सरकारसे इस बातकी प्रार्थना करता हूं कि वे चरखा तथा करघा चलाने, तथा नशीली वस्तुओंको गुनाह समझकर छोड़ देनेमें राष्ट्रका साथ दें। इन दोनों बातोंसे जो परिणाम निकलेगा उसके लिये किसी भी दलको सोच विचार या आशङ्का नहीं करनी चाहिये। जो फल इससे निकलेगा उसीसे इसकी जांच हो जायगी।

गांधी—तब और अब

—✳:◌:✳—

(मई ६, १६२१)

टाइम्स आफ इण्डियाने मुझपर कुटिलता या कपटाचारका दोषारोपण किया है। उसके लेखके पढ़नेसे यही धारणा होती है। यह लेख इतना गम्भीर है कि दूसरी धारणा उठ ही नहीं सकती। पर मैं अकपटाचारके गुणको—जो मेरे बारेमें कहा जाता है और जिसके लिये मैं अपना हक समझता हूं—बनाये रखना चाहता हूं। "अन्धकार" शीर्षक लेख मेरा अन्तिम लेख होगा। अब मैं अपने समालोचकोंको अपनी कार्रवाईसे उत्तर दूंगा। मेरे कामका परिणाम ही उन्हें उचित उत्तर दे देगा। पर इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूं कि जब तक कि किसीका अन्त न देख लिया जाय उसे कपटी, ईमानदार, अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। मैं यहां पर टाइम्स आफ इण्डियाके लेखककी कुछ भूलें सुधार देना चाहता हूं। जिस समय मैंने सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया था उस समय भी मेरे ऊपर इसी तरहका दोषारोपण किया गया था कि मैं अपने पदसे नीचे गिर गया। दक्षिण अफ्रिकामें भी जिस समय मैंने सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया था मेरे विरोधियोंने मेरी निर्भत्सना मेरे विगत आच-

रणके ही आधारपर की थी। यही बात मैंने प्रत्येक आन्दोलनमें देखी है कि जहां कहीं मैंने भाग लिया है लोगोंने मेरे अतीत कामोंकी प्रशंसा की है और उनके आधार पर मेरे तात्कालिक आचरणकी निन्दा की है। इस कथनसे मैं टाइम्स आफ इण्डियाके आक्षेपोंको गलत नहीं साबित कर रहा हूं पर मैं अपने हृदयको तसल्ली दे रहा हूं कि कपटाचार और आत्म-प्रवञ्चनका जो दोषारोपण मुझपर किया जा रहा है वह निराधार है। मैंने सत्याग्रह स्थगित नहीं किया था और न मैं उदासीकी वृत्ति ग्रहणकर जीवन संग्रामसे अलग ही हो गया था। मैंने सविनय अवज्ञा स्थगित कर दी और वह अब तक स्थगित है, क्योंकि मैंने देखा कि राष्ट्र इसके लिये अभी तैयार नहीं है। इस महती भूलका कारण यह था कि मैंने देशकी दशाका गलत अनुमान कर लिया था। पर असहयोग आन्दोलनका जो प्रचार इस समय हाथमें लिया गया है उसमें उन बातोंका जरा भी भय नहीं है जो सविनय अवज्ञामें थी। असहयोग धर्म है पर सविनय अवज्ञा नहीं। और यही कारण है कि मैं बारबार इस बातको कहता आ रहा हूं कि मैं असहयोगके लिये सदा प्रेरणा करता रहूंगा चाहे उससे अराजकता ही क्यों न फैले। मान लिया जाय कि अराजकता फैलानेवालोंका आज जोर हो जाय तो क्या इसके लिये मैं अपना लोटाया तमगा वापिस ले लूंगा औरोंको वापिस मांगनेके लिये राय दूंगा और जिन लोगोंने वकालत स्थगित कर दी है उन्हें जारी कर-

नेके लिये कहूंगा? क्या अराजकताके डरसे मैं उस सरकार का साथ दूंगा जो बेईमान है और जालिमाना दमनमें विश्वास रखती है? मैं जानता हूं कि अराजकता शैतानकी छाया है पर डायर सदृश जालिमोंकी करनी उससे भी बढ़कर शैतानकी छाया है क्योंकि सुसङ्गठित शासन प्रणालीकी ओटमें वह अराजकता है। यदि जनताने अराजकताके लिये पहलेसे ही तैयारी कर रखी है तो वह अवश्य भीषण है और ऐसी अवस्थामें मैं जनताका भी साथ उसी तरह छोड़ दूंगा जिस तरह मैंने सरकारका साथ छोड़ दिया, क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोनों ऐसी बुराइयां हैं जिनका परित्याग ही उचित है। जलियांवाला बागके हत्या-नायकके लिये मैंने किसी तरहका दण्ड नहीं चाहा है। मैंने केवल दो बातें मांगी हैं। पहले तो जो उस रक्तसे अपना हाथ रङ्गकर भी अधिकार पदपर मौजूद हैं वे हटा दिये जायं और दूसरे जिन अपराधी अधिकारियोंको सरकारी खजानेसे पेंशन दी जा रही है वह बन्द कर दी जाय। मैंने सिक्खोंको यह सलाह नहीं दी है कि वे महन्त नारायण दासको पेंशन दें या उन्हें अधिकारपदपर रखें। मैंने उनसे केवलमात्र यही प्रार्थना की है कि जिस तरह पञ्जाबके मामलोंमें हम लोगोंने अपराधी अधिकारियोंपर अभियोग चलानेके अधिकारका प्रयोग नहीं किया उसी तरह आप लोग भी नानकाना हत्याकाण्डके उन अपराधियोंपर मुकदमा मत चलवाइये। नानकाना और पंजाबकी दुर्घटनाओंमें मैं समता देखता हूं। मैंने

बारबार कहा है कि मैं इस सरकारके साथ उसी तरह पेश आ रहा हूं जिस तरह मैं अपने भाई या प्रियसे प्रिय बन्धुके साथ पेश आया हूं। राजनैतिक क्षेत्रमें असहयोगका प्रचार गार्हस्थ्य जीवनमें असहयोगका केवलमात्र विस्तृतरूप है। वकीलोंके साथ मेरे सम्बन्धकी जो चर्चा की गई है उसके शब्द नितान्त अनुचित हैं। यदि देखा जाय तो इस समय कांग्रेससे सम्बन्ध रखनेवाले दोही चार वकील वकालत कर रहे हैं।

मैं सदा इस बातको कहता चला आया हूं कि जहां असहयोगियोंकी संख्या अत्यधिक है वहां उन लोगोंको कांग्रेसके अन्तर्गत कोई पद नहीं मिलना चाहिये जिन्होंने असहयोग नहीं किया है। कांग्रेस कमेटीने मेरी इस सलाहको रद्द नहीं कर दिया है। यह कहना भी गलत है कि सूरतमें वकालत करनेवाले वकीलोंने मुझे अभिनन्दन पत्र दिया था। पर जब तक मुझे पूर्ण स्वाधीनता है कि मैं इनको समझा-बुझाकर अपने मतमें ला सकूं तब तक इस तरहके अभिनन्दन पत्रको स्वीकार करनेमें भी मैं किसी तरहकी हानि नहीं समझता। अली भाइयोंके साथ अपने सम्बन्धको मैं अपना विशेष अधिकार समझता हूं और इसका मुझे अभिमान है। दक्षिण अफ्रिकामें मेरे साथी चोर डाकू और हत्यारे भी थे कितने तो ऐसे थे जिन्हें इस कामके लिये जेलतक हो चुकी थी। पर उन्होंने अपनी सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाको उस तरह निबाहा जैसे अन्य सत्याग्रहियोंने निबाहा।

भ्रान्त धारणाएं

गुजरातीमें एक कहावत है जिसका तात्पर्य्य यह है कि धनवान्के पास ही धन आता है। जिस प्रकार एक प्रसिद्ध बदमाशके सिरपर ही सब शैतानीका कलङ्क मढ़ा जाता है। चाहे मैं एक सुधारक या अपराधी समझा जाऊं किन्तु मैं अपनेको बहुधा एक विचित्र सङ्कटापन्न स्थितिमें पाता हूं। लोग मुझमें अमानुषिक शक्ति बतलाते हैं किन्तु मुझमें जो कुछ शक्ति है वह सचाई, अविश्रान्त उद्योग, विरोधियोंके साथ भला बर्त्ताव अपनी भूल स्वीकार करनेकी तत्परता और बुद्धिकी अनवरत अपील पर ही निर्भर है। पर सरल स्वभाव जनताको जब मैं यह कहता हूं कि मुझमें कोई असाधारण शक्ति नहीं है तो वह मेरे इस कथनपर विश्वास नहीं करती। उसी प्रकार जो लोग राजनीतिमें सत्यव्यवहारके आदी नहीं हैं वे मुझपर सभी प्रकारके कलङ्क लगाते हैं। मारनिङ्ग पोस्टका खयाल है कि फिजीमें जिस साधुके प्रयत्नसे हड़ताल हुई है उसे मैंने ही वहां भेजा है। मैं तो यह भी नहीं जानता कि वह साधु कौन है। मैंने अवश्य ही किसीको हड़ताल करानेके लिये फिजी नहीं भेजा है। किन्तु फिजीमें हड़तालकी घोषणा हो जानेसे हड़तालियोंके साथ मेरी सहानुभूति है। मेरे पास जितने प्रमाण हैं उनसे मालूम होता है कि फिजी एक वृहत् दोहनागार है जिसमें गरीब भारतीय मजदूर गोरोंके भारी लाभके लिये पोसे जाते हैं।

टाइम्स आफ इण्डिया

जिस प्रकारकी भ्रान्त धारणाओंका मैंने ऊपर वर्णन किया है, उसी प्रकारकी एक भ्रान्तधारणा टाइम्स आफ इण्डियाकी भी है जिसके दो लेखोंकी ओर मेरे मित्रने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। मैं नहीं जानता कि इसी प्रकार मेरे विषयमें अन्यान्य अखबार भी भूलें करते होंगे, क्योंकि मुझे नियम पूर्वक अखबार पढ़नेका मौका नहीं मिलता है। मैं समझता हूं कि टाइम्स आफ इण्डियाने अज्ञानवश ही मेरे विषयमें भूल की है। एक लेखमें वह मेरे विषयमें लिखता है कि मैंने असहयोग स्थगित कर दिया है कारण कि आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीको मैंने मनुष्य रुपये और चर्खा इन्हीं तीन चीजोंपर अपनी शक्ति केन्द्रीभूत करनेकी सलाह दी है। किन्तु मैं इस बातको माननेके लिये तैयार नहीं हूं कारण कि मैंने स्थगित करनेकी सलाह नहीं दी है जैसा कि मैंने मि० रजा अलीके पत्रोत्तरमें कहा है कि यह स्थगित नहीं किया जा सकता। दूसरे लेखमें बताया गया है कि मैं अब वही गान्धी नहीं हूं जो कुछ दिन पहले था, क्योंकि असहयोगवादियोंकी असफलताको मैं स्वीकार नहीं करता। मैं तो असफलताको देखता ही नहीं बल्कि इसके विपरीत लोगोंमें जागृति देखकर मैं चकित हो गया हूं। मैं समझता हूं जिन संस्थाओंपर सरकारकी साख जमी हुई है उनके विरुद्ध लोकमत तैयार करना ही सबसे बड़ी बात है। टाइम्स आफ इण्डिया कहता है कि असहयोग

आसानीसे नरककी ओर ले जानेवाला है। मैं सम्मान पूर्वक जोर देकर कहता हूं कि यह कठिनतासे स्वर्गकी ओर प्रवृत्तिके सम्बन्धमें बात यह है कि यद्यपि मेरा सिद्धान्त हिंसात्मक युद्ध-को आमन्त्रित अथवा उत्तेजित करनेकी आज्ञा न देगा, तथापि मैं शान्त चित्तसे विचार करता हूं कि अस्त्रके बलपर स्थापित की हुई वर्त्तमान क्षीण शान्तिकी अपेक्षा युद्ध कहीं अच्छा है। इसी कारण मैं इस अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनमें भाग ले रहा हूं, यदि इसका अन्तिम परिणाम विप्लव भी हो। असहयोगके समालोचक यदि चाहें तो देख सकते हैं कि हम लोगोंमेंसे प्रत्येकको विप्लव और रक्तपात रोकनेकी प्रगाढ़ इच्छा है। किसी अवस्थामें भी चाहे असहयोगवादियोंका विश्वास किया जाय या नहीं वे धैर्यको खो नहीं सकते है और न खोना चाहिये। उन लोगोंको निश्चित और संकुचित मार्गका अनुसरण करते रहना चाहिये।

मुझे 'गान्धी तब और गांधी अब' में कोई फर्क नहीं दीखता मैं जैसा तब था वैसा ही अब भी हूं। केवल तब और अबमें केवल इतना भेद आ गया है कि मैं सत्याग्रहके सिद्धान्तको और अधिक समझने लग गया हूं और अहिंसाकी मर्यादाको अधिक मूल्यवान मानने लग गया हूं। और न इस तरहके विश्वासमें मैं अपनेको किसी तरहसे धोखा दे रहा हूं। केवल समय दिखलावेगा कि ठीक मार्गपर कौन है। नजीर तो मेरे ही पक्षमें है।

—*—

माडरेट भाइयोंके नाम

(जून ८, १९२१)

प्रिय भ्रातृवर, यद्यपि मेरी शिक्षा और दीक्षा माडरेटोंके ही बीचमें हुई है तथापि इस समय मेरा आप लोगोंसे घोर मतभेद हो रहा है। इस बातका मेरे हृदयमें बहुत ही अधिक सन्ताप है। कुछ तो अवस्था भेदके कारण तथा कुछ चित्तकी प्रवृत्तिके कारण मैं भारतवर्षके दोनों महान राजनैतिक दलोंमेंसे किसी दलमें नहीं रहा हूं। पर तोभी मेरे चरित्रपर माडरेटदलोंका ही अधिक प्रभाव पड़ा है।

दादा भाई नौरोजी, गोखले, बद्रुद्दीन तैय्यबजी, फीरोज-शाह मेहता आदि ऐसे नाम हैं जिनका मेरे जीवनसे अति घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। देशकी उन्होंने जो सेवायें की हैं वह कभी भी नहीं भूली जा सकतीं। मेरे सदृश इस देशमें अनेक ऐसे हैं जिनके जीवनमें आशा और विश्वासका सञ्चार इन्हींके द्वारा हुआ है। आप लोगोंमेंसे कितनोंके साथ मेरा अतीव घनिष्ठ संपर्क रहा है। क्या कारण है कि इस समय मुझे आपसे अलग होकर राष्ट्रीय दलवालोंके साथ हो जाना पड़ा है? क्या कारण है कि मैं राष्ट्रीय दलवालोंके साथ अधिक सहमत हूं और मेरा मत आपके साथसे उनके साथ अधिक

मिलता जुलता है। मैं इस बातको नहीं स्वीकार कर सकता कि राष्ट्रीय दलवालोंके मुकाबिले आपमें देशप्रेम कम है। मैं यह भी माननेके लिये तैयार नहीं हूं कि आप देशोद्धारके लिये आत्मत्याग करनेमें भी किसी तरह उनसे पीछे रह सकेंगे। साथ ही आप लोग विद्या, बुद्धि, विचार और सदिच्छामें भी उनसे घटकर नहीं हैं। इससे मैं समझता हूं कि भेद केवल आदर्शमें है।

मैं भिन्न भिन्न आदर्शों का उल्लेखकर अपना समय नष्ट करना नहीं चाहता। इस समय मैं आपका ध्यान असहयोग आन्दोलनके चन्द विधायक कार्यक्रमकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। आप असहयोग शब्दको भले ही न पसन्द करें। मैं यह भी जानता हूं कि इसके कई कार्यक्रमको आप लोग हृदयसे नहीं चाहते। पर यदि आप असहयोगियोंमें भी प्रेमकी वही मात्रा देखें जो आपके हृदयमें है तो क्या आप इस आन्दोलनके उन कार्यक्रमोंको आदरकी दृष्टिसे नहीं देखेंगे जिनपर किसी तरहका मतभेद नहीं है। मैं उदाहरणके लिये शराबका उल्लेख करता हूं। मैं आपको इस बातका विश्वास दिलाता हूं कि शराब-खोरीसे जो हानियां हो रही हैं उससे देश तङ्ग आ गया है। जो अभागे इसके शिकार हो गये हैं वे भी इससे उद्धार पानेके लिये सहायता चाहते हैं। कितनोंने तो इसके लिये प्रार्थना तक की है। इस समय शराबखोरीके विरुद्ध लोगोंमें एक तरहका उत्साह हो आया है। मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप इस

अवसरसे लाभ उठायें। शराबखोरीके विरुद्ध आन्दोलन आपसे आप उत्पन्न हो गया। मैं इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूं कि सरकारी क्षतिका इसमें सबसे कम ख्याल किया गया है। सारा देश इस बुराईके मारे अधीर हो गया है। जिस तरह जनताके सर्वसम्मत विरोध करनेपर भी इस देशमें शराबका व्यापार चलाया जा रहा है उस तरह अन्य किसी देशमें कभी भी सम्भव नहीं है। नागपुरमें चाहे जनताने कुछ ज्यादती की हो पर यह आन्दोलन न्यायोचित और यथार्थ है। जो शराब-खोरी उनकी सारी शक्तिको भस्म करती जा रही थी उसका मूलोच्छेदन करनेके लिये जनता तैयार थी। कुछ लोगोंका यह कहना है कि भारतवर्षको जबर्दस्ती दबाकर परहेजगार नहीं बनाया जा सकता। जो लोग शराब पीना चाहते हैं उनके लिये उचित प्रबन्ध होना चाहिये। पर मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप इस तरहकी बातोंमें न आजाइयेगा। प्रजामें दुराचार फैलानेके लिये राजा या सरकार नहीं बनी है। हम लोग बद-नाम पेशोंके लिये यह प्रबन्ध नहीं चाहते। हम लोग चोरों और बदमाशोंके लिये सुभीता नहीं देते। शराबखोरीको मैं चोरी और ऐयाशीसे भी खराब समझता हूं। कभी कभी तो शराब-खोरीसे ही दोनों बातें आरम्भ होती हैं। इसलिये मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूं कि आप शराबकी दूकानोंके बन्द कर-वाने तथा शराबखोरीसे जो आमदनी होती हो उसे रोकवानेके काममें सहायता कीजिये। कितने ही दूकानदार शराबकी

दूकानें बन्द करनेके लिये तैयार हैं यदि उनकी जमानत और लाइसंसका रुपया लौटा दिया जाय।

अब बालकोंकी शिक्षाको लीजिये। कितने लज्जा और अपमानकी बात है कि शराबखोरीको आमदनीसे हमारे बालकोंको शिक्षा दी जाय। यदि हम लोगोंने शराबखोरीको एकदमसे बन्द नहीं कर दिया तो हमारी आनेवाली सन्तान हमें गालियां देंगी और हमारी निन्दा करेगी। चाहे हमें बालकोंको शिक्षा भले ही बन्द कर देनी पड़े पर शराबखोरी तो उठा ही देनी चाहिये। पर हमारे बालकोंकी शिक्षापर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। मैंने कई बार कहा है कि शिक्षालयोंमें चरखेका प्रचार कर देनेसे शिक्षाका काम उसीसे चल जायगा पर इसपर आप लोगोंने मेरी हंसी उड़ाई है। पर मैं आपको दृढ़ विश्वास दिलाता हूं कि शिक्षाके लिये आपका प्रश्न जितना इससे हल होता है उतना और किसीसे नहीं। देशके ऊपर करका और बोझ लादना असम्भव है क्योंकि जो कर उसके ऊपर लादे गये हैं वे ही सम्हालके बाहर हो रहे हैं। यदि प्रजाकी बढ़ती दरिद्रताका शीघ्रातिशीघ्र प्रतीकार करना है तो मादकद्रव्योंकी आमदनीके अतिरिक्त अन्य करोंमें भी बहुत कमी करनेकी आवश्यकता है।

इस प्रश्नको छूते ही मुझे वर्तमान सरकारके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इन सुधारोंने देशको और भी दरिद्र बना दिया। वार्षिक व्यय बढ़ गया है वर्तमान

शासनप्रणालीके तहतक पहुंच कर मैंने यही देखा कि केवल इस तरह दबानेसे काम नहीं चल सकता। इस समय वर्तमान शासन प्रणालीमें पूर्ण क्रान्तिकी आवश्यकता है। कदाचित क्रान्ति शब्द आपको खटकता है। पर इस 'क्रान्ति' से मेरा अभिप्राय रक्तपात नहीं है वलिक लोगोंकी समझमें क्रान्ति, धारणामें क्रान्ति और विचारमें क्रान्ति जिससे उच्च नौकरियोंकी मर्यादामें परिवर्तन कर दिया जाय। मैं आपसे स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि उच्च पदस्थ सिविल सर्विसके कर्मचारियोंको जो वेतन दिया जाता है उसका स्मरणकर मैं कांप उठता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि इसमें आप मेरे साथ होंगे। एक तरफ शासकोंकी दशा देखिये और दूसरी और शासितोंकी दशा देखिये। क्या इन दोनोंके रहन सहनमें किसी भी तरहकी समता है। एक तो मौज उड़ा रहा है और दूसरा पैरों तले रौंदा जाकर कराह रहा है। इन बिचारोंकी गलित पलित और जीर्णशीर्ण आकृति ही मेरे कथनके लिये यथेष्ट प्रमाण है। इस समय आप भी शासकों-के सहायक हो रहे हैं। आपकी ओरसे कोई ऐसा आचरण न होना चाहिये जिससे देशको इस बातके कहनेका अवसर मिल जाय कि आपका हृदय भी उसी तरह निठुर है जैसा कि अन्य अंग्रेज शासकोंका। क्या आप भी शिमलाकी शीतल वायुका सेवन करते रहकर ही शासनका कार्य चलाना चाहते हैं? क्या आप भी उसी नीतिपर चलना चाहते हैं जिसकी स्वयं आपने गत वर्षोंमें निन्दा की है और दूषित ठहराया है। आपके ही

शासन कालमें एक मनुष्यको देश निकालेका दण्ड केवल इस-लिये दिया गया है कि उसके विचार कुछ असाधारण थे। आप यह नहीं कह सकते कि वह हिंसाका प्रचार कर रहा था क्योंकि कुछ ही दिन पहले आपने इसे अस्वीकार किया है। अली बन्धुओंने केवल इसलिये क्षमा माँगी कि उनके भाषणमें हिंसात्मक शब्दोंके होनेकी आशङ्का मात्र थी। यदि आप इससे यह धारणा कर लेते हैं कि अभियोग चलाये जानेके भयसे उन्होंने क्षमा मांगी तो आप देशके साथ घोर अन्याय कर रहे हैं। इस समय देशमें नया जोश पैदा हो गया है। अन्तरात्मामें जो न्यायपति बैठा है उसके फैसलेका लोगोंमें अधिक भय हो गया है। क्या आप लोग यह नहीं जानते कि गत छः महीनोंमें आपके अनेक देशवासी नवयुवक केवल इसलिये जेल भेज दिये गये कि उन्होंने उस जमानतको देना अस्वीकार किया जिसे वे अनुचित और अन्यायपूर्ण समझते थे। आपके ही अधिकारभुक्त होनेपर मावलोंके धैर्य्य की कड़ी परीक्षा की गई है और आज भी उन्हें मुक्ति नहीं मिली थे। मुझे इस बातका हर्ष है कि अमन और कानूनके नामपर दमनका इस समय जो दौरा हो रहा है उसमें आपका हाथ नहीं है। पर आप लोग मुझे या जनताको यह कहनेका अवसर न देंगे कि आप लाचार हैं। यहीं मुझे आपके आदर्शोंके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता पड़ती है पर यहां पर मैं उनकी चर्चा नहीं करना चाहता। यदि आप इस समय केवल शराबखोरीको रोकनेमें देशकी सहायता करें तो आप

अपनी पूर्व सेवाओंमें और भी एक अङ्क जोड़ देंगे और इससे मुझे पूर्ण आशा है कि अन्य कार्यक्रमोंकी उपयोगिता और संभावनाकी ओर आपकी दृष्टि जायगी।

आपका चिर कृतज्ञ—

मोहनदास कर्मचन्द गांधी

डाक्टर पुलिनका पत्र

(जून २२, १९२१)

डाकृर पुलिनकी खुली चिट्ठी मिली। चिट्ठी पत्रोंमें निकल चुकी है इससे उसे यहां देनेकी आवश्यकता नहीं। पत्रके भाव डाकृर पुलिनके ही अनुरूप हैं। असहयोग आन्दोलनको समझनेका उन्होंने शायद ही कष्ट उठाया है। पर जिस बातको वे न जानते हैं और न समझते हैं उसकी भी निन्दा करनेमें उन्हें किसी तरहकी आपत्ति नहीं प्रतीत हुई। साथ ही तमाशा यह कि उनकी प्रेरणा है कि मैं अपने अनुभवोंको न मानकर उनके शब्दोंपर ही अधिक भरोसा करूं। मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि डाकृर पुलिनके पत्रसे भी वही बात झलकती है जो अधिकांश अंग्रेजोंमें देखनेमें आती है अर्थात् विपक्षीकी बातोंके सारको जाननेकी चेष्टा करनेका आलस्य और

लापरवाही तथा इस बातको मान लेनेकी धृष्टता कि मैं सर्वज्ञ हूं। ऐसे लोगोंके लिये असहयोग और हिंसा दोनों एक ही बात है। यदि आप हिंसाकर बैठें किसीका प्राण ले लें तो तुरन्त उसके लिये कार्रवाई करनेपर उतारू हो जायंगे। यदि आप उनसे सहयोग करना छोड़ दें तोभी वे उसके लिये कार्रवाई करना शुरू कर देंगे। यदि किसीने हिंसा की तो वे उसकी जाँचकी कभी भी परवा नहीं करेंगे वे उत्तेजित हो उठेंगे और रक्तपातके लिये उतारू हो जायंगे। कभी कभी तो भयानक क्रूरता का राज्य छा जाता है। इससे भी उन्हें पूरी शान्ति नहीं मिलती कभी कभी तो वह उस बीमारीके परिणामसे भी ज्यादा प्रतीत होती है। पर असहयोगमें हम हिंसा करनेवालेसे भाषण करना छोड़ देते हैं, उसके पापाचारमें उसकी सहायता करना छोड़ देते हैं, उसके पतनमें उसकी सहायता नहीं करते, पापीके साथ सहयोग नहीं करते, इस तरह असहयोग करनेवालेको तो शक्ति मिलती है और पाप करनेवालेका पाप धुल जाता है और उसकी आत्मा पवित्र हो जाती है। मेरी समझमें भारतवर्षने इस समय जिस मार्गका अनुसरण किया है वह सबसे उत्तम मार्ग है। डाक्टर पुलिनने आलस्यवश इस बातको समझनेकी चेष्टा नहीं की है कि असहयोगमें अहिंसा सबसे प्रधान है। हिंसाको दूर कर उसके स्थानपर अहिंसाका प्रचार ही उसका प्रधान लक्ष्य है! इसमें सन्देह नहीं कि हिंसाकी सम्भावना है। पर अभीतक असहयोग जो कुछ कर सका है वह हिंसाके भावको दूर करना

हैं और यदि इसकी आजमाइश अधिक कालतक होती गई तो यह लोगोंको भलीभांति समझा देगा कि हिंसा एकदम अनावश्यक है। असहयोगका इलाज विचित्र इलाज है। विना प्राण लिये ही वह बीमारीको अच्छा कर देता है।

डाक्टर पुलिनको यह भी भलीभांति समझ लेना चाहिये था कि ब्रिटिश वस्तुओंके बहिष्कारका पक्षपाती मैं जैसा तब था वैसाही अब भी हूं। मैं सदा इस बातको समझाता आया हूं कि भारतको सदाके लिये समस्त विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करना चाहिये तथा उन अन्य विदेशी वस्तुओंका भी बहिष्कार करना चाहिये जिन्हें भारतवर्षमें लाभ और आसानीके साथ पैदा या तैयार किया जा सकता है। जिस तरहके स्वदेशी प्रचारकी मैंने योजना की है उसमें दण्ड देने या बदला लेनेके भावका समावेश नहीं है। उससे आत्मनिर्भरता टपकती है और प्रकृतिके उस नियमका पालन किया जाता है कि प्रत्येक मनुष्यका यह धर्म होना चाहिये कि वह अपने सन्निकटवर्ती जनोंकी अधिकसे अधिक सहायता करे। यदि भारत अपनी आवश्यकता आप पूरी करने लग जायगा और किसीके भरोसे उसे नहीं रहना पड़ेगा तो वह संसार भरकी सहायता कर सकेगा और यदि उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति सदा मैंचेस्टर और जापानसे ही होती रही तो वह अपनी हानि तो करेगा ही संसारके लिये भी संकटापन्न रहेगा।

यहीं पर मैं डाक्टर पुलिनको यह भी बतला देना चाहता हूं

कि जिस सरकारका किसी समय मैं भ्रमके कारण सच्चा भक्त था और दिली दोस्त था आज मैं उसी सरकारका और उसकी शासन प्रणालीका कट्टर शत्रु हो रहा हूं फिर भी ब्रिटिश जनताका मैं अपनेको मित्र समझता हूं। मेरे धर्मके अनुसार न तो मेरा कोई शत्रु हो सकता है और न मित्र हो सकता है। इसलिये मैं डाक्टर पुलिनको पक्का विश्वास दिलाता हूं कि मैं ब्रिटनके लोगोंको सदा अपना सगा भाई समझता रहूंगा और इस समय मैं उनके साथ जो व्यवहार कर रहा हूं वह व्यवहार आवश्यकता पड़नेपर मैं अपने सगे भाईके साथ भी कर सकता हूं।

इस सरकार तथा इसकी शासन प्रणालीके लिये जिन विशेषणोंका मैंने प्रयोग किया है आज भी मैं उनका प्रयोग उसी तरह कर रहा हूं। पर मैं बुराईका बुराई कहते हुए भी उसके प्रतिकूल किसी तरहकी उत्तेजना उठनेका अवसर नहीं देता। बीमारीकी भीषणताका नाम सुनकर रोगी घबरा जायगा इस भयके मारे रोगको छिपाना या उसकी उपेक्षा करना उचित नहीं। उसे रोगकी भीषणताके लिये चेतावनी अवश्य दे दी जानी चाहिये और साथ ही उसके लिये उपयुक्त उपचार भी कर देना चाहिये।

डाक्टर पुलिनने अपनी भूमिकामें जो अनजानकारी दिखलाई है वही अनजानकारी उन्होंने मेरे मन्तव्योंके विरोधमें भी दिखलाई है। जिन मन्तव्योंपर मेरा और अधिकांश भारतवासियोंका कट्टर विश्वास है उनका वे विरोध और निन्दा करते हैं पर

उसके समर्थनके लिये कोई भी युक्ति नहीं पेश करते। मेरी तथा अन्य भारतवासियोंकी धारणा है किः—

(१) भारतवर्षकी शासन प्रणाली बहुव्ययी है अर्थात् इसपर जितना खर्च किया जाता है उतना संसारकी किसी भी शासन प्रणालीमें खर्च नहीं है।

(२) भारत दिनपर दिन दरिद्र होता जा रहा है पहलेकी अपेक्षा आज उसकी दशा बहुत खराब है।

(३) शराबकी बुरी लत जितना इस समय सता रही है कभी भी नहीं थी। (यह कोई नहीं कहता कि ब्रिटनके आगमनके पूर्व यहां शराबखोरी थी ही नहीं)

(४) भारतका शासन जालिमाना है। त्रास और भयके बल प्रजापर शासन किया जाता है।

इन आक्षेपोंको डाक्टर पुलिनने झूठा बतलाया है और लिखा है कि भारतका शासन अन्य देशोंसे अल्पव्ययी है पर यह लिखते समय डाक्टर पुलिनको कदाचित इस बातका स्मरण नहीं रहा कि भारतीय सिविल सर्विसकी अत्यव्ययिता सर्वत्र विख्यात है और तिहाई आमदनी केवल सैनिक व्ययमें समाप्त हो जाती है। जरा उस घरकी दशा पर विचार कीजिये जिसे अपनी आमदनीका तीसरा हिस्सा केवल जमादारके वेतनमें व्यय करना पड़ता हो।

डाक्टर पुलिनने लिखा है कि भारत अतीव समृद्ध देश है। उसके अधिकांश निवासी धनी हैं, केवल छिटफुट कुछ लापर-

वाह और दरिद्र किसान बसे हैं। उसके बाद वे कहते हैं कि भारतकी औसत आय २।) मानकर सालमें २७) हुए। यदि पांच व्यक्तियोंका एक कुटुम्ब है तो उसकी आय १२५) हुई। क्या पांच आदमियोंके भरणपोषणके लिये १२५) कम हैं? पर मेरा यह कहना है कि २।) मासिककी आयसे गरीबसे गरीब व्यक्ति भी अपने भोजन और वस्त्रकी आवश्यकताको नहीं मिटा सकता। इसपर भी २।) रु० गरीबोंकी आमदनी नहीं हो सकती। उनकी आमदनी तो और भी कम हो जायगी क्योंकि २।) तो औसत है जिसमेंसे धनिकोंके हिस्सेमें २।) से कहीं अधिक पड़ता होगा। इस प्रकार गरीबोंकी आय और भी घट जाती है। इससे केवल भारतकी दरिद्रताका ही प्रमाण नहीं मिलता बल्कि यह भी व्यक्त होता है कि प्रायः लोग एक वक्त भो पेटभर भोजन नहीं पाते।

मादक विभागसे दिनपर दिन सरकारी आमदनी बढ़ती जा रही है। इस प्रत्यक्ष प्रमाणके होते हुए भी डाकृर पुलिनने यह लिखनेकी धृष्टता की है कि वर्तमान शासनप्रणाली शराबखोरी घटाती जा रही है।

अत्याचार और बर्बरताकी बातें तो डाकृर पुलिन एकदमसे पी गये और उसके स्थानपर आप लिखते हैं कि भारतके निवासी अपने देशमें उतने ही स्वतन्त्र हैं जितना वेलस, स्काटलैण्ड और इङ्गलैण्डके निवासी अपने अपने देशोंमें हैं।

इस तरहकी मूर्खता और अज्ञानताके अन्धकारका लोप केवलमात्र असहयोगसे ही हो सकता हैं।

भारतके अंग्रेजोंके नाम पत्र

(२)

(जुलाई १३, १९२१)

प्रियवर, आज मैं दूसरी बार आपकी सेवामें निम्नलिखित पत्र लिख रहा हूं। मैं यह जानता हूं कि आपमेंसे अधिकांश ऐसे हैं जो असहयोगके नामसे ही चिढ़ते हैं। पर मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि यदि आप मेरी ईमानदारीपर विश्वास करते हैं तो आप मेरी अन्य कार्रवाइयोंको अलग करके केवल दो ही पर ध्यान दीजिये।

मेरी ईमानदारीको प्रमाणित करनेका मेरे पास कोई साधन नहीं है यदि आपको उसपर विश्वास नहीं है। जब मैं कहता हूं कि मैं अंग्रेजोंसे घृणा नहीं करता वलिक उनकी शासन-प्रणालीसे घृणा करता हूं और यही हमें करना चाहिये तो कित-नेही देशवासी मुझपर हँसते हैं और चालबाजीका दोषारोपण करते हैं। मैं उन्हें यह साबित करके दिखला देना चाहता हूं कि कोई भी व्यक्ति अपने भाईकी घृणित कार्रवाईसे घृणा करके भी उस भाईसे घृणा नहीं कर सकता। जीससने यही किया था। स्क्राइब्स और फरीसीज़की बुराइयों और पापोंसे वह घृणा करता था पर जनताकी ओरसे उसके दिलमें किसी तरहका असद्भाव नहीं था। उसने यह नियम नहीं बनाया था

कि किसी मनुष्यसे प्रेम रखते हुए भी उसकी अनाचारपूर्ण कार्रवाईसे घृणा करो। इसका उल्लेख तो सभी धर्म ग्रन्थोंमें मिलता है। उसने केवल इसके प्रयोगकी शिक्षा दी थी।

मैं समझता हूं कि मानव प्रकृतिका मुझे कुछ ज्ञान है। मैं अपनी कमजोरी भी जानता हूं। मैंने अनुसन्धानसे पता लगाया है कि मनुष्य जिस नीतिका प्रचार करता है उससे वह सदा उत्कृष्ट रहता है। इसलिये मेरी धारणा है कि आप सब मिलकर जिस शासन व्यवस्थाकी स्थापना कर रहे हैं और जिसे चला रहे हैं उससे आपकी व्यक्तिगत आत्मा अवश्य उत्कृष्ट होगी। १० वीं अप्रेल १६१६ की अमृतसरकी सभाका ही उदाहरण ले लीजिये। उसके एकत्रित जनसमुदायकी वृत्तिसे प्रत्येक व्यक्तिकी वृत्ति कहीं उत्कृष्ट थी। यदि उसे अकेला काम करना पड़ा होता तो वह उन निर्दोष अंग्रेजोंकी कभी भी हत्या न करता, क्योंकि वह उन्हें निर्दोष जानता था। पर जमात या भीड़के लोग अपनेको एकदम भूल गये। इसीके अनुसार मैं कहता हूं कि एक अंग्रेज अधिकारके भीतर और अधिकारके बाहर भिन्न है। उसी तरह एक अंग्रेज भारतमें भिन्न है और इङ्गलैण्डमें भिन्न है। यहां भारतमें आप उस शासन प्रणालीके सदस्य होकर आते हैं जिसकी बुराई बयानके बाहर है। इसलिये मैं उस प्रणालीकी बुराइयोंकी कड़ेसे कड़े शब्दोंमें निन्दा कर सकता हूं पर इससे न तो मैं आपपर किसी तरहका दोषारोपण कर रहा हूं और न अन्य अंग्रेजोंकी

निन्दा कर रहा हूं। इस शासन प्रणालीके आप भी उसी तरह दास हैं जिस तरह हम लोग हैं। इसलिये आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे बारेमें ऐसी कोई भी धारणा नहीं कर लीजिये जो मेरे लिखित शब्दोंसे किसी भी प्रकार न प्रगट होती हो। मेरा सारा अभिप्राय और प्रयास इस प्रणालीको सुधारकर ठीक कर देने या उसका अन्त कर देनेका है जिसमें रहकर भारतवर्ष मुट्ठीभर अंग्रेजोंका खिलौना हो रहा है और जिसमें प्रत्येक अंग्रेजके हृदयमें यह बात समाई हुई है कि हमारी रक्षा केवल तोपों और किलोंके सहारे हो सकती है। इस तरहकी बातें हमारे और आपके लिये अति लज्जाजनक और हीन हैं। सङ्कुठित जीवनमें हम लोग परस्पर एक दूसरेसे विश्वास नहीं करते। क्या यह मनुष्यतासे परे नहीं है? जिस प्रणाली या व्यवस्थाके कारण इस तरहकी स्थिति उपस्थित हो गई है क्या उसे "शैतानी और राक्षसी" नहीं कह सकते। भारतमें आपका निवास उसकी जनताका अङ्ग स्वरूप होना चाहिये न कि डाकू और लुटेरोंके मानिन्द। कहा जाता है कि एक अंग्रेजकी जानके बदले एक हजार भारतीयोंकी जानकी कुर्बानी होगी। क्या यह घोर निराशाका सिद्धान्त नहीं है और इस सिद्धान्तको आपके सबसे प्रधान अफसरने १९१९ में चरितार्थ करके दिखला भी दिया।

इसलिये मैं आपसे इस बातकी प्रार्थना करनेके लिये बाध्य हूं कि आइये आप और हम दोनों मिलकर उस प्रथाका नाश

कर दें जिसने हमें और आप दोनोंको नीचे गिरा दिया है। पर मैं देखता हूं कि अभी यह संभव नहीं है। हम लोगोंने अभी तक पर्याप्त तत्परता, आत्मत्याग और आत्मसंयम नहीं दिख-लाया है। पर मैं आपसे इस बातके लिये तो प्रार्थना कर सकता हूं कि आप विदेशी कपड़ोंके बहिष्कार और मद्यनिवार-णमें हमारी सहायता कीजिये।

अंग्रेजी इतिहासज्ञोंने लिखा है कि लङ्काशायरके वस्त्रोंका प्रचार इस देशमें जबर्दस्ती किया गया और उसके लिये भारतके शिल्प और कारीगरीका गला घोंटा गया। इस समय भारत-वर्ष केवल लङ्काशायरका ही आश्रित नहीं हो रहा है बल्कि जापान, फ्रांस और अमरीकाका भी। आप ही विचार कर देखिये कि इससे भारतवर्षकी क्या दशा हुई है। हम लोग केवल वस्त्रके लिये प्राय: ६० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष विदेशोंमें भेजते हैं। हमारे यहां जो रूई पैदा होती है उससे हमारे कपड़ेकी आवश्यकता मजेमें पूरी हो सकती है। यहांसे रूई विदेश भेजना और वहांसे वस्त्र तैयार करके मंगाना क्या मूर्ख-तासे भरा नहीं है। क्या भारतको इस दीन और लाचारीकी दशापर पहुंचाना उचित था?

१५० वर्ष पहले हम लोग अपने लिये वस्त्र आप तैयार कर लेते थे। घरमें स्त्रियां चरखे चलाकर सूत कातती थीं और इस तरह घरके पुरुषोंकी कमाईमें सहायता करती थीं। गांवके जुलाहे उस सूतसे वस्त्र तैयार करते थे। भारत सदृश कृषि

प्रधान देशमें यह राष्ट्रीय मितव्ययिताके लिये नितान्त आवश्यक था। इसके द्वारा हम लोग अपने फालतू समयका बड़े मजेमें उपयोग करते थे। आज हमारी स्त्रियोंकी क्या दशा है? हाथकी गतिको वे एकदम भूल गईं और सारा देश दरिद्र हो गया। जुलाहोंको बुननेका काम छोड़ छोड़कर अन्य पेशोंमें जाना पड़ा। जो जुलाहे हाथकी कारीगरीके लिये जगत्प्रसिद्ध थे वे ही आज बेकार होकर लुप्त प्रायः होते जा रहे हैं और जो कुछ बचे हैं वे भी देशी पतला धागा न पाकर विलायती धागेपर ही निर्भर करते हैं।

अब आप भलीभांति समझ सकते हैं कि विदेशी वस्त्रोंके वहिष्कारसे भारतको क्या लाभ होगा। यह कार्यक्रम किसीको दण्ड देनेकी नीयतसे नहीं निश्चित किया गया है। आज यदि भारत सरकार खिलाफतकी समस्या हल करने तथा प्रजाके साथ किये गये अत्याचारोंके प्रतीकारके लिये तैयार हो जाय तो भी विदेशी वस्त्रोंके वहिष्कारका आन्दोलन ज्योंका त्यों जारी रहेगा। स्वराज्यका अभिप्राय है भारतमें उस व्यवसायके चलानेका पूर्ण अधिकार जिससे भारतकी आर्थिक अवस्था सुधर सके तथा उन विदेशी वस्तुओंके वहिष्कारका अधिकार जिनसे भारतकी आर्थिक दशापर हानि पहुंचती हो। इस राष्ट्रके दो प्रधान अङ्ग है खेती और चरखा। किसी न किसी उपायसे इन्हें विनाशसे बचाना ही हमारा परम धर्म है।

इसके लिये अब ठहरने सोचने विचारने या प्रतीक्षाके लिये

समय नहीं है। कृषिके सहायक इस पेशेके न होनेसे आधेसे अधिक नागरिक आज भूखों मर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें विदेशी व्यापारियों और भारतके व्यापारियोंके स्वार्थका ख्याल नहीं किया जा सकता।

मैंने शुरूसे अन्ततक विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारकी ही चर्चा की है। इससे आप भ्रममें पड़कर विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका अर्थ मत निकाल लीजियेगा। मैं यह नहीं चाहता कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायके लिये भारतका द्वार बन्द कर दिया जाय। जो वस्तुयें अन्य देशोंमें यहांसे अच्छी बन सकती हैं उसे यह अवश्य मंगावे पर उसमें अपनी सुविधा और लाभ देख ले। कोई भी वस्तु उसपर जबर्दस्ती न लाद दी जाय। पर मैं भविष्यकी चिन्ता यहां नहीं करना चाहता। मुझे पूर्ण आशा है कि वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है जब भारतवर्ष ब्रिटनके साथ बराबरीके नाते हाथ मिलावेगा। उस समय व्यवसायिक सम्बन्धको ठीक करनेका प्रश्न उठेगा। इस समय तो मैं आपसे केवलमात्र यही प्रार्थना कर रहा हूं कि आप विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारमें हमारी सहायता कीजिये।

शराबखोरीका रोकना भी उतना ही आवश्यक है। शराबकी दूकानोंसे हमारे देशको जो क्षति पहुंच रही है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज इस विषयमें लोगोंके जो ख्याल हो गये हैं वह पहले कभी नहीं थे। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि मन्त्री लोग—जो अधिकांश भारतीय हैं—इस मामलेमें

हमारी सहायता आपसे अधिक कर सकते हैं। पर मैं चाहता हूं कि आप इस विषयपर अपना स्पष्ट मत प्रगट कर दें। किसी प्रकारकी शासन व्यवस्था क्यों न हो यदि प्रजा चाहती है तो उसे एकदमसे रोकवा सकती है। आप इस आन्दोलनको बढ़ानेमें सहायता कर सकते हैं और अपने प्रभावसे देशको और भी अधिक जागृत कर सकते हैं।

आपका विश्वासी मित्र—

मोहनदास कर्मचन्द गांधी

कष्ट सहनका मर्म

(जून १६, १९२०)

यातनाकी आगमें तपे विना आजतक किसी भी राष्ट्रका उत्थान नहीं हो सका है। बालककी रक्षाके लिये माता अनेक तरहकी यातनायें सहती है। अंकुर उगनेके लिये सबसे पहले बीजको सड़ना पड़ता है। मरणके बाद ही जीवन लाभ होता है। यही प्राकृतिक नियम है। क्या भारत इस प्राकृतिक नियमके अनुसार यातनाद्वारा अपनी आत्माको पवित्र किये विना ही अपना उद्धार चाहता है ?

यदि मेरे सलाहकारोंकी धारणा सही है तो मैं निश्चय कह सकता हूं कि भारतवर्ष अपनी अभिलाषा विना किसी सहायताके पूरी कर लेगा। हम लोगोंका प्रधान लक्ष्य है कि भारतवर्षके १६१६ की घटना पुनः दोहरायी न जाय। वे असहयोगसे इसलिये डरते हैं कि उसमें अनेकों यातनायें सहनी पड़ेंगी। यदि सभी इस नीतिपर काम करते जायँ तो संसारके अत्याचारों और जुल्मोंका अन्त नहीं हो सकता। इङ्गलैण्ड और फ्रांसके इतिहास इस तरहके उदाहरणोंसे भरे हैं कि यातनाओं और अत्याचारोंकी परवा न करके भी लोगोंने अपने सिद्धान्तका—जिन्हें उन्होंने सही समझा है—प्रचार किया है। उन लोगोंने इस बातका क्षणभरके लिये भी विचार नहीं किया कि हमारे इस आन्दोलनके कारण अनेक निर्दोषोंके प्राण जायगे। तो फिर हम अपने इतिहासमें दूसरी बात भरनेकी क्यों चेष्टा करें? यह हो सकता है कि अपने पूर्वजोंकी भूलों और त्रुटियोंको समझकर सचेत हो जायं और उससे उत्तम मार्ग और उपायका अवलम्बन करें। पर हम लोग यातनासे अपनेको दूर नहीं रख सकते, क्योंकि उत्थानमें यह अनिवार्य कारण है। हम लोग सिनफिनरोंका तरीका अख्तियारकर अत्याचारियोंको बलपूर्वक या पशुबलद्वारा दबानेकी चेष्टा न करेंगे और न तो अपने सगे सम्बन्धियोंको अपना मत बलात् स्वीकार करवायेंगे जैसा कि पारसालकी हड़तालके अवसरपर कुछ लोगोंने किया था। हम लोग यातना सहनेके लिये जितना तैयार रहेंगे उसीके अनुसार

हमारी उन्नतिकी जांच होगी। हम लोग यातना सहनेमें जितना पवित्र आचरण रखेंगे उतनी अधिक हमारी उन्नति होगी। यही कारण था कि ईसामसीहकी यातनाकी पराकाष्ठाने संसारकी यातनाओं और दुःखोंका अन्त कर दिया। जिस समय वह अपने सिद्धान्तोंको लेकर आगे बढ़ रहा था उसने इस बातकी कभी भी परवा नहीं की थी कि उसके अनुयायियोंको कितनी यातना सहनी पड़ रही है, कर्त्तव्य पालनमें उन्हें आपसे आप कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा है और दूसरे उन्हें किस तरह सता रहे हैं। इसी तरह हरिश्चन्द्रने अनेक तरहकी विपत्तियोंका सामना करके ही सत्यका अटल साम्राज्य स्थापित किया। उसे अवश्य विदित था कि यदि वह राज्य सिंहासन छोड़ देगा तो उसकी प्रजा घोर कष्टमें पड़ जायगी। पर उसकी उसने परवा नहीं की, क्योंकि यदि वह उस विचारमें पड जाता तो वह सत्यका पालन नहीं कर पाता।

मैंने कई बार कहा है कि जलियांवालाबागकी दुर्घटनाका मुझे उतना दुःख नहीं है जितना दुःख मुझे उन अंग्रेजोंकी जान और मालकी हत्याके लिये है जो मेरे देशवासियोंने की। अमृत-सरका हाहाकर घटा और लाहोरमें उसका भीषण रूप प्रगट हुआ। यहां पर जनताको धीरे धीरे अत्याचारकी आगमें जलाया और झुलसाया गया। पर यदि हम अपना उत्थान चाहते हैं तो हमें इस तरहकी यातनायें अनेक बार भोगनी पड़ेंगी और उनको भोगते भोगते हमें इतना सहनशील हो जाना पड़ेगा कि

हमें उनमें सुखका अनुभव करना होगा। मेरा पक्का विश्वास है कि लाहोरवालोंपर जो अत्याचार किया गया था उसके वह पात्र नहीं थे। न तो उन्होंने किसी अंग्रेजकी जान ली थी और न किसीका माल बरबाद किया था। पर उच्छृङ्खल शासक उन्हें पीस डालनेके लिये तुला था क्योंकि उन्होंने दासताके जुएको तोड़ फेंकनेका प्रयास किया था और यदि यह कहा जाता है कि इन सब घटनाओंका कारण मेरी सत्याग्रहकी शिक्षा है तो मैं साहसके साथ उत्तर देता हूं कि मैं इसके प्रचारमें और भी दत्तचित्त रहूंगा और जनताको यही सिखाऊंगा कि यदि दूसरी बार इस तरहकी घटना उपस्थित हो और डायरशाहीका प्रकोप जारी हो तो आप अपनी दूकान तक मत खोलिये और सारे असबाब और मालको नीलाम हो जाने दीजिये। अपनी सारी सम्पत्ति बेंच डालिये पर अपनी आत्माको मत बेंचिये। प्राचीन समयके ऋषि लोग आत्माको स्वतन्त्र बनानेके हेतु अपने शरीरको यातनाओंसे तपा डालते थे जिससे उनकी आत्मा इतनी बलवती हो जाती थी कि यदि ज़ालिम अपना ज़ालिमाना सिक्का उनपर चलाना चाहता था तो वह कारगर नहीं होता था। यदि भारत अपनी प्राचीन सभ्यताकी पुनः स्थापना करना चाहता है, यदि वह यूरोपकी बुराइयोंसे अपनी रक्षा करना चाहता है यदि भारत इस पृथ्वीपर स्वर्गके सुखका अनुभव करना चाहता है और शैतानके राज्यका मूलोच्छेदन चाहता है जिसने इस समय यूरोपको घेर रखा है तो उसे मीठी बातोंमें नहीं आजाना चाहिये,

यातनाओंके नामसे उसे कांपना नहीं चाहिये बल्कि यूरोपकी अवस्थासे उसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और दूसरोंको सताने-की प्रवृत्तिका त्याग कर स्वयं यातना सहनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। जर्मनी सबपर अपनी धाक जमाना चाहता था और मित्रराष्ट्र उसे पीसकर संसारपर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। परिणाम क्या हुआ। जर्मनीका पतन हुआ पर यूरोपकी दशामें किसी तरहका सुधार नहीं हुआ। मित्र राष्ट्रोंने उसी विश्वासघात, लोलुपता, स्वार्थीपन तथा क्रूरताका परिचय दिया है जिसकी सम्भावना जर्मनीसे थी। जर्मनी कमसे कम उस तरहकी चालबाजियोंसे दूर रहता जो मित्रराष्ट्र अनेक स्थलोंपर प्रगट कर रहे हैं।

जिन भूलोंके लिये मैंने गत वर्ष खेद प्रगट किया था उनका सम्बन्ध प्रजाकी यातनाओंसे किसी भी प्रकार नहीं था। प्रजाकी ओरसे जो ज्यादतियां की गईं थीं उनके लिये मुझे खेद था कि जनताने सत्याग्रहके सिद्धान्तको बिना समझे बूझे ही ग्रहण कर लिया। तो इस यातनाके सिद्धान्तके अनुसार असहयोगका क्या मर्म है? जो सरकार हम लोगोंकी इच्छाके प्रतिकूल हमारा शासन कर रही है उसके साथ सहयोग न करनेके कारण हमें जिन यातनाओं, असुविधाओं और अत्याचारोंको सहना पड़े उन्हें धीरताके साथ बर्दाश्त करना और बिना किसी विचार या पाश्चात्तापके उन हानियोंको उठाना जो इसके कारण उप-स्थित हों। थूराने लिखा है कि बेईमान और अन्यायी सरकारके

शासनमें समृद्ध और धनी होना पाप है अधिकार शाप है, वहां तो निर्धन रहना ही गुण है। यह सम्भव है कि आरम्भिक अवस्थामें हम लोग भूलें करें, ऐसी यातनायें हमें सहनी पड़ें जिन्हें हम रोक सकते थे। पर राष्ट्रको नपुंसक होने देनेके बनिस्बत इन यातनाओंको भोगना मेरी समझमें उपयुक्त और उचित है।

जबतक कि अत्याचारी अपने अत्याचारोंको समझकर उसके पूर्ण प्रतिकारके लिये तैयार न हो जाय हमें दम नहीं लेना चाहिये। इस भयसे कि हमारे इस तरहके आचरणसे हमें या अन्यको किसी तरहकी यातना भोगनी पड़ेगी हमें उस पापाचारमें नहीं शामिल होना चाहिये। हमें पापाचारीकी किसी भी प्रकार सहायता नहीं करनी चाहिये। उसकी सहायता करना बन्द कर ही हमें उसके अत्याचारोंसे युद्ध करना चाहिये।

यदि पिता भूल करता है तो पुत्रका यह धर्म है कि वह पिताका साथ छोड़ दे। यदि किसी स्कूलका अध्यक्ष स्कूलको भ्रष्टाचारकी नीतिपर चलाता है तो छात्रोंका धर्म है कि वे फौरन उस स्कूलको छोड़ दें। यदि किसी संस्थाका अध्यक्ष बेईमान है तो उस संस्थाके सदस्योंका धर्म है कि वे उससे सहयोग त्याग दें और उसकी बेईमानीमें सहायक न हों। इसी तरह यदि कोई सरकार अन्याय करती है तो प्रजाका धर्म है कि उससे सहयोग त्याग दें और इस तरह उसे अन्यायसे दूर करें। इस तरहकी यातनाओंको अङ्गीकार किये विना स्वराज्यकी प्राप्ति कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है।

बड़ी चाबी ।

—:०:*:०:—

ताप त्रिविध प्रेम आप दूर ही करे ।

—तुलसीदास

बड़ी बड़ी संस्थाओंमें तमाम कोठरियोंके लिये एक चाबी रहती है । वह सब कोठरियोंके दरवाजोंमें लगती है । उन कोठरियोंकी चाबी अलग अलग तो रहती ही हैं, पर वे सिर्फ उन्हीं कोठरियोंका काम देती हैं । परन्तु व्यवस्थापकके पास एक ऐसी चाबी रहती है जो सबमें लग जाती है । उसे अङ्गरेजीमें "मास्टर की" कहते हैं । बड़ी चाबी उसीका तरजुमा है ।

धारा सभाओंके वहिष्कारसे कौंसिलोंमें जानेवाले रुक सकते हैं, मदरसोंके वहिष्कारसे मदरसे जानेवाले, और अदालतोंके वहिष्कारसे मुकद्मेबाज लोग; और जब इन सबपर पूरा असर नहीं पड़ता तब उन कार्य्योंके परिणामके विषयमें शंकायें की जाती हैं ।

परन्तु इन सबकी बड़ी चाबी-महा-मात्रा-प्रेम है । जिस असहयोगमें प्रेम नहीं वह राक्षसी है, जिसमें प्रेम है वह ईश्वरी है । हजरत मुहम्मदने जो तेरह वर्ष तक मक्काके अरब लोगोंके साथ असहयोग किया वह प्रेमके ही वश होकर

किया है। मक्काके अरब लोगोंकी आंखें उन्होंने प्रेमके ही बल पर खोली।

मीराबाईने जो राणाकुम्भके साथ असहयोग किया उसमें द्वेष नहीं था। राणाकुम्भद्वारा दिये गये कठोर दण्ड उसने प्रेमपूर्वक स्वीकार किये। हमारे असहयोगका मूल भी प्रेम ही है। उसके बिना सब फीका, सब खाली है। प्रेम केवल मुख्य चाबी ही नहीं परन्तु केवल एक ही चाभी है। शिक्षालयोंका त्याग करनेवाले लोग यदि त्याग करनेवालोंका द्वेष करें तो त्याग करनेवालोंका त्याग शुष्क माना जाय। यदि धारा सभामें जानेवालोंका द्वेष करें तो हमारी धारा सभाका त्याग बेकार हो जाय। जो हमारे मतको न माने उन्हें प्रेमसे जीतना तो धार्मिक वृत्ति है; और उन पर द्वेष करना राक्षसी, नास्तिक वृत्ति है।

हमें शर्मके साथ कुबूल करना चाहिए कि हमारे त्यागमें कुछ न कुछ द्वेष और जहर बाकी रहा है और इसीसे यह त्याग पूरी तरहसे फला नहीं और फला भी नहीं। जितने आदमियोंने त्याग किया है उन्होंने यदि त्याग न करनेवालोंका द्वेष न किया होता तो हमारी हालत आज बहुत ही अच्छी होती और हम स्वराज्य स्थापनाकी अवस्थामें होते।

अतएव हमारा बड़ेसे बड़ा काम यही है कि चारों ओर प्रेमका छिड़काव कर दें। प्रेम बरसानेका अर्थ यह नहीं कि हम उसमें मिल जायं। इसे तो मोह कहते हैं, साझा कहते हैं।

अपने विरोधियोंके साथ भी प्रेम रखें, उन्हें मूर्ख न मानें, उनकी सेवा करें यह प्रेम है। हिन्दू यदि हिन्दूके साथ प्रेम दिखावें तो इसमें कौन बड़ाई है? पर हिन्दू मुसलमानोंसे भी उतना ही प्रेम करें, उनकी रीति रवाजोंको बरदाश्त करें—इसीमें भलाई है। सहयोगी सहयोगीके साथ मेल-जोल रखें तो इसमें कौन खूबी है? परन्तु असहयोगी सहयोगी के साथ, तीव्र मतभेद होते हुए भी मुहब्बत करें, धीरज रखें, यह वीरता है, यह नम्रता है। उनको बदनाम करना, तुच्छ मानना, उनको धिक्कारना, इसमें बड़प्पन नहीं। बल्कि उनके घर नंगे पैर जाकर उनकी सेवा करनेमें बड़प्पन है।

यह काम हमने उचित तौरपर नहीं किया। मैंने इसके विषयमें लिखा है और कहा भी है। परन्तु जितना चाहिये उतना जोर नहीं दिया इससे अब मैं पछताता हूं। बम्बईके अनुभवने मेरी आंखें खोल दी हैं। बम्बईके अनुभवने मेरी सहिष्णुताकी उथलाई मुझे बता दी है। जब जब सहयोगियोंके ऊपर शाब्दिक आक्रमण हुए हैं, तब तब यदि मैंने कड़ाईसे काम लिया होता तो आज हमारी उन्नति बहुत कुछ हो गई होती। जब किसीने जबर्दस्ती किसीकी टोपी छीन ली है तब यदि हर बार मैंने उसका विरोध किया होता तो आज बड़ा ही अच्छा फल मिला होता। ऐसे महान संग्रामके नायक पदका उपयोग तो करना परन्तु पूरे तौरपर जाग्रत न रहना महापाप है। यह मैं जानता हूं। इस युद्ध

के नायकके अन्दर यदि दीनता, दुर्बलता और लाचारी हो तो उसे अपना पद छोड़ देना चाहिये।

जहांसे भूले हैं अब तो फिर वहीं जाकर लौटना होगा। अब हमें अपने मनमें सहयोगियोंके प्रति, पारसियों और ईसाइयोंके प्रति तथा अंग्रेजोंके प्रति रोषको निकाल डालना चाहिये। उन्हें भी भाई समझना चाहिये। उनका बहिष्कार न करें। उनके पानी, नाई आदिको न रोकें। उन्हें खाना खिलाकर खावें, उनकी सेवा करके प्रसन्न रहें। यदि हम हरएक धर्मके इस नियमका रहस्य समझ सकेंगे तो, और तभी, स्वराज्य जल्दी और आसानीसे मिल जायगा। अतएव जहां जहां कानूनके सविनय भङ्ग करनेकी तैयारियां हो रही हैं वहां वहां हमें सबसे पहिले यही काम करना है कि वहां जितने सहयोगी हैं, सबके साथ मेल मुहब्बत कर लें और मतभेद रहते हुए भी मित्रता प्रगट करें।

पहला भाग समाप्त

दूसरा भाग

स्वराज्य-प्राप्तिके उपाय

(३) वकीलोंद्वारा अदालतोंका बहिष्कार, पञ्चायती अदालतोंकी स्थापना और उन्हीं द्वारा अभियोगोंका निर्णय।

(४) अभिभावकों द्वारा सरकारी स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार।

(५) सुधार आयोजनाके अनुसार नई कौंसिलोंका बहिष्कार।

(६) मेसोपोटामिया आदि स्थानोंमें सैनिक या क्लर्की कोई भी पद न स्वीकार करना या उन तुर्की प्रदेशोंमें शासनकी सहायता करना जो प्रतिज्ञा भङ्ग करके हड़प लिये गये हैं।

(७) स्वदेशी प्रचारके लिये अनवरत यत्न करना। लोगोंको समझाना कि इस जाग्रत युगमें राष्ट्रीय और धार्मिक मानकी रक्षाके लिये उनका प्रथम कर्तव्य यही है कि अपने देशके उत्पादनपर ही निर्भर करें।

स्वदेशी प्रचारके लिये पहली अगस्तकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। उसे तो आज ही से आरम्भ कर देना चाहिये।

इसलिये बन्धनमें न पड़ जानेके हेतु उत्तम होगा कि लोग सरकारी नौकरी अभीसे स्वीकार करना छोड़ दें और कर्ज वगैरहमें भी किसी तरहका भाग न लें।

इसके अतिरिक्त असहयोग कार्यक्रमकी अन्य बातोंका आरम्भ आगामी पहली अगस्तके पहले नहीं किया जायगा।

इस तरहकी घटनाके उपस्थित न होने देनेके लिये हर तरहसे यत्न किया जा रहा है। ब्रिटिश सरकारके प्रधान मन्त्रीसे

इस बातकी प्रार्थना की गई है कि वे सन्धिकी शर्तोंपर पुनः विचार करावें और उनमें सुधारकी योजना करें।

जो लोग इसकी जिम्मेदारी और भयंकरताको समझते हैं वे अपने मनसे कोई काम नहीं करेंगे। उन्हें प्रत्येक बातमें कमेटीके आदेशानुसार ही चलना पड़ेगा। सफलता तभी सम्भव है जब पूर्ण तालीमके साथ समवाय रूपसे संयुक्त होकर असहयोग किया जाय। इसके लिये तीन बातें आवश्यक हैं:—आदेशके अनुसार चलना, शान्ति और धैर्य्य तथा अहिंसासे सदा दूर रहना।

—*—

तीन मोह
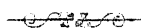
मैं देशोंमें जितना ही घूमता हूं उतना ही देखता हूं कि सरकारके स्कूलों, वकालत और कौंसिलोंमें लोगोंको बड़ा ही मोह है। स्कूलों बिना लड़के भटकते फिरेंगे, वकालत बिना न्याय नहीं होगा, वकील भूखों मरेंगे और कौंसिलों बिना प्रजाका शासन रुक जायगा। यह भ्रम जबतक बना रहेगा तबतक न तो खिलाफ़तका निपटारा होगा और न पंजाबका मामला ही सीधे रास्तेपर आवेगा। सरकार अपना अधिकार और बल बढ़ाती रहेगी। सरकारी स्कूलोंमें जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे अपनेमें स्वयं प्राप्त करनेकी शक्ति आनी चाहिये, डिगरियोंका मोह छूटना चाहिये, घरमें ही न्याय करा लेनेकी योग्यता आनी चाहिये।

यह तो है ही नहीं कि सरकारी अदालतोंमें हमेशा इन्साफ ही होता है। मुन्सिफ वगैरह रिश्वत खाते देखे जाते हैं। भूलसे या अज्ञानसे अन्याय करते भी देखे जाते हैं। प्रिवी कौंसिलोंतकमें भी अन्याय क़ायम रहता देखा गया है। तब फिर घरमें न्याय न मिलनेके सिवा और कोई बड़ा गजब तो अदालतोंके त्यागसे हो ही नहीं जायगा। जो वकालत नहीं करते हैं वे भी तो अपना जीवन निर्वाह करते हैं, यह मानकर वकीलोंको भी धीरज धारण कर दूसरे उपायोंसे अपनी आजीविका चलानी चाहिये। कौंसिलोंका मोह सबसे अधिक देखा जाता है। समझमें नहीं आता कि इतना मोह क्यों है? जिनको सरकारसे न्याय मिलनेकी आशा है उन्हें तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता। शराबसे फायदा समझनेवालेसे शराब छुड़ानेका प्रयत्न करना फ़जूल है। परन्तु बहुतसे तो ऐसे हैं जिनकी सरकारके प्रति मुझसे भी कम श्रद्धा है, और जिन्हें न तो पहले श्रद्धा थी और न आज ही है। ऐसे लोग क्यों कौंसिलोंके लिये ललचते हैं, यह समझमें नहीं आता।

जबतक अधिकारीवर्गका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, जबतक उनकी नीयत साफ नहीं हो जाती, जबतक वे पञ्जाबके पापका प्रायश्चित्त नहीं करते, जबतक वे मुसलमानोंको दिया हुआ दाग़ साफ़ नहीं करते तबतक चाहे जितने उज्ज्वल दीखनेवाले सुधार मेरे लिये तो जहर मिले हुए दूधके समान त्याज्य ही हैं। शासक मण्डलमें मि० शर्मा और डा० सप्रूकी नियुक्तिसे क्या हुआ? इसको तो मैं लोगोंको धोखा देनेका प्रपञ्च समझता हूं। लार्ड

सिंह गवर्नर बनाये गये इससे क्या हो गया ? यह सब भेंट देनेवाले कौन हैं ? और किस नीयतसे ये भेटें दी गयी हैं ? अपनी सत्ताको और भी मजबूत करने और पञ्जाब और खिलाफत-के जख्मोंको भुलानेके लिये। अन्दर तो जख्म बढ़ता जाय पर ऊपरसे सूखता हुआ दीख पड़े ऐसी मरहम पट्टी करनेवाले वैद्यको क्या कह कर पुकारा जाय ?

जरा देखिये वाइसराय साहबकी वक्तृताको। आप फर्माते हैं कि पञ्जाबके सम्बन्धमें सरकारी टीका करनेवालोंको जवाब तो दिया जा सकता है, पर देना उचित नहीं। आप इसका आखिरी फैसला भविष्यके इतिहासकारोंके हाथोंमें छोड़ते हैं।

परन्तु वाइसराय साहब भूलते हैं, क्योंकि आखिरी फैसला तो आप कर चुके। सर माइकल ओडायरको बेकसूर ठहरा चुके। जनरल डायरने कम अक्लीसे काम लिया पर कोई कुसूर नहीं किया। और अधिकारियोंने तो कोई अपराध किया ही नहीं। करनल ओब्रायन वगैरह बेकसूर साबित होकर आज भी अपने ओहदोंपर मौजूद हैं। रौलट कानून कायम है ? यह हुआ पञ्जाबका आखिरी फैसला। इसपर इतिहास क्या कहेगा। शायद आपको अयोग्य अधिकारी ठहरा दे या सर माइकल ओडायरको नीरो (?) की पदवी दे दे परन्तु इससे क्या होगा, इससे क्या आज प्रजा जिस संकटमें पड़ी हुई है उससे छूट जायगी ? रोगीके मर जानेपर उसका दूसरा और सच्चा निदान होनेसे रोगीको क्या फायदा ? हम तो पञ्जाबके लिये आज न्याय

चाहते हैं। अगर हम सब एक ही प्रजा हैं तो मानना होगा कि एक भी पञ्जाबीका पेटके बल चलना सारे हिन्दुस्थानका पेटके बल चलना है। पापका प्रायश्चित्त किये बिना सरकारको प्रजासे सहयोग चाहनेका कोई अधिकार नहीं है, प्रजा सरकारी कृपा ग्रहण नहीं कर सकती।

अब आप खिलाफतपर क्या फर्माते हैं सो भी देखिये। वायसराय साहब कहते हैं कि मुसलमानोंके भाव मित्र राज्योंके सामने रखे जा चुके। इसे आप स्वीकार करते हैं कि मुसलमानोंकी मांग न्याययुक्त है। पर मित्रराज्य न मानें तो उनपर सरकारका क्या अधिकार है। यों कहकर आप निर्दोष बनना चाहते हैं। परन्तु यह भूठ है। भारत सरकार जानती है और सारा जगत जानता है कि टर्कीके साथ शर्त तैयार कराने और उन्हें मंजूर करानेमें अंग्रेज सरकार मुख्य थी। वे जानते हैं कि मि० लायडजार्ज चाहते तो अपना बचन अवश्य निभा सकते और मुसलमानोंका मान रख सकते। परन्तु उनकी तो इच्छा ही टर्कीका नाश करने और इसलामकी जड़ ढीली करनेकी थी। इतनेपर भी वाइसराय साहब, खिलाफतके सम्बन्धमें सब कुछ कर चुके कहकर छूट जाना चाहते हैं। इसका अर्थ तो यह है कि आप प्रजाको भ्रममें डालना चाहते हैं।

ऐसे अन्यायोंको दूर करनेके लिये असहयोगके समान निर्दोष शस्त्रको प्रजा धारण करना चाहती है। जिसको आप हंसकर उड़ाते हैं। मौलाना शौकतअली और मुझको पकड़नेका

विचार छोड़कर अब आप असहकारको हंसकर उड़ाया चाहते हैं। यदि आपके इस निश्चयके साथ पाखण्ड न मिला रहता तो मैं आपको धन्यवाद देता। जनरल डायरका कत्ल एक जंगली हथियार था और इस आन्दोलनको हंसीमें उड़ाना आपका सुधरा हुआ हथियार है।

यदि प्रजा असहयोग नहीं करेगी, यदि पेटके बल चलनेके अपमानको भूल जायगी तो प्रजाकी हंसी अवश्य ही होगी। जो हाथ निर्दोष प्रजाके रक्तसे दूषित हो चुके हैं जिस कलमसे इस्लामका अपमान हुआ है उन हाथों और उस कलमसे मिला हुआ सिंहासन भी त्याग कर देना चाहिये। अपने दीन और मानको बनाये रखनेवाली प्रजाका यह एक नियम हो जाना चाहिये।

अतएव मुझे आशा है कि प्रजा मजबूतीसे असहयोगके इस पहले सोपानको पूरा कर अपना मान बनाये रखेगी, इस त्रिविध मोहको तोड़ेगी और वायसरायकी हंसीके लिये उनसे प्रायश्चित्त करावेगी।

१—कौंसिलोंका वहिष्कार

—:※:—

सम्राटकी घोषणा

(दिसम्बर ३१, १९१९)

२४ दिसम्बरको सम्राटने जो घोषणापत्र निकाला है उसके लिये प्रत्येक अंग्रेजको अभिमान होगा और प्रत्येक भारतीय प्रजाको सन्तोष होगा। हण्टर कमेटीके सामने जो गवाहियां दी जा रही हैं और उनसे जो बातें प्रगट हो रही हैं उनसे तुलना करनेपर इस घोषणा पत्रसे अंग्रेजोंके असली और सच्चे आचरणका पता लग जाता है। घोषणापत्रसे अंग्रेज़ोंका आचरण जितना उज्वल प्रतीत होता है, जेनरल डायरकी अमानुषिक करणी उसे उतना ही कालिमामय बना देती है। घोषणापत्रसे प्रगट होता है कि सम्राट्के हृदयमें न्याय करनेकी सदिच्छा है और जेनरल डायरकी करतूत इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि भय और उत्तेजनामें पागल होकर मनुष्य शैतानका रूप धारण कर लेता है। इस तरहकी इन दो घटनाओंका एकके बाद दूसरीका घटित होना संयोगकी बात है। महत्वके जिस विधानपर (शासन सुधार विधान) राजाने अनुमति दी थी उसके अनुसार इस घोषणाका प्रगट

होना आवश्यक विषय था। इसे पूर्णाहुति कहना चाहिये। शासन सुधार तथा घोषणापत्रको साथ मिलकर पढ़ने और विचार करनेसे स्पष्ट विदित हो जाता है कि ब्रिटिश लोग भारतके साथ न्याय करनेकी सदिच्छा रखते हैं। इसलिये इस सम्बन्धमें जिन लोगोंके हृदयमें किसी तरहकी आशङ्का हो उसको दूर कर देना चाहिये। पर इससे मेरा यह अभि-प्राय नहीं है कि हमें हाथपर हाथ देकर शान्त होकर बैठ रहना चाहिये कि अब तो हमें सभी अभिवाञ्छित फल मिल जायंगे। ब्रिटिश शासन प्रणालीका यही रहस्य है कि घोर संग्राम किये बिना उससे किसी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पार्लिमेंटसे इस बातकी लगातार आवाज आ रही है कि शासन सुधार भारतीय आन्दोलनके कारण नहीं दिये गये हैं पर इसपर किसीको विश्वास नहीं करना चाहिये। इस कांग्रे-सके सभापति (अमृतसर कांग्रेसके सभापति पं० मोती लाल नेहरू) ने कहा है कि बिना घोर आन्दोलनके ब्रिटिश पार्लिमेंटका एक पत्ता भी नहीं खड़क सकता। यह बात अक्षरशः सच है और हमें सदा इसे ध्यानमें रखना चाहिये। यदि जनताके अधिकारोंके लिये कांग्रेस इस तरह आन्दोलन न करती होती तो आज हमारा पता भी न होता। आन्दोलनका मतलब है कि हम लोग कुछ चाहते हैं और इस तरह उधरकी ओर ही बढ़ रहे हैं। जिस तरह प्रत्येक प्रसारके माने उन्नति नहीं है उसी तरह प्रत्येक आन्दोलनके माने सफलता

नहीं है। विना तालीमका आन्दोलन—जिसे हिंसाका विस्तारितरूप कह सकते हैं, चाहे वचसा हो या कर्मणा—राष्ट्रीय विकासमें बाधक होता है और कभी कभी इसके कारण अतीव दुःखदायी और शोकजनक घटनायें हो जाती हैं जैसे जालियांवाला बागका कत्ले आम। राष्ट्रीय विकासके लिये पहली शर्त तालीमके साथ आन्दोलन जारी करना है। इसलिये उचित आन्दोलन वही है जिसमें आन्दोलकोंकी कार्रवाई उचित समझी जाय। इसलिये सम्राटकी घोषणा तथा शासन सुधारोंके कारण हमारे आन्दोलनकी गति रुक जानी या कमी नहीं पड़ जानी चाहिये। बल्कि हमें सदा उचित आन्दोलन और उचित कार्रवाईके लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं कि शासनसुधार अधूरे हैं। उनसे हमें काफी नहीं मिल गया है। हमें इससे अधिक मिलना चाहिये क्योंकि हम इससे अधिक पचानेकी योग्यता रखते हैं। पर इन्हें इन्कार या अस्वीकार करनेकी आवश्यकता नहीं है। इनको स्वीकारकर हमें इन्हें बढ़ाना चाहिये। इसलिये इनकी निन्दा करनेमें हमें अपनी शक्तिका व्यय न करके हमें इन्हें लेकर बैठ जाना चाहिये और इनको सफल बनाते हुए पूरी जिम्मेदारी प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसलिये हमें आगेसे भीतर आन्दोलन करना चाहिये। हमें चेष्टा करनी चाहिये कि सामाजिक बुराइयां हममेंसे दूर हो जायें, निर्वाचकोंको शिक्षित करना

चाहिये। कौंसिलोंमें हमें उन्हीं लोगोंको भेजनेकी चेष्टा करनी चाहिये जो नाम और पदके भूखे न रहकर केवल देश सेवाके ख्यालसे कौंसिलोंमें जायं।

अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच अविश्वासने घोर अन्तर डाल दिया है। जेनरल डायर मनुष्यकी मर्यादाको भूल गया और पशुवत आचरण कर बैठा, क्योंकि उसके हृदयमें अविश्वास और तज्जनित भय घुसा था। उसे भय था कि कोई उसपर आक्रमण न कर बैठे। सुधारोंके बनिस्बत सम्राटकी घोषणामें ऐसी बातें हैं जिनसे अविश्वास दूर होकर विश्वास जम सकता है। अब देखना केवल यह है कि क्या इस विश्वासका रस सिविल सर्विसमें भी चूता है या नहीं। पर हमें मान लेना चाहिये कि यह भी चरितार्थ होगा और इसी विश्वासपर हमें तनमनसे तत्पर हो जाना चाहिये। इस तरह तत्परता दिखानेमें मुझे किसी तरहकी बुराई नहीं प्रतीत होती। विश्वास करना एक तरहका गुण है। अविश्वासका कारण दुर्बलता है। विना किसी तरहके वैमनस्यके तथा नेकनीयतीके साथ आचरण करके ही हम सबसे अधिक सन्तोष प्रगट कर सकते हैं। हम लोग जितनी तत्परता, विश्वास तथा ईमानदारीसे काम करेंगे, हम लोग अपने आदर्शतक उतनी ही जल्दी पहुंचनेकी आशा कर सकते हैं।

इन कतिपय वर्षोंसे भारत मन्त्री मिस्टर मांटेगू भारतके कल्याणके लिये अनवरत प्रयत्न और चेष्टा करते आ रहे हैं।

इनके पहले भी अनेक भारतमन्त्री हो चुके हैं जिन्होंने सदिच्छाका श्रेय प्राप्त किया है। पर जितना श्रेय मिस्टर मांटेगूको दिया जा सकता है उतना किसीको नहीं। मिस्टर मांटेगू भारतके सच्चे मित्रोंमेंसे हैं। वे हमारी कृतज्ञताके पात्र हैं। प्रत्येक भारतवासीको उनका कृतज्ञ होना चाहिये। और लार्ड सिंह? उन्होंने तो भारतका मुंह उज्वल कर दिया। प्रत्येक भारतवासीके हृदयमें उनके लिये अभिमान होना चाहिये।

नम्र निवेदन

(मई १६, १९२०)

महात्मा गांधीने उपरोक्त शीर्षक देकर नवजीवनमें निम्नलिखित लेख लिखा है। उसका ज्योंका त्यों हम यहां अनुवाद दे देते हैं:—

मैं देखता हूं कि सुधारके अनुसार सङ्गठित कौंसिलोंमें प्रविष्ट होनेके लिये बहुतसे उम्मेदवार खड़े हो गये हैं। यह स्वीकार करना आवश्यक है कि कौंसिलोंमें जाकर राष्ट्रकी कुछ सेवा की जा सकती है। पर यह मेरी पक्की धारणा है कि कौंसिलोंके बाहर रहकर हम लोग और भी उपयोगी काम कर

सकते हैं। स्वर्गीय मिस्टर केयर हार्डी कहा करते थे कि सच्चे ईसाईके लिये ब्रिटिश पार्लिमेण्टमें एक क्षणके लिये भी ठहरना कठिन काम है। इसी पार्लिमेंटको कार्लाइलने गप्प लड़ानेका अड्डा बतलाया था। जब एक ही स्थानसे अनेक उम्मेद्वार खड़े हो गये हैं तो जिन लोगोंने देशसेवाका व्रत ग्रहण किया है उन्हें चाहिये कि वे कौंसिलोंसे दूर रहें। वे देखेंगे कि कौंसिलोंके बाहर भी उनके लिये बहुत काम पड़ा है। उन्हें चाहिये कि वे निर्वाचकोंको शिक्षित करें, उन्हें बतलावें कि मत देनेमें आपको क्या करना चाहिये। इङ्गलैण्डमें भी जो लोग कामन्स सभासे अलग रहकर देशसेवामें तल्लीन रहते हैं उन्हींकी सेवाओंपर देशको अधिक आशा और भरोसा रहता है। इङ्गलिश जातिका काम उन सात सौ एम० पी० (मेम्बर पर्लिमेंट, अर्थात् वे सदस्य जो कामन्स सभाके लिये निर्वाचत किये गये हैं) के बलपर नहीं चलता बल्कि उन हजारों देश-सेवियोंके बलपर जो सभाओंमें न जाकर बाहरसे ही भीतरके कामोंकी निगरानी करते हैं। इस लिये जिन लोगोंने सच्चे हृदयसे देशसेवाका व्रत ग्रहण कर लिया है उनकी सेवामें मेरा यही नम्र निवेदन है कि आप लोग कौंसिलोंमें जानेके पचड़ेमें मत पड़िये। जो लोग कौंसिलोंकी मेम्बरीके लिये लालायित हो रहे हैं उनसे मेरा निम्नलिखित निवेदन है।—'यदि आप अपने किसी निजी स्वार्थके लिये कौंसिलोंमें जाना चाहते हैं तो उससे दूर रहियै क्योंकि आपका वह स्वार्थ साधन

अन्यत्र भी हो सकता है। जिस सभामें केवल राष्ट्रीय प्रश्नोंपर विचार हो सकता है, जहां पूंजीपतियोंके स्वार्थके विरुद्ध भीषण संग्राम करनेकी आवश्यकता रहती है वहां भला आप अपना स्वार्थ किस तरह साध सकेंगे। राष्ट्रीय स्वार्थमें अपना स्वार्थ मिलाकर आप राष्ट्रीय स्वार्थको धक्का न पहुंचावें।" जो उम्मेद्वार खड़े हो रहे हैं उनके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। पर मुनसिपिलिटियोंकी मेम्बरीमें जो कुछ हो रहा है उससे मैंने यह अनुमान किया है। कौंसिलोंमें जाकर देशका भला वेही कर सकते हैं जिनके हृदयमें देशप्रेम भरा हो, नम्रता हो, साहस हो; निर्भीकता हो और जिन कामोंको उठाना है उसकी पूरी जानकारी हो।

शासन सुधारोंमें अनेक तरहके दोष भरे हैं। उनका भी उपचार करना है। जिस तरहसे तेज धारदार छुरा भी नवसिखुए हज्जामके हाथमें पड़कर बेकाम हो जाता है उसी तरह सर्वतोरूपसे परिपूर्ण विधान भी यदि अयोग्यों और स्वार्थियोंके हाथमें पड़ जाय तो उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि शासन सुधारोंसे कोई लाभ उठाना है, यदि उन्हें किसीभी तरह उपयोगी बनाना है, यदि उनकी कमियोंको निकालकर दूर करना है तो आवश्यकता इस बातकी है कि कौंसिलोंमें वेही लोग भेजे जायं जो राष्ट्रकी सच्ची सेवा करना चाहते हैं। उनके हाथमें दोष पूर्ण विधान भी उपयोगी बन सकता है और उससे देशका कल्याण हो सकता है। यदि औजार खराब हैं तो भी चतुर बढ़ई उनसे अपना काम निकाल ही लेगा।

निर्वाचकोंका कर्तव्य

——:*:——

(जून ९, १९२०)

'निर्वाचकोंके कर्तव्य' पर महात्माजीने गुजराती नवजीवनमें निम्नलिखित लेख लिखा है। हम यहां पर उसका संक्षेप दे देते हैं :—

शासन सुधारोंकी योजनाके अनुसार अब उन लोगोंको भी निर्वाचनमें मत देनेका अधिकार हो गया है जिन्हें अबतक निर्वाचनसे किसी तरहका संबन्ध नहीं रहा। निर्वाचित सदस्यके भी अधिकार नई कौंसिलमें बढ़ गये हैं। इससे निर्वाचकोंकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। शहरोंमें रहनेवाले नागरिक बहुत कालसे मुनिसिपैलिटीके निर्वाचनमें भाग लेते आये हैं। इन मुनिसिपैलिटियोंका निर्वाचन भी जिस प्रकार होता है उससे यह नहीं कहा जा सकता कि निर्वाचकगण अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरह निबाहते हैं। अधिकांश अवस्थामें योग्यताकी परवा नहीं की जाती उम्मेदवारका व्यक्तिगत प्रभाव ही उसके निर्वाचनमें अधिक काम करता है। यदि व्यवस्थापक सभामें प्रतिनिधि भेजनेके लिये योग्यताकी यह कसौटी न रखें तो अच्छा हो। यही एक उपाय है जिससे हम लोग कौंसिलोंका सदुपयोग कर सकते हैं। मुझे यह भी कहना है कि निर्वाचकोंको

किसी तरहकी दलबन्दीमें भाग नहीं लेना चाहिये। उन्हें प्रत्येक उम्मेदवारोंका मत जानना चाहिये। उसके दलसे कोई लाभ नहीं हो सकेगा और सबसे अधिक ध्यान उसके आचरण और चरित्रपर रखना चाहिये। यदि मनुष्य चरित्रका पक्का है तो वह किसी पदपर भी रखा जा सकता है और वह अपनेको उसके योग्य बना लेगा। उसकी भूलोंपर भी विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं। मेरी धारणा है कि विना चरित्रका मनुष्य उच्च राष्ट्रीय सेवा नहीं कर सकता। इसलिये यदि मुझे निर्वाचनका अधिकार होता तो सबसे पहले मैं उसी व्यक्तिको मत देता जो चरित्रवान है और तब मैं उसके मतको जाननेकी चेष्टा करता। प्रत्येक उम्मेदवारसे मैं निम्नलिखित बातें जाननेकी चेष्टा करता :—

(१) क्या आप वर्तमान स्वदेशी आन्दोलनके पक्षपाती हैं? यदि इसके पक्षपाती हैं तो क्या आप कौंसिलमें जाकर विदेशी कपड़ेपर कड़ी चुंगी बैठानेके लिये प्रयत्न करेंगे? क्या आप ऐसे कानूनोंके निर्माणके लिये प्रयत्न करेंगे जिससे स्वदेशी वस्तुओंके निर्माणके सभी साधन—जैसे सामान और मशीन आदि सस्ती हो जायं।

(२) क्या आप इस मतके हैं कि प्रत्येक प्रान्तोंको सरकारी कार्रवाई उसी प्रान्तकी मादरी भाषामें की जाय और राष्ट्रका काम हिन्दी भाषामें किया जाय? यह हिन्दी भाषा प्रचलित हिन्दी और उर्दूके समवाय संयोगसे बनी है। यदि आप

इस मतके हैं तो क्या इसके लिये आप कौंसिलमें चेष्टा करेंगे ?

(३) क्या आपका मत है कि भारतका वर्तमान विभाजन राजनैतिक और शासन व्यवस्थाके सुभीतेके लिये किया गया था और इसमें प्रजाकी सुविधाका ख्याल नहीं किया गया था ? क्या आप विश्वास रखते हैं कि इस तरहके विभाजनसे राष्ट्रीय विकासमें बड़ी बाधा पड़ी है ? यदि आपका यह विश्वास है तो क्या आप भाषाके आधारपर विभाजनके लिये प्रयत्न करेंगे ?

(४) क्या आपको विश्वास है कि हिन्दु मुस्लिम एकता विना भारतका उत्थान असम्भव है ? यदि है तो क्या हिन्दूकी हैसियतसे आप प्रत्येक जायज उपायों द्वारा मुसलमानोंका साथ देनेके लिये तैयार हैं ?

जो उम्मेदवार इन प्रश्नोंका समुचित उत्तर दे सकता है वही मेरे मतका अधिकारी हो सकता है। ये प्रश्न इतने आवश्यक प्रतीत हुए कि इन्हें जनताके समक्ष रख देना मैंने उचित समझा। यदि निर्वाचक इन प्रश्नोंमें कोई सार नहीं देखते तो वे उम्मेदवारोंसे अन्य प्रश्न ही पूछ सकते हैं जिसे वे भारतकी राष्ट्रीयताके उत्थानमें सहायक समझते हैं। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि किसी खास प्रश्नसे ही उम्मेदवारकी योग्यता या अयोग्यताका पता चल जायगा। बल्कि मेरा तो यह कहना है कि राष्ट्रीय प्रश्नोंपर उम्मेदवारका मत जान लेना नितान्त आवश्यक है। मैं चाहता हूं कि वे ही उम्मेदवार निर्वाचित

किये जायं जो पक्षपात हीन हों, स्वतन्त्र हों और बुद्धिमान हों। यदि निर्वाचकगण राष्ट्रीय प्रश्नमें दिलचस्पी न लेंगे, यदि वे हर तरहसे उदासीनता दिखावेंगे और जैसे चल रहा है वैसे ही चलने देंगे अथवा ऐसे लोगोंको निर्वाचित करेंगे जिनसे उनका किसी तरहका सम्बन्ध या स्वार्थ है तो इससे देशका किसी तरहका उपकार नहीं हो सकता। इससे वहुत भीषण हानि होगी।

पर यदि उपरोक्त प्रश्नोंका सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला अथवा कोई योग्य उम्मेदवार नहीं मिला तो निर्वाचकगण क्या करेंगे? ऐसी दशामें उन्हें प्रचलित प्रथाकी शरण लेनी चाहिये अर्थात् यदि उन्हें अपने मनका (योग्य) कोई उम्मेदवार न मिले तो वे किसीको भी मत न दें। इस तरहसे दूर रहना भी मत देनेके अधिकारका पूर्ण प्रयोग कहलाता है। इसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यदि समझदार निर्वाचक कोई उम्मेदवार नहीं खड़ाकर सके तो नासमझदार तो और भी बुरे निर्वाचक खड़ा करेंगे। किसी हदतक यह ठीक है। मान लीजिये कि किसी नगरके सभी उम्मेदवार शराबी हैं। इससे अधिकांश मतदाता मत नहीं देते पर उम्मेदवार अपने दबावके लोगोंसे मत लेकर कौंसिलमें चले जाते हैं तो क्या उनका कुछ भी प्रभाव पड़ सकता है? उनके वोटकी गणना भले ही हो जाय पर कौंसिलोंमें उनके भाषण तथा मतका कोई मूल्य नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त यदि दूरदर्शिता और बुद्धिमानीसे

हाथ खींच लिया जाय तो उससे विचित्र प्रभाव पड़ता है। यदि एक बार उन्हें योग्य उम्मेद्वार न मिला तो दूसरी बार तो वे अवश्य योग्य उम्मेद्वार तैयार करनेकी चेष्टा करेंगे और इस तरह अपने नगरका स्थान ऊंचा कर लेंगे। उन्नतिशील राष्ट्रके नागरिकोंसे यह आशा की जाती है कि वे राष्ट्रीय मामलोंको समझते हैं, और जिस राजनैतिक स्थितिमें वे रहते हैं उसका सुधार करेंगे और उसको कायम रखेंगे। प्रत्येक विचारवान मतदाता इस बातकी आवश्यकता अनुभव करेगा कि कभी न कभी उसके सामने यह अवसर उपस्थित हो जायगा कि वह किसीको अपना मत न प्रदान करे। मुझे पूरी आशा है कि यदि ऐसा अवसर उपस्थित हो गया तो निर्वाचक साहसका परिचय देकर दृढ़ता दिखलावेंगे। यदि वे अपने मतदेनेके अधिकारका प्रयोग करना चाहते हैं तो उन्हें उचित है कि वे दल विशेषका ख्याल न कर सबसे योग्य उम्मेदवारको ही अपना मत दें।

असहयोग और कौंसिल

—:*:—

(जुलाई ७, १९२०)

लाला लाजपत रायने कौंसिलोंके पूर्ण वहिष्कारकी सलाह दी है। मैं उनके मतसे पूर्ण सहमत हूं। मेरे मतसे हमलोग असहयोग आन्दोलनमें इससे एक कदम और आगे बढ़ जायंगे। पंजाबके अत्याचार तथा खिलाफतके साथ किये गये अन्याय मेरे हृदयको इतनी पीड़ा दे रहे हैं कि लालाजीकी सलाहका मैं अधिक तत्परतासे स्वागत करता हूं। कितने लोगोंका मत है कि निर्वाचनका काम समाप्त हो जानेके बाद कौंसिलोंके वहिष्कारका प्रश्न उठाया जाय। पर मैं इससे सहमत नही हूं। जब हमलोग जानते हैं कि व्यवस्थापक सभाओंकी कार्रवाईमें हमें भाग नहीं लेना है, तो फिर निर्वाचनका स्वांग रचकर उसमें पैसा खर्च करनेसे क्या लाभ? इसके अतिरिक्त जनतामें प्रचारका काम करना है। इसलिये मैं नहीं चाहता कि लोग कौंसिलोंके निर्वाचनके झगड़ेमें पड़कर अपनी सारी शक्ति गवां दें। यदि हमलोग निर्वाचित होकर पद त्याग करेंगे तो जनता असहयोगके मर्मको नहीं समझ सकेगी। पर यदि हमलोग निर्वाचनसे अलग रहकर जनतामें प्रचारका काम करें, उन्हें उचित शिक्षा दें और उनमें इतनी योग्यता आ जाय कि

जो कोई भी उनके पास निर्वाचनके लिये आवे उससे वे स्पष्ट-तया कह सकें कि जबतक खिलाफत और पंजाबके प्रश्नोंपर न्याय नहीं हो जाता हमलोग निर्वाचनमें किसी तरहका भाग नहीं ले सकते तो इससे जनताका बड़ा लाभ होगा। मैं आशा करता हूं कि लाला लाजपतराय केवल कौंसिलोंके वहिष्कारकी सलाह देकर ही चुप नहीं रह जायंगे वल्कि आवश्यकता पड़ने पर वे असहयोग कार्यक्रमको पूरी तरह चरितार्थ करनेकी चेष्टा करेंगे। हम लोगोंका कर्तव्य स्पष्ट है। पञ्जाब तथा खिला-फतके प्रश्नोंपर जो निर्णय किया गया है उससे स्पष्ट है कि साम्राज्य सभामें भारतकी जनताका मत कोई मूल्य नहीं रखता। इससे बढ़कर और अपमान क्या हो सकता है। और यदि हम लोग इस अपमानको चुपचाप वर्दाश्त करते गये तो हमें सुधा-रोंसे किसी तरहका लाभ नहीं हो सकता। इसलिये मेरे मतसे सच्ची उन्नतिका प्रथम प्रयास इन कठिनाइयोंको अपने मार्गसे दूर करना है। इसके निमित्त जब तक कोई दूसरा अधिक उप-युक्त उपचार न मिल जाय असहयोग शस्त्रका ही प्रयोग करना चाहिये।

———※———

कौंसिलोंका बहिष्कार

(जुलाई १४, १९२०)

असहयोगके कार्यक्रममें मैंने सबसे पहला नम्बर कौन्सिल बहिष्कारका रखा है। मेरे कई मित्र इस बायकाट-बहिष्कार शब्दके उपयोगपर मुझसे झगड़ते हैं, क्योंकि मैंने अंग्रेजी या किसी भी खास देशके मालके बहिष्कारका विरोध किया था और अब भी करता हूं। पर इस बायकाटका मतलब और महत्व बिलकुल भिन्न है, मैं न केवल इसका विरोध ही करता हूं बल्कि मैं तो आगामी वर्ष निर्माण होनेवाली कौन्सिलोंके बायकाटकी सिफारिश भी करता हूं। आप पूछ सकते हैं कि मैं ऐसा क्यों करता हूं। जनता—यह विशाल जनता हम लोगोंसे—उसके नेताओंसे सच्चे नेतृत्वकी आशा करती है। उसे सन्दिग्ध बातोंकी जरूरत नहीं है। आप सोच सकते हैं कि अगर हम पहले तो लोगोंसे यह कहें कि वे अपनेको कौन्सिलोंकी मेम्बरी-सदस्य-पदके लिये चुनावें और राज-भक्तिकी शपथ लेनेसे इन्कार करनेकी शिफारिश करें तो इसका परिणाम जनतापर क्या होगा? जनताका नेताओं परसे विश्वास बिलकुल उठ जायगा। यह कोई नेतृत्व-नेतापन नहीं हुआ। ऐसा करनेसे हम देशको आगे नहीं बढ़ा सकते। भाइयो, इसलिये मैं आपसे कहता हूं कि आप इस मायाजालमें न

आवें। पहले अपने चुनावके लिये खड़ा करके पीछेसे राज्य-भक्तिकी शपथ लेनेसे इन्कार करना देशके गौरवको बेचना है।

शायद आपको यह विचित्र और कठिन बात मालूम होती है। पर मैं तो यह स्पष्ट कहे देता हूं कि ये जो इतने भारतीय बड़ी बड़ी बातें मार रहे हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा निकले जो अपने शब्दोंपर कायम रह सके। जो लोग सचमुच यह सोच रहे हैं कि हम लोग चुनावके लिये खड़े तो हों पर राजभक्तिको शपथ न लें, उनसे मैं यह कहना चाहता हूं कि वे ऐसा न करें। क्योंकि नहीं तो वे खुद अपनेको और देशको उस खाईमें गिरा देंगे जिसे वे खुद दोनोंके लिये बना रहे हैं। मेरा यह ख्याल है कि अगर हमें देशको बिलकुल सीधे रास्तेपर ले जाना है और अगर हम इस महान देशसे खिलवाड़ न करना चाहते हों तो हमें देशके सामने यह बात स्पष्टतया रख देना चाहिये कि हम सरकारकी मेहरबानीको, फिर वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, तबतक स्वीकार न करें जबतक वह अपने अन्यायोंको, अपने पापोंको धो नहीं डालती। एक यूनानी कहावत है जिसका भाव है "यूनानियोंसे होशियार रहना खासकर तब जब वह तुझे देनेके लिये कुछ लाया हो।" आज मैं कहता हूं कि हम उन मन्त्रियोंकी दी हुई भी स्वीकार न कर सकते जो पञ्जाब और खिलाफतका अन्याय शुरू रखने पर तुले हुए हैं। हमे और दोगुना सावधान हो जाना चाहिये कि हम कहीं उनके

बिछाये जालमें न फंस जायं। इस लिये मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें तो कौंसिलोंमें जानेका विचार भी न करना चाहिये। कई भाई मुझसे कहते हैं अगर हम न गये तो जो देशके सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं कौन्सिलोंमें चले जायंगे। मैं उनसे सहमत नहीं। मैं यह नहीं जानता कि हम किसके प्रतिनिधि हैं, और नरम दलके भाई किसके प्रतिनिधि हैं। मैं तो केवल यह जानता हूं कि नरमदल वाले भाइयोंमें भले बुरे सब प्रकारके लोग हैं। मैं यह भी जानता हूं कि कितने ही नरमदलके भाई ऐसे भी हैं जिनका यह प्रामाणिक ख्याल है कि सरकारसे असहयोग करना सचमुच पाप है। पर उनके प्रति उचित सम्मान रखते हुये मैं उनसे अपना मतभेद प्रगट करता हूं तो मैं उनसे कहता हूं कि अगर वे अपनेको चुनावके लिये खड़ा करें तो भी अपने ही खोदे हुये गड़हेमें गिरेंगे। अगर मेरा यह प्रामाणिक विश्वास हो और मेरी अन्तरात्मा मुझसे यह कह रही हो कि कौन्सिलमें जाना पाप है तो मुझे न जाना चाहिये। फिर मेरे दूसरे ९९ साथी कौन्सिलोंमें जायं तो भी मुझे इसकी परवा नहीं करनी चाहिए। जनताकी सेवा करनेका यही एकमात्र मार्ग है। और इसीसे हम लोकमतका सङ्गठन कर सकते हैं। शासनमें आवश्यक सुधार प्राप्त करनेका और धर्माचरण करनेका भी यही एकमात्र मार्ग है। अगर हमारे धर्म या परीक्षाका समय है तो मुझे यह नहीं देखना चाहिये कि मैं अकेला हूं या मेरे साथमें भी कोई

है। मुझे तो अपने सिद्धान्त या धर्म पर अटल रहना चाहिये। फिर ऐसा करनेमें मेरे प्राण भी क्यों न चले जायं। ऐसे समयमें जिन्दा रह कर बदलनेकी अपेक्षा अपने धर्मके लिये मर जाना ही श्रेयस्कर है। मैं अपनेको फिर सूचित करता हुं कि कौंसिलोंमें जाना हम सबके लिये अनुचित और हानिकर है। अगर एक बार भी हमारा यह दूढ़ विश्वास हो गया हो कि हम इस सरकारके साथ सहयोग नहीं कर सकते तो हमे ठेठ ऊपरसे असहयोग शुरू करना चाहिये। हम लोग देशके स्वाभाविक नेता हैं, और हमने उस शक्ति और अधिकारको प्राप्त कर लिया है जिससे हम जनताको असहयोगका उपदेश कर सकें। इसलिये मैं आपसे यह कहता हूं कि कौंसिलोंमें जानेकी इच्छा भी करना असहयोग सिद्धान्तके विपरीत है।

कौंसिल निर्वाचन

(नवम्बर २४, १९२०)

बम्बई-प्रान्त तथा अन्यत्र जो निर्वाचन हुआ है उससे कौंसिलोंके सम्बन्धमें असहयोगकी सफलता प्रगट हो गई है। कहीं कहीं तो एक मतदाताने भी वोट नहीं दिया। ऐसी अवस्थामें देखें झूठे प्रतिनिधि क्या करते हैं? वे जानते हैं कि मतदाताओंने निर्वाचनमें आलस्यवश नहीं, बल्कि सिद्धान्तके कारण जानेसे इनकार किया। वे यह भी जानते हैं कि हजारों मतदाताओंने लिख कर अपनी यह इच्छा प्रगट कर दी है कि हम कौंसिलोंमें अपने प्रतिनिधि नहीं चाहते। मेम्बरोंको वोटरोंको समझानेका पूरा अवसर था। वे यह भी नहीं शिकायत कर सकते कि धमकी या घेरघारसे लोगोंने वोट नहीं दिये। असहयोग-प्रचारमें आदेश था कि किसीको घेरघार नहीं किया जाय। इस आदेशका पूर्णरूपसे पालन किया गया है। ऐसी अवस्थामें क्या निर्वाचित मेम्बरोंका यह स्पष्ट कर्त्तव्य नहीं है कि वे कौंसिलोंका परित्याग कर दें। निर्वाचकोंने सिद्ध कर दिया है कि वे नई कौंसिलोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। यदि इस पर भी मेम्बर कौंसिलोंमें जायँगे तो वे प्रतिनिधिक संस्थाओंको भ्रष्ट कर देंगे।

यदि ये झूठे प्रतिनिधि इतने पर भी न मानें तो मतदाता समितियाँ बना कर ऐसे प्रतिनिधियों पर अपना अविश्वास प्रगट करें और उन्हें सूचना देकर यह बता दें कि हम आपको अपना प्रतिनिधि नहीं मानते। निर्वाचकोंको चाहिये कि ऐसे प्रतिनिधियोंसे कोई काम न लें। उनके लिये कौंसिल नहीं है। उन प्रतिनिधियोंसे कोई सहायता भी न ली जाय। कौंसिल खुलने पर मतदाताओंके लिये फिर दूसरी परीक्षाका समय आवेगा। उस समय कौंसिलोंमें शिकायतें पेश करा कर कष्ट दूर करनेकी बड़ी इच्छा होगी। निर्वाचकोंको ऐसी इच्छा त्यागनी पड़ेगी।

पर क्या हम देशके सुनामके लिये यह आशा करें कि उस समय स्वयं निर्वाचित मेम्बर निर्वाचकोंके निश्चयके आगे सिर झुकावेंगे?

२—अदालतोंका वहिष्कार

वकीलोंका कर्तव्य

(अगस्त ११,१९२०)

किसी भी समाचार-पत्रने सहयोग-त्यागके सम्बन्धमें मेरी सम्मतियोंका इतनी दृढ़ता और योग्यता-पूर्वक विरोध नहीं किया है जैसा कि प्रयागके 'लीडर' ने। उसने मेरी उन सम्मतियोंकी जो मैंने सन् १९०८ ई० में अपनी बनाई हुई पुस्तक 'इण्डिन होमरूल' में वकीलोंके सम्बन्धमें प्रकाशित की है, हँसी उड़ाई है। मैं उस समय प्रगट किये हुए अपने विचारों पर स्थिर हूं। और यदि मुझे समय मिला तो मैं उन विचारोंको इस पत्रमें विस्तृत-रूपसे समझाऊंगा। परन्तु इस समय मैं ऐसा करनेसे रुकता हूं, क्योंकि मेरे वकीलों-सम्बन्धी उन विशेष विचारोंका वकीलोंको अपनी वकालत स्थगित करनेकी आवश्यकतापर उपदेश देनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि राष्ट्रीय सहयोग-त्याग चाहता है कि वकील लोग अपनी वकालत स्थगित कर दें। शायद कानूनी कचहरियों द्वारा वकीलोंकी अपेक्षा और कोई भी सरकारसे अधिक सहयोग नहीं रख सकता। वकील लोग प्रजामें कानूनका प्रचार करते हैं

और इस प्रकार वे शासनका समर्थन करते हैं। यही कारण है कि उन्हें कचहरियोंके अफसरोंकी उपाधि दी है। उन्हें आनरेरी अफसरोंके नामसे पुकारा जा सकता है। यह कहा जाता है कि वे वकील ही हैं जिन्होंने सरकारका घोर विरोध किया है। निस्सन्देह यह बात कुछ अंशोंमें ठीक भी है। परन्तु इससे वह हानि दूर नहीं हो जाती जो इस पेशेसे होती है। इसलिये जब कि राष्ट्रकी इच्छा सरकारके यंत्रको रोकनेकी है तो वकीलोंको यदि वे राष्ट्रको, सरकारको नीचे झुकानेमें सहायता देना चाहें तो उन्हें अपनी वकालत अवश्य स्थगित कर देनी चाहिये। परन्तु समालोचकोंका कहना है कि यदि वकील और बैरिस्टर मेरे द्वारा बताये हुए पिंजड़ेमें फँस जायं तो सरकारको बड़ी भारी प्रसन्नता होगी। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता। जो बात साधारण समयमें ठीक होती है वही बात किसी विशेष कालमें ठीक नहीं हो सकती। सामान्य अवसरोंपर सरकार अपने ढंगों और नियमोंकी वकीलों द्वारा कड़ी समालोचना होनेपर भी क्रोध प्रगट कर सकती है, परन्तु किसी भयानक अवसरका सामना होने पर वह यह नहीं चाहेगी कि कोई एक भी वकील कचहरीसे अपनी वकालत छोड़कर सरकारका साथ छोड़ दे।

इसके अतिरिक्त, मेरी स्कीममें मुलतबी करनेका अर्थ बिलकुल काम बन्दकर देना नहीं है। वकीलोंका यह काम नहीं है कि वे वकालतको स्थगित कर दें और मौजकी छानें। उनसे यह आशा की जायगी कि वे अपने मुवक्किलोंको कचहरियोंके बाय-

कार करनेको समझावेंगे। वे झगड़े तय करानेके लिये पंचायतोंकी रचना करेंगे। उनसे आशा की जाती है कि वे अपने मुवक्किलोंको यह बात समझानेकी कोशिश करेंगे कि जो जाति किसी सरकारको लाचार करके उससे न्याय करा लेनेपर तुली हुई है उसके पास आपसके झगड़ोंमें फँसनेके लिये समय नहीं होना चाहिये। पाठकोंको शायद यह बात मालूम नहीं होगी कि यूरोपीय युद्धके समय विलायतके बहुतसे प्रसिद्ध वकीलोंने वकालत मुलतबी कर दी थी। और तब वे केवल फुरसतके समयमें ही नहीं, सब समय देशका काम करनेके योग्य हो गये थे। स्वर्गीय मि० गोखले कहा करते थे कि अभी हम राजनीतिको फुरसतके समयकी एक आमोद-प्रमोदकी वस्तु ही समझते हैं। हमारे देशके जिन आदमियोंने अपना कुल समय देकर सार्वजनिक प्रश्नोंको पूरी तरह नहीं समझ पाया वे ही नौकरशाहीके विरुद्ध हमारे सेनापति रहते हैं। इससे देशकी जो हानि हुई है उसे हम अच्छी तरह नहीं समझते।

फिर समालोचक इस प्रकारकी दलील पेश करते हैं कि यदि वकील लोग अपनी वृत्ति त्याग दें तो वे भूखों मर जायँगे। अच्छी आमदनीवाले वकीलोंके सम्बन्धमें तो यह कहा नहीं जा सकता। वे समय समयपर यूरोप-भ्रमण या अन्य कार्य्यके लिये अपना कार्य्य स्थगित कर देते हैं। रहा उन लोगोंके विषयमें जो रोज़ कमाते और रोज़ खाते हैं। यदि वे ईमानदार आदमी हैं तो प्रत्येक प्रान्तीय खिलाफत कमेटी उन्हें पूरे

समय नौकरी देनेपर काफी मुआविजा आनरेरी तौरपर दे सकती है।

अन्तमें मुसलमान वकीलोंकी बात रह जाती है। यह कहा जाता है कि यदि वे अपनी वकालत छोड़ देंगे तो हिन्दू वकील उसे ग्रहण कर लेंगे। मैं आशा करता हूं कि हिन्दू वकील चाहे वे अपनी वकालत भले ही न छोड़ रहे हों पर कमसे कम अपने मुसलमान भाइयोंके मुवक्किलोंको छूनेका नाममात्र भी साहस न करेंगे। परन्तु मुझे विश्वास है कि कोई धार्मिक मुसलमान यह नहीं कह सकता कि वे केवल उसी दशामें लड़ना जारी रख सकते हैं जब कि हिन्दू भाई भी आत्मत्याग करनेमें उनका साथ दें। यदि हिन्दू भाई ऐसा करें, जैसा कि उनका कर्त्तव्य है, तो यह उनकी प्रतिष्ठा और दोनोंके लिये सामान लाभकी बात होगी। परन्तु मुसलमानोंको अवश्य आगे बढ़ना चाहिये, चाहे हिन्दू उनका साथ दें या न दें। यदि उनके लिये यह मरने और जीनेका प्रश्न है तो उन्हें इस हानिकी कुछ परवा नहीं करनी चाहिये। किसी आदमीको अपनी प्रतिष्ठाको बनाये रखनेके लिये और विशेष कर धार्मिक प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये जो कुछ भी हानि सहन करनी पड़े वही थोड़ी है। केवल वही लोग स्वार्थत्याग कर सकते हैं जो विना स्वार्थत्याग किये रह नहीं सकते। जोरसे कराया हुआ स्वार्थत्याग स्वार्थत्याग नहीं कहा जा सकता। वह अधिक दिन नहीं रहेगा। जब कि दबाव डालकर अनिच्छुक लोगोंसे किसी आन्दोलनका समर्थन

कराया जाता है तो उसके प्रति लोगोंका प्रेम कम हो जाता है। जब हर एक मुसलमान यह विचार करने लगेगा कि सन्धिकी शर्तोंसे उसके ही साथ अन्याय किया गया है तो खिलाफतका आन्दोलन बड़ा अदम्य शक्तिशाली आन्दोलन हो जायगा। कोई आदमी अपने साथ किये गये अन्यायके मामलोंमें दूसरोंकी सहायता या स्वार्थत्यागकी प्रतीक्षा नहीं किया करता। निस्सन्देह वह सहायताकी खोज करता है, परन्तु अन्यायके प्रति उसकी लड़ाई विना इस बातका विचार किये जारी रहती है कि उसे सहायता मिलेगी या नहीं। यदि उसका पक्ष न्यायका है तो ईश्वरीय नियम यह है कि उसे सहायता अवश्य मिलेगी। ईश्वर असहायोंका सहायक है। जब कि पाण्डव द्रौपदीकी सहायता न कर सके तो भगवान उसकी रक्षा करनेके लिये प्रगट हुए और उन्होंने उसका धर्म बचाया। जब पैगम्बर मुहम्मद साहबका साथ लोगोंने त्याग दिया तो परमात्माने उनकी सहायता की।

अदालतोंका इन्द्रजाल

(अक्तूबर ६, १९२०)

हम अगर वकीलों और अदालतोंके जालमें न फंसे होते और यदि हमारी नीचातिनीच भावनाओंको उभाड़ने और हमें बहका कर कचहरियोंके कीचमें फंसानेवाले दलाल न होते, तो आज

हमारा जीवन कितना सुखी होता ? कचहरीके कीड़े, दिनरात उसमें रहनेवाले बड़से बड़े वकील, बैरिस्टरोंसे पूछ देखिये, उन्हें भी कहना पड़ेगा कि वहांकी हवा ही बिगड़ी हुई है। दबावसे वा लोभवश अपनी आत्मातकको बेचनेके लिये तैयार, झूठी गंगा उठानेवाले गवाह तो आपको हर मुकदमेमें दोनों ओरसे खड़े दीख पड़ेंगे। यहींतक बस नहीं है, इसमें सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि इन अदालतोंसे शासनकी जड़ जमती है। जनता इनसे न्यायकी आशा रखती है और इसीसे इन्हें स्वतन्त्रतारक्षक कहा जाता है। पर जिन अदालतोंसे किसी अत्याचारी शासनकी पुष्टि हो उन्हें स्वतन्त्रतारक्षक कहना बड़ी भूल है ; ये तो राष्ट्रीय स्वाधीनताको पीस डालनेवाले कलघर हैं। पंजाबकी फौजी अदालतें और सरसरी कचहरियां आपके सामने इनके नमूने हैं। वहां उनका पर्दा खुल गया था। वैसे भी जब काले-गोरेका मामला आ पड़ता है, तो इनका यही रूप देखनेमें आता है। संसार भरमें यही दशा है। नैरोबीमें एक अंगरेज अफसरने हब्शियोंपर मनमाने अत्याचार किये, न्यायके नामपर साहबपर नाममात्रका जुर्माना हो गया। भारतमें भी यही बात है; आपने किसी गोरेको कालेका बध करनेके लिये आजतक कभी कठोर दण्ड मिलते सुना है ? इससे यह न समझें कि अगर अंग्रेजोंकी जगह हिन्दुस्थानी हाकिम और हिन्दुस्थानी पुलिस हो जायं तो यह सारा रंग पलट जायगा। अंग्रेज स्वभावतः बुरे नहीं होते और न हिन्दुस्थानी देवता ही होते हैं। दोनों परि-

स्थितिके गुमाल हैं। फौजी अदालतोंके समय हिन्दुस्थानी हाकिम और हिन्दुस्थानी पुलिसने जुल्म करनेमें अंग्रेजोंसे किसी तरह कम नाम नहीं कमाया। अगर जलियांवालामें स्त्रियोंकी बेइज्जती करनेवाला वस्वर्थ स्मिथ अंग्रेज था तो अमृतसरमें बेकसूर अबलाओंको सतानेवाले हमारे हिन्दुस्थानी भाई ही थे। मेरा विरोध न्यायप्रथासे है; यों अंग्रेजोंसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं। आज भी मैं उनमेंसे बहुतोंका वही आदर करता हूं जो इस प्रथाकी बुराईके ध्यानमें आनेसे पहले करता था बल्कि मि० एण्ड्रूज तथा अन्य कई अंग्रेज मित्रोंपर आज मेरा पहलेसे कहीं अधिक प्रेम है। पर आज जो मुझे भाईसे भी अधिक प्रिय हैं यदि वही कलको भारतके वाइसराय हो जायं तो मेरी उनपर से वह श्रद्धा जाती रहेगी, क्योंकि मेरी समझमें इस पदको ग्रहणकर वे अपनी पवित्रताकी रक्षा नहीं कर सकते। उन्हें उसी शासनप्रणालीसे काम लेना पड़ेगा जिसकी नींव ही निकम्मी है, जिसका सङ्गठन हमारी गुलामीके आधारपर हुआ है; शैतान ढोंगके लिये बड़ी गंभीर नीति और धर्मपूर्ण भाषाका आडम्बर किया करता है।

मैं अपने विषयसे जरा हट गया। मेरी यह दिखानेकी इच्छा थी कि इस सरकारके अधीन रहकर यदि समस्त कर्मचारी हिन्दुस्थानी ही हो जायं तोभी इन अत्याचारोंका अन्त न होगा। इसीसे लार्ड सिंहकी उच्चपदपर नियुक्ति सुनकर मुझे कुछ प्रसन्नता नहीं हुई। हमें विचारों और व्यवहारोंमें पूर्णरूपसे एक

होना चाहिए। हमें इस योग्य होना चाहिए कि हम जब चाहें अंग्रेजोंसे नाता तोड़ लें।

अब वकीलों और अदालतोंकी बात पर फिर आइए। जबतक हम कृत्रिम न्यायालयोंको भक्ति, भय और अचरजभरी दृष्टिसे देखना न छोड़ेंगे तबतक हमारा यह उद्देश्य पूरा न होगा। इन अदालतोंकी बदौलत धन कमानेवाले, अपना द्वेष सिद्ध करनेवाले तथा न्याय चाहनेवाले, तीनोंको यह न भूलना चाहिये कि वास्तवमें ये बड़ी बड़ी अदालतें क्यों खड़ी की गई हैं, सिर्फ अंग्रेजी राज्यको यहां अमर करनेके लिये। ये न हों तो सरकारका एक दिन भी टिकना मुश्किल है। मैं इसे मानता हूं कि हमारे सिद्धान्तानुसार हिंदुस्थानी वकील वहांसे हट जायं और अदालतोंमें एक भी दीवानी मुकद्दमा दायर न हो, तोभी अदालतों द्वारा जनताको पंजेमें रखनेकी शक्तिका नाश न होगा ; किन्तु उस समय हम इनके धोखेमें न पड़ सकेंगे। लोगोंके मनसे इनकी न्यायपरायणताका सम्मान और प्रभाव लुप्त हो जायगा। बात आश्चर्यकी है किन्तु सच्ची है कि जबतक अंग्रेजोंसे हमें धीरे धीरे अधिकार मिलनेका विश्वास था तबतक हो हम उच्च पदोंपर हिन्दुस्थानियोंकी नियुक्ति सुनकर फूले न समाते थे लेकिन जब हमें निश्चय हो गया कि इस शासनप्रणालीमें सुधार होना असम्भव है तब ऐसी प्रत्येक नियुक्तिसे हमें अपनी बदकिस्मती पर तरस आना चाहिये। इस विचारसे प्रत्येक वकालत छोड़नेवाला वकील उसी हदतक अदालतोंके प्रभावकी जड़

काटता है और व्यक्ति तथा राष्ट्रको उतना ही लाभ पहुंचता है।

कचहरियोंमें कितना धन बर्बाद होता है इस ओर कभी ध्यान नहीं दिया जाता। यह उड़ा देनेकी बात नहीं है। वर्त्तमान सरकारके ऐसे कई विभागोंमें इसी तरह धनका अपव्यय होता है। पर इन अदालतोंका नम्बर सबसे बढ़ा चढ़ा है। मुझे इंग्लैंडकी अदालतोंका थोड़ा, हिन्दुस्थानकी अदालतोंका उनसे कुछ अधिक और दक्षिणी अफ्रीकाकी अदालतोंका पूरा ज्ञान है। मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि यहांकी अदालतोंका खर्च सर्वत्रसे अधिक है। यहांकी आर्थिक दशाको देखते यहांकी जनतापर यह बहुत भारी बोझ है। दक्षिणी अफ्रीकाके अच्छेसे अच्छे वकील भी—जो योग्यतामें किसी तरह कम नहीं होते—यहांके वकीलोंके बराबर मेहनताना नहीं मांग सकते। कानूनी सलाहके लिये अधिकसे अधिक १५ गिनी बस है और यहां उतने ही कामके हजारों लिये जाते हैं। इस न्यायप्रणालीहीमें कुछ पाप है, जिसके सहारे एक वकील महीनेभरमें पचास हजारसे एक लाखतक घरमें धर ले। वकालत कोई सट्टा जूआ नहीं है, और न होनी चाहिये ही। उचित तो यह है कि गरीबसे गरीब आदमी भी उचित फीस देकर अच्छासे अच्छा वकील कर सके। लेकिन यहां तो लोगोंने अंग्रेज वकीलोंकी नकल करनेमें अपनी शान समझी है और कहीं कहीं तो उनसे भी अपनी कमान चढ़ा दी है। अंग्रेजोंकी बड़ी फीसकी बात तो कुछ समझमें भी

आती है, बिचारे सात समुद्र पारकी ठंढी आब हवासे इस गर्म मुल्कमें आकर तपते हैं, गर्मियोंमें पहाड़ोंके सैरसपाटे जरूरी ठहरे, इङ्गलैण्ड आने जाने तथा सन्तानोंको अमीराना ठाटकी शिक्षा देनेका खर्च अलग रहता है। इससे स्वभावतः उनकी फीस अधिक होनी ही चाहिये। लेकिन भारत यह बोझ नहीं उठा सकता। हम समझते हैं कि अंग्रेज वकीलोंसे बराबरी करनेके लिये हमें भी वैसी ही प्राणघातक जबरदस्त फीस लेनी चाहिये। हर बातमें अंग्रेजोंकी रीति नीतिकी नकल हमारी कमबख्तीकी निशानी है। उससे हमें कभी लाभ न होगा। अदालत तथा वकालतपर इस दृष्टिसे विचार करनेवाला तथा अपनी योग्यतानुसार देशसेवाकी अभिलाषा रखनेवाला कोई भी वकील वकालत छोड़ देना जरूरी और अपना सबसे पहला कर्त्तव्य समझेगा। अन्य विचार तभी संभव हैं जब वह युक्तिसे इन दलालोंका खण्डन कर सके।

अदालतोंके वकील

—:-*-:—

(मार्च ३०, १९२१)

वकीलोंके संबंधमें जो मत मैंने प्रगट किया है उसके विरोधमें कलकत्ताकी अमृत बाजार पत्रिकाने एक लम्बा चौड़ा लेख लिखा है। पत्रिकाका मत है कि वकीली पेशा करते हुए भी वकीललोग कांग्रेसकी कार्रवाईमें भाग ले सकते हैं और जनताके

नेता बने रह सकते हैं। पर मेरा यह कहना है कि असहयोगके निर्दिष्ट कार्यक्रमसे इस तरहका कोई भी स्खलन भारी भूल होगी। मैंने सुना है कि पत्रिकाका यह मत है कि कांग्रेसने प्रत्येक वकीलसे वकालत छोड़नेके लिये नहीं कहा है। मैं इस अर्थका विरोध करता हूं। जो प्रस्ताव कांग्रेसमें स्वीकृत हुआ है उसमें स्पष्ट लिखा है कि प्रत्येक वकीलको वकालत स्थगित करनेको अधिकाधिक चेष्टा करनी चाहिये। मेरी समझमें जिन वकीलोंने अभीतक वकालत नहीं छोड़ी है उन्हें कांग्रेसके संगठनमें कोई पद नहीं मिलना चाहिये और न वे जनताके नेताही बननेके अधिकारी होसकते हैं। यदि उपाधि धारियोंने उपाधियां नहीं त्याग दी हैं तो क्या उन्हें कार्यकर्त्ता निर्वाचित किया जा सकता है? यदि हम लोग आरम्भिक कठिनाइयोंका सामना निर्भयताके साथ नहीं करते तो हम आगे चलकर इस आन्दोलनकी गति खराब कर देंगे। यदि किसी प्रान्तके कांग्रेस कमेटीका अध्यक्ष बिना वकालत छोड़े ही उस पदपर बना रहता है तो वह अपने काममें सफल नहीं हो सकता। उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अपने दौरेमें मैंने इस बातका बारबार अनुभव किया है। जो वकील अबतक जनताके शिरोमणि बने रहे उन्होंने या तो वकालत छोड़ दी या सार्वजनिक जीवनको ही तिलाञ्जलि दे दी।

व्यापारियोंके साथ वकीलोंकी तुलना करनेमें पत्रिकाने भूल की है। अभीतक सार्वजनिक जीवनमें व्यापारियोंने अधिक

दिलचस्पी नहीं दिखलाई है और न जनताके नेतृत्वका भार ही उनके ऊपर पड़ा है पर जहां कहीं वे मैदानमें आये हैं विदेशी व्यापार उन्होंने छोड़ ही दिया है। वर्तमान दशामें जनता कहनी और करनीमें विषमता देखनेके लिये तैयार नहीं है। पर साथ ही सार्वजनिक जीवनमें नेतृत्वका भार ग्रहण करना या उसका त्याग कर देना एक बात है और केवल साधारण तौरसे आन्दोलनका सहायता करना दूसरी बात है। हजारों ऐसे हैं जो कांग्रेसके कार्यक्रमका पूर्णतः पालन नहीं करते तोभी वे चुपचाप जितना कर सकते हैं अपनेसे ही सहायता करनेके लिये तैयार हैं। वकालत करते हुए वकीलोंको भी इसी अवस्थामें रहना चाहिये। इससे किसी तरहसे मर्यादा भी खराब नहीं होगी और नियमका भी पालन होगा। स्वराज्यके मार्गमें आगे बढ़ते समय हमें किसी व्यक्ति विशेष या दल विशेषकी नेतृत्वमें भरोसा नहीं करना चाहिये और न उसपर निर्भर रहना चाहिये।......

आगे चलकर पत्रिकाने फिर लिखा है कि इस प्रकार तो जबतक अदालतोंका पूर्ण बहिष्कार नहीं हो लेता वकील कांग्रेसका नेतृत्व नहीं ग्रहण कर सकते। पर यह तबतक सम्भव नहीं है जबतक सरकार बागी न हो जाय। पर चूंकि इसकी सम्भावना नहीं है इसलिये वकीलोंको पूर्ववत नेतृत्वके काममें भाग मिलना चाहिये। पर यह विचार प्रणाली सदोष है। तर्कके साथ इसपर विचार करनेसे हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि हम लोगोंको जिस बातकी शिक्षा

देते हैं उसका स्वयं पालन करना हमारे लिये कोई आवश्यक नहीं है। इस बातको हम स्वीकार करते हैं कि केवल देशबन्धु और पण्डित मोतीलालजीके वकालत छोड़नेसे अदालतोंका पूर्ण बहीष्कार नहीं हो गया पर इस तरहकी कार्रवाईसे तथा वकालत करते हुए वकीलोंको देश सेवामें प्रधान स्थान न देकर हम लोगोंने इन अदालतोंकी मर्यादा तोड़ दी और इस तरह उतनेही अंशमें हमने इस सरकारकी मर्यादा तोड़ दी। जिन उपाधिधारियों, वकीलों तथा अन्य व्यक्तियोंने कांग्रेसका आदेश नहीं माना है उन्हें यदि हम नेतृत्वका भार देते हैं तो सार्वजनिक जीवनपर कुठाराघात करते हैं। अन्तमें पत्रिकाने लिखा है कि केवल उनसे कामलेनेके हेतु हमने वकीलोंको अदालत छोड़नेका परामर्श दिया है। यह बात भी भूलसे भरी है। असहयोगके प्रस्तावसे सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि सरकारकी मर्यादा इन्हीं उपायों द्वारा बढ़ी और बनी है। इसलिये असहयोगको सफल बनानेके लिये हम लोग इन्हीं पर कुठाराघात करके सरकारकी मर्यादा सबसे पहले बिगाड़ डालना चाहते हैं।

वकीलों और छात्रोंकी सहायता

—०:*:०—

(फरवरी २३, १९२१)

जहां कहीं मैं जाता हूं मुझसे यही प्रश्न किया जाता है कि जिन वकीलों और छात्रोंने कांग्रेसका कार्यक्रम पूर्णतया नहीं स्वीकार किया है वे इस आन्दोलनमें किसी तरहसे सहयताकर सकते हैं या नहीं। इस तरहके प्रश्नोंसे मुझे अतिशय विस्मय हुआ क्योंकि इससे यह आवश्यक था कि जो वकील या छात्र कांग्रेसके कार्यक्रमको स्वीकार नहीं कर सकते थे वे असहयोग आन्दोलनमें भाग ही नहीं ले सकते। हजारों छात्र और वकील ऐसे हैं जो अपनी हृदयकी दुर्बलताके कारण अपने पेशेसे अलग नहीं हो रहे हैं अर्थात् न तो छात्र पढ़ना ही छोड़ रहे हैं और न वकील वकालतका ही त्याग कर रहे हैं। जो वकील किसी कारणसे वकालत नहीं छोड़ सकता वह भी अनेक तरहकी सहायता पहुंचा सकता है। वह आर्थिक सहायता दे सकता है, समय मिलनेपर लोगोंको सदुपदेश दे सकता है, अपने पेशेमें ईमानदारी और न्यायसे काम लेकर इस पेशेको सुधार सकता है। मुवक्किलोंको वह रुपयेके लिये डस डालना ही उचित नहीं समझता। अपने पेशेमें बढ़ती करनेके लिये वह दलालोंसे काम नहीं लेता। पंचायती अदालतोंकी स्थापनाकी

छोड़कर वह गरीब देहातियोंका बहुत सा रुपया बचा सकता है। प्रतिदिन घण्टे दो घण्टे समय निकालकर वह चर्खा चला सकता है और अपना गार्हस्थ्य जीवन सादा बना सकता है। घरवालोंको भी घण्टा दो घण्टा चरखा चलानेके लिये कह सकता है और उन्हें उसमें जोत सकता है। अपने घरमें केवलमात्र खादी वस्त्रका प्रयोग कर सकता है। इस तरहकी अनेक बातें हैं जिनको प्रत्येक वकील बड़ी आसानीसे कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति कांग्रेसके पूरे कार्यक्रमको नहीं स्वीकार कर सकता तो इसलिये उसे उतना करनेसे मुंह नहीं मोड़ना चाहिये जो उसके लिये साध्य है। हां, एक काम वह नहीं कर सकता। वकालत करता हुआ वकील सार्वजनिक जीवनमें नेतृत्वका भार नहीं ग्रहण कर सकता। उसे एकान्तमें काम करके ही सन्तोष करना होगा। यही बात उन विद्यार्थियोंके लिये भी लागू है जो किसी कारणसे स्कूल या कालेज नहीं छोड़ सकते। अधिकांश स्वयंसेवक छात्र ही होंगे। स्वयंसेवक होना एक विशिष्ट प्रकारका अधिकार है और जबतक कोई छात्र स्कूल या कालेज छोड़कर नहीं आता वह उस अधिकारका अधिकारी नहीं बन सकता। वकीलोंकी भांति उन्हें भी एकान्तमें ही काम करके सन्तोष करना होगा। यदि हम स्कूल और कालेजोंका पूर्णतया बहिष्कार नहीं कर सकते तो हमें उनकी मर्यादा तो अवश्य बिगाड़ देनी चाहिये। और उस मर्यादापर कुठाराघात हम लोगोंने कर दिया और वह धीरे

धीरे घट रही है। और जब तक राष्ट्रीय आवश्यकताके अनुसार वे राष्ट्रीय न बन जायं हमें ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे उनकी प्रतिष्ठा पुनः बढ़ने लगे।

मोची और वकील

—०:*:०—

(सितम्बर २९, १९२०)

पत्रिकाके सम्पादक बाबू मोतीलाल घोषने मुझे और मौलाना मुहम्मद अलीको अपने पास बुलाया था, उन्होंने हम लोगोंसे कहा कि आप वकीलोंको कांग्रेसमें पुनः बुलाइये और पहलेकी भांति कांग्रेसके नेतृत्वका भार उनके ऊपर दे दीजिये। हम लोगोंने उन्हें भलीभांति समझाया कि हम लोगोंका यह अभिप्राय नहीं है कि वकील कांग्रेसमें प्रधान भाग न लें या प्रधान पदोंपर न चुने जायं पर हम लोगोंका केवलमात्र यही कहना है कि जब तक वे वकालत नहीं स्थगित करते वे नेतृत्वकी कामना न करें? मोती बाबूने मुझसे कहा कि वकीलोंके प्रसङ्गमें आपने मोचियोंको भी ला घुसेडा इससे मुझे कष्ट हुआ। यंग इण्डियामें मैंने इसी प्रसंगपर एक लेख लिखा था जिसमें मैंने मोचियोंसे वकीलोंकी तुलना की थी पर मेरा अभिप्राय किसीको मानसिक कष्ट देनेका नहीं था। मैंने वकीलोंके बारेमें कई बार कड़े

शब्दोंका प्रयोग किया, भीषण आक्षेप किया है पर ऐसा करना किसी द्वेषसे प्रेरित होकर नहीं था। मुझे आशा है कि वकीलोंने भी इसके लिये किसी तरहका असद्भाव ग्रहण नहीं किया है। अपने लेखों द्वारा मैं किसीको बेधना नहीं चाहता। पर जिस लेखका मोती बाबूने जिक्र किया है उसे मैंने किसी तरहके असद्-भावसे प्रेरित होकर नहीं लिखा था। मैं स्वयं वकील रह चुका हूं। ऐसी अवस्थामें मेरे लिये यह सर्वथा असम्भव है कि मैं उसी पेशेकी इतनी निन्दा करूं। वकीलोंने देशकी जो सेवा की है उसे भी मैं किसी तरह नहीं भूल सकता। सर फिरोज शाह मेहता, रानाडे, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग, मनमोहन घोष, और कृष्णास्वामी ऐय्यर आदि सभी वकील थे। उन्होंने उस समयमें जनताका पक्ष लिया था, देशको स्वतन्त्र करनेका प्रयत्न किया था जिस समय किसीको मुंह खोलने और जबान हिलानेका साहस नहीं होता था। और वर्तमान समयमें यदि वे उस नेतृत्वके पदपर नहीं बैठाये जा रहे हैं तो इसका कारण यह है कि वह समय अब बदल गया। उस समय जिन गुणोंकी आवश्यकता थी आजकल नेता बननेके लिये उनसे भिन्न गुण चाहिये। इस समय हमारा नेता वही हो सकता है जिसमें साहस हो, धैर्य हो, निर्भयता हो, यातना सहनेकी शक्ति हो और सबसे बढ़कर आत्मत्यागकी योग्यता हो। यदि किसी नीच जातिमें भी ये गुण पाये जायँ तो वह भी सबके नेतृत्वका अधिकारी हो सकता है। प्रौढ़ वक्ता ही होकर क्या

करेगा यदि उसमें ये उपरोक्त गुण नहीं हैं क्योंकि उसको सफलता नहीं हो सकती।

मोती बाबूने कहा कि इस आन्दोलनमें ऐसी अनेक बातें आ गई हैं जो असह्य होती जा रही हैं, जैसे स्वयं सेवकदल उन वकीलोंका अनादर और अपमान करते हैं जिन्होंने वकालत स्थगित कर असहयोग आन्दोलनमें भाग नहीं लिया है। यह दोषारोपण अशंतः ठीक है। असहनशीलता एक तरहकी हिंसा है और इस भाव द्वारा उदार स्वराज्यके मार्गमें बाधा उपस्थित होती है। यदि साधारण त्याग करके या खद्दर धारण करके कोई असहयोगी इस बातपर अभिमान करने लगता है और अपनेको अन्य देश भाइयोंसे ऊपर समझने लगता है तो वह असयोग आन्दोलनके लिये संकट है। यदि असहयोगीमें हद दर्जेकी नम्रता नहीं आ गई तो वह कुछ नहीं है। जिस समय आदमी अपनी कार्यवाहीसे सन्तुष्ट हो जाता है उसकी बाढ़ रुक जाती है और वह स्वतन्त्रताके योग्य नहीं रहता। जिसने नम्रता तथा धार्मिकतासे त्याग किया उससे स्वार्थको हीनताका पता लगने लगता है। त्यागके मार्गपर चलनेपर ही हमें अपने स्वार्थीपनका पता चलता है पर जबतक हम अपने स्वार्थका पूर्णतया त्याग न कर लें हमें पीछे नहीं हटना चाहिये। उसी त्यागमें लगा रहना चाहिये।

यह ख्याल कर कि पहले तो हम स्वार्थ त्यागके लिये तैयार ही बहुत कम रहते हैं और दूसरे यदि तैयार भी हुए तो

हम स्वार्थत्याग करते हो कितना हैं हमें सदा नम्र बना रहना चाहिये। अपनी एकान्त विशिष्टता और आत्मतोषने ही कितनोंको हम लोगोंमेंसे अलग कर रखा है। हम लोगोंका सिद्धान्त होना चाहिये कि हम लोग निहायत मुलायमियतसे बातें करें और अपनी बातोंका असर उनके हृदयसे और मनपर जमानेकी चेष्टा करें। इसलिये जो हमारे विपक्षी हैं उन्हें हमें देश द्रोही नहीं समझना चाहिये।

जो वकील असहयोगके कार्यक्रममें विश्वास रखते हैं पर कारणवश अपने हिस्सेका काम नहीं उठा सकते अर्थात् वकालत नहीं स्थगित कर सकते उन्हें उचित है कि वे एकान्त देशसेवामें लगे रहकर स्वदेशीका प्रचार करें। यह उनके लिये सम्भव है। स्वदेशीको पूरी तरहसे चरितार्थ करनेके लिये हजारों कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। वकालत करनेवाले वकील अदालतोंमें भी खद्दर पहनकर क्यों न जायं। फुरसतके समय वे तथा उनके कुटुम्बके लोग सूत कातनेका काम क्यों न करें। इस तरहके अनेक काम हैं जो वकील लोग कर सकते हैं और उनके द्वारा स्वराज्यके मार्गमें सहायक हो सकते हैं। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि वे वकील जो अदालतोंका वहिष्कार नहीं कर सकते तथा वे छात्र जो स्कूलों और कालेजोंको नहीं छोड़ सकते, उनके लिये अनेक तरहके काम पड़े हैं जिनमें सहायता कर वे राष्ट्रका कल्याण कर सकते हैं। सभी नेता नहीं हो सकते

पर काम सभी कर सकते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जहांसे इस तरहकी सहायता मिलनेकी आशा हो वहां असहयोगी उससे पूर्णलाभ उठानेकी चेष्टा करेंगे।

यंग इण्डियाका नोट

यंग इण्डियाके जिस नोटपर बा० मोती लाल घोषने असन्तोस प्रगट किया था वह अगस्त २५, १९२१ के अंकमें निकला था नोटका अनुवाद निचे दिया जाता है!—

मेरे पास पत्रपर पत्र आ रहे हैं जो कांग्रेसमें नेतृत्वके पदपर रहनेवाले वकीलोंके वकालतकी चर्चासे भरे रहते हैं। जबसे मैं बङ्गालका दौरा करने लगा हूं यह सवाल और भी पूछा जाने लगा है। धुवरीसे एक असहयोगी विद्यार्थीने लिखा है:— "क्या यह संभव है कि वकालत करते हुए वकील इस आन्दोलनके नेतृत्वका भार ग्रहण करके उसे सफल बना सकते हैं?" मैं नहीं समझ सकता कि जिस आन्दोलनकी सफलताका मूल-सिद्धान्त त्याग और बलिदान है उसकी सफलता उस अवस्थामें कैसे सम्भव है जब स्वयं इसके नेतागण आत्मत्याग तथा बलिदानमें विश्वास नहीं करेंगे। मैं तो सदा यही कहता आया हूं कि यदि कोई उत्तम नेता नहीं मिलता है तो वकीलोंके नेतृत्वके बदले साधारण व्यक्तिकाही नेतृत्व—यदि वह नम्र और आत्मत्यागी है—स्वीकार करना उचित है। मेरी समझमें साहसी और निडर जुलाहा या मोची डरपोक या कायर वकीलसे कहीं अच्छा नेता

हो सकता है। इस आन्दोलनकी सफलता वीरता, धीरता, आत्मत्याग, सचाई प्रेम तथा विश्वासपर निर्भर करती है, चाल-बाजी, घृणा, डाह अविश्वास तथा वकीली नुकाचीनी इसके लिये उपकारी और लाभदायक नहीं हो सकते।

वकीलोंकी कठिनाई

(जनवरी १२, १९२२)

सेठ जमनालाल बजाजने एक लाख रुपयेका दान किया था कि नागपुर कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार जो वकील वकालत स्थगित करें उन्हें इस फण्डसे सहायता दी जाय। सालभरके बाद वह फण्ड अब प्रायः समाप्त हो चला है। मैं नहीं समझता कि जिन वकीलोंने वकालत स्थगित कर दी थी वे अपनी मर्यादा-का ख्याल करके कभी भी कचहरीमें जाना पसन्द करेंगे। इसके दो कारण हैं, एकतो स्वभावगत लज्जा उन्हें आगे कदम रखनेसे रोकेगी और दूसरे जब वे देख रहे हैं कि देश स्वार्थत्यागका इस प्रकारका ज्वलन्त उदाहरण देशके सामने उपस्थित कर रहा है तो भला वे ऐसे समयमें कैसे अलग हो सकते हैं। पर वकी-लोंको उनके ही दम पर छोड़ देना उचित नहीं होगा। इसलिये प्रान्तीय कमेटियोंको मैं सलाह दूंगा कि यदि किसी वकीलको

सहायताकी आवश्यकता पड़े तो उसको सहायता सेन्ट्रल फण्ड-मेंसे होनी चाहिये। इस प्रबन्धको इतनी शीघ्रतासे करना चाहिये कि इसकी ढिलाईके कारण प्रधान कार्यमें किसी तरहकी बाधा न उपस्थित हो जाय।

इस समय वकीलोंके मार्गमें यही कठिनाई है। राष्ट्रीय जागृतिमें हाथ बटानेके लिये वे तैयार हैं। उनकी आत्मा तैयार है पर उनकी कायरता उन्हें आगे बढ़नेसे रोकती है। मुझे रह रहकर यही आशंका उठती है कि वकालत करनेवाले वकील नेतृत्वका भार नहीं ग्रहण कर सकते। इस आन्दोलनके लिये असीम आत्मत्याग तथा बलिदानकी आवश्यकता है। इनके हाथमें पड़कर कोई भी आन्दोलन कमजोर पड़नेसे नहीं बचा रह सकता। इस तरह यदि ऊपरके लोग इस अवसरपर कमजोरी दिखावें तो सम्पूर्ण आन्दोलन मिट्टीमें मिल जायगा। इसलिये जानबूझकर कांग्रेसने उनके लिये मर्यादित मार्ग खोल दिया है। मौलिक आन्दोलनमें केवल वे ही लोग स्वयं सेवक हो सकते थे जो असहयोग कार्यक्रमको पूरी तरहसे निबाह सकते थे। पर अब स्वयं सेवक दलके लिये सहज नियम बना दिये गये हैं। खद्दरका प्रयोग आरम्भमें कुछ कठिनाई उपस्थित कर सकता है पर यदि प्रतिज्ञा बद्ध होनेकी आवश्यकतापर उन्हें जरा भी विश्वास है तो वे उसकी परवा नहीं करेंगे। यदि कोई असहयोगके कारण जेल हो आता है तो उसके बहुतसे अवगुण दूर हो जाते हैं। इसी तरह यदि कोई वकील जेल हो

आवे तो वह अपने पूर्व गौरवको पुनः प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा एक प्रस्ताव इस विषयका भी पास हुआ है जिसके द्वारा पूर्ण सहयोगी तक विना किसी भेद भावके कांग्रेसकी सहायता कर सकता है। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि वकील लोग अपने योग्यतानुसार उन अनेक तरहके कामोंमें भाग लेंगे जो उनके लिये बिना किसी विघ्न बाधा और आपत्तिके खुले हैं। जिस काममें सभी सहायक हो सकते हैं वहां किसीको उदासीनता दिखलाना उचित नहीं है। असहयोगियोंको उचित है कि वे अपनी सफलतापर फूले न समायँ बल्कि राष्ट्रकी उन्नतिके लिये जहां कहींसे जिस किसी तरहकी सहायता मिले उसे नम्रताके साथ स्वीकार करें। यदि कोई मनुष्य किसी तरहका स्वार्थ त्याग नहीं करता और केवल खादी धारण करके उन वकील तथा अन्य लोगोंका उपहास करता है या उनकी निन्दा करता है जिन्होंने असहयोगके पूर्णकार्यक्रमको स्वीकार न कर भी राष्ट्रकी अनेक तरहसे सहायता की है उसे मैं किसी योग्य नहीं समझता! मातृभूमिकी सेवामें प्रसन्नताके साथ जो कुछ अर्पण किया जाय वह सहर्ष स्वीकृत होना चाहिये।
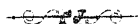
३—स्कूलोंका बहिष्कार

सच्ची शिक्षा

"सच्चा शिक्षित तो वही मनुष्य कहा जा सकता है जो अपने शरीरको अपने वशमें रख सकता हो और जिसका शरीर अपना सौंपा हुआ काम आसानी और सरलतासे कर सकता हो।"

"सच्चा शिक्षित वही है जिसकी बुद्धि शुद्ध हो, जो शान्त हो, जो न्यायदर्शी हो। उसीने सच्ची शिक्षा पाई है जिसका मन कुदरतके कानूनोंका पाबन्द हो, जो इन्द्रियोंको अपने वशमें रख सकता हो, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध हो, नीचता भरेकामोंसे नफरत करता हो, जो दूसरोंको आत्मवत समझता हो।"

"अक्षर-ज्ञानकी हमें मूर्त्ति-पूजा अंधपूजा न करनी चाहिये। वह कोई काम धेनु नहीं है। वह तो अपने स्थानमें तभी शोभा पा सकता है, जब हम अपनी इन्द्रियोंको वश कर सकते हों। जब नीति पर दृढ़ हो; जब हम उसका सदुपयोग कर सकते हों, तभी वह हमारा आभूषण हो सकता है।"

"सबसे पहली बात तो यह है कि हमारे बहुतसे लोग शिक्षाका सच्चा अर्थ ही नहीं समझते। आजकल जिस तरह हम जमीनका अथवा शेअर्सका भाव देखकर उसकी कीमत करने

लग गये हैं। लड़का हमें खूब धन कमा कर दे इसलिये हम पढ़ाना चाहते हैं। पर इस बातकी ओर ध्यान नहीं देते कि सच्चरित्र, सुशील हो। हम तो यह सोचते है 'लड़कियां कहीं कमा कर नहीं खिलावेंगी इसलिये उन्हें पढ़ानेकी जरूरत ही क्या ?' मनुष्यने सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंका अध्ययन भी कर लिया हो तथापि यदि वह आत्माको न पहिचान सके, समस्त वन्धनोंसे मुक्त होने युक्त अपनेको न बना सके तो उसका वह ज्ञान व्यर्थ है।

"जो विद्या हमें मुक्तिसे दूर भगा ले जाती हो वह त्याज्य है, राक्षसी है, अधर्म्म है।"

"शिक्षाको आजीविकाका साधन समझ कर पढ़ना नीचवृत्ति कही जाती है। आजीविकाका साधन तो शरीर है। पाठशाला तो चरित्र संगठनका स्थान है। विद्यार्थियोंको यह पहलेसे ही जान लेना चाहिये कि हमें अपनी आजीविकाको अपने बाहुबलसे हीं प्राप्त करना है।"

"देशी भाषाका अनादर राष्ट्रीय अपघात है।"

"माताका दूध पीनेसे लेकर ही जो संस्कार और मधुर शब्दों द्वारा जो शिक्षा मिलती है उसके और पाठशालाकी शिक्षाके बीच संगत होना चाहिये। परकीय भाषासे वह श्रृंखला टूट जाती है और उस शिक्षासे पुष्ट होकर हम मातृद्रोह करने लग जाते हैं।"

"पिछले साठ सालोंसे हमारा बहुमूल्य समय वस्तु-तत्वोंको ग्रहण करनेके वदले अंग्रेजीभाषाके अपरिचित शब्द और उनके उच्चारणको रटने हीमें नष्ट होता आ रहा है।"

"माता-पितासे हमें जो कुछ शिक्षा प्राप्त होती है उसको आगे बढ़ानेके बदले हम उसे लगभग भूलते ही जाते हैं। इतिहासमें इसका दूसरा उदाहरण ही नहीं मिलता। यह तो राष्ट्रके लिये एक भारी आफत है।"

"सारे संसार भरमें देख आइये आपको यही दिखाई देता कि हरएक राष्ट्रमें बच्चोंको शिक्षा ऐसी ही दी जाती है जिससे राज्यतन्त्र आसानीके साथ चलाया जा सके।"

"जहां राज्यतन्त्र उपकारी होता है वहांकी शिक्षा पद्धति भी वैसी ही होती है। पर जहां शासन-शैली मिश्रित होती है जैसे कि भारतमें, वहांकी शिक्षा-प्रणाली भी बुद्धि-भेद करनेवाली और हानि कर होती है।"

"जो शिक्षा शराबकी आमदनीसे दी जाती है वह तो बालकोंको कभी न दी जानी चाहिये।"

"ऐसी किसको पड़ी है जो अपने आत्म-गौरव और स्वत्वों-का बलिदान देकर ऐसी नाशकारी शिक्षा प्राप्त करें?"

"आज कल तो गुलाम और नौकर ढालनेके लिये शिक्षा दी जाती है। बालकोंको स्वावलम्बी और जवानीमें ही स्वश्रमी बनानेके लिये तो राष्ट्रीय शिक्षा ही देनी चाहिये। इसीलिये हम उन्हें कातने और बुननेकी कला सिखाते है।"

"हाईस्कूल, कालेज, आदि दिखाऊ संस्थाओंमें इस गरीब देशकी सहन शक्तिके बाहर खर्च करनेके बदले यदि सृष्टि सौंदर्य-मय और आरोग्य-वर्धक स्थानोंपर सुशिक्षित, साहसी और

नीतिमान् शिक्षकों द्वारा प्राथमिक शिक्षा बालकोंको दी जानेका प्रबन्ध किया जाय तो मुझे विश्वास है कि हम बहुत महत्व-पूर्ण काम करके दिखा सकते हैं।"

"भारतमें तो प्रत्येक घर विद्यालय नहीं महाविद्यालय है। मातापिता आचार्य्य हैं। इन आचार्य्योंने अपना यह काम छोड़ कर अपना धर्म ही छोड़ दिया है। बाहरी संस्कृत हम पहिचान नहीं सकते। उसके गुण-दोष ठीक ठीक रीतिसे नहीं जाने जा सकते। उसे तो हमने किराये पर लिया है। पर हम किराया कुछ भी नहीं देते! अर्थात् हमने उसे चुरा लिया है। इस चुराई हुई संस्कृतसे भारतका उद्धार कैसे हो सकता है?"

"उपाधियोंके मोहसे परीक्षामें पास करने पर ही हमने आधार रक्खा। इससे प्रजाका बहुत नुकसान हुआ है।"

"विद्यापीठके विद्यार्थियोंकी परीक्षा उनके पुस्तकी ज्ञानसे नहीं, धर्माचरणसे ही होगी।"

स्कूलोंका बहिष्कार

(अगस्त ११, १९२०)

मैं समझता हूं कि यदि हम अपने लड़कोंकी शिक्षाको स्थगित करनेका साहस नहीं करेंगे तो हम युद्धमें विजय प्राप्त नहीं कर सकते। पहली सीढ़ीमें खिताबों और कृपाओंका लौटाया जाना शामिल है। सच तो यह है कि कोई सरकार उस समय तक

कृपायें नहीं दिखाती जबतक कि वह उनसे अधिक ले नहीं लेती। वह सरकार एक बुरी और अपव्ययी सरकार है जो अपनी कृपायें यों ही फेंकती हैं। उस सरकारकी सेवामें जो एक जातिके लोकमत पर स्थिर है, हम अपना जीवन तक एक पदक प्राप्त करनेके लिये प्रदान करते हैं, क्योंकि वह सेवाका चिन्ह है। लेकिन उस अन्यायी सरकारकी जो लोकमतका अपमान करती है, धनवान जागीरें गुलामी और अप्रतिष्ठाके चिन्ह-स्वरूप होती हैं। ऐसा समझकर विना कुछ विचार किये ही स्कूल छोड़ दिये जाने चाहिये।

मेरे लिये सहयोग-त्यागकी सारी स्कीम अन्य बातोंके साथ ही साथ हमारे भावोंकी गहराई और विस्तारकी परीक्षा करनेकी एक ही कसौटी है। क्या हम सच्चे हैं? क्या हम सहन करनेके लिये कटिबद्ध हैं? यह कहा जा रहा है कि टाइटिल-धारियोंसे हम अधिक आशा नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने कभी राष्ट्रीय कार्य्योंमें भाग नहीं लिया और ये सम्मान इतना मूल्य देकर प्राप्त किये गये हैं कि उन्हें वे सुगमतासे नहीं छोड़ सकते। मैं इन आक्षेप करनेवालोंको एक दलील भेंट करता हूं और पूछता हूं कि स्कूलके लड़कोंके माता-पिताओं और कालिजके युवा विद्यार्थियोंके सम्बन्धमें क्या बात है? वे टाइटिल-धारियोंकी भाँति सरकारसे घनिष्ट संबन्ध नहीं रखते, उन्हें इतनी चोट लगी है या नहीं कि वे मदर्सोंका वहिष्कार कर सकें?

परन्तु मेरी दलील है कि स्कूलको खाली कर देनेमें कुछ भी

आत्मत्याग नहीं है। यदि हम इतने निस्सहाय हैं कि हम सरकारसे बिलकुल स्वतन्त्र रहकर अपनी शिक्षाका भी प्रबन्ध नहीं कर सकते तो हम सहयोग-त्यागके लिये विशेष रूपसे अयोग्य हैं। प्रत्येक गांवको अपने लड़कोंकी शिक्षाका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। मैं सरकार द्वारा दी हुई सहायताका आश्रय नहीं लेना चाहता। यदि वास्तवमें जाग्रति है तो शिक्षामें एक दिनकी भी बाधा नहीं पड़नी चाहिये। वे ही स्कूल-मास्टर जो सरकारी-स्कूलोंमें पढ़ा रहे हैं यदि वे अपने पदोंसे स्तीफा दे दें तो राष्ट्रीय स्कूलोंका काम अपने हाथमें ले सकते हैं और हमारे लड़कोंको आवश्यक बातें पढ़ा सकते हैं और अधिकतर लड़कोंको क्लर्क बननेसे भी रोक सकते हैं। मैं चाहता हूं कि इस काममें अलीगढ़-कालिज नेतृत्व ग्रहण करे। हमारे मदर्सोंके खाली होनेसे उत्पन्न हुआ नैतिक प्रभाव बड़ा भारी होगा। मुझे संदेह नहीं कि हिन्दू मा-बाप और विद्यार्थी लोग भी अपने मुसलमान भाइयोंका अनुसरण करनेमें आगा-पीछा न करेंगे।

वास्तवमें इससे बड़ी शिक्षा और क्या हो सकती है कि माता-पिता और विद्यार्थी अक्षर-ज्ञानसे पूर्व धार्मिक भावका ज्ञान प्राप्त करें। इसलिये यदि उन युवकोंको जो स्कूलसे निकाल लिये जायं साहित्य-सम्बन्धी शिक्षाका कोई शीघ्र प्रबन्ध न हो सके तो उस प्रश्नके लिये जिसके कारण उन्हें सरकारी स्कूलसे निकाल लिया गया है, वालण्टियरोंके रूपमें कार्य करनेके योग्य बनाना सबसे अधिक लाभदायक होगा। क्योंकि वकीलोंकी

भांति लड़कोंके विषयमें भी काम छोड़नेसे मेरा यह मतलब नहीं है कि वे बिलकुल आलसी जीवन व्यतीत करें। जो लड़के स्कूल छोड़ेंगे उनसे आशा की जाती है कि वे इस आन्दोलनमें यथाशक्ति अपना भाग लेंगे।

यंग इण्डियाका नोट

भारतीय शिक्षापर भारतसरकार जो व्यय करती है उसके सम्बन्धमें यंग इण्डियामें निम्नलिखित नोट निकला था :—

यदि भारतीय शिक्षाका सारा व्यय सरकार बर्दाश्त करती तो भी हम लोग सरकारी शिक्षाके उसी उत्साहके साथ बहिष्कारकी योजना करते जैसा आज कर रहे हैं। हम यहां पर पाठकोंके सामने कुछ अङ्क उद्धृत कर देना चाहते हैं जिससे उन लोगोंकी आंखें खुल जायं जो लोग कहते हैं कि बिना सरकारी सहायताके शिक्षाका काम निस्पन्न हो ही नहीं सकता:—

नीचे दिया अङ्क १९१८—१९ का है। इस वर्ष भारतकी सम्पूर्ण शिक्षामें (प्रारम्भिक और उच्च) ११ करोड़ २९ लाख रुपया खर्च हुआ था। जिसका ब्यौरा नीचे दिया है:—

सरकारी खजाना	३९२	लाख
स्थानीय फण्ड	१७४	,,
मुनिसिपल फण्ड	४९	,,
फीस	३१९	,,
सार्वजनिक फण्ड	१९५	,,
	१,१२९ लाख	

इस अंकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां शिक्षाके लिये सरकारके जेबसे ३ करोड़ १२ लाख व्यय हुआ, मुनिसिपैलिटी और स्थानीय बोर्डोंने २ करोड़ २३ लाख व्यय किया, वहां जनताने ५ करोड़ १६ अपने जेबसे व्यय किया। यहां पर यह भी लिख देना उचित होगा कि इसका अधिकांश भाग बहुव्य-यितामें चला जाता है।

यदि उच्च शिक्षाका विवरण दें तो और भी गुल खिलता है। उच्च शिक्षा ही देशके लिये उपकारी है। इस मद्में ३ करोड़ ६७ लाख व्यय किया गया था। इसका ब्यौरा निम्न-लिखित है :— इस रकमका चौथाई सरकारी खजानेसे, चौथाई मुनिसिपैलिटियोंसे और बाकी प्रजा द्वारा दिया गया था।

इन अङ्कोंसे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षाका अधिकांश व्यय हम लोगोंके ही जेबसे निकाला जाता है और फिर भी हमें इस बातका भय बना रहता है कि विना सरकारकी सहायताके हमारी शिक्षा साध्य नहीं है। इसलिये यदि हम लोग यह भ्रम अपने चित्तसे निकाल दें, व्यर्थके व्ययको घटा दें तो हम अपनी शिक्षाका प्रबन्ध आपही आप मजेमें कर सकते हैं और सरकारी देखरेखसे उसे अलग कर सकते हैं। इस तरह अपने पैरोंपर खड़े होकर हम उसमें आवश्यक सुधार भी कर सकते हैं और उसे अपने लिये पूर्ण उपयोगी बना सकते हैं।

स्कूल और कालेजोंका मोह

—: :—

(सितम्बर २९, १९२०)

सरकारी स्कूल तथा कालेजोंके वहिष्कारके विरोधमें आजकल घोर आन्दोलन उठा हुआ है। इसके विरोधके लिये सभायें की जा रही हैं और समाचार पत्रोंके कालमके कालम रङ्गे रहते हैं। कितने लोगोंने तो यहां तक कह डाला है कि यह प्रस्ताव खतरनाक है, हानिकर है, देशके हितपर चोट पहुंचानेवाला है। पण्डित मदन मोहन मालवीय इसके सबसे प्रबल शत्रुओंमेंसे है।

मैं कई दिनसे लगातार इस पर विचार करता आरहा था। मैंने अपनी भूल ढूंढ़नेकी बहुत चेष्टा की। पर जितना ही विचार मैं इस प्रश्नपर करता हूं मेरा विश्वास उतनाही दृढ़ होता जा रहा हैं कि वर्तमान सरकारकी सहायतासे या उसके अधीन किसी तरहकी शिक्षा ग्रहण करना पाप है चाहे वह कितना भी उपयोगी क्यों न हो। जिस तरह विष मिला हुआ दूध नहीं ग्रहण किया जा सकआ उसी तरह इसे भी नहीं ग्रहण किया जा सकता।

कभी कभी मेरे मनमें यह प्रश्न उठने लगता है कि क्या कारण है कि कुछ लोग तो इस प्रश्नकी उपयोगिताको स्पष्ट

तौरसे देखते हैं और कुछ लाग इसमें बुराई देखते हैं और इसमें दोष निकालते हैं। बहुत विचारके बाद मैं इस परिणामपर पहुंचा हूं कि जो लोग इसका उपयोगिताको स्वीकार करते हैं वे इस बातको भलीभांति समझ गये हैं कि यह सरकार केवलमात्र बुराईका पुतला है और जो लोग इसे बुरा समझते हैं उनकी दृष्टिमें यह सरकार अभी उतना नहीं गिर गड़ी है। अर्थात् शिक्षाके वहिष्कारके विरोधी खिलाफत तथा पञ्जाबके प्रश्नोंपर उतना ओर नहीं देते और न उनके साथ किये गये अन्यायोंको उतना विषम समझते हैं। अन्य लोगोंके साथ ये लोग इस प्रश्नको इस दृष्टिसे नहीं देख रहे हैं कि वर्तमान सरकारकी सभी कार्रवाइयां राष्ट्रीय विकासके लिये बाधा खड़ी कर रही हैं। मैं यह समझता हूं कि इस तरहकी बातें लिख डालना सहज और साधारण बात नहीं है यह बात विचारके बाहर हैं कि पण्डित मालवीय और मिस्टर शास्त्री इन अन्यायों और अत्याचारोंको उतना ही भीषण न समझें जितना मैं समझता हूं। फिर भी मेरे लिखनेका यही तात्पर्य है। इस बातका मुझे दृढ़ विश्वास है कि जिस स्कूलमें विकासके स्थानपर पतनकी सम्भावना ही अधिक है वहां वे अपनी सन्ततिको पढ़नेके लिये कभी भी नहीं भेजेंगे। मुझे इस बातका भी पक्का भरोसा है कि वे अपनी सन्ततिको ऐसे स्कूलोंमें भी न भेजेंगे जिसकी देखरेख वह डाकू या लुटेरा करता है जिसने उन्हींकी सम्पत्ति लूटकर शिक्षाके काममें लगाया है। मैं प्रत्यक्ष देखता

हूं कि सरकारी स्कूलोंमें हमारे बालकोंका पतन हो रहा है। मैं यह भी देखता हूं कि इन स्कूलों और कालेजोंकी देखरेख उस सरकारके हाथमें है जिसने देशकी इज्जत उतारनेमें कोई कभी नहीं रख छोड़ी है। इसलिये राष्ट्रको उचित है कि वह अपनी सन्तातिको ऐसे स्कूलोंसे उठा ले। यह सम्भव है कि इन स्कूलोंसे थोड़ा बहुत लाभ हो सकता है। कुछ ऐसे हैं जो इनमें पढ़कर ऊपर उठ सके हैं। पर केवल कुछके लिये राष्ट्रीय अपमानको वर्दाश्त करना उचित नहीं। राष्ट्रके सैकड़ों नेता इस प्रत्यक्ष बातको भी नहीं देख रहे हैं कि सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलोंकी आजकल यही अवस्था है।

कुछ लोगोंका कहना है कि खिलाफत और पंजाबके प्रश्नोंके उठनेके पहले भी तो इन स्कूलों और कालेजोंकी यही दशा थी और इन घटनाओंके पहले तो हम इनके साथ पूर्ण सहयोग करते आये और इन्हें अपनाते रहे। यह मैं स्वीकार करता हूं कि स्कूलों और कालेजोंकी दशा पहलेसे खराब नहीं है पर पंजाबकी दुर्घटना और खिलाफतके अन्यायने इन स्कूलों और कालेजोंकी ओरसे मेरे चित्तमें विचित्र क्रान्ति उपस्थित कर दी। जबतक मैं इसकी आन्तरिक हीनताको नहीं समझता था मैं इस प्रथाको स्वीकार करता गया और इसका विरोध नहीं किया। और यही कारण है कि मैं यह कहता हूं कि जो लोग सरकारी स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारके पक्षपाती नहीं है बल्कि इसका विरोध करते हैं और हानिकर बतलाते हैं वे

खिलाफत और पंजाबके साथ किये गये अन्यायों और अत्याचारोंको उतना भीषण नहीं समझते जितना मैं समझता हूं।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि जिन बालक बालिकओंने पंजाब और खिलाफतके अत्याचारोंका मर्म समझा है, जिनके हृदयमें यह बात समा गई है कि पंजाबके अत्याचार और खिलाफतके अन्याय राष्ट्रीय अपमानके लिये प्रधान कारण हैं, उन्हें विना किसी सोच विचारके सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और कालेजोंको फौरन छोड़ देना चाहिये। इस तरह सरकारी स्कूलों और कालेजोंके वहिष्कारसे उनके आचरणपर प्रभाव पड़ेगा, उनका चरित्र बल जितना बलवान होगा उसके मुकाबिलेमें किताबी शिक्षासे जो हानि होगी वह कुछ नहीं है। जिस दिन हमारे देशके बालक और बालिकायें इस तरह सरकारी स्कूलों और कालेजोंका वहिष्कार कर देंगे वह दिन असहयोगके इतिहासमें उज्वल दिन होगा। वह सुनहले अक्षरोंमें लिखा जायगा। हमलोग अपने ध्येयकी ओर बहुत आगे बढ़ जायंगे। उसी दिनसे राष्ट्रीय जीवनमें एक तरहकी क्रान्ति उपस्थित हो जायगी। उसी दिन हमारे हृदयसे स्कूलों और कालेजोंका मोह छूट जायगा। क्या सरकारकी सलाह, सहायता या रक्षा विना हम अपनी शिक्षाके सम्भालने योग्य नहीं रहे। यदि हम यदि हम आज सरकारी स्कूलों और कालेजोंके वहिष्कारके लिये तैयार हो जाते हैं तो हमारी योग्यता आपसे आप साबित हो जाती है कि अनेक कठिनाईयोंके होते हुए भी हम अपनी शिक्षाकी आप योजना कर सकते हैं।

अलीगढ़

(अक्तूबर २७, १९२०)

अलीगढ़ कालेज पुराना विद्यापीठ है। यह प्राय: ४५ वर्षसे शिक्षा देता आया है। इसकी परम्परा भी अतुलनीय थी। इसका भूत इतिहास भी उज्वल है। इस्लाम संस्कृतिका यह सबसे बड़ा भारतीय केन्द्र है। शौकत अली और मुहम्मद अली इसीके रत्न हैं।

पर आज मैं उसके नाशके लिये तुला हूं। इसका क्या कारण है? कुछ मुसलमानोंका ख्याल है कि अलीगढ़ कालेजकी भलाई-की ओटमें मैं उसका बुरा चाह रहा हूं। पर इसके साथ ही साथ वे इस बातको भूल जाते हैं कि यदि मैं एक तरफ अली-गढ़के ट्रस्टियोंसे जिस बातकी प्रार्थना कर रहा हूं दूसरी ओर मालवीयजीसे भी मैं उसी बातकी प्रार्थना कर रहा हूं जिस तरह मैंने अलीगढ़के छात्रोंसे नम्र निवेदन किया है उसी तरह मैं उसके छात्रोंसे भी नम्रनिवेदन करने जा रहा हूं। खालसा कालेजमें भी मैंने यही किया था। सिक्ख संस्कृतिकी एकमात्र संस्था खालसा कालेज है।

आज मैं इसीपर तुला हूं कि इन तीनों शिक्षालयोंका नाश करके मैं इनके स्थानपर सच्ची शिक्षा देनेवाला विद्यापीठ स्थापित करूं।

मैं इस बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं हूं कि किसी भी प्रकार ये विद्यालय अपनी जातिकी संस्कृतिके पूर्ण प्रतिनिधि हैं। यदि अंग्रेजोंके हाथसे आज इस्लाम धर्मपर भीषण प्रहार हो रहा है तो हिन्दू धर्म और सिक्ख उससे बरी नहीं हैं। मैंने अलीगढ़ कालेजके एक प्रोफेसरसे पूछा कि यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो क्या आप भारतके लिये पूर्णस्वाधीनताकी शिक्षा देंगे। अथवा इसी अवस्थामें आप गवर्नरको अधिकारीके बतौर स्वागत करनेसे इनकार कर देंगे। उन्होंने साफ साफ कह दिया कि यह सम्भव नहीं है। तोभी मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि भारतके अधिकांश छात्रोंके हृदयमें आज ब्रिटिश शासनके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई। वे उनसे आजिज़ आ गये हैं। मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि ऐसी अवस्थामें अपने लड़कोंको इन स्कूलोंमें रखना उनके विश्वासपर चोट पहुंचाना है और अपनी संस्कृतिकी हत्या करना है। इस तरहकी संकुचित हृदयतासे राष्ट्रका निर्माण नहीं हो सकता।

ब्रिटिश शासनप्रणालीकी नीतिका भली भांति समझ लेनेके बाद क्या उन हाथोंसे एक पैसा भी बतौर सहायताके लेना मानुषिक कहलावेगा—जो हाथ जलियांवाला बागके बेगुनाहोंकी हत्यासे रंगा है। यह तो उसीके बराबर है कि जिस डाकूने हमारी सम्पत्ति हड़प ली है हम उसीसे बख्शीस लें। इस सरकारने हमारी मर्यादा लूटी है और हमारे एक धर्म (इस्लाम-धर्म) को संकटमें डाल दिया है। ऐसी अवस्थामें इस सरकारके

हाथ, इसकी सहायतासे अथवा इसकी देखरेखमें शिक्षा लेना हमारे लिये घोर पाप समझना चाहिये ।

इसलिये बिना किसी विचारके मैं इस बातकी सलाह देता हूं कि इन विद्यालयोंका तुरत नाश कर देना चाहिये चाहे इससे हमें कितनी भी क्षति क्यों न उठानी पड़े । यदि ट्रस्टी, शिक्षक अभिभावक और छात्र एक मत होकर सर्वतोरूपसे बहिष्कार करें तो इनके तोड़नेमें भी तुरत लाभ हो सकता है। किसी तरहकी हानि नहीं हो सकती ।

मैं केवल व्यवस्था बदलनेकी प्रेरणा कर रहा हूं । मैं इस विद्यालयकी जड़ नहीं खोदना चाहता । जिस तरहसे हम लोग पुराने कपड़ेको और उसकी चालको बराबर छोड़ते जाते हैं और नित नये पहनते जाते हैं उसी तरह हमें पुराने विद्यालयोंका त्याग कर देना चाहिये—जिनकी उपयोगिता हमारी दृष्टिमें घट गई है—और उनके स्थानपर नये विद्यालयोंकी स्थापना करनी चाहिये जिन्हें हम अधिक उपयोगी समझते हैं। जिस समय राष्ट्र उन्नतिके पथमें आगे बढ़ रहा है तो वे शिक्षालय जो राष्ट्रके युवकोंके निर्माणके जिम्मेदार हैं इस तरह पीछे कैसे पड़े रह सकते हैं। गुजरातके अनेक स्कूलोंने सरकारी जुएको तोड़ फेंका है । उनकी अवस्था किसी भी तरह खराब नहीं है। बल्कि उनकी दशा पहलेसे अच्छी मालूम होती है। यदि ट्रस्टी और प्रिंसिपल अपने ऊपर भार ले लें तो वे लड़कोंको पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ सच्ची शिक्षा दे सकते हैं ।

जो लोग काम नहीं करना चाहते उन्हींके मार्गमें आर्थिक कठिनाई टांग अड़ाती है। यदि ट्रस्टी लोग विश्वासघात करें या राष्ट्र ऐसे स्कूलोंका समुचित आदर नहीं करता तो वे अवश्य टूट जायंगे। असहयोगका कार्यक्रम इसी सिद्धान्तके आधार पर स्थित है कि राष्ट्र वर्तमान सरकारसे परेशान है, और हिंसाकी प्रवृति दिखाये बिना ही उसको बदल देना चाहती है। इस समय तक जो कुछ अनुभव हो सका है उससे प्रत्यक्ष है कि राष्ट्र परिवर्तनके लिये उतावला हो रहा है। यदि इस काममें देर हुई या असफलता मिली तो उसका दोष कार्यकर्ताओंके सिर मढ़ा जायगा।

ट्रस्टियोंको पत्र

—:०:—

(अक्तूबर २७, १९२०)

[अक्टूबर १९२० में म० गान्धीने अलीगढ़के एम० ए० ओ० कालेजके ट्रस्टियोंको जो पत्र लिखा था उसका अनुवाद इस प्रकार है :—]

मुझे ज्ञात है कि आप इस्लाम तथा भारतवर्षसे सम्बन्ध रखनेवाले सबसे मुख्य प्रश्नके सम्बन्धमें अपना निर्णय प्रकाशित करनेवाले हैं। मैंने सुना है कि आपने मीटिङ्गके समय गव-

नमेंट तथा पुलिसकी सहायता माँगा है। यदि यह अफवाह सत्य है तो आप बड़ी भूल कर रहे हैं। ऐसे घरेलू मामलेमें गवर्नमेंटके हस्तक्षेप तथा सरकारी पुलिसकी सहायताकी आपको जरूरत न पड़ेगी। मैं पाशविक युद्ध करना नहीं चाहता, न अली भाई ही ऐसा करना चाहते हैं। हम ऐसे युद्धमें लगे हैं जिसमें जन-सधारणकी सम्मति ही हमारी एकमात्र शक्ति है। यदि जनता हमारा साथ न देगी तो हम अपनी हार मान लेंगे। इस समय आपका बहुमत ही जन-साधारणकी सम्मतिकी पहली कसौटी होगी। इसलिये यदि पूर्ण वाद-विवादके बाद आप बहुमत द्वारा निश्चय करेंगे कि स्कूल तथा कालेजके लड़के विद्यार्थी तथा बोर्डरकी हैसियतसे स्कूल और कालेज छोड़ दें और यदि लड़के इस माँग पर डटे रहेंगे कि स्कूल और कालेज गवर्नमेंटसे सम्बन्ध तोड़ लें तो वे शान्ति-पूर्वक स्कूल कालेजसे हटा लिये जायँगे। यदि ऐसा होगा तो मेरा प्रस्ताव है कि अलीगढ़में उन्हें शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाय और यदि यहां प्रबन्ध न हो सके तो कहीं दूसरी जगह उन्हें शिक्षा दी जाय। हम अधिक समय तक उनकी शिक्षा बन्द करना नहीं चाहते, पर हमारी यह इच्छा है कि उनकी शिक्षामें इस्लामकी व्यवस्था तथा भारतके गौरवको तिलाञ्जलि न दी जाय। मेरी समझमें जिस गवर्नमेंटने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे पवित्र खिलाफतको नष्ट करनेका प्रयत्न किया है तथा जजीरत-उल-अरबके शास-

नमे हस्तक्षेप किया है उस गवर्नमेण्टको सहायता करना तथा उससे सहायता लेना उलमाओंके मतके अनुसार खुदा पर यकीन रखनेवाले किसी मुसलमानका फर्ज नहीं। मैं जानता हूं और आप भी जानते है कि गवर्नमेण्टने किस भाँति जान-बूझ कर भारतके गौरवको पद-दलित किया है। इस लिये जनताने गवर्नमेन्टसे असहयोग करना आरम्भ कर दिया है। इस लिये मेरा मत है कि आप कमसे कम गवर्नमेण्टसे विशेष सहायता न लें। जिस बड़ी संस्थाके आप ट्रस्टी हैं उसको यूनिवर्सिटीसे अलग करा लें और मुस्लिम युनिवर्सिटीका चार्टर स्वीकार न करें।

यदि आप इस्लाम और भारतकी पुकार न सुनेंगे तो अलीगढ़के विद्यार्थी कमसे कम इतना कर सकते हैं कि वे उस संस्थासे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखेंगे जो ऐसी गवर्नमेण्टकी संरक्षकता स्वीकार करती है जिसने भारत और इस्लामकी भक्ति पानेका अधिकार बिलकुल खो दिया है और वे ऐसा अलीगढ़ उत्पन्न करेंगे जो वर्तमान अलीगढ़से कहीं विशेष अच्छा और पवित्र होगा और अपने जन्मदाताकी आन्तरिक इच्छाओंकी पूर्ति करेगा। मैं नहीं समझ सकता कि परलोकवासी सर सैयद अहमदने कभी अपने कालेजको गवर्नमेण्टके अधिकार और प्रवाहमें रखना विचारा था। मैंने अलीगढ़ कालेजको गवर्नमेंटसे सम्बन्ध तोड़ने तथा सरकारी सहायता न लेनेकी सबसे पहले चर्चा की थी और मैं चहता

हूं कि मैं आपके वाद-विवादमें साथ दे सकूं। इस लिये मैं अपनी क्षुद्र-सेवा आपको समर्पण करता हूं। यदि आप मुझे आज्ञा देंगे तो मैं सहर्ष आपकी मीटिङ्गमें उपस्थित होऊँगा। मैं बम्बईमें हूँ और आपके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। पर आप मीटिङ्गमें मेरी उपस्थिति चाहते हों या नहीं मैं आशा करता हूँ कि आप ऐसे घरेलू मामलेमें गवर्नमेंटसे हस्तक्षेप करनेके लिये न कहेंगे। यह आन्दोलन शान्ति-पूर्वक चल सके इस लिये मैं आशा करता हूं कि गवर्नमेंट हमारी स्वतन्त्रतामें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेगी। हम बहुत वैध रीतिसे प्रचारका काम करनेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। हम गवर्नमेंटकी शैतानी आदत लोगोंको दिखा देना बिलकुल वैध, नियमाकूल और सम्मान-प्रद समझते हैं और पाशविक बलको छोड़ जनताके मस्तिष्क और हृदयमें इस विचारको स्थान दिलाना चाहते हैं कि वह अपनी इच्छाको शब्दोंमें न प्रकाश कर कार्यमें परिणत करे और यथासम्भव गवर्नमेंटसे अपना सारा सम्बन्ध तोड़ ले। यदि गवर्नमेंट विचार-स्वातन्त्रय और निरुपद्रव कार्य दबाना चाहे तो मैं आशा करता हूं कि वह हमें नजरबन्द करनेकी आज्ञा न देगी। हमारी हार्दिक इच्छा अपने सम्बन्धमें भी सरकारसे सत्यग्रहण होने पर भी जबतक गवर्नमेंट हमारी गतिको बल-पूर्वक न रोकेगी तबतक नजरबन्दकी आज्ञा हमारे लिये असम्भव होगी।

अभिभावकोंके नाम

(नवम्बर ३, १९२०)

महाशय, मुझे भली भांति विदित है कि आजकल जिस मार्गपर मैं चल रहा हूं उससे मेरे कतिपय मित्र चकित हो रहे हैं विशेष कर स्कूलों और कालेजोंके वहिष्कारकी योजनासे तो वे घबरासे गये हैं। मुझे उनके विस्मय पर आश्चर्य नहीं होता। जिस सरकारके अधीन हम लोग रहते हैं उसके सम्बन्धमें मेरे मतमें घोर परिवर्तन आ गया है। मेरी समझमें इसका शासन उतना ही शैतानी हो गया है जितना कि धर्म ग्रन्थोंके अनुसार रावणका शासन था। पर इस शासन प्रणालीके अन्त कर देनेकी आवश्यकताका भाव जितना मेरे दिलमें जमा है उतना मेरे इन मित्रोंके दिलमें नहीं। या तो इस शासन प्रणालीमें एक दमसे परिवर्तन किया जाय या सरकार अपने पापोंके लिये पश्चात्ताप करे यही दो मार्ग खुला है।

आपके जो लड़के अलीगढ़में शिक्षा पा रहे हैं उनका मुझे भी ख्याल है। आपको इस बातसे इतमीनान रखना चाहिये कि मैं किसी भी तरह आपके दिलको चोट नहीं पहुंचाना चाहता। मेरे निजके चार पुत्र हैं जिनकी शिक्षा दीक्षा मैंने अपने मनके अनुसार दी है। पिता माता और गुरुकी आज्ञा मानना यह मेरे जीवनका प्रधान लक्ष्य रहा है। माता पिताके कर्तव्यको मैं

अच्छी तरह समझता हूं पर परमात्माके कर्तव्यको मैं सबसे प्रधान मानता हूं। मेरी समझमें इस देशमें वह समय आ गया है जब प्रत्येक युवा युवतीको इस बातका निर्णय करना होगा कि वह किसका कहना माने। ईश्वरकी आज्ञाका पालन करे या अन्य लोगोंको। अपने देशके नवयुवकोंके मानसिक संगठनका मैं भी पूरा परिचय पा जाना चाहता हूं। जहांतक मैं जानता हू अपनी उच्च शिक्षाका निर्णय इस देशके नव-युवकोंके ही हाथमें है। कहीं कहीं मैंने देखा है कि लड़के उच्च शिक्षाके लिये इतने पागल हो जाते हैं कि उनके अभिभावकोंको उन्हें उससे हटाना भी कठिन हो जाता है। यदि मैं उन लड़कोंसे कह रहा हूं कि आप लोग अपने मा बापकी बातें न सुनिये और एकदमसे सरकारी स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दीजिये तो मैं आपको किसी तरहका कष्ट नहीं दे रहा हूं। आपको यह सुनकर चकित नहीं होना चाहिये कि आजतक मेरी प्रेरणाके अनुसार जितने लड़के स्कूल या कालेज छोड़कर बाहर आये उनके अभिभावकोंने विरोध सूचक एक शब्द भी मेरे पास नहीं लिखा। केवल एक सरकारी कर्मचारीने इस बातकी शिकायत की थी कि आपकी शिक्षासे मेरा लड़का कालेजकी पढ़ाई छोड़कर घर बैठ गया। उसमें भी उन्होंने केवल मात्र इतना ही लिखा है कि इस तरह स्कूल छोड़ते समय उसे (लड़केको) कमसेकम एकबार मुझसे पूछ तो लेना चाहिये था पर उसने मेरी परवा न की। पर मेरा यह आदेश नहीं है। मैं तो लड़कोंसे कहता हूं

कि तुम अपने अपने अभिभावकोंसे पूछ लो। यदि वे ऐसे न मानें तो इस प्रश्नपर विवाद करके उनको ठीक मार्गपर लाओ और तब नहीं स्कूलों या कालेजोंको खाली कर दो।

अनेक जलसोंमें मैंने अभिभावकोंसे भी इसी तरहकी प्रार्थना की है कि आप मिहरबानी करके अपने बालकोंको सरकारी स्कूलोंमेंसे हटा लीजिये। मैं प्रसन्नताके साथ कह सकता हूं कि एक भी अभिभावक ऐसा नहीं था जिसने मेरी इस बात पर किसी भी तरहका एतराज उठाया हो। उन लोगोंने बड़ी प्रसन्नता और एकाके साथ असहयोगके पूर्ण कार्यक्रमको स्वीकार किया है जिसमें शिक्षालयोंका वहिष्कार भी शामिल था। इससे मुझे पूरी आशा करनी चाहिये कि अलीगढ़ कालेजमें पढ़नेवाले छात्रोंके अभिभाव भी इस बातको भली भांति समझ गये हैं कि जिस सरकारने मुसलमानोंके साथ इस तरहसे विश्वासघात किया है और पंजाबके अत्याचारों द्वारा राष्ट्रकी मर्यादा भंग करनेका यत्न किया है उस सरकारकी सहायतासे चलनेवाले स्कूलों और कालेजोंसे लड़कोंको हटा लेना नितान्त आवश्यक है।

मुझे विश्वास है कि आप लोग इतनी बात तो अवश्य समझते होंगे कि मुझे भी इस बातकी सदा चिन्ता बनी रहती है कि हमारे बालकोंकी शिक्षामें किसी भी तरहसे असावधानी न हो। पर इस बातकी भी मुझे बड़ी चिन्ता रहती है कि उनकी शिक्षा परम पवित्र हो। शिक्षा मिलनेका जरिया पवित्र हो।

जिस सरकारसे हम हृदयसे घृणा करते हैं उसकी सहायताकी अपेक्षा होना क्या हमारे लिये लज्जा और हीनताकी बात नहीं है ? मेरी समझमें तो इस अवस्थामें इस तरहकी सहायता लेना अपमान जनक है ।

क्या आप यह नहीं चाहते कि आपके बालकोंकी शिक्षा स्वतन्त्र वायुमण्डलमें हो ? मान लिया कि वर्तमान सरकारी विद्यालयोंकी तरह हम लोग विशाल भवन नहीं बनवा सकेंगे पर क्या इस तरहकी शिक्षा झोपड़ियोंमें भी अभिप्रेत नहीं है ! क्या हम लोग यह नहीं चाहते कि शिक्षक समुदाय स्वतन्त्र हों और बालकोंके हृदयमें स्वतन्त्रताके परिमाणु भर दें । मैं चाहता हूं कि आप इस बातको भली भांति समझ जायं कि हमारे देशका भविष्य इन्हीं बालकोंके हाथमें है । हम लोग इसके लिये कुछ नहीं कर सकते । क्या हम लोग उन्हें उस ढंगसे मुक्त नहीं कर देंगे जिसके कारण हम लोगोंको पेटके बल रेंगने पड़े हैं । हम लोग इतने दुर्बल हैं इसलिये न तो हममें साहस है और न शक्ति है कि हम इस जुऐको तोड़ फेंकें । पर क्या यह हम लोगोंके लिये उचित नहीं है कि इस पापसे अपनी सन्ततिको बचावें । उन्हें इसी गर्तमें न छोड़ जायं ।

यदि उन्हें आज स्वतन्त्र बालक और स्वतन्त्र वालिकाकी हैसियतसे शिक्षा दी जाय तो उनका कुछ भी नुकसान नहीं है । हमारे बालकोंको सरकारी डिग्रियोंकी जरा भी आवश्यकता नहीं है । यदि हम डिग्रियोंके प्रलोभनको लड़कोंके दिमागमेंसे

निकाल दें तो हमारी शिक्षाके व्ययका भार भी घट जाता है। यदि समूचा देश एक सप्ताह भी स्वार्थत्याग करनेको तैयार हो जाय तो साल भरकी पढ़ाईका खर्च निकल आवेगा। पर इसके लिये हमें एक सप्ताहका भी स्वार्थत्याग नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि हम हिन्दू और मुसलमानोंकी धर्म संस्थायें ही इस कामको मजेमें उठा ले सकती हैं। इस समय जो कुछ प्रयास किया जा रहा है वह प्रयास किसी नई बातके लिये नहीं किया जा रहा है बल्कि जो बातें किसी समय हममें थी उन्हींकी पुनः प्राप्तिकी चेष्टा की जा रही है और साथ ही अपनी मर्यादा तथा धर्मकी रक्षाकी व्यवस्था की जा रही है।

नवयुवकोंका हितैषी—
मोहनदास कर्मचन्द गांधी

बंगालके नवयुवक

——:※⊙※:——

(जनवरी १९, १९२१)

नवजवानो, मैंने अभी समाचार पत्रोंमें पढ़ा है कि माताकी पुकार सुनकर आपलोगोंने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। इस तरहसे आपने अपना और अपने देश (बंगाल) का मुंह उज्वल कर दिया है। मैंने इससे भी अधिककी आशा की थी क्योंकि आपसे इससे कमकी आशा ही क्या की जा सकती

थी। बंगालमें सभी गुण मौजूद हैं। बुद्धि बलमें वह सबसे चढ़ा बढ़ा है, उदारता उसकी विख्यात है आत्मबल भी उसके मुकाबिले का कहीं अन्यत्र नहीं। भारतवर्षमें दूरदर्शिता, बिचार और धारणा, आशा और विश्वास आपमें सबसे अधिक है। भीरुताका जो दोष हम लोगोंके सिरपर मढ़ा जाता है उसे आपने अनेक बार झूठा प्रमाणित किया है। इसलिये यही उचित था कि पहलेकी भांति इस समय भी बंगाल ही सबसे आगे खड़ा हो और सबको मार्ग दिखलावे।

आप लोगोंने पैर बढ़ाया है। अब किसी भी अवस्थामें पीछे कदम न हटाइयेगा। सोचने विचारनेके लिये भी आपको पर्याप्त समय मिल गया था। आपने अच्छी तरह सोच विचार-कर ही इस तरफ कदम बढ़ाया होगा। जिस कांग्रेसने देशको आत्मशुद्धि, आत्मत्याग, साहस और आशाका सन्देश दिया था उस कांग्रेसका समारोह आपके ही घरमें हुआ था। आपनेही उसे निमन्त्रित किया था। उस घोषणाको नागपूर कांग्रेसने साफ किया, बढ़ाया और उसका समर्थन किया। जिस समय यह सन्देश देशके सामने रखा गया था उस समय इसके प्रति-लोगोंके हृदयमें अनेक तरहकी आशंकायें उठ रही थीं, परस्पर मतभेद था पर ६ मासमें ही हर तरहका अविश्वास और मतभेद हट गया। नागपूरमें एकमत होकर परम प्रसन्नताके साथ लोगोंने इसे स्वीकार किया। उस समय आपके हाथमें था कि आप उसे अस्वीकार करते या स्वीकार करनेमें आगा पीछा करते।

मेरी समझमें आपने उत्तम मार्गका ही अनुसरण किया है यद्यपि सांसारी ख्यालसे कम सुरक्षित मार्ग है। अब यदि आप इसमें से निकल कर अलग हो जाना चाहें तो इसमें आपकी भी अप्रतिष्ठा है और उस धर्मपर भी आघात पहुंचनेकी सम्भावना है।

पर वर्तमान शासन प्रणाली तथा पश्चिमी शिक्षाके कारण हमारी जो खराबी हो रही है उसके सामने हमें इस प्रश्नपर विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्या यह सम्भव है कि अरबवालोंकी शिक्षाका प्रबन्ध तो उनके हाथमें रहे जो उसे दास बनाकर रखना चाहते हैं और फिर भी आप कह सकते हैं कि अरबवाले स्वतन्त्र हैं। यदि कोई उनसे उन स्कूलोंमें आकर पढ़नेके लिये कहे जिनकी स्थापना उनके दुश्मनोंने की है तो वे उस व्यक्तिके ऊपर अवश्य हंसेंगे। क्या हमारी अवस्था इससे भिन्न है? हमारी समझमें तो हमारे लिये और दृढ़ होनेकी आवश्यकता है, क्योंकि हम लोग इस सरकारको बुरा कहकर इसके नाश या सुधारके लिये तुले हैं।

यदि इस देशका एक वर्ग भी आत्मत्याग करनेके लिये तथा यत्न करनेके लिये तैयार नहीं है तो हमें स्वराज्य मिलना कठिन काम है। सरकार केवल शाब्दिक तर्कके सामने हार माननेवाली नहीं है। इसके सामने सिर्फ बलवानों और सच्चे काम करनेवालोंका ही तर्क चल सकता है।

तलवारकी बहादुरी वे भलीभांति जानते हैं। पर उन्होंने इसका प्रबन्ध कर लिया है। यदि आज हम उनके खिलाफ

इसका प्रयोग करें तो कोई असर नहीं हो सकता। कितने ही लोग यह चाहेंगे कि हम लोग हिंसाके लिये तुल जायं। पर ये लोग (अंग्रेज) हिंसाका मुकाबिला करने और उसके दबानेमें अद्वितीय हैं। इसीलिये हम लोगोंने यह युक्ति निकाली है कि अहिंसा शस्त्रके प्रयोगसे उनके हिंसाशस्त्रको बेकार कर दें। असहयोग आन्दोलनका आधारयन्त्र अहिंसा है। इसलिये जिन लोगोंके साथ आपका मतभेद हो उनके साथ व्यवहार करनेमें आपको जल्दीबाजी नहीं करना चाहिये। असहिष्णुता भी एक तरहकी हिंसा है। इसलिये उसका भी प्रयोग हमें नहीं करना चाहिये। प्रजाशासनमें अहिंसात्मक असहयोग क्रियात्मक शिक्षा है। घोरसे घोर उत्तेजना दिये जानेपर भी यदि हम अपनेको सम्हाल सके, हिंसाकी प्रवृत्ति चित्तमें नहीं दिखलाई तो हमारी विजय उसी क्षण निश्चित है, क्योंकि पूर्णतया असहयोग तो हम उसी अवस्थामें कर सकते हैं।

जिस बातका मैंने अभी उल्लेख किया है उससे आपको घबराना नहीं चाहिये। मानवसमाजका उत्थान और पतन किसी निर्दिष्ट गतिके अनुसार नहीं होता। एक दिनमें, एक क्षणमें वे बिलाये हैं और उठे हैं। क्या यह असम्भव बात है कि यदि आज ३३ करोड़ भारतवासी अपनी शक्तिको पहचान लें तो बिना हिंसाके वे अपना हित साध सकते हैं। आज तक हम राष्ट्रीयताके सच्चे मर्मको नहीं समझ रहे थे और न उसके समझनेकी चेष्टा की थी। यही कारण था कि शासकवर्ग

हमें परस्पर लड़ाकर अपना मतलब गांठ रहे थे। अब हम लोग वैसा नहीं करेंगे। इस देशके स्वामी हम हैं न कि वे।

असहयोग प्रथम प्रहार उन्हीं लोगोंके ऊपर करता है जिनको अपने चंगुलमें फंसाकर सरकार नचाया करती है और जो लोग इन विद्यार्थियोंकी भांति जान या अनजानमें इस तरह फंस गये हैं। यदि आप ध्यानपूर्वक विचार करें तो आपको विदित होगा कि जो बात आप प्राप्त करनेके लिये जा रहे हैं इसके लिये आपको जो त्याग करना होगा वह बहुत अधिक नहीं है, क्योंकि वह अनेक व्यक्तियोंमें बँटा है। आपको किस तरहका आत्मत्याग करना है? जबतक स्वराज्य न मिल जाय (अर्थात् कमसे कम एक वर्षतक) अपना पढ़ना लिखना आपको बन्द कर देना होगा। यदि इस देशके सारे विद्यार्थी मेरी बातको समझ कर मेरा मत स्वीकार कर लें तो मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि उन्हें एक वर्षके लिये भी पढ़ना लिखना नहीं छोड़ना पड़ेगा।

पढ़ाई स्थगितकर आप इस वर्ष ऐसा यत्न कीजिये जिससे स्वराज्य मिलनेमें सुविधा हो। मैं अपनी तरफसे आपसे कहूंगा कि आप चर्खा चलाना शुरु कर दीजिये, क्योंकि भारतवर्षका आर्थिक उद्धार इसीपर निर्भर करता है।

पर आप यह न करके उस कालेजमें जाकर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जिसके खोलनेका देशबन्धुने आपको वचन दिया है। गुजरात राष्ट्रीय विद्यालयके छात्रोंने कमसे कम चार घंटा

चरखा प्रतिदिन चलानेका वचन दिया है। इस सुन्दर कलाको सीखकर अपने देश भाइयोंके तनको ढकनेके प्रयत्नमें सहायक होना कितना पुण्यका काम है।

सरकारी शिक्षालयोंसे संबन्ध त्यागकर आपने अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। इसके बाद इस समयको सबसे उपयोगी काममें लगानेका तरीका मैंने आपके सामने रख दिया है। अब मैं ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूं कि वह आपको साहस और धैर्य्य प्रदानकर आपकी सहायता करे।

आपका हितचिन्तक—

मोहनदास कर्मचन्द गांधी

धरना बैठना

(फरवरी २, १९२१)

बङ्गालसे समाचार आ रहे हैं कि लड़कोंने धरना बैठना आरम्भ किया है। यह तरीका असभ्य भारतमें प्रचलित था। पर भाग्यवश यह तुरत रोक दिया गया। जिन लोगोंने विद्या-लयोंका वहिष्कार किया था वे लोग अन्य छात्रोंका—जो कालेजमें फीस देने या शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक बातें जाननेके लिये युनि-वर्सिटी भवनमें जाना चाहते थे उनका मार्ग रोककर वे खड़े हो

जाते थे, मार्गमें लेट जाते थे जिससे जानेवाला उनको कुचल कर ही आगे बढ़ सके। यह प्रथा असभ्य इसलिये है कि इसके द्वारा किसीको कोई काम करनेसे जबर्दस्ती रोका जाता है। इसमें कायरता भी है क्योंकि जो धरना बैठता है वह भली भांति जानता है कि ऐसा ही कोई हृदय हीन होगा जो उन्हें कुचलकर आगे बढ़ेगा। इस तरहके आचरणको हिंसात्मक तो नहीं कह सकते पर वह हिंसासे भी खराब है। यदि हम शत्रुके साथ खुलकर युद्ध करते हैं तो हम उसे अवसर देते हैं कि वह भी हमपर प्रहार करे। पर जब हम धरना बैठते हैं और कहते हैं कि यदि तुम्हें आगे बढ़ना है तो हमें कुचलकर तब जाओ तो हम उसको लाचार बना देते हैं, क्योंकि हम यह जानते हैं कि वह ऐसा न करेगा। जिन उत्साही छात्रोंने धरना बैठने-का तरीका सोचा कदाचित उन्होंने इसकी असभ्यतापर ध्यान ही नहीं दिया। पर जिसे आत्माकी प्रेरणाके अनुसार काम करना है और जो संग्राम क्षेत्रमें अकेला खड़ा होनेपर भी विचलित नहीं होता है उसे तो इस तरह अविवेकी नहीं होना चाहिये। यदि असहयोग असफल हुआ तो इसका एकमात्र कारण इसकी आन्तरिक कमजोरी होगी। असहयोगमें हार है ही नहीं। वह असफल होना तो जानता ही नहीं। उसके प्रति-निधि या संचालक उसको इस तरहसे बिगाड़ डालें कि वह असफल प्रतीत हो सकता है। इसलिये असहयोगियोंको, जो कुछ वे करते हैं, उसमें पूर्ण सावधान रहना चाहिये। अधार

होनेकी आवश्यकता नहीं है, असभ्य होनेकी आवश्यकता नहीं है, उद्दण्ड होनेकी आवश्यकता नहीं है, अनुचित द्बाव डालनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि हम लोग उदारशासनके सच्चे भाव-की धारणा चाहते हैं तो हमें असहनशील नहीं बनना पड़ेगा। असहनशीलता प्रगट करती है कि मनुष्यको अपने उद्देश्यपर विश्वास नहीं है।

कलकत्ताका छात्र आन्दोलन

(जनवरी २६, १९२१)

कलकत्ताके छात्रोंने असहयोग कार्यक्रमको जिस तेजीसे अपनाया है उसे देखकर विस्मय होता है। १५ जनवरी तक एक-दम सन्नाटा था। एक भी ऐसी घटना नहीं हुई थी जिससे इस बातका अनुमान किया जा सके कि इस तरहकी कोई भी बात हो सकती है। पर इसके बीचमें ही इतनी भारी घटना हो गई। इसका मुख्य कारण क्या है, यह तो अभी रहस्यमय और अन्धेरेमें छिपा है। पर श्रीयुत देशबन्धुका माताकी पुकारपर वकालत छोड़कर राष्ट्रसेवामें लग जाना इस कामको अतिशय द्रुतगामी बनाता गया। १५ जनवरीको यकायक यह घटना उपस्थित हुई। बंगवासी कालेजके प्रायः सभी छात्र—दो चार

भीरु और कायारोंको छोड़कर—कालेज भवन छोड़कर निकल आये और वन्देमातरम्‌की ध्वनि करते वे रिपन कालेजकी ओर चले। वहां पहुंचकर उन्होंने वहांके छात्रोंसे भी अपील की। वन्देमातरम्‌का गुंजार करते रिपन कालेजके छात्र भी कक्षाको छोड़ छोड़कर निकल आये और इनके साथ हो लिये।

यही आन्दोलनका आरम्भ था। इस समय हजारों छात्र स्कूल और कालेज छोड़कर बैठे हैं। प्राय: ८००० से १५००० छात्रोंने पढ़ना छोड़ दिया है। जिस तरहसे मुसरेका जल बूंद बूंद बटुरकर सोता बन जाता है उसी तरहका असर छात्र वर्गमें इस असहयोग आन्दोलनका कलकत्तामें हुआ है। एक भी कालेज ऐसा नहीं है जिसपर इसका प्रभाव नहीं पड़ा हो। कितने कालेज तो अनिश्चित समय तकके लिये बन्द कर दिये गये हैं। यह तो बी० ए० के नीचेकी कक्षाओंमें पढ़नेवाले छात्रोंकी बात है। पर इससे उच्च कक्षामें पढ़नेवालोंने भी कम उत्साह नहीं दिखाया है। इसी समय कानूनकी परीक्षा हो रही थी। पहले दिन प्राय: ७०० लड़के उपस्थित थे पर दूसरे दिन उनकी संख्या १५० रह गई।

इस समय कलकत्तामें प्रतिदिन इतनी सभायें हो रही हैं जितनी वहां पहले महीनोंमें भी नहीं होती थीं। एक दिन देशबन्धुको आठ जलसोंमें भाषण करना पड़ा। इसलिये यह सहजमें ही अनुभव कर लिया जा सकता है कि छात्रोंके इस उत्साहपूर्ण योगदानका प्रभाव कलकत्ताके राजनैतिक जीवनपर

अवश्य पढ़ा होगा। गत सप्ताहमें राष्ट्रीय कालेजकी स्थापना होगी। उसी समय उसमें ८०० छात्र हो गये थे और इससे अधिककी आशा है। पर इस आन्दोलनकी यहीं समाप्ति नहीं है। देहातोंमें भी इसका प्रभाव पड़ा है। घर घरमें इसने कांग्रेसका सन्देश पहुंचा दिया है। इसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक नगर, प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक घरसे आ रही है। पवना, बरहामपुर, ढाका, सेराजगञ्ज, कोमिला तथा बाजरघाटके छात्रोंने भी इसका उचित प्रत्युत्तर दिया। इस समय बंगालका लोहा गर्म हो गया है। हमें पूर्ण आशा है कि इस बार इसकी सारी मैल निकल जायगी। छात्रोंमें दृढ़ता दिखलाई देती है। ईश्वर उन्हें शक्ति दे कि वे अपने उद्देश्यमें विजय लाभ करें।

छात्रोंका कर्तव्य

—:०:*:०:—

(फरवरी ६, १६२१)

४ फरवरी १६२१ को कलकत्ता राष्ट्रीय कालेजके उद्घाटनके समयपर महात्मा गांधीने छात्रों और अध्यापकोंको निम्न लिखित उपदेश दिया था :—

बन्धुवर्ग, अभी कुछ छात्रोंने गीताके श्लोक पढ़कर जो प्रार्थना की है उसे आपने अवश्य सुना है। मुझे पूर्ण आशा है कि आप लोग उस प्रार्थनाके अर्थपर विचार करेंगे। यदि इस

संस्थाकी सारी कार्यवाही प्रार्थनाके बलपर ही चले तो मुझे पूर्ण आशा है कि हम लोगोंको इसके द्वारा जो सफलता मिलेगी वह स्वार्थ और परमार्थ दोनोंके लिये विशेष रूपसे हितकर होनी चाहिये। इन कतिपय महीनोंमें मुझे अनेक विद्यालयोंके खोलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पर मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस विद्यालयको खोलते समय जो चिन्ता मेरे सिरपर सवार है वह अन्यत्र कहीं भी देखनेमें नहीं आई। इसका कारण यह है कि संसार भरकी दृष्टि कलकत्ताके छात्रोंपर लगी है। समाचार पत्रोंमें नित नये तार छपते रहे हैं जिनमें कलकत्ताके छात्रोंको उनकी असीम सफलतापर बधाई दी गई है। आप लोगोंने यह भी देखा होगा कि आपके प्रत्युत्तरका हो अनुसरण कर सारे भारतके छात्र धीरे धीरे सरकारी स्कूलों और कालेजोंसे अपना सम्बन्ध त्याग रहे हैं। इसलिये आपकी जिम्मेदारी सबसे बढ़कर है। आपके साथ ही साथ पाठशालाके अध्यापकोंकी, देशबन्धु दासकी और साथ ही साथ मेरी भी जिम्मेदारी कम नहीं है। मैं तो सदा ईश्वरसे यही प्रार्थना करता रहूंगा कि वह आपके मार्गकी कठिनाइयोंको हटाकर आपको सफल बनावे। पर चाहे कितने भी सच्चे हृदयसे प्रार्थना की गई हो वह तबतक कारगर नहीं हो सकती जबतक छात्रवर्ग अतिशय नम्रता तथा ईश्वरीय कोपसे डरकर काम करनेके लिये प्रवृत्त न होंगे। इसके अलावा उनमें तत्परता तथा एकाग्रता होनी चाहिये और जिस देशके लिये उन्होंने इन सरकारी विद्यालयोंका वहिष्कार किया

है उसके प्रति स्नेह और गाढ़ अनुराग होना चाहिये। जो छात्र आजतक योग्यताकी सनद तथा अपनी बुद्धिके अनुसार इन सनदोंके बदौलत जीवनमें योग्यपद प्राप्त करनेकी अभिलाषा करते आये हैं उनके लिये इस तरहका त्याग साधारण बात नहीं है। इस प्रकारकी आशाओंसे परिवेष्ठित छात्रके लिये केवल इस विश्वासपर कि इसका अन्त करके वह अपने देशका तथा अपना उपकार कर रहा है इतना त्याग सम्भव नहीं है। कमसे कम मुझे इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है। मुझे इस बातकी आशा है कि आपको इसके लिये अफसोस और पश्चात्ताप नहीं करना होगा कि आपने सरकारी विद्यालयोंका वहिष्कार किया। पर मैं यहीं पर यह भी कह देना चाहता हूं कि यदि आपने इस समयका सदुपयोग नहीं किया अथवा यदि अपने क्षणिक जोशमें आकर—जैसा कि देशभक्त अनेक नेताओंने कहा है—आपने विद्यालयोंका वहिष्कार किया है तो इसके लिये आपको अवश्य पछताना पड़ेगा। मुझे पूरी आशा है कि आप इन महापुरुषोंकी शंकाओंको चरितार्थ न करेंगे और उन्हें झूठ साबित कर देंगे।

आपको अपना काम इतनी योग्यता और खूबीके साथ करना चाहिये कि सालके अन्तमें आपकी सफलता देखकर वे लोग—जो इस समय अनेक तरहकी आशंकायें प्रगट कर रहे हैं—यही कहें कि हम लोगोंकी धारणा गलत थी। मैं आपसे एक बात और कह देना चाहता हूं। सारा भारत इस समय आपकी ओर

विस्मित होकर देख रहा है। कितने नवयुवक और अनेक वयोवृद्ध जन भी आपके इस आन्दोलनसे किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये हैं और विचित्र तरहकी आशंकाभरी बातें कहते हैं। लोग कहते हैं कि यह क्षणिक जोशका गुब्बार है। जिस समय जोश ठंढा हो जायगा सब दब जायगा। अभीतक दृढ़ता तथा साहसिकताका श्रेय आपको किसीने नहीं दिया है।

आप लोग नये पथ पर अवतीर्ण हो रहे हैं। आप अपने जीवन पुस्तकमें नया पाठ पढ़ने जा रहे हैं। आप अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी ले रहे हैं। आप अपना नाम भारतके उद्धारकोंमें लिखवानेके लिये खड़े हो रहे हैं। यदि आप लोग अपनी इस जिम्मेदारीको समझते हैं तो मुझे पूरी आशा है कि आप अपने आचरणसे इस तरहकी सभी आशंकाओंको निर्मूल कर देंगे। जिन लोगोंको बंगालका पूर्ण अनुभव है वह तो यही कह रहे हैं कि ऐसे अवसरोंपर बंगाल कभी भी पीछे नहीं रहा है। मुझे तो पक्का भरोसा है कि जिन छात्रोंने देशकी पुकारपर अपना इस तरह बलिदान किया है और इस संस्थाका साथ दिया है वे किसी तरहकी अयोग्यता नहीं दिखावेंगे। मुझे इस बातको भी पूरी आशा है कि अध्यापक वर्ग भी अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरहसे निबाहेंगे। गुजरात विद्यापीठकी स्थापना करते समय मैंने वहांके छात्रों तथा अध्यापकोंको जो कुछ कहा था वही यहां भी कह देना चाहता हूं। इस विद्यापीठकी सफलता और असफलता यहांके छात्रों और शिक्षकों-

पर निर्भर है। यदि उन्होंने तत्परता दिखाई और अपनी जिम्मेदारी पूरी तरहसे निबाही तब तो उन्हें सफलता अवश्य मिलेगी नहीं तो असफल होंगे। इस समय हमारे इतिहासमें विकट युग उपस्थित हुआ है। हममेंसे जो लोग इस समय नवयुवकोंके मनकी परिस्थिति बदलनेके लिये तैयार हुए हैं उनके ऊपर भारी जिम्मेदारी है। इसलिये यदि अध्यापक वर्गने असावधानी और उदासीनता दिखलाई, यदि आशङ्का-ओंने आकर उनपर सवारी कसी' यदि भविष्यकी चिन्तासे वे भयभीत हुए तो आप स्वयं समझ सकते हैं कि उन छात्रोंकी क्या दशा होगी जो उनकी देखरेखमें रहेंगे। मेरी उस दयामयसे यही विनीत प्रार्थना है कि वह अध्यापकोंके हृदयमें साहस, बुद्धिबल, विश्वास और आशा दे।

मैं छात्रोंको बराबर इस बातकी चेतावनी देता आया हूं कि आपने अपने लिये जो मार्ग निर्दिष्ट किया है उसपर चलते रहिये पर दूसरोंके मार्गमें किसी तरहकी बाधा मत उपस्थित कीजिये। बरिसालके सम्बन्धमें समाचार पत्रोंमें जो समाचार प्रकाशित हुआ है उसे आपने अवश्य पढ़ा होगा। मैं नहीं कह सकता कि जो कुछ लिखा गया है वह सच है या सच्ची घटना चढ़ाबढ़ा कर लिखी गई है। पर उसकी मुझे विशेष चिन्ता नहीं। चाहे यह घटा कर लिखी गई हो या बढ़ाकर पर इससे एक बात तो अवश्य प्रमाणित होती है कि हमें किसी भी तरह अनुचित दबाव डालकर हिंसाके लिये नहीं

तैयार होना चाहिये। इसलिये आपको धरना भी नहीं बैठना चाहिये। जो छात्र अपने मनसे कालेजों और स्कूलोंको नहीं छोड़ सकते हैं उनके ऊपर किसी तरहका दबाव नहीं डालना चाहिये। बस, केवल इतनाही काफी है कि जो लोग इन विद्यालयोंमें पढ़ना पाप समझते हैं वे इन्हे छोड़ कर बाहर हो जायं। यदि हमें अपने ऊपर दृढ़ विश्वास है तो हम दृढ़तासे अड़े रहेंगे चाहे एकभी छात्र हमारे पुकारपर आगे कदम न बढ़ावें। यदि आप अधीर हो जाते हैं तो इससे अपने उद्देश्यकी कमजोरी साबित करते हैं और हम दूसरोंपर अपना अनुकरण करनेके लिये तभी दबाव डालते हैं जब हम अधीर हो जाते हैं। इसलिये मेरा कहना है कि इस संस्थाका कोई भी छात्र इस तरहका आचरण नहीं करेगा जिससे उसकी अधीरता या संदिग्धता प्रगट हो।

एक मासके बाद मैं आप लोगोंकी सेवामें पुनः उपस्थित होऊंगा। उस समय तक मुझे पूरी आशा है कि आप हिन्दी समझने और बोलनेमें पूरी योग्यता प्राप्त कर लेंगे आप उस समय अंग्रेजीमें मेरा व्याख्यान सुनना नहीं चाहेंगे। उस समय मैं राष्ट्रीय सन्देशको आपके सामने राष्ट्रभाषामें ही रखूंगा। आप हिन्दी पढ़ना आरम्भ कर दीजिये। आप देखेंगे कि हिन्दी सीखना बड़ा ही सहज काम है। आपको कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होगी। इसके शब्द बङ्गलासे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। मैं आपको इस

बातका भी विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आपको उसमें सभी उपयोगी और आवश्यक बातें मिलेंगी। आप कहते हैं कि हिन्दी साहित्य दरिद्र है, उसमें पढ़ने लायक कुछ नहीं है। पर यह बात सच नहीं है। हिन्दी और उर्दू भाषामें साहित्यका खजाना भरा है। आप तुलसी दासके रामायणको उठा लीजिये। आप देखेंगे कि उसमें जो खजाना भरा है उसका मुकाबिला करनेवाला संसारके किसी साहित्यमें नहीं है। जो आशा और विश्वास मुझे इस पुस्तकसे हुआ और किसी पुस्तकसे नहीं हुआ। इस पुस्तकमें साहित्यका भण्डार भरा पड़ा है, धर्मके मर्मका यह खजाना है।

दूसरी बार जब मैं आपके पास आऊंगा तबतक आप सूत कातनेमें भी पूरे अभ्यस्त हो गये रहेंगे और आप किसी गांवके जुलाहेके हाथसे कपड़ा बुनवाकर पहनते रहेंगे। उस समय तक आपको इसपर विश्वास जम गया होगा और यदि भारतके भविष्य उद्धारका एकमात्र शस्त्र आप इस चरखेको मेरे साथ माननेके लिये तैयार हैं तो मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि आपको चरखा कातनेमें वही आनन्द मिलेगा जो इस समय मुझे मिल रहा है। मुझे आशा है कि आपकी शिक्षाकी योजना आपकी मातृभाषामें की जायगी। आपके अध्यापकगण बङ्गलामें पाठ पढ़ावेंगे और आप भी अपने कुल व्याख्यानोंको बङ्गला भाषामें बांधेंगे और अपना भाव व्यक्त करनेके लिये उपयुक्त शब्द ढूंढ निकालेंगे।

यह सब काम आप पूर्ण धार्मिक विश्वासपर करेंगे। यदि इस आन्दोलनको आप धार्मिक रूप नहीं देना चाहते तो निश्चय जानिये कि आप केवल असफल ही नहीं होंगे बल्कि आपकी मर्यादा भी भङ्ग हो जायगी। जो काम हमारे सामने इस समय है उसको पूरा करनेका यह नया तरीका है। यदि हमारी यह धारणा है कि प्रचलित प्रणालीमें यत् किञ्चित परिवर्तन कराकर ही हम भारतका उद्धार कर लेंगे तो हमारी असफलता निश्चित है। यदि आपने इस काममें वही धार्मिकता दिखलाई जिसके लिये बंगाल सदासे विख्यात है तो निश्चय जानिये कि स्वराज्य आपसे दूर नहीं है। ईश्वर आपको मदद करे। ईश्वर आपमें अतुल साहस दे और आपको उस योग्य बनावे जिसकी इस समय देश-बन्धु को आवश्यकता है। अब मैं इस विद्यालयका उद्घाटन करता हूं।

शिक्षा और असहयोग

—०:※:०—

(नवम्बर ३, १९२१)

श्रीयुत सम्पादक यंग इण्डिया,

महाशयजी, बंगलाके प्रवासी पत्रके कार्तिकके अंकमें एक लेख निकला है। उस लेखके लेखक हैं एस० सी० महाशय और उन्होंने रूसकी शिक्षाके उद्योगपर प्रकाश डालनेका यत्न किया है। इस लेखमें कुछ वाक्य ऐसे आगये हैं जिनपर आपका ध्यान आकृष्ट करना मैं आवश्यक समझता हूं। नीचे मैं उन वाक्योंका शब्दानुवाद देता हूं :—

"इस क्रान्तिकारी उलट फेरके समय भी रूसने अपनी शिक्षाका दीपक नहीं बुझने दिया है यद्यपि उसका प्रकाश मन्द पड़ गया है। हमारे देशके (भारतके) दूरदर्शी नेताकी भांति यहां ऐसा कोई भी व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ जिसने शिक्षाको बन्द करा दिया होता। रूस जानता है कि संग्राम और शिक्षामें किसी तरहका वैमनस्य नहीं है जैसा कि जल और तेलमें है।"

उन बंगला वाक्योंका यही भाव है। और इन्हें मैंने यथासाध्य अनुवादित करनेकी चेष्टा की है। इन शब्दोंके लेखकका अभिप्राय मैं भलीभांति नहीं समझ सका हूं। और चूंकि इस देशके गण्यमान नेताओंमें—जिनका जिक्र इस लेखके लेखकने किया है—महात्माजी ही हैं इसलिये मैं उनसे प्रार्थना करूंगा

कि वे इस वाक्यका तात्पर्य बतलावें। यह इसलिये और भी आवश्यक हो गया है कि इस देशके अनेक समझदार व्यक्ति भी यही मत रखते हैं।

पुरलिया }　　　　　आपका

फणीन्द्रनाथ दास गुप्त

प्रवासीके उस लेखके लेखकने जो मत प्रगट किया है, उससे मैं चकित नहीं हुआ। उस लेखको पढनेसे ही विदित हो जाता कि उसके लेखकको न तो 'दूरदर्शी नेताओं'के विषयमें कोई ज्ञान है और न पंगु शिक्षाके विषयमें ही किसी तरहकी जानकारी है। रूसवाले अपनी वर्तमान संस्थाओंके साथ किसी तरहसे असहयोग नहीं कर रहे हैं। पर तोभी युद्धके जमानेमें शिक्षा-के दीपकका प्रकाश उतना ही मन्द पड़ गया था जितना कि इस असहयोगी देशके स्कूलोंमें। विगत जर्मन युद्धके समय इङ्गलेण्डकी क्या अवस्था थी? उस समय इङ्गलेण्डमें कितने स्कूलोंमें शिक्षा देनेका काम जारी था? मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अनेक कालिज एकदमसे खाली हो गये थे। बोअर युद्धके समय भी यही बात थी। एक भी बोअर बालक पढ़ने नहीं जाता था। उस समय मातृभूमिके लिये मरने और कष्ट सहनेकी ही शिक्षा उन्हें दी जाती थी। यह वर्तमान (असहयोग) आन्दोलन इतना शान्त है कि जिन्हें इसकी चम-त्कारितापर विश्वास नहीं है वे उस प्रणालीके अन्दर अपनी

शिक्षाको चला सकते हैं जिसके प्रतिकूल आज राष्ट्र तलवार लेकर खड़ा है। मुझे पूरी आशा है कि भविष्यके इतिहासज्ञ इस आन्दोलनकी शान्तिप्रियताके लिये इसकी अवश्य प्रशंसा करेंगे और यह भी लिखेंगे कि इस शान्तिके ही कारण इसमें इतना जोर था। इसके अतिरिक्त हमें अपनी शिक्षा व्यवस्थापर किसी तरहका अभिमान नहीं हो सकता क्योंकि उसकी सीमा इतनी संकुचित है कि वह हमारी आवश्यकताको अंशतः भी नहीं पूरा कर सकती और हम इतने मदमस्त हो गये हैं कि हमें वर्तमान शिक्षा प्रणालीकी हानियोंका भी पता नहीं लगता। मैंने अपनी समझमें बहुत चेष्टा की कि मुझे इस शिक्षा प्रणालीमें कोई भी ऐसी बात मिल जाय जो इसके पक्षमें हो और इस तरह मैं इस आवश्यक प्रश्नको हल कर लूं जिसका देशपर इस तरह प्रभाव पड़ रहा है। पर लाख चेष्टा करने पर भी मुझे इस तरहकी कोई बात नहीं दिखलाई दी। इस समय स्कूलोंमें ७,८५१,९४६ लड़के शिक्षा पा रहे हैं। मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें ५० वर्षमें भी यह संख्या दूनी नहीं हो सकेगी। यदि शिक्षाको सर्वव्यापी बनाना है तो इस बातको मानना पड़ेगा कि वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें सुधार आवश्यक है। और यह परिवर्तन केवल असहयोगद्वारा ही संभव और साध्य है, क्योंकि नरम उपचार द्वारा इतना भारी काम सहजमें नहीं हो सकेगा।

—*—

अभिभावकोंका कर्त्तव्य

—•※•—

(जून १५, १९२१)

"इस वर्ष मेरा पुत्र बी० ए० की परीक्षामें बड़ी योग्यताके साथ उत्तीर्ण हुआ है। मैंने इसकी पढ़ाईमें बड़ा रुपया लगाया है। पर वह सरकारी नौकरी नहीं कबूल कर रहा है। वह राष्ट्रकी सेवामें ही अपना जीवन बिताना चाहता है। मेरे घरमें कुल १२ प्राणी हैं। अभी मुझे ५ लड़कोंकी शिक्षाकी भी व्यवस्था करनी है। मेरी एक छोटीसी जमींदारी थी जिसे बेच कर मैंने २०००) का कर्ज चुकाया। मेरे पास जो कुछ था मैंने इन्हीं तीनों लड़कोंकी शिक्षामें लगा दिया। मुझे पूरी आशा थी कि मेरा तृतीय पुत्र अच्छी योग्यता हासिल करेगा और मेरी बिगड़ी दशाको फिर सुधार देगा। मुझे आशा थी कि वह कुटुम्बका सारा भार अपने सिर पर ले लेगा। पर इस समय मुझे यही दीख रहा है कि मेरे वंशका नाश अवश्यम्भावी है। एक तरफ तो कर्तव्य है और दूसरी तरफ उद्देश्य। इन दोनोंमें विचित्र संग्राम छिड़ा है। मैं यह पत्र आपके पास इसलिये लिख रहा हूं कि आप मेरी अवस्थापर विचार करें और उचित सलाह दें।"

इसे एक आदर्श पत्र कहना चाहिये। इसी तरहकी धार-

णाका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर ही मैंने वर्षों पहले अपनी सन्ततिकी शिक्षा प्रणाली बदली और उसका परिणाम बहुत सुखद हुआ। पाया और मर्यादाके प्रलोभनने कितने ही वंशोंका नाश कर दिया और कितनोंको सत्पथसे गिराया। यह कौन नहीं जानता कि असहाय अभिभावक अपने पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिये रुपया व्यय करनेमें कितनी असम्भव और अमर्यादित बातोंकी कल्पना कर लेते हैं। इसे देखकर मुझे तो यही डर लग गया है कि यदि हम लोग इस शिक्षा प्रणालीको तुरन्त नहीं बदल देते तो हमारी दशा और भी खराब और शोचनीय हो जायगी। इस समय जो कुछ शिक्षा दी जाती है वह केवल उस अगाध समुद्रके किनारेको छू पाती है। अधिकांश बालक अशिक्षित ही रह जाते हैं। पर इसका कारण यह नहीं है कि शिक्षाकी तरफ उनकी रुचि नहीं रहती बल्कि इसका कारण यह है कि अभिभावकोंकी योग्यता और जानकारी इतनी कम रहती है कि वे कुछ नहीं कर सकते। इस लिये यह निश्चय है कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें कोई भीषण दोष है क्योंकि हमारा देश इतना गरीब होनेपर भी अभिभावकोंको लड़कोंकी शिक्षाके लिये इस तरह व्यय करना पड़ता है और उससे तुरत किसी तरहके लाभकी सम्भावना नहीं रहती। यदि लड़के छात्रावस्थासे ही कुछ कमाने लगें तो इसमें मुझे किसी तरहकी बुराई नहीं दृष्टिगोचर होती। इसलिये मेरी रायमें सबसे सहज उपाय, सबके लिये यही है कि पुरानी प्रणालीपर चरखा चलानेका काम सभी

उठा लें। यदि विद्यालयोंमें हम लोग इसका प्रचार कर दें तो इससे हमें तीन तरहका लाभ होता है। (१) हम लोगोंकी शिक्षा आत्म निर्भर हो जाती है (२) मानसिक शिक्षाके साथ ही साथ बालकोंको शारीरिक शिक्षा भी मिलती जाती है और (३) विदेशी वस्तुओंके पूर्ण वहिष्कारका प्रश्न भी हल हो जाता है। इसके साथ ही साथ इस तरहसे लड़के आरम्भसे ही आत्मनिर्भर हो जायंगे। उपरोक्त पत्रके लेखकको मैं सलाह दूंगा कि वह अपने घरमें सबसे चरखा चलवावे। किसी भी प्रणालीमें लड़कोंको कमसे कम समय चरखेमें अवश्य लगाना चाहिये। जिन घरोंमें इसका प्रचार अच्छी तरहसे हो जायगा उनकी आत्माभिमान और आत्मनिर्भरताके लिये प्रशंसा होने लगेगी जिसका आज तक किसीने स्वप्न भी नहीं देखा था। इस व्यवस्थामें शिक्षाका वहिष्कार कहींसे नहीं होता वलिक इसके अनुसार प्रत्येक बालक और बालिकाको शिक्षा सहजमें मिल सकती है। और इस प्रकार शिक्षाको सदाचार और चरित्र-बलका आधार बनाकर उसकी प्राचीन लुप्त मर्यादाकी पुनः स्थापना होगी और जीवनयात्राका भी उपाय निकलता जायगा।

राष्ट्रीय शिक्षा

—०:*:०—

(सितम्बर १, १९२१)

राष्ट्रीय शिक्षा विषयक मेरे विचारोंके सबन्धमें अबतक इतनी अजीब बातें कहीं गई हैं कि यहाँ पर उनका खुलासेवार वर्णन कर देना अप्रासंगिक न होगा।

मेरी राय है कि शिक्षाकी वर्तमान पद्धति इन तीन महत्त्व-पूर्ण बातोंमें सदोष है (पूर्ण अन्यायी सरकारके साथ इसका जो सम्पर्क है उसकी तो बात ही जाने दीजिये)

(१) इसका आधार विदेशी संस्कृति पर है जिससे देशी संस्कृतिका इसमें प्रायः नाम निशान तक नहीं।

(२) यह हृदय और हाथकी संस्कृति पर ध्यान नहीं देती, सिर्फ दिमागकी संस्कृति तक ही इसकी पहुँच है।

(३) विदेशी माध्यमके द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

अब हम इन दोषोंकी छानबीन करें। पहले पाठ्य-पुस्तकोंको ही लीजिये। उनमें ऐसी बातोंका अभाव होता है जिनकी जरूरत लड़कों और लड़कियोंको अपने घरेलू जीवनमें हमेशा हुआ करती है, इसके विपरीत वे बातें भरी रहती हैं जो उनके लिये एकदम बेजानी हैं। पाठ्य पुस्तकोंके द्वारा लड़का यह नहीं जान पाता कि गृह-जीवनमें कौनसी बात तो ठीक है और कौनसी बात अनुचित। उसे ऐसी शिक्षा कभी नहीं दी जाती जिससे उसके

मनमें पास-पड़ोसियोंके विषयमें अभिमान जागरित हो। जितना ही आगे वह बढ़ता है उतना ही दूर वह अपने घरसे हो जाता है—यहाँ तक कि अपनी शिक्षाका अन्त होनेतक अपने आस-पासवालोंसे उसका चित्त हट जाता है। गृह-जीवनमें उसे आनन्द नहीं आता। गाँवोंके दृश्य उसके लिये होना न होना बराबर हैं। खुद उसीकी सभ्यता उसे निःसत्व, जंगली, अन्ध-भक्तिसे भरी हुई और सारे अमली कामोंके लिये निकम्मी बताई जाती है। यह शिक्षा इस ढंगसे दी जाती है कि विद्यार्थी अपनी परम्परागत संस्कृतिसे बिछुड़ जाता है। पर इतना होनेपर भी आज जो शिक्षित लोग पूरी तरह राष्ट्रीयतासे हीन नहीं हो गये हैं उसका कारण यही है कि उनके दिलमें प्राचीन संस्कृतिकी जड़ इतनी गहरी जमी है कि जिससे वह, उसकी बढ़तीको रोकनेवाली शिक्षाके द्वारा भी, बिलकुल नष्ट नहीं हो सकती। यदि मेरा वश चलता तो मैं आजकी बहुतेरी पाठ्य-पुस्तकें जला डालता और ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लिखवाता जो गृह-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली और उसके अनुरूप हों, जिससे लड़का ज्यों ज्यों उन्हें पढ़े त्यों त्यों अपने नजदीकी सम्बन्ध रखनेवालोंकी ओर अधिक आकर्षित होता जाय।

दूसरे, और देशोंके विषयमें चाहे जैसा हो, भारतमें तो, जहाँके ८० फी सदीसे भी ज्यादा लोग खेती करनेवाले और १० फी सदी उद्योग-धन्धा करनेवाले हैं केवल साहित्यिक शिक्षा देना और लड़के-लड़कियोंको अपने आगेके जीवनमें हाथसे काम

करनेके अयोग्य बनाना हर हालतमें एक जुर्म है। मेरी तो बेशक यह धारणा है कि हमारा अधिकांश समय अपनी रोजी कमानेके उद्योगमें जाता है, हमारे बालकोंको लड़कपनसे ही ऐसे परिश्रम-को गौरवकी दृष्टिसे देखनेकी शिक्षा दी जानी चाहिये। हमारे बालकोंको ऐसी शिक्षा तो हरगिज न दी जाय जिससे वे मिहनत-को हिकारतकी नजरसे देखने लगें। कोई वजह नहीं कि एक किसानका लड़का मदरसेमें तालीम पाकर निकम्मा बन जाय और खेतीके लिये मिहनत न करे। हमारे मदरसोंके लड़के हाथ-का काम करना बुरा समझते हैं, यह दुःखकी बात है। पर गनीमत है कि वे उससे घृणा नहीं करते। इसके सिवा यहाँ हिन्दुस्थानमें अगर हम यह उम्मीद करें, जैसी कि हमें जरूर करनी चाहिये कि मदरसा जाने योग्य उम्रका हरएक लड़का मदरसे जाय तो आजकी प्रथाके अनुसार उसकी शिक्षाके लिये खर्च करनेके साधन हमारे पास नहीं हैं और न करोड़ों माता-पिता उतनी फीस ही देने लायक हैं जो आज लगाई जाती है। इस लिये शिक्षाको यदि अधिक व्यापक सार्वजनिक करना हो तो फीस न लगानी चाहिये। मेरा खयाल है कि आदर्श शासन व्यवस्थामें भी हम २० करोड़ रुपये—जो कि तमाम मदरसे जाने लायक उम्रके लड़के-लड़कियोंकी शिक्षाके लिये दरकार है—खर्च न कर सकेंगे। इससे यह नतीजा निकलता है कि हमारे बालक जो कुछ शिक्षा ग्रहण करें उसका सारा या अधिकांश भाग "परिश्रम" के रूपमें अदा करें। और ऐसा सार्वजनिक काम जो

कि फायदेमन्द है (मेरे खयालमें तो) हाथ-कताई और हाथ बुनाई ही हो सकती है।

परन्तु मेरे कथनकी सिद्धिके लिये यह कोई महत्त्वकी बात नहीं है कि हम सूत-कताईका ही अवलम्बन करें अथवा किसी दूसरे कामको करें, बशर्ते कि उससे उतना लाभ होता हो। लेकिन जाँच करनेपर ऐसा ही मालूम होगा कि दूसरा कोई धन्धा ऐसा नहीं है जो कपड़ा बनाने सम्बन्धी क्रियाओंसे बढ़कर अमली और फायदेमन्द हो और जो बहुत बड़े आकारमें किया जा सकता हो तथा सारे हिन्दुस्थानके मदरसोंमें चलाया जा सकता हो।

हमारे जैसे दरिद्र देशमें हाथसे काम करनेकी तालीमसे दोहरा काम बनेगा। एक तो उससे हमारे बालकोंकी शिक्षाका खर्च निकलेगा और दूसरा वे एक ऐसा धन्धा सीख जायंगे जिसपर वे अगर चाहें तो आगेकी जिन्दगीमें अपना सहारा रख सकते हैं। ऐसी प्रणालीसे हमारे बालक अवश्य ही आत्माव-लम्बी होंगे। और दुनियामें कोई वस्तु ऐसी नहीं जो हमारे राष्ट्रको इतना नीतिभ्रष्ट कर दे जितना कि हमें मिहनत-मजदूरीसे घृणा करनेकी शिक्षा दिये जानेसे हो सकता है।

अब हृदयकी शिक्षाके सम्बन्धमें एक बात कह देता हूं। मैं नहीं मानता कि यह पुस्तकोंके द्वारा दी जा सकती है। यह तो सिर्फ शिक्षकके सहवासके ही द्वारा मिल सकती है और आर-म्भिक तथा माध्यमिक पाठशालाओंमें भी, शिक्षक कौन लोग

होते हैं? क्या उन पुरुष और स्त्रियोंमें श्रद्धा और चरित्रबल होता है? क्या खुद उन्होंने हृदयकी शिक्षा पाई है? क्या उनसे यह उम्मीद भी की जाती है कि वे अपने सुपुर्द किये गये लड़कों और लड़कियोंके स्थायी गुणोंपर ध्यान रखेंगे? नीची कक्षाओंके मदरसोंके लिये मुदर्रिस तजवीज करनेकी रीति क्या शील या चरित्रके लिये एक बड़ी भारी बाधा नहीं है? क्या शिक्षक गुजरके लायक भी तनख्वाह पाते हैं और यह बात तो हम जानते ही हैं कि प्राइमरी स्कूलोंमें मुदर्रिसोंका चुनाव उनकी देशभक्तिको देख कर नहीं होता है। वहां तो सिर्फ वे ही लोग आते हैं जिनकी रोटीका सहारा कहीं दूसरी जगह नहीं होता है।

अब रही शिक्षाके माध्यमकी बात। इस विषय पर मेरे विचार इतने स्पष्ट हैं कि यहाँ उनके दोहरानेकी जरूरत नहीं। इस विदेशी भाषाके माध्यमने लड़कोंके दिमागको शिथिल कर दिया और उनकी शक्तियों पर अनावश्यक जोर डाला, उन्हें रट्टू और नकलची बना दिया, मौलिक विचारों और कार्य्योंके लिये अयोग्य कर दिया और अपनी शिक्षाका सार अपने परिवारवालों तथा जनता तक पहुंचानेमें असमर्थ बना दिया है। इस विदेशी माध्यमने हमारे बच्चोंको अपने ही घरमें पूरा पक्का परदेशी बना दिया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणालीका यह सबसे बड़ा दुःखान्त दृश्य है। अङ्गरेजी भाषाके माध्यमने हमारी देशीभाषाओंकी बढ़तीको रोक दिया है। यदि मेरे हाथमें मनमानी करनेकी सत्ता होती तो मैं आजसे

ही विदेशी भाषाके द्वारा हमारे लड़के और लड़कियोंकी पढ़ाई बन्द कर देता, और सारे शिक्षकों और अध्यापकोंसे यह माध्यम तुरंत बदलवाता या उन्हें बरखास्त करता। मैं पाठ्य पुस्तकोंकी तैयारीका इन्तजार न करता, वे तो परिवर्तनके पीछे पीछे चली आवेंगी। यह खराबी तो ऐसी है, जिसके लिये तुरन्त इलाजकी जरूरत है।

विदेशी माध्यमके मेरे इस अटल विरोधका फल यह हुआ है कि लोग मुझ पर एक अनुचित आक्षेप मढ़ते हैं। वह यह कि मैं विदेशी संस्कृति या अङ्गरेजी भाषा पढ़नेके खिलाफ हूं। यङ्ग-इण्डियामें अकसर मैंने यह प्रतिपादन किया है कि मैं अङ्गरेजीको अन्तर्जातीय व्यापार और कुटिल नीतिकी भाषा मानता हूं और इसलिये उसके ज्ञानको हममेंसे कुछ लोगोंके लिये आवश्यक समझता हूं। यङ्ग इण्डियाके पाठकोंको नजरसे यह गुजरा ही होगा। हाँ, मैं यह मानता हूं कि उसमें कुछ अत्यन्त सुन्दर विचारोंका और साहित्यका संग्रह है। अतएव जिन लोगोंको भाषाशास्त्रकी ईश्वरी देन है उन्हें मैं जरूर उसके ध्यानपूर्वक अध्ययनके लिये उत्साहित करूंगा कि वे अपने देशके लिये उसकी ज्ञान राशिको देशी भाषाओंके द्वारा प्रगट करें।

मैं यह नहीं कहता कि दुनियासे अलग रहो या उसके और अपने बीचमें रुकावट खड़ी कर लो। यह तो मेरे विचारोंसे बड़ी दूर भटक जाना है। परन्तु हाँ, यह मैं

जरूर अदबके साथ कहता हूं कि दूसरी संस्कृतियोंके गुण ज्ञान और मान अपनी निजी संस्कृतिके गुणके ज्ञान, मान और तद्रूपताके पीछे तो अच्छी तरह चल सकता है, पर आगे कभी नहीं। मेरा तो यह निश्चित मत है कि दुनियामें किसी संस्कृतिका भण्डार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना कि हमारी संस्कृतिका है। हमने उसे जाना नहीं है, हम उसके अध्ययनसे दूर रखे गये हैं और उसके गुणको जानने और माननेका मौका हमें नहीं दिया गया है। हमने तो उसके अनुसार चलना करीब करीब त्याग ही दिया है। बिना आधारके बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है जैसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्दा। वह देखनेमें तो शायद सुन्दर दिखाई देता है, परन्तु उसमें स्फूर्ति देनेवाली या उदारता लानेवाली कोई भी बात नहीं। मेरा धर्म मुझे यह आज्ञा नहीं देता कि दूसरेकी संस्कृतिको तुच्छता या अनादरकी दृष्टिसे देखूं। उसी तरह वह इस बात पर भी जोर देता है कि खुद अपनी संस्कृतिको भी मानो और उसके अनुसार चलो, अन्यथा आत्महत्या कर डालो।

गुजरात राष्ट्रीय शिक्षालयकी स्थापना

[गत १३ नवम्बर १९२० को अहमदाबादके गुजरात राष्ट्रीय महाशिक्षालयका उद्घाटन करते समय मा० गान्धीने जो व्याख्यान दिया था, वह इस प्रकार है:—]

अपने जीवनमें मैंने छोटे बड़े अनेक काम उठाये हैं, पर इतना बड़ा और गुरुतर कभी नहीं जैसा यह असहयोग आन्दोलन है। ऐसा मैं इसलिये नहीं कहता हूं कि इस काममें बड़ा जोखिम, भारी आपदायें तथा कठिनाइयां हैं, बल्कि इसलिये कि पहलेकी अपेक्षा मैं अधिक आशङ्का करता हूं। मैं देखता हूं कि मुझमें कोई ऐसी तपस्या, बल या संयम नहीं है जिससे ठहरने और सन्देह करनेवाले राष्ट्र पर विश्वास करनेकी मेरी श्रद्धा हो। असहयोगमें मेरा विश्वास है इसीसे मैंने इस आन्दोलनका नेतृत्व अपने हाथमें लिया है। इसी प्रकार इस विद्यालयके चैंसलर होनेमें भी शङ्का कर मैं अपनेको अयोग्य समझता हूं। कारण हमारे बहुतसे देशवासी हैं जिन्हें असहयोगके इस कार्य-क्रममें विश्वास नहीं। पर मेरा दृढ़ विश्वास असहयोग पर है, इसीलिये चैंसलर होना मैंने स्वीकार किया। बहुतसे आदमी हमारे विद्यालयों तथा कालेजोंको ईंट, इमारतें रखना समझते हैं, पर इस राष्ट्रीय

विश्वविद्यालयमें ऐसी बात नहीं है। इसमें वर्तमान विश्व-विद्यालयकी अपेक्षा ये सब चीजें बहुत कम हैं। आप लोग झूठी धारणा छोड़ कर इस राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके कार्य-क्रम तथा उद्देश्य पर ध्यान दें।

यह राष्ट्रीय विद्यालय अच्छे ढंग पर स्थापित किया गया है। इसमें अच्छे योग्य सिंधी, दक्षिणी गुजराती प्रोफेसर नियुक्त किये गये हैं। आप लोग अपने अपने लड़कोंको भेज कर इस विद्यालयको सफल करें। प्रिंसिपल, प्रोफेसरों, शिक्षकों तथा छात्रोंसे मेरा अनुरोध है कि वे अपनी ख्याति तथा स्वतन्त्रताके बीज बोयें जो सदा प्रफुल्लित होकर बढ़ते रहें, जिससे भावी सन्तान धीर, निर्भीक तथा देशभक्त उत्पन्न हो। यदि अध्यापक अपना कार्य पूरा कर लेंगे तो छात्रोंके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं कहूंगा, पर विद्यार्थियोंको स्मरण दिलाता हूं कि आज उनका पतन हो गया है। इनमें बुराइयाँ आगई हैं और ये सच्चे ब्रह्मचारी या सत्य तथा अहिंसाके अनुयायी नहीं कहे जा सकते। छात्र अपना उत्थान करनेका उद्योग करें। जिन विद्यार्थियोंने इस राष्ट्रीय कालेजमें नाम लिखाये हैं वे केवल छात्र ही नहीं हैं, बल्कि शिक्षक और उपदेशक भी, कारण इसके द्वारा अन्य छात्रोंको उन्होंने अच्छी शिक्षा दी है। यदि आपके वर्तमान अध्यापक चूक जायँ तो आप छात्रोंमेंसे ही कुछ लोग उनके स्थानमें अध्यापक बन जायँ।

इस राष्ट्रीय महाविद्यालयने गुजरात ही नहीं, बल्कि भारतमें पहला उदाहरण रखा है। मुझे आशा है कि यह शिक्षालय गुजरात ही क्यों, सारे देशमें आदर्श विद्यालय होगा। वर्तमान आन्दोलनमें गुजरातने देशके उपदेष्टाका काम किया है। इस राष्ट्रीय विद्यालयके प्रवर्त्तक, संस्थापक आदि सभी गुजरातके हैं।

गुजरात राष्ट्रीय शिक्षालय

(नवम्बर १७, १९२०)

गुजरात विद्यापीठकी स्थापनाकर तथा गुजरात राष्ट्रीय कालेज खोलकर गुजरातने यह बात दिखला दी है कि असहयोगका कार्यक्रम विधायक भी है। असहयोग आत्मशुद्धिका तरीका है इसलिये निर्माणके पहले यह नाशकी ही योजना करता है। राष्ट्रीय विद्यापीठ मानों आज सरकारकी बेईमानियोंकी निन्दा कर रहा है और अपना उन्नत ललाट दिखलाकर राष्ट्रकी मर्यादा दिखला रहा है। इसकी स्थापना हो गई। इसके जीवनका आधार संयुक्त भारतका राष्ट्रीय आदर्श होगा।

यह उस धर्मका प्रतिपादक होगा जिसमें सनातन धर्म हिन्दुओं-का और इस्लाम धर्म मुसलमानोंका होगा। यह भारतीय भाषाके ऊपरसे कलङ्ककी काई धोकर उन्हें राष्ट्रीय उत्थान और भारतीय संस्कृतिके पुनरुज्जीवित करनेका साधन बना-वेगा। इसकी धारणा है कि जीवनकी शिक्षा पूर्ण करनेके लिये पश्चिमी विज्ञानको पढ़ना जितना आवश्यक है, एशियाई संस्कृति-का अध्ययन करना भी उतना ही आवश्यक है। राष्ट्रकी सच्ची शक्तिका पता लगानेके लिये संस्कृत, अरबी, फारसी, पाली तथा मागधी भाषाके समुद्रको मथ डालना पड़ेगा और उसमेंके छिपे रत्नको निकालकर बाहर करना पड़ेगा। केवल प्राचीन संस्कृति-की छानबीन करके नये अनुभवोंकी सहायतासे एकदम नयी प्रणालीकी स्थापना की जायगी। जो भिन्न भिन्न संस्कृतियां भारतमें आबसी हैं, जिनका भारतीय जीवनपर प्रभाव पड़ता है. और इस भूमिका जिनपर प्रभाव पड़ा है, उन सबका समन्वयकर एक नई संस्कृतिकी स्थापनाका उद्योग किया जायगा। यह समन्वय स्वदेशी तरीकेसे किया जायगा जहां प्रत्येक संस्कृतिका निर्दिष्ट स्थान रहेगा। इस समन्वयका आधार अमरीकाका सम्मिश्रण नहीं रहेगा जहां समताका भाव प्रबल न होकर सबको दबा लेता है और उसीमें मिलकर रहनेके लिये दुर्बलों और कमजोरोंको वाध्य करता है। यही कारण है कि इस विद्यापीठमें सभी धर्मों की शिक्षा देनेकी योजना की गई है। इस प्रकार हिन्दुओंको कुरान और मुसलमानोंको हिन्दू शास्त्रोंका

मर्म मालूम हो जायगा। यदि विद्यापीठने किसी चीजका बहिष्कार किया है तो वह छूआछूतकी समस्या है जिसके अनुसार किसी जातिविशेषको हम सदाके लिये अस्पृश्य मान लेते हैं। हिन्दुस्तानी (राष्ट्रभाषा) एशियनाइज्ड उर्दू की शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है? स्वतन्त्रताके भाव धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक तथा व्यवसायिक शिक्षा द्वारा छात्रोंके मनमें भरे जायँगे, क्योंकि व्यवसायिक शिक्षा बिना आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं आ सकती और बिना आर्थिक स्वतन्त्रताके मर्यादाकी रक्षा नहीं हो सकती। इस विद्यापीठके द्वारा देहातों और नगरोंमें राष्ट्रीय प्रारम्भिक और उच्च विद्यालयोंको स्थापनाकी योजना की जायगी, जिससे शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा प्रचार सबमें हो जाय। शिक्षाका माध्यम गुजराती भाषा बनायी गयी है इससे शिक्षामें बड़ी सुविधा हो जायगी और शिक्षित तथा अशिक्षितका भेदभाव तुरत मिट जायगा। प्रत्येक व्यक्तिको व्यवसायिक शिक्षा देकर तथा व्यवसायियोंको शिक्षा देकर धनका अमर्यादित बटवारा सीमित हो जायगा और इस तरह सामाजिक भेदभाव बहुत अंशोंमें दूर हो जायगा। सरकारी विद्यालयोंमें दो भीषण दोष रहे हैं, एक तो इनकी देखरेखका भार विदेशियोंके हाथमें रहा है और भविष्य जीवनकी मरीचिकाका इसमें प्रबल प्रलोभन रहा है। गुजरात विद्यापीठने सरकारके साथ असहयोगकर इन दोषोंको एक साथ ही दूर कर दिया है। यदि इस विद्यापीठके संस्थापक और सञ्चालक इस नीतिपर तबतक अड़े रह गये जबतक कि राष्ट्रीय

सरकारकी स्थापना नहीं हो जाती तो उन्हें राष्ट्रीय आवश्यकता और राष्ट्रीय आदर्शका पूरा पता लग जायगा। आइये हम लोग ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह इस विद्यापीठके सञ्चालकोंका विश्वास अटल रखे और जिस झण्डेको इन्होंने खड़ा किया है उसे कायम रखनेकी इन्हें शक्ति दे।

——:*:——

देशी भाषा।

——:*:——

(अप्रैल २१, १९२०)

जो लोग इस वर्षके साहित्य सम्मेलनमें उपस्थित थे उन्हें भली भांति विदित हो गया होगा कि हमारी वर्तमान जागृति केवल राजनैतिक क्षेत्रमें ही परिमित नहीं है। इस तरहके साहित्यिक जलसोंमें भी लोगोंने जो उत्साह दिखाया है इससे लोगोंके मानसिक परिवर्तनका पूरा पता लग जाता है। आज हम लोग मातृभाषाको राष्ट्रीय जीवनमें उचित स्थान देने लग गये हैं। राजा राममोहनरायने भविष्यवाणी की थी कि किसी समय सारा भारतवर्ष अंग्रेजी भाषाभाषी हो जायगा। आज उनकी भविष्यवाणीके साक्षी कितने ही उज्वल रत्न (?) भारतीय गगनमण्डलमें देदीप्यमान हो रहे हैं। उस सुधारक वीरकी आत्मा आज भी कितनोंके हृदयमें वही भाव लेकर प्रतिविम्बित

हो रही है। हमारे देशके कितने ही प्रधान पुरुष चटपट यह कह डालते हैं कि अंग्रेजी भाषाको ही लोग राष्ट्रीय भाषा बना ले। और अपने मतके प्रतिपादनमें ये लोग कचहरियोंका प्रमाण उद्धृत करते हैं कि कचहरियोंमें अंग्रेजी भाषा प्रचलित है। पर वे लोग इस बातपर क्षणभरके लिये भी नहीं विचार करते कि अंग्रेजी भाषाकी वर्तमान अवस्था हम लोगोंके लिये प्रतिष्ठाकी बात नहीं है और स्वतन्त्रताके वायुका पान करनेके लिये यह उपयुक्त भी नहीं है। केवल इनेगिने कुछ सौ आदमियोंकी सुविधाके लिये करोड़ों आदमियोंको विदेशी भाषा सीखनेके लिये प्रेरित करना कितनी बेवकूफीकी बात है। हमारे प्राचीन इतिहाससे उदाहरण पेश किया जाता है कि शासन व्यवस्थाको सुदृढ़ तथा परिपक्व बनानेके लिये किसी माध्यम भाषाका होना आवश्यक है। माध्यमकी आवश्यकतापर तो किसी तरहका इतराज नहीं उठाया जाता। पर वह माध्यम, अंग्रेजी नहीं हो सकती। सरकारी कर्मचारियोंको देशी भाषाको सीखना पड़ेगा और उसीको स्वीकार करना पड़ेगा। दूसरा कारण—अंग्रेजी भाषाको माध्यम बनानेके पक्षमें—यह पेश किया जाता है कि साम्राज्यके साथ भारतका संबन्ध ही इस तरहका है कि उसे अंग्रेजी भाषाको माध्यम बनाना पड़ेगा। यह दलील स्पष्ट शब्दोंमें इस तरह रखी जाती है कि साम्राज्यकी अन्य प्रजाके लाभके लिये जिनकी संख्या १२ करोड़के लगभग है—३१ करोड़ भारतवासियोंको अंग्रेजी भाषा स्वीकार करनेके लिये वाध्य किया जाय।

इस विषयपर विचार करते समय सबसे पहले यह बात सोचनी चाहिये कि आज १५० वर्षोंसे अंग्रेजी भाषाका प्रचार हो रहा है पर आज लौं भी अंग्रेजी भाषा माध्यमका स्थान नहीं ग्रहण कर सकी है। हां हमारे नगरोंमें टूटीफूटी अंग्रेजी भाषाका प्रवेश अवश्य हो गया है। जो लोग बम्बई और कलकत्ताके समान बड़े बड़े नगरोंमें रहकर राजनैतिक और राष्ट्रीय प्रश्नोंपर विचार करते हैं उनकी आंखोंमें यह भले ही चकाचौंध पैदा कर दे पर उनकी संख्या है ही कितनेके बराबर ? भारतकी समस्त आबादी-के २.२ हिस्सा वे होते हैं। दूसरी बात—जिसपर अंग्रेजी भाषाके पक्षपातियोंको विचार करना चाहिये वह—यह है कि भारतकी प्रत्येक प्रान्तीय भाषा अधिकतर आपसमें एक दूसरेसे मिलती जुलती हैं ? इसका परिणाम यह होगा कि मद्रास प्रान्तके अतिरिक्त सभी स्थानोंमें हिन्दी माध्यम बनाई जा सकती है। इस तरहकी सुविधा आंखोंके सामने होते हुए तथा राष्ट्रीय जागृतिको देखकर हम अंग्रेजीको माध्यम बनानेकी चर्चा कैसे कर सकते हैं ?

इस प्रश्नके निपटारेसे ही देशी भाषाओंका प्रश्न हल हो जाता है। हमारी शिक्षा प्रणालीमें अंग्रेजी भाषाको देशी भाषाओंसे उच्च स्थान दिया गया है। यह कैसी अप्राकृतिक घटना है। अंग्रेजी भाषाके पक्षपातियोंका मत है कि छोटीसे छोटी अवस्थामें ही अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम बना देना चाहिये। इसके लिये ये लोग उदाहरण पेश करते हैं कि विदेशोंमें छोटी

उम्रके बालक भाषाको बड़ी आसानीसे सीख लेते हैं। इसका विरोध करते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशनने लिखा है :—"विदेशोंकी बात एकदम भिन्न है। वहांपर बालकोंके इर्दगिर्द वेही लोग रहते हैं जो सदा उसी भाषाका प्रयोग करते हैं जिसे बालक सीख रहा है। पर यहां बात एकदम उलटी है। सिवा शिक्षकके उस भाषासे अन्य सब लोग अनभिज्ञ रहते हैं अर्थात् स्कूलके दर्जेके सिवा बालकको फिर उस भाषाके सुनने और बोलनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। संक्षेपमें विदेशोंमें तो एकको भाषाका ज्ञान करानेके लिये अनेकों हैं पर यहांपर अनेकोंको भाषाका ज्ञान करानेके लिये वह एक है। और कक्षाओंमें शिक्षाका जो तरीका है उसको सफलता पूर्वक चलानेके लिये बड़े अनुभवकी आवश्यकता है।" हम लोग इस बातपर सदा जोर देते आये हैं कि देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देनेसे हमारी शिक्षाका व्यय भी घट जायगा। हर्षके साथ लिखना पड़ता है कि इस बातको कमीशनने भी स्वीकार किया है। फरवरी ११ के अंकमें हमने इस विषयपर लिखा था कि कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशनकी सिफारिशें हमें एक कदम और आगे बढ़नेके लिये उत्साहित करती हैं। इसके बाद देशी भाषाओंके प्रयोगकी विश्वविद्यालयोंमें भी विधि होनी चाहिये। सेडलर कमीशनने अपनी सिफारिशोंमें लिखा है कि मैट्रिक्यूलेशन तक तो देशीभाषामें शिक्षा दी जानी चाहिये पर कालेजकी शिक्षाके लिये उसने भी देशी भाषाओंकी सिफारिश नहीं की है। भविष्यके

लिये उसने दोनों भाषाओंके प्रयोगकी सलाह अवश्य दी है। पर आगे चलकर वे लिखते हैं :—"भविष्यके विषयमें अभीसे कुछ तै कर देना हम लोग ठीक नहीं समझते। आज हम लोग इस विषयमें कुछ नहीं कह सकते कि भविष्यमें बंगला भाषाके प्रयोगकी अभिलाषा लोगोंके हृदयोंमें प्रबल हो उठेगी अथवा कोई एक माध्यम बनाकर वे लोग समस्त भारतकी जनताका उपकार करेंगे और उसीका प्रयोग विज्ञान और साहित्यमें करेंगे।" यद्यपि कमीशनके सामने जो गवाहियां पेश की गई थीं उनके अनुसार कालेजोंमें देशीभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेकी सिफारिश वे नहीं कर सकते थे तथापि उन गवाहियोंमें ऐसी भी कोई बात नहीं थी जिसके द्वारा वे दोनों भाषाओंके प्रयोगकी सिफारिश करते। इस प्रकार यद्यपि कमिश्नरोंके प्रश्नोंके उत्तरसे भविष्यके लिये कोई भी निर्दिष्ट मार्ग नहीं बनाया जा सकता तो भी उससे इतना तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि अभीसे विश्वविद्यालयमें बंगलाका प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिये और धीरे धीरे इसे सर्वव्यापी (कलकत्ता विश्वविद्यालयमें) बना देना चाहिये। इस तरहकी आयोजनाके लिये १६१५ में बड़ी व्यवस्थापक सभामें प्रयत्न किया जा रहा था।

कमिश्नरोंने भिन्न भिन्न बयानोंकी जो व्याख्या की है यदि हम उसपर विचार करें तो उनके कथनकी सार्थकताको हम भलीभांति समझ सकते हैं। उन्होंने गवाहोंसे निम्न लिखित सवाल किया था :—

"मैट्रिक्यूलेशनके ऊपर सभी कक्षाओंकी शिक्षा और परीक्षाका माध्यम अंग्रेजी भाषा होना चाहिये। इस सम्बन्धमें आपका क्या मत है?"

इस प्रश्नका उन्हें जो उत्तर मिला उसका विवरण उन्होंने इस प्रकार प्रकाशित किया है :—

(१) १२६ गवाहोंने उपरोक्त मतका समर्थन किया।

(२) २६ गवाहोंने साधारण परिवर्तन चाहा।

(३) ६८ गवाहोंने अंग्रेजी और देशी भाषा दोनोंके प्रयोगकी सिफारिश की कि चाहे एक ही कालेजमें दोनोंका प्रयोग एक साथ हो या दो समान कालेजोंमें इनका पृथक् पृथक् प्रयोग हो।

(४) ३३ गवाहोंने कहा कि धीरे धीरे अंग्रेजीके स्थानपर देशी भाषाका प्रयोग होना चाहिये और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये शिक्षाका क्रम भी तदनुसार अभीसे हो जाना चाहिये।

(५) ३७ गवाहोंने इसका एकदमसे विरोध किया।

(६) ६ गवाह तो इसे अलग ही नहीं कर सकते थे।

इस तरह कुल जोड़ देनेसे विदित होता है कि १५५ गवाहियां तो अंग्रेजीको माध्यम बनानेके पक्षमें है और १३८ गवाहोंका मत है कि जल्दी या देरमें देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना चाहिये। इस संख्यासे उन्हें जो देशी भाषाओंके प्रयोगके पक्षपाती हैं—एक तरहका प्रोत्साहन मिलना चाहिये। जो लोग अंग्रेजी भाषाके पक्षपाती हैं उनमें भी बहुतसे लोग

अंग्रेजी भाषाका पक्ष इस लिये करते हैं कि देशी भाषाओंमें पाठ्य पुस्तकोंका अभीतक उचित प्रबन्ध नहीं है। इससे यह विदित हुआ कि ये लोग भी सिद्धान्ततः देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेके विरोधी नहीं हैं। इन लोगोंका कहना केवल इतना ही है कि पहले तैरना सीख लीजिये तब पानीमें पैर रखिये। शेष गवाह—जो अंग्रेजी भाषाके माध्यम बनानेके पक्षपाती हैं उनकी भी गवाहियां इसी तरहकी हैं। पर उन्होंने अपनी गवाहियोंमें अंग्रेजीभाषाकी उपयोगितापर अधिक जोर दिया है। इन लोगोंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि देशी भाषा किसी भी अवस्थामें माध्यमके योग्य हो ही नहीं सकती। इनके गवाहियों-से स्पष्ट मालूम होता है कि ये देशीभाषाओंके विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। किसी समय हिन्दू दर्शनका एकमात्र माध्यम संस्कृत भाषा थी। पर कुछ उत्साही विद्वानोंने दर्शन शास्त्रमें देशीभाषा द्वारा प्रवेश किया और इस तरह हिन्दू दर्शन शास्त्रको साधारण जनता तक पहुंचाया। क्या इस तरहके संगठनकी भावनाओंके आधार पर आज हम विज्ञानके क्षेत्रको भी देशी भाषाओं द्वारा खनखोद नहीं सकते जैसा कि एक बार दर्शन शास्त्रके सम्बन्धमें उन विद्वानोंने किया था? देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेमें जो लोग आशंका और कठिनाई अनुभव कर रहे हैं उनके सामने जापानका उदाहरण उपस्थित किया जा सकता है। सन्त पाल कैथिड्रल कालिजके प्रिन्सिपल रेवरेण्ड ई० एस० हालैण्डने अपने बयानमें कहा है:—देशी भाषाके

प्रयोगसे ही जापानने जो शिक्षा प्रणाली स्थापित की है उसका पश्चिमी जातियां पर्याप्त आदर करती हैं।" माडर्न रिव्यू-के सम्पादक श्रीयुत रामानन्द चटर्जीका बयान और भी पोषता है। उन्होंने कहा था :—"देशी भाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना इतना आवश्यक है कि उसको किसी भी प्रकार टाला नहीं जा सकता। जो कुछ एतराज किये गये हैं उनका स्थायी महत्व कुछ भी नहीं है क्योंकि जिन भाषाओंको लोग आज सर्वोच्च स्थान देनेके लिये तैयार हैं किसी समय उनकी भी यही दशा थी। उनकी उन्नति प्रयोगसे ही हुई और उसी तरह प्रयोगके द्वारा हमारी भाषाकी भी उन्नति हो सकती है।" इस तरह हम देखते हैं कि यद्यपि सेडलर कमीशनके सामने देशी भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बना देनेके पक्षमें गवाहियां नहीं हैं तोभी इससे भविष्यके लिये उज्वल प्रकाश दिखाई देता है। एक समय वह भी था जब लोगोंके ध्यानमें यह बात एकदमसे नहीं समाती थी कि देशी भाषा भी कभी शिक्षाका माध्यम बन सकती है। आज वह समय आगया है कि अविश्वास तो एकदमसे उठ गया है। धीरे धीरे विश्वास भी दृढ़ हो रहा है। दो विश्वविद्यालयोंने देशी भाषाके प्रयोगका भी साहस किया है। पूनाकी महिला विद्यापीठ तथा हैदराबादका उस्मानिया विद्यापीठने एकमात्र देशी भाषाको ही शिक्षाका माध्यम बनाया है। कितने लोग उनकी उन्नतिकी ओर दत्तचित्त होकर देख रहे हैं। इस प्रसंगमें जस्टिस अब्दुर्रहीमने कहा था कि यदि इनकी सफलता हो गई

तो देशी भाषाओंको शिक्षाका माध्यम बनानेका प्रश्न हल हुआ समझिये। काशी विश्वविद्यालयके गत अधिवेशनके अवसर पर पण्डित मदनमोहन मालवीयने—जो उस विद्यालयके वाइस चांसलर हैं—भारतके समस्त देशीभाषाओंके पण्डितोंकी सभा की थी। हमें पूरी आशा है कि इस तरहके प्रयाससे भाषाके माध्यम बनानेका प्रश्न और भी जोर पकड़ता जायगा।

ब्रिटिश शासन प्रणालीके अन्तर्गत प्रान्तोंका जिस प्रकार बटवारा किया गया है उससे भी देशी भाषाके प्रश्नपर हानि पहुंच रही है। यदि प्रन्तोंका संगठन भाषाके अनुसार हो जाय तो विद्यालयोंकी शिक्षामें भाषाका प्रश्न बहुत जल्दी हल हो सकता है।

हमने ऊपर तीन बातें बतलाई हैं जो देशी भाषाके प्रश्नको हल करनेमें सहायक हो सकती हैं। यदि हमलोग अभीसे इस प्रश्नको हल करनेमें न लग जायंगे तो हमारे शिक्षित पुरुषों और स्त्रियों, जातियों और जन समूहोंमें जो भेदभाव उठता जा रहा है उसे हम किसी तरह भी नहीं मिटा सकेंगे। यह भी निर्विवाद है कि जबतक शिक्षाका माध्यम देशी भाषायें न हो जायंगी, मौलिक विचारोंका अविर्भाव नहीं हो सकेगा।

फ्रांसकी जागृतिसे एक सबक

(जुलाई २८, १९१०)

इङ्गलैण्ड सदासे विदेशोंसे माल लानेके लिये सदा अपनी जहाजोंका प्रयोग करता आया है। इसी प्रकार ग्रीक और लाटिन सभ्यताका अपने घरमें प्रचार करनेके लिये उसने अपनी ही भाषाका प्रयोग किया था। और इसी प्रकार इङ्गलैण्ड उन्नत हुआ। अन्य यूरोपीय भाषाओंकी भी इसी तरह उन्नति हुई। पर फ्रेंच भाषाकी दूसरी ही अवस्था थी। १६ वीं सदीतक उसमें देहातीपन भरा था। साहित्यके शब्दाडम्बर लैटिन और ग्रीक भाषासे ही प्रयुक्त होते थे नहीं तो देशी भाषाका प्रयोग बोल-चाल, देहातियोंके गाने और रजभटोंकी विरुदावलीमें प्रयुक्त होते थे। कला और विज्ञानके रूढ़ि शब्द, जोशीले शब्द तथा उत्तेजक कवितायें, नैयायिक तर्क सभीमें लाटिन भाषाका प्रयोग होता था।

लाटिन भाषाकी महत्तापर पहली चोट क्लेमेण्ट मैरेटने किया यह ह्यूगोनट सम्प्रदायका था। ह्यूगोनट होनेके कारण इसे दण्ड मिला था। पर यह दण्डाज्ञा अनुपकारी न होकर इसके लिये उपकारी सिद्ध हुई। इस ज़मानेमें इसने अपना साहित्यिक विकास उत्तम रीतिसे किया। इसका सम्प्रदाय मुलायम, नर्म तथा लचीली भाषाके लिये विख्यात हो गया। इसके बाद

रन्सार्ड सम्प्रदाय आया। इस सम्प्रदाय या दलका नाम "प्लीड" था। इस सम्प्रदायने अन्य भाषाओंमें से शब्दको ढूंढ ढूंढकर अपनी भाषामें मिलाया और उसे साहित्य, कविता तथा विज्ञानके योग्य बनाया। इस तरह खिचड़ी पकाकर रन्सार्डने जो कविता रची, उसकी सुन्दरता, सरसता और मनोहरताको पुरानी फ्रेंच भाषा नहीं पा सकती थी क्योंकि उसमें शब्दोंका अभाव था। रन्सार्डने अपने लिये इसी तरहकी भाषाका प्रयोग किया। पर इस साहस और प्रयासका फल उन्हें विचित्र सिक्केमें मिला। दो शताब्दी तक उनके इस खिचड़ी पकानेकी हंसी उड़ायी जाती थी, लोग उनपर हंसते थे और बोलियां बोलते थे। इसी युगमें साहित्यके सभी अंगोंमें,—जैसे नाटक, नाटकीय कविता, पद्य, गद्य, इतिहास,—परिवर्तन हुआ और यह परिवर्तन विचित्र तथा अतिशय शीघ्रगामी था।

अब तक धार्मिक बातोंमें सम्पूर्णतः लाटिन भाषाका ही प्रयोग होता था। उसी समय प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायने यह बन्धन तोड़ा। उन्होंने फ्रेंच भाषामें धार्मिक शिक्षा देना आरम्भ किया। इससे जनसमुदाय इनके धर्मका मर्म जानने लगा। दर्शनशास्त्रमें भी इसी समय परिवर्तन हुआ। इस क्षेत्रमें पहला प्रयास टामसका था। सबसे पहले उसीने फ्रेंच भाषामें लाजिक लिखी। विज्ञानकी तरफ भी लोगोंने उदासीनता नहीं दिखलाई। पाटर, बर्नार्ड, पैलिसी, आदि विद्वानोंने वैज्ञानिक शब्दोंके गढ़नेमें भी पूरी तत्परता दिखाई। सोलह वर्ष तक अनवरत

परिश्रम करनेके बाद, अनेक तरहकी कठिाइयोंका सामना करनेपर उन्हें यह प्रसाद् मिला कि वैज्ञानिक भाव व्यक्त करनेके लिये भी फ्रेंच भाषा ठीक और उपयुक्त हो गई। इस प्रकार इस जाग्रत युगमें फ्रेंचभाषाको साहित्यिक रूप देनेके लिये इतना घोर प्रयत्न किया गया और यह काम इतनी शीघ्रता और तेजीसे निस्पन्न हुआ कि मैलहर्ब तथा उसके वर्गने इस पर इन लोगोंको बनाया था और भीषण आक्षेप किया था।

फ्रांसके साहित्यिक विकाससे हमें यही शिक्षा मिलती कि जिन लोगोंने अपने साहित्यके निर्माणमें तत्परता और पूर्ण उत्साह दिखाया उनका साहित्य दूसरी उच्च भाषाके चक्करसे बच ही नहीं जाता बल्कि उसीमेंसे सुसम्पन्न और समृद्ध होकर निकालता है। भारतकी देशी भाषाओंके सम्बन्धमें १५ वीं सदीका इतिहास भी यही बतलाता है। कुछ कवियों और सन्तोंने इसी तरहका प्रयासकर धार्मिक और दार्शनिक विषयोंका इसमें समावेश किया और इस तरह इसकी मर्यादा बढ़ायी और साथही विस्तार बढ़ाया। गुजराती भाषाको देहातीपनसे हटाकर साहित्यिक क्षेत्रमें नियुक्त करनेका सारा श्रेय स्वामी प्रेमानन्दजीको है। इस प्रकार हमारे पूर्वजोंने देशी भाषा द्वारा ही सभी उपयुक्त ज्ञान प्राप्त किया था और हम लागोंके लिये अतुल सम्पत्ति छोड़ गये थे। क्या इस समय हमें यही उचित है कि विदेशी भाषाके ज्ञानकी प्रकर्षताके प्रलोभनमें आकर हम उसको चकाचौंधमें अन्धे हो जायं,

उस बपौतीको छोड़ दें और अपनी देशी भाषाओंको केवल साधारण दैनिक दिनचर्याके लिये ही रहने दें। जब तक हम अपनी देशी भाषाओंको अपनी आवश्यकताके योग्य नहीं बना लेते तब तक हमारा साहित्यिक निर्माण बालूकी भीत होगी जो किसी समय भी ढह सकती है।

कूपमण्डूक

(नवम्बर ५, १६२०)

मद्रास विश्वविद्यालयके वार्षिक उपाधि वितरणके अवसर पर जस्टिस सर अब्दुर्रहीमने जो भाषण किया है उसपर टीका करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इसका कारण उस व्याख्यानकी गम्भीरता नहीं है बल्कि भाषा और अवसरकी गम्भीरता है। और चूंकि इस तरहकी बातें जस्टिस अब्दुर्रहीम सदृश व्यक्तिके मुंहसे निकली हैं। सम्पूर्ण भारतवर्षके लिये एक भाषाकी आवश्यकता बतलाते हुए उन्होंने कहा था:— "बहुधा कहा जाता है कि भारतीयोंके लिये अंग्रेजी भाषा शिक्षाका माध्यम होकर कभी सफल नहीं हो सकती। पर प्रत्यक्ष प्रमाण तो इसके सदा विपरीत है। उदाहरणके लिये ठाकुर रवीन्द्रनाथको ही ले लीजिये। दार्शनिक भावोंको, अपने मनोवृत्तियोंको तथा अपने ख्यालातोंको जिस सौम्य तथा सरल पद्य

भाषामें उन्होंने लिखा है क्या अंग्रेजीके अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषा द्वारा यह सम्भव था ? यद्यपि यह कहा जाता है कि अपने कुछ ग्रन्थोंको उन्होंने बंगलामें लिखकर तब अंग्रेजी अनुवाद किया है।" जिस समय जस्टिस अब्दुर्हीमने यह भाषण किया और अंग्रेजीको शिक्षाका माध्यम बनानेके पक्षमें स्थूल उदाहरणोंको पेश किया उस समय उन्हें यही आशा थी कि इसका विरोध कहींसे भी नहीं हो सकेगा और सभी इसके पक्षमें मत प्रगट करेंगे। पर हमें खेदसे लिखना पड़ता है कि हम इस मतसे सहमत नहीं हैं। हम आज यहां पर यही दिखानेके लिये तैयार हुए हैं कि सर अब्दुर्हीमकी भावना एकदम निराधार, निर्मूल और अपरिपक्व थी। उन्होंने डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका उदाहरण पेश किया है। पर उनका यह स्थूल प्रमाण भी भ्रमपूर्ण है। वास्तवमें सच बात यह है कि पहले पहल ठाकुर रवीन्द्रनाथने अपने कलमसे निकले प्रत्येक शब्दको—चाहे वे दार्शनिक रहे हों या पद्य साहित्य रहा हो—देशी भाषामें ही अङ्कित किया है और उसके बाद उनमेंसे कुछ एक को अंग्रेजी साड़ी पहना दी है पर इस अस्वाभाविकतामें रूपरङ्गका वह सौंदर्य और मीठापन नहीं आ सका है जो प्रकृत रूपमें था। पर इस प्रश्नका संबंध सीधा नहीं पड़ता। हम मान लेते हैं कि अंग्रेजी भाषा सबसे उन्नत है। यहां पर तो प्रश्न यह है कि क्या जनसमुदायके साथ भावविनियोगके लिये हम इसे अपना माध्यम बना सकते है ? इस प्रश्नका उत्तर जस्टिस अब्दुर्हीमके उपरोक्त भाषणमें विचित्र

तरहसे मिलता है। उन्होंने कहा था:—"भारतके सभी शिक्षित भारतीय परस्पर भावविनियोगमें अंग्रेजी भाषाका प्रयोग बड़ी सफलताके साथ करते हैं।" इस तरहका उत्तर ऐसे व्यक्तिके मुंहसे सुनकर आश्चर्य और विस्मय होता है जिसके बारेमें यह कहा जाता है कि इन्हें जनताका बड़ा अनुभव है। क्या जिस समय आप इन हजार शिक्षित भारतीयोंकी तुलना करने लगते हैं उस समय आप उन करोड़ों अशिक्षितोंकी दशा भूल जाते हैं, वे आपकी स्मृतिसे गायब हो जाते हैं। आगे चलकर उन्होंने जो कुछ कहा था उसे पढ़कर और भी आश्चर्य होता है। उन्होंने कहा था:—"यही नहीं दक्षिणमें अंग्रेजी भाषाका इतने जोरोंमें प्रचार हो रहा है कि साधारण मजूरतक वही भाषा बोलते हैं। इससे उन्हें बड़ी सुविधा मिलती जा रही है। शिक्षित समाजके घरोंके लड़के अभीसे दोनों भाषाओंका प्रयोग करने लगे हैं।" मजूरोंके सम्बन्धमें जस्टिस अब्दुर्रहीमने जो बातें कहीं हैं उनपर मेरा यही कहना है कि उन्हें विदित होगा कि दक्षिण देशोंके मजूरोंका दो जबर्दस्त दल मद्रास लेबरसंघ, नेगापट्टम मजूरसंघ है। इन संघोंके मजूर अंग्रेजी भाषासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इनपर अंग्रेजी भाषाका बोझ लादना नितान्त निर्दयता और अदूरदर्शिता होगी। इसके बाद उन्होंने कुछ घरोंके बच्चोंके दोनों भाषाओंके प्रयोगकी चर्चा की है। इसके सम्बन्धमें हम जस्टिस अब्दुर्रहीमसे पूछना चाहते हैं कि इस तरहके कितने घर हैं जहांके लड़के दोनों भाषाओंका प्रयोग

करते हैं। जहां तक हमारा अनुमान जा सकता है १० या १२ घरोंसे अधिक न होंगे जिनमें जस्टिस अब्दुर्रहीमकोसी शिक्षा दीक्षाका प्रबन्ध और प्रस्ताव होगा। हमें लिखते हुए खेद होता है पर लाचार होकर लिखना पड़ता है कि जस्टिस अब्दुर्रहीम सदृश व्यक्तिके लिये ही कहा जा सकता है कि "ये अपने ही देशमें विदेशी हैं।"

मद्रासमें अपील

(जनवरी २१, १९२०)

अमृतसर कांग्रेसकी अधिकांश कार्रवाई हिन्दुस्तानी भाषामें की गई। इससे मिसेज बेसेण्टको असन्तोष है और उन्होंने लिखा है कि कांग्रेसको प्रान्त विशेषकी संस्था बनानेका प्रयास किया जा रहा है, उसकी सर्वव्यापकता निकलती जा रही है। मिसेज बेसेण्टने भारतकी जो सेवायें की हैं उनके लिये मेरे हृदयमें बहुत सम्मान है। भारतमें होमरूलके भावको सर्वव्यापी बनानेमें जितना अधिक प्रयास मिसेज बेसेण्टने किया है और किसीने नहीं किया है। उनमें इस अवस्थामें भी परिश्रम, उत्साह और सङ्गठनकी इतनी जबर्दस्त शक्ति है कि हम लोग—जो अवस्थामें उनसे कहीं कम हैं—उनकी बराबरी नहीं कर सकते। अपनी

सारी शक्ति उन्होंने भारतकी सेवामें लगा दी। अपने जीवनका अधिक भाग उन्होंने भारतवर्षकी सेवामें लगा दी है और भारतवर्षमें उन्हें जो ख्याति मिली है उसकी तुलना केवल स्वर्गीय लोकमान्यकी ख्यातिसे ही की जा सकती है। पर इस समय उनके भाव कुछ ऐसे हो गये हैं, उनके मतमें कुछ इस तरहके परिवर्तन आ गये हैं जिनसे अधिकांश भारतवासी सहमत नहीं हैं और यही कारण है कि जनताकी दृष्टिसे वह कुछ गिर गई हैं। मुझे भी अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि मैं उनके इस मतसे सहमत नहीं हूं कि कांग्रेसकी कार्रवाई हिन्दी भाषामें निष्पन्न होनेसे वह प्रान्तीय संस्था हो जायगी और राष्ट्रीयताका भाव उसमेंसे जाता रहेगा। मेरी समझमें इस प्रकारकी धारणाको स्थान देकर मिसेज बेसेण्टने समझकी भारी भूल की है और मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि उनका ध्यान इस तरफ आकृष्ट करूं। १९१५ से सिवा एकके मैं सभी कांग्रेसमें उपस्थित रहा हूं। कांग्रेसकी कार्यवाहीके लिये अंग्रेजी भाषाका प्रयोग न करके हिन्दुस्तानी भाषाके प्रयोगके विषयमें मैं सदा कांग्रेसके भावोंका अध्ययन करता रहा। इस विषयमें मैंने हजारों प्रतिनिधियोंसे बातचीत की है। भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भी मुझे भ्रमण करनेका अच्छा अवसर मिला है। शिक्षित तथा अशिक्षित समुदायसे भी मैंने हिलमिलकर बातचीत किया है। इस विषयमें मेरा अनुभव मिसेज बेसेण्ट तथा स्वर्गीय लोकमान्यसे भी अधिक रहा है। इन लोगोंसे बातचीत

करनेपर मुझे जो अनुभव हुआ उससे मैं इसी परिणामपर पहुंचा हूं कि हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी और उर्दू का सम्मिश्रण ही राष्ट्रीय भाव विनियोगका माध्यम हो सकता है या राष्ट्रीय कार्यवाहियोंके लिये उपयुक्त भाषा हो सकती है। मैंने यह भी देखा कि आजतक कांग्रेसकी कार्यवाही देशी भाषामें न करके अंग्रेजी भाषामें करनेसे देशको घोर क्षति उठानी पड़ी है। मैं यह भी विश्वासके साथ कह सकता हूं कि मद्रास प्रान्तके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंमें अधिकांश संख्या उन्हीं लोगोंकी रहती है जो अंग्रेजी भाषासे हिन्दी भाषा कहीं सहजमें समझ लेते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आजतक कांग्रेसकी राष्ट्रीयता केवलमात्र दर्शनके लिये रही है। इसकी उपयोगिता तो राष्ट्रीय नहीं हो सकी थी। यदि इसी तरहकी कांग्रेस किसी दूसरे देशमें होती तो इसकी ख्यातिका अनुमान करके यही कहना पड़ता है कि वह राजनैतिक भावोंको दरवाजे दरवाजे बांध देती और देखती कि देशका प्रत्येक व्यक्ति उसी हवाका स्वांस लेता है क्योंकि जनताके सामने प्रायः सभी प्रकारके राजनैतिक प्रश्न देशीभाषामें हल किये जाते जिसे वे भलीभांति समझ लेते। इसलिये विगत कांग्रेसमें अन्य जो कुछ दोष या कामी रही हो पर इतना तो निर्विवाद है कि राष्ट्रका सच्चा प्रतिरूप था क्योंकि उसकी कार्यवाही जिस भाषामें की गई थी उसे अधिकांश जनताने समझा था। जनता मिसेज बेसेण्टके भाषणसे यदि घबरा गई थी तो इसका कारण यह नहीं था कि

मतभेद होनेके कारण वह उदासीन थी या उनका अपमान करना चाहती थी। नहीं, प्रधान कारण यह था कि उपयोगी और योग्यतापूर्ण होनेपर भी लोग उसकी भाषा नहीं समझ सकते थे और इसीसे शोरगुल मचाते थे। राष्ट्रीय जागृति जितना अधिक होती जायगी, उतनी ही जानकारी और शिक्षाकी अभिलाषा भी बढ़ेगी। उस अवस्थामें कोई भी वक्ता, चाहे वह कितना भी तेज और प्रसिद्ध क्यों न हो, अंग्रेजी भाषाका प्रयोग करके वह जनसमाजको शान्त नहीं कर सकेगा और न तो लोग उसकी बातें ध्यानसे सुनेंगे ही। इसलिये मैं मद्रासकी जनतासे इस बातकी प्रार्थना करता हूं कि राष्ट्रीय आवश्यकताकी पूर्त्ति करनेके लिये हिन्दुस्थानी भाषाका ज्ञान प्राप्त कीजिये। मद्रासके बाहरके प्रान्तके लोग कम या वेश हिन्दुस्तानी समझ सकते हैं। स्वामी दयानन्दने उत्तर भारतके अतिरिक्त भी हिन्दुस्तानी ही भाषाका प्रयोग किया था और उसीके मधुर रससे लोगोंको मोहित कर लिया था। इस भाषाको लोग बिना किसी प्रयासके समझ सकते हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि ३२ करोड़की आवादीमेंसे केवल ४ करोड़ लोग अर्थात् मद्रासी हिन्दुस्तानी भाषा नहीं समझ सकते। मुसलमानोंकी संख्या हमने छांट कर अलग कर दी है क्योंकि मद्रासके भी मुसलमान हिन्दी भाषा समझ जाते हैं। इस लिये प्रश्न यह है कि उस प्रान्तके ४ करोड़ निवासियोंका क्या कर्तव्य होना चाहिये? समस्त भारतकी सुविधाके लिये उन्हें हिन्दुस्तानी सीख लेना

चाहिये या केवल उनकी सुविधाके लिये २७ करोड़ जनताको अंग्रेजी सीखना चाहिये ? स्वर्गीय जस्टिस कृष्णस्वामीने इस बातपर जोर देकर कहा था कि भारतके लिये यदि कोई भाषा माध्यम हो सकती है तो वह हिन्दुस्तानी है। जहां तक मेरा अनुमान है इस समय ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो इसका विरोध करता हो। इन करोड़ों आदमियोंके लिये यह सम्भव नहीं है कि वे अंग्रेजीको अपनी शिक्षाका माध्यम बनावें और यदि यह सम्भव भी होता तो अभिप्रेत नहीं था क्योंकि यदि उच्च और विशिष्ट शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी बनी रहेगी तो उसका विस्तार जन समूह तक नहीं हो सकता। और यदि यही देशी भाषाओंमें होजायगा तो इसका प्रचार सहजमें हो जायगा। उदाहरणार्थ सर जगदीश चन्द्र बोसके अनुभवोंको बंगलासे गुजरातीमें अनुवाद करना उतना कठिन नहीं होगा जितना उसी विषयपर मिस्टर हक्सर्ल-के अनुभवोंको अंग्रेजीसे गुजरातीमें अनुवाद करनेमें होगा। तो इससे क्या अभिप्राय निकला कि मद्रासके नेतागण हिन्दु-स्तानीभाषा सीखनेका प्रयास करें। मेरे इस कथनका केवलमात्र अभिप्राय यह है कि मद्रासके वे लोग जो अपने प्रान्तके बाहर जाकर राष्ट्रीय काममें योग दान करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे आजसे ही अपना एक घन्टा समय हिन्दी भाषा सीखनेमें लगावें। इस तरह एक वर्ष तक पढ़ते रहनेके बाद ही हजारों मद्रासी हिन्दी भाषामें कांग्रेसकी

कार्यवाहीको मजेमें समझने लग जायंगे। मद्रासके अनेक प्रान्तोंमें हिन्दी शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया गया है, जहां निःशुल्क बिना किसी तरहकी फीस लिये ही, हिन्दी शिक्षा दी जाती है।

मैं श्रीमती एनी बेसेण्टसे भी प्रार्थना करता हूं कि जिस तरह समय समय पर वे न्यू इण्डिया पत्रमें अंग्रेजीके पक्षमें लिखा करती हैं उसी तरह मेरी इस प्रार्थना पर भी ध्यान दें।

हिन्दीकी आवश्यकता

(फरवरी २, १९२१)

असहयोगके कार्यक्रमको स्वीकार करके जिन विद्यार्थियोंने सरकारी विद्यालयोंका बहिष्कार किया है उनको मैंने दो आदेश दिया है। एक तो साल भर चरखा कातने और सूत तैयार करनेमें सन्नद्ध रहना तथा दूसरे हिन्दी भाषा सीखनेकी चेष्टा करना। मुझे इस बातसे अतिशय प्रसन्नता है कि कलकत्ताके छात्रोंने इस प्रश्नको उठा लिया है। बङ्गाल और मद्रास इसी दो प्रान्तमें हिन्दीका अधिक प्रचार नहीं है और इसके न होनेसे समस्त भारतवर्षसे वे भिन्नसे प्रतीत होते हैं। इस कमीके दो कारण हैं। बङ्गाल तो किसी अन्य देशी भाषाका सीखना या

पढ़ना अपने लिये अपमानजनक समझता है और मद्रासी लोग द्राविड़ जातिके होनेसे हिन्दी भाषा सहजमें सीख नहीं सकते हैं। यदि प्रतिदिन तीन घण्टा समय लगाया जाय तो प्रत्येक बङ्गाली दो मासमें और मद्रासी ६ मासमें हिन्दी भाषा मजेमें समझ सकता है। पर उतने ही समयमें अंग्रेजी भाषाका उतना ज्ञान न तो कोई बङ्गाली ही प्राप्त कर सकता है और न कोई द्राविड़ मद्रासी ही प्राप्त कर सकता है। और यदि अंग्रेजी सीख भी लिया जाय तो उसका उपयोग कितने लोगोंके साथ किया जायगा। गिनेगिनाये ही भारतवासी मिलेंगे पर यदि हिन्दुस्तानीका ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय तो समस्त भारतवर्षके साथ बातचीत करने और भावविनियोगकी सुविधा हो जाय। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि अग्रिम कांग्रेसमें मद्रास और बङ्गालके प्रतिनिधि हिन्दी भाषा समझनेके लिये तैयार होकर आवेंगे। हमारी सबसे बड़ी प्रतिनिधि सभा भी अपना प्रभाव अच्छी तरह नहीं डाल सकती जब तक वह उसी भाषाका प्रयोग न करे जिसे अधिकांश जनसंख्या समझ सकती हो। मैं मद्रासियोंको कठिनाईको भलीभांति समझता हूं और उसका पूरी तरहसे अनुभव करता हूं। पर मेरी समझमें देश प्रेमके सामने कोई भी कठिनाई किसी कामकी नहीं है।

साथ ही साथ मैंने इस बातकी भी सलाह दी है कि इस वष—अर्थात् जिस समय हम लोग बराबरीके लिये स्पर्धा कर

रहे हैं, विदेशी जुएको उतारकर स्वराज्यकी चेष्टा कर रहे हैं, लाचारीसे आत्मनिष्ठ होनेकी चेष्टाकर रहे हैं—अंग्रेजीकी पढ़ाई एकदम बन्द रहे। यदि हम अगली कांग्रेसतक वास्तवमें स्वराज्य लेना चाहते हैं तो हमें इसकी संभावनापर विश्वास करना चाहिये, उसके लिये जहांतक हो सके चेष्टा करनी चाहिये और उस तरहके प्रत्येक कामसे परहेज करना चाहिये। जिससे स्वराज्यके काममें किसी तरहकी वाधा पहुंचे या उसकी गति रुक जाय। इस तरह अंग्रेजी भाषाका ज्ञान प्राप्त करना हमारे मार्गमें किसी तरहसे सहायक नहीं हो सकता बल्कि कुछ न कुछ बाधा ही उपस्थित कर सकता है। जिस अंग्रेजी भाषाको हम लोग अपने विकासके लिये बाधा समझते हैं उसीके विषयमें कुछ लोगोंका मत है कि विना इसके हममें स्वतन्त्रताका भाव ही नहीं उत्पन्न हो सकता। इसे एक तरह का पागलपन समझना चाहिये। यदि उनका अनुमान सही है और विना अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता तो हम दावेसे कह सकते हैं कि स्वराज्य एक दूरका स्वप्न है। अंग्रेजी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय, राजनैतिक चालबाजियां तथा पश्चिमी सदाचार, संस्कृति और सभ्यताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है पर इतनेके लिये ही हमें उसे अनिवार्य बना देनेकी कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती। हमसे कुछ एक लोग ही उसका ज्ञान प्राप्त करके आवश्यकताको मिटा सकते हैं। वे ही लोग अन्तर्राष्ट्रीय कामोंको

सम्पन्न करेंगे और विदेशी साहित्य, दर्शन तथा विज्ञानसे उप-योगी बातें ढूंढ़ निकाल कर अपने देशवासियोंके समक्ष रखेंगे और उन सबका उन्हें परिचय देंगे।

अंग्रेजी भाषाका यही प्रयोग उचित कहलावेगा। पर वर्तमान समयमें अंग्रेजीभाषाने हमारे हृदयोंपर जबर्दस्ती आसन जमा लिया है और प्यारी मातृभाषाको नीचे रख दिया है। इस असमानता और विषमताका प्रधान कारण यह है कि हमारा अंग्रेजोंके साथ सम्बन्ध अप्राकृतिक तरीकेसे है। हमलोगोंको इस तरहका यत्न करना है जिससे हमारा पूर्ण विकास विना अंग्रेजी भाषाकी सहायतासे हो जाय। देशमें इस बातका प्रचार करना कि अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके विना स्त्री पुरुषोंको किसी सभा समाजमें मिलना जुलना कठिन है मानव समाजके साथ हिंसा करना है। यह भाव इतना पतित है कि इसे बर्दाश्त नहीं करना चाहिये। स्वराज्य पानेका एक शर्त यह भी है कि हमें अंग्रजी भाषासे छुटकारा पानेके लिये पागल हो जाना चाहिये।

अंगरेजी शिक्षाके दुष्परिणाम

—:*:—

(अप्रेल १३, १९२१)

[पुरी में ३१ मार्च १९२१ को एक विराट सभामें महात्मा-जीका भाषण हुआ था। अनन्तर श्रोताओंने महात्माजीसे जो प्रश्न किये उनके उत्तर इस प्रकार हैं :—]

प्रश्न—हमारे राष्ट्रीय जीवनकी जड़ अंग्रेजी शिक्षा है, अंग्रेजी शिक्षाके कारण ही स्पर्शास्पर्शका झगड़ा मिट सकता है तथा भिन्न भिन्न जातियोंमें ऐक्यभाव फैलाना इसी शिक्षाका मधुर फल है। इस दशामें क्या हम अंगरेजी शिक्षाको दुष्परिणाम-कारी कह सकते हैं ? क्या आप स्वयं, स्व० तिलक तथा राजा राममोहनराय जैसे बड़े बड़े नेता इसी शिक्षाके फल नहीं हैं।

उत्तर—बहुतेरे लोगोंका यही मत है। हमारे देश-भाई और अंगरेजोंके इस अज्ञान और दुराग्रह पर विजय प्राप्त करके ही हम स्वराज्यके युद्धमें जय प्राप्त कर सकते हैं। यह शिक्षा-प्रणाली अत्यन्त दुष्परिणामकारी है। इस प्रणालीको नष्ट करनेके लिये मैं तन, मनसे प्रयत्न कर रहा हूं। मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि अंगरेजी शिक्षासे अब तक हमारा किसी प्रकार कल्याण हुआ है। अब तक हमारा जो कुछ सुधार हुआ है वह इस शिक्षाके कारण नहीं, बल्कि किसी अन्य कार-

णसे ही हुआ है। मान लीजिये कि भारतमें अंगरेजोंका राज्य न होता तो क्या संसारके अन्य देशोंके साथ भारत न चलता ; और यद्यपि भारतमें मोगलशाही होती तोभी कई लोग साहित्य-के लिये अंगरेजीका अध्ययन अवश्य करते। वर्तमान शिक्षा प्र-णालीसे हम गुलाम बन जाते है। इस शिक्षासे अङ्गरेजी साहि-त्यमें अन्ध विश्वास न करनेकी योग्यता हम लोगोंमें नहीं आती। मेरे मित्रने इस विषयमें राजा राममोहनराय, स्व० तिलक तथा मेरा उदाहरण दिया है। मेरी बात जाने दो, क्योंकि मैं तो एक तुच्छ व्यक्ति हूं।

स्व० तिलक तथा राजा राममोहनरायको इस अङ्गरेजी शिक्षाका यदि संपर्क न होता तो वे लोग इससे भी अधिक बड़े लोग होते (ताली)। केवल तालीसे मैं आपकी अनुमति नहीं चाहता। मैं आपकी बुद्धि और विचार-शक्तिकी अनुमति चाहता हूं। मैं अङ्गरेजी शिक्षाकी निन्दा नहीं करना चाहता, मुझे उससे घृणा नहीं है। मै अङ्गरेजी शासनका अन्त करना चाहता हूं, किन्तु अङ्गरेजी भाषाका नहीं। राष्ट्रीय बोरकी तरह चाहे तो हम अङ्गरेजी पढ़ा करें। मेरी बात जाने दो, पर चैतन्य महाप्रभु, श्री शंकर, कबीर, नानक आदि साधु पुरुषोंके सामने राजा राममोहनराय और लो० तिलक कुछ भी चीज नहीं थे। उनके समान जनतापर इनका प्रभाव नहीं था। इन महानुभा-वोंकी तुलनामें राजा राममोहन तथा स्व० तिलक खद्योतके समान थे। जो कार्य स्वामी श्रीशङ्कराचार्य अकेले कर सके

उसे शिक्षितोंकी प्रचण्ड सेना भी न कर सकेगी। इसके मैं कई उदाहरण दे सकता हूं। क्या गुरु गोविन्दसिंह अंग्रेजी पढ़े थे? क्या गुरु नानककी तुलनामें भी कोई अङ्गरेजीदां भारतीय है? गुरु नानकने एक ऐसे सम्प्रदायकी स्थापना की जिसकी बहादुरी और स्वार्थत्यागकी कोई बरावरी नहीं कर सकता। क्या राममोहनराय, दलीपसिंहके बरावरीका एक भी महात्मा तैयार कर सकते। स्व० तिलक तथा राजा राममोहनके लिये मुझे अत्यन्त गौरव है, पर मेरा यह विश्वास है कि राजा राममोहन और तिलक भगवानको यदि इस अङ्गरेजी शिक्षाका सम्पर्क न होता और यदि वह नैसर्गिक रीतिसे शिक्षा पाये होते तो चैतन्यकी तरह उन्होंने भी बड़ा कार्य किया होता। यदि इस श्रेणीके लोग फिर भी उत्पन्न होंगे तो वह अङ्गरेजी शिक्षासे नहीं होंगे। मैं जानता हूं कि हिन्दुस्तानी और संस्कृत न पढ़कर मैंने अपना कितना बड़ा भारी नुकसान कर लिया है। इस अङ्गरेजी शिक्षाके परिणाम पर विचार करनेको मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं।

इस शिक्षासे हमारी बुद्धि नष्ट हो गई है और इस शिक्षाको देनेवालोंने हमें नपुंसक बना डाला है। हम स्वतन्त्रताकी धूपमें बिहार करना चाहते हैं, पर यह गुलामीकी शिक्षा-प्रणाली हमारे राष्ट्रको हतवीर्य कर रही है। अङ्गरेजी शासनके पहलेके जमानेमें हम लोग गुलाम नहीं बन गये थे। मोगलोंके शासन-काल में हम लोग किसी प्रकार स्वराज्यका उपभोग करते थे। अक-

बरके जमानेमें प्रताप जैसे शूर पुरुषका जन्म सम्भव हुआ, उसी प्रकार औरङ्गजेबके समय शिवाजी जैसे पराक्रमी पुरुष राज्य कायम कर सके। पर १॥ शताब्दीके ब्रिटिश शासन-कालमें क्या एक भी प्रताप या शिवाजीका जन्म हुआ है? आपके देशमें कई मांडलिक राजे हैं, पर इनमें प्रत्येकको पोलिटिकल एजेण्टके सामने सिर नीचा करना पड़ता है और ये उसकी गुलामी स्वीकार करते हैं। जब मैं नवयुवकोंको इन देशी नरेशोंकी शिकायत करते सुनता हूं तो मुझे उन पर करुणा आती है। इन बिचारोंकी दोनों ओरसे दुर्दशा होती है। जब कभी देशी नरेश कोई अनुचित कार्य करते हैं तो मैं उसका दोष विजयी ब्रिटिशोंको देता हूं। बिचारे देशी नरेश तो गुलामी शासन-प्रणालीके भक्ष्य हो रहे हैं। इस कारण मेरी आप सब लोगोंसे यही प्रार्थना है कि आपको भीख माँगनी पड़े तो कोई परवा नहीं, पर इस राक्षससे बचिये। दासतामें रहेनेकी अपेक्षा भीख माँगते माँगते मर जाना अच्छा है। हमें अपने देश पर अधिकार करनेकी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। इस समय देश किसके अधीन है? १ लाख अङ्गरेजोंके यह देश अधीन नहीं है, पर हम भारतीयोंने ही अङ्गरेजोंकी दासता स्वीकार की है। यदि अङ्गरेज लोग इसी क्षण इस देशसे चले जायँगे तो मैं एक आँसू भी नहीं बहाऊँगा। मैं अङ्ग-रेजोंसे नौकर या बराबरीके मित्रकी तरह सहायता करने कहता हूं। मैं उन्हें हमारी अनुमतिसे हम पर शासन न करने

दूंगा। वे अपना अधिकार जमानेके लिये हवाई जहाज तथा नौ-सेना या अन्य सेनाका चाहे जितना उपयोग करें, पर उनको इस कार्यमें हमारी अनुमति मिलने न पावे। जब भारतमें डाकुओंका बोलबाला था उस समय आपकी कितनी प्रतिष्ठा थी, उसे सोचिए। आपको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। भारतके स्वतन्त्र पुत्रकी मौत मरनेकी अपेक्षा और कौनसा अहोभाग्य हो सकता है। यह शिक्षा प्रणाली राक्षसी है। मैंने अपना जीवन इसी प्रणालीके नष्ट करनेके लिये दे रखा है।

अंगरेजी शिक्षा

—:-※-:—

(अप्रेल २७, १९२१)

एक मित्रने मेरे पास लिखा है :—"अंगरेजी शिक्षाकी उपयोगिता पर आपका जो मत है उसे अपने कटकके भाषणके आधार पर स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिये।" उस बातचीतकी रिपोर्ट मैंने अभीतक नहीं पढ़ी है पर मैं अपने मित्रकी आज्ञाका पालन उचित समझता हूं। यह मेरा पक्का और दृढ़ मत है कि जिस तरहसे अङ्गरेजी शिक्षा दी जाती है और दी गई है उसने अङ्गरेजी शिक्षित भारतीयोंको नपुंसक बना दिया है और उनकी

मानसिक शक्ति पर इतना जोर पड़ता है कि वह बेकार हो जाते हैं। उसके कारण हम लोग एक तरहके नकलची हो गये हैं। ब्रिटनके सम्बन्ध या सम्पर्कसे हममें जो बुराइयां आगई हैं उनमेंसे सबसे भीषण यही है अर्थात् देशी भाषाके स्थानपर अङ्गरेजी भाषाका प्रयोग। यदि राजा राममोहनराय और लोकमान्य तिलकको अङ्गरेजी भाषाद्वारा ही विषयका ज्ञान प्राप्त न करना पड़ा होता और अपने भावोंको अङ्गरेजी भाषाद्वारा ही न प्रगट करना पड़ा होता तो उन दोनों माहानुभावोंने जितना काम किया उससे कहीं अधिक काम किया होता। यदि उनकी शिक्षादीक्षा अप्राकृतिक तरीकेसे न व्यवस्थित होती तो वे अपने देश-वासियों पर कहीं अधिक प्रभाव डाल सके होते। यह निर्विवाद है कि उन्होंने अङ्गरेजी भाषाद्वारा ही अङ्गरेजी साहित्यके खजानेका आनन्द लिया पर यदि यह बात देशी भाषाद्वारा हुई होती तो उन्होंने और भी अधिक आनन्द प्राप्त किया होता। केवल अनुमोदक बन कर ही देशका उद्धार नहीं हो सकता। अनुभव कीजिये कि अङ्गरेजोंके पास बाइबिलका संशोधित और परिवर्धित मौलिक संस्करण न होता तो उनकी आज क्या दशा होती। मेरा यह पक्का मत है कि चैतन्य, कबीर नानक, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी, और राणा प्रताप राममोहन राय और लोकमान्य से कहीं उच्च कोटिमें थे। इस तरहका मुकाबिला करना उचित नहीं है। प्रत्येक महापुरुष अपनी विशिष्टताके कारण अपनी उत्कृष्टता घोषित करता है। पर परिणामोंसे

इनकी जांच की जाय तो यही कहना पड़ता है कि राममोहनराय तथा स्वर्गीय लोकमान्यका समाजपर प्रभाव उतना स्थायी नहीं था जितना कि उन महापुरुषोंका था। यदि उनके मार्गकी कठिनाइयोंका अनुमान करें तो यही कहना पड़ता है कि इन दोनों महानुभावोंमें असीम शक्ति थी और यदि इस तरहसे ये लोग "हैण्डिकैप" न हुए होते तो इनको कहीं अधिक सफलता मिली होती और इनका प्रभाव कहीं अधिक स्थायी होता। मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं कि यदि अंग्रेजीकी शिक्षा न प्राप्त हुई होती तो राममोहनराय अथवा लोकमान्यके हृदय या मस्तिष्कमें इस तरहके मौलिक विचारोंका जन्मही न हुआ होता। भारतवर्षमें जितने भ्रमात्मक ख्याल और भाव फैल रहे हैं उनमे सबसे प्रधान स्थान इस भावने प्राप्त किया है कि विना अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके स्वतन्त्रताके भाव उदय ही नहीं हो सकते और मौलिक विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकते। इस बातको सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि विगत ५० वर्षोंसे देशके सामने एक ही तरहकी शिक्षा प्रणाली रही है और भाव विन्यासके लिये एकही माध्यम भी रहा है। इसलिये हमारे पास कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिसके द्वारा हम यह दिखा सकें कि इन विद्यालयोंकी शिक्षाके विना हम किस अवस्थापर पहुंचे होते। हम लोग इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि जो समृद्ध अवस्था भारतकी ५० वर्ष पहले थी वह आज नहीं है। उसमें अपनी रक्षाकी शक्तिभी आज

उतनी नहीं है और उसे भी स्वतन्त्रतामें आज उतना जोश भी नहीं है। हमें यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब दूषित अंग्रेजी शासनप्रणालीका फल है। उसमें अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली और भी दूषित है।

जिस अवस्थामें अंग्रेजी शासन प्रणाली और शिक्षा प्रणाली-की योजना की गई उस अवस्थाका ही गलत अनुमान किया गया था क्योंकि अंग्रेजी शासकोंने देशी प्रणाली और व्यवस्थाको एकदमसे अनुपयोगी और निरर्थक समझा। और इसके परि-वर्धन और विस्तारमें भी पापाचरण किया गया है क्योंकि सदासे भारतीयोंकी शारीरिक और मानसिक स्थिति तथा आत्म-विकासको पंगु बनाकर रखनेकी चेष्टा की गई है।

—०:※:०—

अंग्रेजी शिक्षा

(जून १, १९२१)

डाकृर रवीन्द्रनाथ टागोरने असहयोग आन्दोलनके विरुद्ध अपना जो मत प्रकाशित किया है मैंने बड़ी नम्रताके साथ उसका उत्तर अलग एक लेखमें देनेका यत्न किया है। जब वह लेख मैं लिख चुका तो टागोर महाशयका वह पत्र मेरे देखनेमें आया जो उन्होंने शान्तिनिकेतनके मैनेजरको लिखा था। मुझे यह देखकर खेद हुआ कि वह पत्र गुस्सेमें और सच्ची बात जाने विना लिखा गया था। कविवर टागोर महोदयका इस बातपर

क्रोध करना स्वाभाविक ही है कि लण्डनमें कुछ विद्यार्थियोंने एक बहुत ही सच्चे अंगरेज, मिस्टर पियर्सनके व्याख्यानको शान्तिके साथ नहीं सुना। टागोर महाशयको इस बातसे भी बड़ा क्रोध हुआ है कि मैंने अपने देशकी बहिनोंको अंगरेजी न पढ़नेकी सलाह दी है। पत्रसे साफ प्रगट होता है कि कविने सच्ची बात जाने विना इस बातका अनुमान स्वयं अपनी कल्पनासे कर लिया है कि मैंने स्त्रियोंको यह सलाह क्यों दी है।

कितना अच्छा होता यदि वे विद्यार्थियोंके इस असभ्य व्यवहारका कारण असहयोग न बताते। अच्छा होता यदि उन्हें यह बात मालूम रहती कि असहयोगी लोग एण्ड्रूज और स्टोक्स जैसे अंगरेजोंकी पूजा करते हैं, असहयोगियोंने कर्नल वेजवुड, मिस्टर बेनस्पूर और एल्फ़र्ड नाइट नामक तीन अंगरेज सज्जनोंके व्याख्यानोंको नागपुर कांग्रेसमें कैसे आदर और धैर्यके साथ सुना, जब मौलाना मोहम्मद अलीको एक अङ्गरेज अफ़सरने दोस्ताना तौरपर अपने साथ चाय पीनेके लिये बुलाया तो उन्होंने उस निमन्त्रणको स्वीकार कर लिया, हकीम अजमलखांने, जो कि एक कट्टर असहयोगवादी हैं, अपने तिब्बी कालेजमें लार्ड और लेडी हार्डिंगकी तसवीर मुझसे खुलवायी और उस जलसेमें अपने बहुतसे अङ्गरेज मित्रोंको बुलवाया। कितना अच्छा होता यदि वे इस आन्दोलनके सच्चे और धार्मिक रूपके बारेमें सन्देह-रूपी भूतको एक लमहेके लिये भी अपने हृदयमें जगह न करने देते, और उन्हें इस बातका विश्वास हो जाता कि यह आन्दोलन

जातीयता और देशभक्ति इन दो पुराने शब्दोंके माने बदल रहा है और उनके अर्थको और भी व्यापक बना रहा है।

यदि उन्होंने अपनी स्वाभाविक कल्पनासे काम लिया होता और इस बातपर विचार किया होता कि मैं यह कभी मनमें नहीं ला सकता कि हिन्दुस्तानी स्त्रियोंकी मानसिक उन्नतिमें कोई रुकावट डाली जाय, मैं अंगरेजी शिक्षापर कभी आपत्ति नहीं कर सकता, मैं अपनी जिन्दगीभर स्त्रियोंकी पूर्ण स्वतन्त्रताके लिये लड़ा हूं—तो वे मुझपर वह अन्याय कभी न करते जो उन्होंने उस पत्रको लिखकर किया है और जो वह किसी अपने बड़ेसे बड़े दुश्मनके साथ भी जानबूझकर कभी न करते। रवीन्द्रबाबूको शायद यह नहीं मालूम है कि अंगरेजी आज कल सिर्फ़ इसलिये पढ़ी जाती है कि उससे रुपया पैदा होता है और राजदर्बार तथा राजनैतिक मामलोंमें उसकी कदर होती है। हमारे लड़के यह सोचते हैं और मौजूदा हालतमें उनका ऐसा सोचना ठीक भी है कि अंगरेजी जाने विना वे सरकारी नौकरी नहीं पा सकते। लड़कियोंको अंगरेजीकी तालीम सिर्फ इसलिये दी जाती है कि जिसमें उनके लिये विवाहका रास्ता खुल जाय और आसानीसे उनका विवाह हो सके। मुझे कई उदाहरण ऐसी स्त्रियोंके मालूम हैं जो अंगरेजी सिर्फ इसलिये पढ़ना चाहती हैं कि जिसमें वे अंगरेजोंसे उनकी जबानमें बातचीत कर सकें। मैं कई ऐसे पतियोंको जानता हूं जिन्हें इस बातका दुःख है कि उनकी स्त्रियां उनके तथा उनके मित्रोंके साथ अंगरेजीमें बात-

चीत नहीं कर सकतीं। मुझे ऐसे खान्दान मालूम हैं जहाँ अंगरेजी मातृभाषा बनायी जा रही है। सैकड़ों नौजवान इस बातपर विश्वास करते हैं कि विना अंगरेजी भाषा जाने हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता प्राप्त करना असम्भव सा है। इस विश्वासने समाजमें ऐसी जड़ पकड़ ली है कि बहुतसी हालतोंमें शिक्षाका अर्थ केवल अंगरेजीका ज्ञान समझा जाता है। मेरी रायमें तो यह सब बातें गुलामी और अधःपतनके चिह्न हैं। मैं इस बातको नहीं सह सकता कि प्रान्तीय भाषाएं कुचल दी जायं और उनकी उन्नतिकी ओर कुछ ध्यान न दिया जाय। मां बाप अपने बच्चोंसे या पति अपनी स्त्रीसे देशी भाषाको छोड़कर अंगरेजीमें पत्र व्यवहार करें। मैं समझता हूं कि मैं स्वतन्त्र वायुमें विचरण करनेका उतना ही पक्षपाती हूं जितना कि महाकवि टागोर। मैं यह नहीं चाहता कि मेरा मकान चारों ओर ऊंची दीवारोंसे घिरा हो और दरवाजे बिलकुल बन्द हों। मैं चाहता हूं कि सब देशोंकी सभ्यता और साहित्यकी वायु गृह मन्दिरमें स्वतन्त्रतासे सदा बहती रहे। पर मैं यह नहीं चाहता कि उस हवाके झोंकेसे मेरे पैर उखड़ जायं। मैं दूसरोंके मकानमें जबर्दस्ती अन्यायके साथ या भिखमंगे और गुलामकी तरह नहीं रहना चाहता। मैं झूठे अभिमान या झूठे सामाजिक लाभके ध्यानसे अपनी बहिनोंपर अंगरेजी पढ़नेका अनुचित बोझ नहीं डालना चाहता। मैं तो यह चाहता हूं कि हमारे जिन नवयुवकों और स्त्रियोंकी रुचि साहित्यमें हो वे अपनी इच्छानुसार जहां तक हो सके वहां तक

अङ्गरेजी और दुनियाकी दूसरी भाषाएं सीखें। फिर मैं उनसे यह चाहूंगा कि वे जगदीश बोस, प्रफुल्ल चन्द्रराय या स्वयं कवि टागोरकी तरह भारतवर्ष और संसारको अपनी विद्यासे लाभ पहुँचावें। पर मैं यह कभी न चाहूंगा कि एक भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषाको भूल जाय, उसकी ओर ध्यान न दे या उसके लिये शर्मिन्दा हो। मेरे खयालमें कभी यह बात आ भी नहीं सकती कि कोई स्त्री या पुरुष अच्छेसे अच्छे विचारोंको अपनी मातृभाषामें प्रगट नहीं कर सकता। मेरा धर्म कैदखानेका धर्म नहीं है। इस धर्ममें छोटेसे छोटे प्राणीके लिये भी जगह है पर इसमें अशिष्टता, असभ्यता जातिवर्ग या रंगका अभिमान स्थान नहीं पा सकता। यह महान आन्दोलन सुधार, पवित्रता, देशभक्ति और मनुष्य प्रेमका आन्दोलन है। मुझे अत्यन्त खेद है कि महाकवि टागोरने इस आन्दोलनका ठीक अर्थ नहीं समझा है। अगर वह धैर्य धरे रहेंगे तो उन्हें इस आन्दोलनमें कोई ऐसी बात न मिलेगी जिससे उन्हें अपने देशवासियोंके कामोंके लिये शर्मसे सिर नीचा करना पड़े। रवीन्द्रबाबूसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे उन फजूल बातोंको ही, जो इस आन्दोलनमें आ गयी हैं, ग़लतीसे असहयोग आन्दोलन न समझ बैठें। लंडन अथवा हिन्दुस्तानमें विद्यार्थियोंके बुरे व्यवहारसे असहयोग आन्दोलनके बारेमें कोई राय कायम कर लेना वैसी ही गलती है जैसी कि डायर या ओडायर जैसे अंगरेजोंके कामोंको देखकर कुल अंगरेज जातिके बारेमें कोई राय कायम कर लेना।

फर्ज कीजिये कि आज हिन्दुस्तानको स्वेच्छापूर्वक व्यवहार करनेकी आजादी मिल गई, मान लीजिये कि भारतने बाहरसे सस्तेसे सस्ता कपड़ा मंगाया, भारतने अपनी तथा विलायतकी परिस्थितिके विरोधपर विचार किये विना 'फ्री ट्रेड,' मुक्तद्वार—व्यापार, शुरू किया तो भारतकी दशा आजसे भी अधिक खराब हो जायगी।

भारतको यदि कोई मुफ्तमें पका कर खाना दिया करे तो जिस प्रकार उसके चूल्हे उखाड़ फेंकना अनुचित है उसी प्रकार चरखेको धता बता देना लाभकारक नहीं हुआ। 'चूल्हेमें कितना बखेड़ा! घर घर चूल्हा और घर घर आग, कितना अनर्थ! हर एक गृहिणीको सुबह हुई कि धुंआ खाना पड़ता है, कितना अत्याचार!' ऐसी मनोमोहक दलीलोंके धोखेमें आकर यदि हम चूल्हेको उखाड़ फेंके और हर गांवमें लोग भोजनालयमें ही भोजन किया करें तो कैसा हो? तो भारतके बच्चोंको दर दर भटकना पड़े, इसमें तिलमात्र सन्देह नहीं। चूल्हेका नाश अर्थशास्त्र नहीं, यह तो अनर्थवाद है। उसे तो शास्त्रका नाम भी नहीं शोभा देता।

चरखेको नष्ट करके हमने भूख और व्यभिचारको अपने घर बुला लिया है। चूल्हेको हटाना मानों मौतको बुलाना है। यदि हम चरखेकी पुनः स्थापना करें तो हमारे खण्डहरवत् हो जानेवाले टूटे-फूटे घर फिरसे दमक उठें।

इसलिए इस समय हमारा विशेष और सर्वोपरि धर्म

खादी है। खादीकी बिक्री घीकी तरह होनी चाहिए। हाथका कता सूत दूधकी तरह कीमती समझा जाना चाहिए। चरखा भी एक पूजनीय गाय है। जिस प्रकार गायके बिना घरकी शोभा नहीं उसी प्रकार बिना चरखेके घर शोभित नहीं। गाय दुहनेको घरके छोटे बड़े कोई हलका काम नहीं मानते। उसी तरह छोटे-बड़े सब लोगोंको चरखा कातनेमें कोई हलकापन न मानना चाहिये, बल्कि गृहस्थी-पन मानना चाहिए। गाय तो कभी कभी मार बैठती है, खली-भूसी चाहती है। पर चरखा तो ऐसा परोपकारी है कि वह कभी किसीको मारता नहीं और न कुछ खानेको ही मांगता है। उसके पाससे सफेद दूधकी तरह सूत जब चाहे तब ले लीजिए। गाय तो अपनी शक्तिके अनुसार दूध देती है; पर चरखा तो हमारी शक्तिके अनुसार दूध देता है। जो लोग चरखेकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें ऐसी ही खादी काममें लानी चाहिए जिसमें तानी और बानी दोनोंका सूत हाथका बना हो।

लोगोंको खादी बेचनेके लिये विज्ञापन देने पड़ते हैं। इससे मुझे शर्म मालूम होती है। हर एकको शरम मालूम होनी चाहिए। परदेशी अथवा मिलके बने कपड़ेका तो बिकना पर खादीका पड़ा रहना भारतके उदयका चिह्न नहीं कहा जा सकता। यह तो गेहूंको छोड़ कर भूसी खाने जैसी बात हुई है।

चरखेके उद्धारके विना गो-रक्षा प्राय: असम्भव हो गई है। भारतके किसानोंके पास धन नहीं। इससे वे अपने मवेशी बेंच डालते हैं अथवा बिचारे भूखों मारते हैं। भारतके आदमी जिस प्रकार दुर्बल हैं उसी प्रकार मवेशी भी दुर्बल हैं, क्योंकि भारतकी हालत दिवालियेकी सी हो रही है। भारतके जीवनको अवलम्ब है उसकी निजी पूंजी। इससे वह पूंजी दिनपर दिन कम होती जाती है। भारतको काफी प्राणवायु ही नहीं मिल रही है। इससे उसका दम घुट रहा है। भारतको कमसे कम चार मास बेकार रहना पड़ता है। इस प्रकार जिसे निरुद्यमी रहना पड़ता हो उसका नाश न हो तो क्या हो? भारतके करोड़ों लोगोंके लिये अपने खेतोंमें सहायक उद्यम चरखेका ही है, दूसरा नहीं।

४—स्वदेशी

स्वदेशी बनाम खादी

'स्वदेशी' शब्द अत्यन्त परिचित है। यह शब्द व्यापक है। ऐसे शब्दका असर अच्छा भी होता है और बुरा भी। समुद्र व्यापक है। वह न हो तो हमें प्राणवायु ही न मिले। परन्तु समुद्र अग्निकी तरह सर्वभक्षी है। उसमें गन्दगी तो इतनी मिलती रहती है कि उसका पार ही नहीं। पर फिर

भी वह विशुद्ध हा बना रहता है। किनारा छोड़ते ही उसका पानी आईनेकी तरह पारदर्शक दिखाई देता है। सूर्यकी किरणोंमें उसके फेन हीरे मोतीकी तरह चमकते हैं, हीरे मोतीका तेज उसके आगे तो कोई चीज ही नहीं। समुद्र पर नौका तैरती है। पर यदि उसका पानी कोई पी ले तो के हुए विना न रहे। पीनेका पानी तो कुएं बावलीमें, छोटे छोटे पोखरोंमें, मीठेसे मीठा मिलता है। इसी प्रकार स्वदेशी भी एक समुद्र है, महासागर है। उसके सहज पालनसे देश तैर सकते हैं। व्याख्यामें वह शब्द सुन्दर मालूम होता है। पर आज तो ऐसा है कि यदि हम स्वदेशी-समुद्रमें कूद पड़ें तो डूब जायं। आज तो यह हमारी शक्तिके बहारकी बात है।

स्वदेशीके नाम पर कोई कहते हैं हम तो स्वदेशी ताले ही बनावेंगे या लेंगे चबके नहीं। कोई राजेस चाकूको छोड़ कर ऐसा कुन्द चाकू जो नक्कूकी नाक पर भी नहीं चलता, पसन्द करते हैं अथवा नये चाकू बनानेका प्रयत्न करते हैं। कोई स्वदेशी कागज चाहता है, कोई रोशनाई, कोई होल्डर और कोई आलपीन। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी इच्छाके अनुसार स्वदेशी वस्तुकी चाह प्रगट करके उसकी भावनाका पोषण करता है। पर उससे देशका काम नहीं चलता। इससे तो स्वदेशीका काम और नाम दोनों भ्रष्ट होते हैं।

मकान बनाने वाला कारीगर पहले ही से झरोखे, खिड़-

कियां दरवाजे, सजावट आदिके फेरमें नहीं पड़ता। पहले तो वह बुनियाद डालता है। फिर दीवार चढ़ाता है और जब इमारत पूरी हो जाती है तब उस पर चूना कली चढाता है। यही हाल स्वदेशीकी रचनाका है।

हम अब स्वदेशीका रहस्य इस हद तक समझ गये हैं और उसका अमली फायदा इतना जान चुके हैं कि अब उसका सच्चा और विशेष अर्थ हम जान पाये हैं। स्वदेशीके नाम पर हमने आज तक अपनेको धोखा दिया, कुछ लौट फेर किये। पहली सीढीमें स्वदेशीके मानी हैं देशमें तैयार हुआ कपड़ा। फिर देखा कि विदेशी सूतका देशमें बना कपड़ा सच्चा स्वदेशी नहीं है। उससे देशको बहुत ही थोड़ा लाभ होता है ।

दूसरी सीढी यह हुई कि यदि सूत देशी मिलोंका ही कता हुआ हो और देशी मिलोंमें ही कपड़ा तैयार हो तो काम दे सकता है। पर अधिक अनुभव होने पर देखा कि इससे भी अभीष्ट अर्थ सिद्ध नहीं होता। उसका एक कुफल यह हुआ कि मिलके कपड़ोंका भाव खूब तेज हो गया और ऐसा समय आ गया कि कपड़ेकी तङ्गी पड़ने लगी।

तीसरी सीढी यह थी कि सूत चाहे भले ही देशी मिलोंका हो पर वह बुना हाथसे करघोंका पर जाना चाहिए। इससे भी हम स्वदेशीका मर्म नहीं समझ पाये थे।

अब मालूम होता है कि हम यह चौथी सीढी जान गये

हैं कि स्वदेशीके मानी हैं हाथ कते सूतकी हाथ बुनी खादी। इसको छोड़ कर दूसरी सब बातें गलत और निरर्थक हैं।

खादीका मतलब है चरखा। चरखे विना खादी कहांसे तैयार हो सकती है? खादी स्वराज्यकी तरह हमारा जन्म-सिद्ध हक है और आजन्म केवल उसीका उपयोग करना हमारा कर्तव्य है। जो इस कर्तव्यका पालन नहीं करता वह स्वराज्यको नहीं पहचानता।

स्वदेशीका और स्वराज्यका यही हेतु हो सकता है, कि उसके द्वारा भारतके भूखसे पीड़ित लोगोंको भोजन मिले, भारतसे दुर्भिक्षका काला मुंह हो जाय, भारतकी महिलाओंके सदाचारकी रक्षा हो, भारतके बच्चोंको दूधकी बूंदें मिलें।

जबतक भारतमें चरखा चूल्हेकी तरह सर्वव्यापी न हो जायगा तबतक भारतका फिरसे आजाद हो जाना मेरी समझमें असम्भव है।

स्वदेशीमें स्वराज्य

(दिसम्बर १०, १९१९)

जिन शासन सुधारोंकी चर्चासे आज देशमें हलचल मची हुई है। देखते देखते वे काननका रूप धारण कर लेंगी और उसीके साथही पुरानी शासन प्रणाली उड़ जायगी और यह नई पद्धति प्रचलित हो जायगी। पर भारतका प्रश्न हम लोगोंके लिये उतना प्रधान नहीं है जितना प्रधान अन्न और वस्त्रका प्रश्न है। १९१८ में हम लोगोंने केवल कपड़ेके लिये भारतसे बाहर ६० करोड़ रुपये भेजे। यदि सालबसाल हम यही करते जाते हैं तो इसका अभिप्राय यह निकला कि हम भारतके जुलाहों और चरखा चलाने वालोंके हाथसे प्रतिवर्ष इतना रुपया छीनकर विदेशोंमें भेज देते हैं पर इसके बदले उन्हें कुछ भी नहीं देते। इसमें तो शक करनेकी कोई भी बात नहीं है कि कमसे कम आधी जनसंख्याको तो आधा पेट भोजन मिलता है और शेष आधीका पूरा पेट भी नहीं भरता। जिन लोगोंको आंखें हैं वे भलिभांति देख सकते हैं कि मध्यम श्रेणीके लोगोंकी जो अवस्था है, उन्हें पेट भर भोजन नसीब नहीं हो रहा है और हमारे बच्चे

दूधके लिये तरस रहे हैं। शासन सुधार चाहे कितनेही उदार क्यों न हों, निकट भविष्यमें इस समस्याको नहीं हल कर सकते पर स्वदेशीसे यह प्रश्न सहजमें ही हल हो जाता है! इस सम्बन्धमें पञ्जाबने जो किया है उससे उसकी सफलताकी और भी अधिक आशा हो गई है। यह लिखते हुए कितनी प्रसन्नता होती है कि पञ्जाबकी कोमलाङ्गी रमणियां अभी तक अपने हाथकी चातुर्य्यको नहीं भूल गई हैं। चाहे वे कुलीनवर्गकी हैं, या साधारण घरोंकी, वे चरखा चलाना जानती हैं जिस तरह बहुतसी गुजराती रमणियोंने किया है उन्होंने चरखेको अनावश्यक और अनुपयोगी समझकर जला नहीं दिया है। लुण्डीकी लुण्डी सूत वे ला लाकर हमें देती हैं। यह देखकर मेरा चित्त गद्गद हो जाता है। उन्होंने मुझसे साफ कहा है कि मेरे पास उसके लिये काफी समय है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि इस सूतसे बुना हुआ खद्दर मिलकी सूतोंसे बने कपड़ेसे कहीं अच्छा होता है। हमलोगोंके पूर्वज विदेशीसे किसी तरहका लगाव न रखकर बड़ी आसानीसे अपने वस्त्रकी आवश्तकता पूरी कर लेते थे।

यह सुन्दर और सहज कला—यदि हम लोग इस पर उचित ध्यान नहीं देते—अब एक दमसे मृत हो जानेवाली है। पञ्जाब अब भी पुकार पुकार कर कह रहा है कि इसके द्वारा उद्धार हो सकता है। पर अकेला पञ्जाब क्या कर सकता

है। वह भी निराश होकर उसका साथ छोड़ना चाहता है। प्रत्येक साल सूतकी कताईमें कमी दृष्टिगोचर हो रही है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हमारे घरोंकी दरिद्रता और सुस्ती बढ़ती जा रही है। जो स्त्रियां चरखा काता करती थीं और जिन्होंने अब चरखा कातना छोड़ दिया है, सिवा गप्प लगाने और आलस्यमें समय काटनेके अतिरिक्त कोई भी उपयोगी काम नहीं कर रही हैं।

पर इस बुराईको दूर करनेका एक उपाय है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिको यह बात समझ लेनी चाहिये कि यह उसका परम प्रधान कर्तव्य है और अपने घरकी स्त्रियोंको चरखा कातना सिखा कर उसके हाथमें चरखा थमा देना चाहिये। इस तरह लाखों गज सूत प्रतिदिन तैयार हो सकते हैं। यदि प्रत्येक शिक्षित भारतवासी यह वस्त्र पहनना स्वीकार कर ले तो भारतके इस गृहशिल्पके पुनरुत्थानको उससे बड़ी सहायता मिलेगी।

यदि गृह शिल्पका पुनरुत्थान न हुआ तो भारतीय किसानोंका भाग्य सितारा डुबा ही समझिये। जो कुछ वह खेतोंमें पैदा करता है केवल उतनेसे ही वह अपना काम नहीं चला सकता। उसकी सहायताके लिये कोई सहायक पेशा आवश्यक है। इसमें चरखा कातना सबसे सहज, सबसे सस्ता और सबसे उत्तम है।

मैं यह भी जानता हूं कि इस भावको हृदयंगम करनेके

लिये चित्तमें एक तरहकी क्रान्ति उपस्थित करनी होगी। और इसीसे हमारी आशा बलवती है कि स्वदेशीसे स्वराज्य मिल सकता है। जो देश वस्त्रों द्वारा साठ करोड़ रुपया बचाकर उसे सूत कातनेवालों और कपड़ा बिननेवालोंमें बांट देगा उसके पास इतना काफी साधन है कि वह अपना व्यवसाय मज़ेमें संगठित कर ले और अपने उत्थानका समस्त साधन तैयार कर ले।

हमारे सुधारक स्वप्न देखते हैं कि स्वायत्त शासन मिल गया कि हम विना स्त्रियोंसे चरखा कताये और जुलाहोंसे करघा चलाये ही भारतके व्यवसायकी रक्षा कर लेंगे। विचारवान लोगोंने भी इसी तरहकी आशायें प्रगट की हैं। इसके सबंन्ध-में मैं कह सकता हूं कि इसमें डबल भूल की गई है। पहले तो भारतकी यह अवस्था नहीं कि वह संरक्षित व्यवसायिक अवस्था तकके लिये ठहर सके और दूसरे इस संरक्षणसे कपड़ेके लिये जो व्यय करना पड़ता है वह रुक नहीं सकता। तीसरे करोड़ों भूखोंका प्रश्न भी संरक्षणसे नहीं हल हो सकता। उनकी सहा-यता करनेका तो समान उपाय यही है कि उनके हाथोंमें चरखा पुनः दे दिया जाय। और इस तरह उनके लिये एक नया सहायक व्यापार खड़ा कर दिया जाय। इस तरह चाहे संरक्षण व्यापारिक नीतिका प्रसार हो पर हमें तो चरखे और करघे-का प्रचार करना ही होगा।

जिस समय विगत जर्मनयुद्ध अपनी पूर्ण जोरपर था,

इंगलैंड तथा अमरीकाके सभी उपयुक्त आदमी जहाज बनानेके काममें लगा दिये गये थे और सबोंने इतनी तेजीसे काम किया था कि कयासके बाहर है। यदि मेरा वश चले तो मैं प्रत्येक भारतवासीको चरखा कातना और करघा चलाना सिखाऊं और प्रत्येक दिन कुछ न कुछ सूत कातने और कपड़ा बिननेमें लगाऊं। और इस कार्यको आरम्भमें कालेजों और स्कूलोंसे जारी कराऊं क्योंकि इनका संगठन हुआ है और यहां काम सहजमें चल निकल सकता है।

चाहे मिलोंकी संख्या कितनी भी क्यों न बढ़ा दी जाय यह बात संभव नहीं है। उनसे इस प्रश्नका निपटारा नहीं हो सकता। हमारा रुपया जो इस तरह पश्चिमकी ओर बह रहा है उसे वे जल्दी नहीं रोक सकतीं और वे उस साठ करोड़को हमारे घरोंमें नहीं बांट सकतीं। वे लोग मजूरी और रुपयेको एक स्थानपर संग्रहीत कर देंगे और परिणाम यह होगा कि वर्तमान गोरखधन्धा और भी बढ़ जायगा।

एक वर्षमें स्वराज्य

—:*:—

यदि हम लोग एक वर्षके अन्दर स्वराज्य लेनेके लिये चले हैं तो इसका यह मतलब है कि और सब बातोंका कोई ख्याल न करके अपनी सारी शक्ति इसी एक काममें लगा दें। इसलिये

मैं हिन्दुस्थानके सब विद्यार्थियोंको यह सूचना देता हूं कि वे एक वर्षके लिये अपना नित्यका शिक्षाक्रम छोड़ दें और अपना समय चरखेसे सूत कातनेमें लगावें। मातृभूमिकी यह इस समय सबसे बड़ी सेवा होगी और स्वराज्यकी प्राप्तिमें उनका अत्यन्त स्वाभाविक कार्यभाग होगा। अभी जो युद्ध हो चुका है उसमें हमारे शासकोंने हर एक कारखानेको अस्त्र और वस्त्रागार बना.कर गोलियां बनानेके काममें उसे लगा देनेकी चेष्टा की थी। हमारे इस युद्धमें, मेरा यही कहना है कि प्रत्येक राष्ट्रीय स्कूल और कालेज राष्ट्रके लिये सूत तैयार करनेवाला कारखाना बना दिया जाय। इस कामको करनेसे विद्यार्थीयोंको कुछ भी हानि न होगी; उन्हें यहां भी स्वराज्य मिलेगा और लोकमें भी। हिन्दुस्तानमें कपड़ेका दुर्भिक्ष है। इस अकालका निवारण करनेमें सहायक होना सचमुच ही बड़े पुण्यका काम है। जैसे विदेशी सूतका व्यवहार करना पाप है वैसे ही स्वदेशी सूतका अधिकाधिक तैयार करना पुण्य है। जिससे विदेशी सूतके वहिष्कारसे उत्पन्न होने वाले अभावका हम सामना कर सकेंगे।

उपर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि सूत तैयार करना जरूरी है तो क्यों नहीं हर एक गरीब स्त्री पुरुषसे कुछ देकर यह काम लिया जाय? इसका उत्तर यह है कि कपड़ा बुनना, बढ़ईके काम इत्यादिके समान, हाथसे सूत कातना कोई पेशा नहीं है और न कभी था।

अङ्गरेजोंके आनेके पहले हिन्दुस्थानमें सूत कातना हिन्दुस्थानकी स्त्रियोंका काम था जो वे फुरसतके समय करती थीं और इस कामकी इज्जत थी। इस समय समयाभावसे स्त्रियोंमें उस कलाका फिरसे प्रचार करना बड़ा कठिन है। पर स्कूल जानेवाले लड़कोंके लिये यह बड़ा सहज है कि राष्ट्रकी पुकार सुनकर इस काममें लगें। कोई यह न कहे कि यह काम मनुष्य या विद्यार्थियोंका गौरव कम करनेवाला है। इस कलाका प्रचार भारतवर्षकी स्त्रियोंमें ही मर्यादित था। इसका कारण यह है कि उन्हें उसके लिये समय मिलता था और काम शोभा तथा संगीतसे युक्त होने तथा इसमें विशेष परिश्रमकी आवश्यकता न रहनेके कारण इसपर स्त्रियोंका इजारा ही कायम हो गया था। पर क्या स्त्री और क्या पुरुष, सबके लिये इस काममें इतनी शोभा है जितनी, यह कहिये कि संगीत है। हाथसे सूत कातनेके काममें स्त्रीके धर्मकी रक्षा, दुर्भिक्षसे देशके जीवनका वीमा और धन धान्य समृद्धि छिपी हुई है। इसमें स्वराज्यकी कुञ्जी रखी हुई है। हमारे पूर्व पुरुषोंने विदेशी कारखानेवालोंके शैतानी प्रभावके सामने सिर झुकाकर जो पाप किया उसका बहुत ही हलका प्रायश्चित्त हाथसे सूत कातनेका जीर्णोद्धार है।

स्कूल जानेवाले लड़के सूत कातनेके कामको फिरसे वह इज्जत दिला देंगे। वे मोटेको सुन्दर बुननेका काम शीघ्रतासे करेंगे। कारण, कोई माता या पिता, अपने बच्चोंके हाथके सूतका बना कपड़ा पहननेसे इन्कार न करेंगे। और विद्यार्थियों-

को इस कलाको मानते हुए देखकर हिन्दुस्थानके जुलाहे राहपर आ जायंगे। यदि हम चाहते हैं कि पञ्जाबी सैनिकके कामसे नहीं बल्कि दूसरे देशोंके निरपराध और स्वतन्त्र लोगोंका खून करनेवाले खूनीके कामसे उन्हें हटाना चाहते हैं तो हमें उन्हें कपड़ा बुननेका काम देना होगा। पञ्जाबके शान्त जुलाहोंकी जातिने अपना पेशा छोड़ दिया है। अब यह काम पञ्जाबके विद्यार्थियोंका है कि वे ऐसा प्रयत्न करें कि पञ्जाबी जुलाहे फिरसे अपने दोष-रहित पेशेको अख्तियार करें।

मैं किसी अगले अंकमें यह दिखलाऊंगा कि स्कूलोंमें यह परिवर्तन प्रवर्तित कराना कितना आसान है और कितना जल्द इन शर्तों पर हम अपने स्कूल कालेजोंको राष्ट्रीय बना सकते हैं। हर जगह विद्यार्थी मुझसे यह पूछते हैं कि अपने राष्ट्रीय विद्यालयोंमें आप नयी बातें क्या रखना चाहते हैं। मैं सबसे यही कहता आया हूं कि मैं नयी बात हाथसे सूत कातनेकी अवश्य रखूंगा। पहलेसे भी बहुत स्पष्टताके साथ इस समय मैं यह देख रहा हूं कि इस संक्रमणके कालमें हम लोगोंको सूत कातने और कुछ अन्य राष्ट्रोपयोगी बातोंकी तरफ ही अपना सारा ध्यान लगाना चाहिये जिसमें पहलेकी की हुई उपेक्षाका निवारण हो जाय। और विद्यार्थी भी इससे नवीन शिक्षाक्रम स्वीकार करनेके लिये अधिक पात्र और प्रस्तुत हो जायंगे।

क्या मैं प्रगतिकी घड़ीका कांटा घुमाकर पीछे ले आना चाहता हूं? क्या मैं यह चाहता हूं कि मिलोंका स्थान चरखे

और करघे इख्तियार कर लें ? क्या मैं यह चाहता हूं कि रेल-गाड़ीकी जगह बैलगाड़ी आ जाय ? क्या मैं मशीनरी (यांत्रिक सामग्री) को बिलकुल ही नष्ट कर डालना चाहता हूं ? कुछ समाचारपत्र सम्पादकों और सार्वजनिक पुरुषोंने मुझसे ये प्रश्न किये हैं। मेरा उत्तर यह है—यदि मशीनरी नष्ट हो जाय तो मैं उसपर आंसू न बहाऊंगा। पर मशीनरीके विरुद्ध मेरी कोई कार्र-वाई नहीं है। इस समय मैं जो कुछ चाहता हूं वह यही है कि हमारी मिलोंसे जितना कपड़ा और सूत तैयार होता है वह कम है और उस कमीकी पूर्ति होनी चाहिये। करोड़ों रुपया जो हम हिन्दुस्थानके बाहर भेजते हैं वह बचना चाहिये और वह झोप-ड़ियोंमें रहनेवालोंको मिलना चाहिये। यह मैं तबतक नहीं कर सकता जबतक लोग फुरसतके समय हाथसे सूत कातनेका काम करनेके लिये तैयार न हों। इस उद्देश्यसे हमें उन उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये जो मैंने सूचित किये हैं जिसमें सूत कातनेका घर घर प्रचार हो, और यह काम जीविकानिर्वाहके लिये नहीं बल्कि कर्त्तव्य जानकर करना चाहिये।

स्वदेशी

—:०:—

(अप्रैल २१, १९२०)

राष्ट्रीय सप्ताह १३ अप्रैलको समाप्त हो गया। इससे कई बातें झलकती थीं। हिन्दू मुस्लिम एकताकी तो यह ज्वलन्त प्रतिमा थी। सत्याग्रहकी मात्रा लोगोंमें अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही थी और रौलट ऐक्ट उठा देनेके लिये लोगोंमें और भी दृढ़ता दिखाई दे रही थी। पहलेकी अपेक्षा लोगोंके व्याख्यान भी संबद्ध थे और जोशीले और उत्तेजक नहीं थे। जितनी सभाओंकी हमें अबतक सूचना मिली है उनमें किसीमें भी उपद्रव अथवा दंगा नहीं हुआ है।

पर स्वदेशीके लिये क्या किया गया? क्या स्वदेशीने भी सत्याग्रहसे ही जन्म नहीं लिया है। यह निर्विवाद है कि स्वदेशी-का जन्म भी सत्याग्रहसे ही हुआ है। स्वदेशीका काम समस्त कार्यक्रमसे विध्यात्मक है। स्वदेशीकी सफलताके लिये जितनी बातकी आवश्यकता नहीं है उससे अधिक कामकी आवश्यकता है। केवल व्याख्यानबाजी और समारोहसे ५० या ६० करोड़ रुपया प्रति वर्ष नहीं बचाया जा सकता। इस वार्षिक रुपयेके बहावके अतिरिक्त उससे और भी काम हल होता है। [इसमें भारतीय रमणियोंकी मर्यादाका प्रश्न है। जिन्हें मिलके कामोंका

अनुभव है वे इस बातको भलीभांति समझते हैं कि मिलमें काम करनेवाली स्त्रियोंके मार्गमें जो बाधायें हैं और जिस प्रलोभनमें पड़ जानेका सदा भय बना रहता है उससे उन्हें दूर रखना चाहिये। कितनी औरतें ऐसी हैं जिन्हें कोई काम नहीं मिलता और वे लाचार होकर सड़क पीटनेका काम करती हैं। इस कामका जिन्हें अनुभव है वे भलीभांति जानते हैं कि स्त्रियोंको इससे जहांतक हो दूर रखना चाहिये। उनके हाथमें चरखा थमा दीजिये और एक बार इसके लिये उन्हें प्रोत्साहित कर दीजिये और आप देखेंगे कि फिर उसे छोड़कर वे कहीं नहीं जातीं। स्वदेशीके द्वारा धनका बटवारा भी बड़े मजेमें हो जायगा क्योंकि कृषिके बाद इसीका नम्बर उपयोगितामें दूसरा पड़ेगा। कृषिको इससे सहायता मिलती है और इससे हमारी बढ़ती दरिद्रताका प्रश्न भी हल हो जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि स्वदेशी हमारी कामधेनु है जो हमारी हर तरहकी आवश्यकता पूरी कर सकती है और अनेक तरहकी कठिनाइयोंसे हमें मुक्त कर दे सकती है। जिस व्यवसायसे हमारी सारी आवश्यकता इस प्रकार पूरी हो और हमारे मर्यादाकी रक्षा हो तथा पेटका प्रश्न भी हल हो जाय उसे हमें अपना परम धर्म समझना चाहिये।

पर इसमें सफलता पानेका उपाय क्या है। इसका उत्तर बहुत ही साधारण है। जिन्हें इसपर विश्वास है, जो इस बातको समझते हैं कि स्वदेशी अर्थात् चरखे और करघेसे हमारा उद्धार हो सकता है उन्हें निम्न लिखित प्रकारसे काम करना चाहिये :—

(१) प्रत्येक स्त्री पुरुषको चरखा कातना सीखना चाहिये। यदि आप गरीब हैं तो उसके लिये मजूरी लीजिये पर कमसे कम एक घण्टा समय तो अवश्य राष्ट्रके हितके लिये प्रदान कीजिये।

(२) कपड़ा बिननेका काम सीखिये चाहे उसे आवश्यक रोजगार समझिये या मन बहलाव समझिये।

(३) वर्तमान चरखे और करघेमें सुधार कीजिये। यदि आपके पास रुपया है (अर्थात् यदि आप धनी हैं) तो इसकी (सुधारकी) योजना रुपया व्यय करके करवाइये।

(४) स्वदेशीका व्रत ग्रहण कीजिये और हाथके कते सूतसे बने खद्दरका प्रचार कीजिये। और उसे अपनाइये।

(५) अपने मित्रोंको खादी पहननेके लिये बाध्य कीजिये और उन्हें समझाइये कि मिलके कपड़ोंसे इनमें ज्यादा महत्व और आनन्द है क्योंकि ये हमारे ही बहू बेटियोंके हाथके बने हैं।

(६) माताओंको चाहिये कि खद्दर पहननेके लिये अपनी सन्तानको प्रेरित करें। यह खादी अति सहजमें तैयार हो सकती है।

स्वदेशीके द्वारा इस प्रकारका उत्तम संगठन हो जाता है कि सबको उसके अन्तर्गत काम करनेकी सुविधा हो जाती है। यदि हम इस तरह स्वदेशीका प्रचार कर सके तो स्वदेशीकी सफलताके साथ ही साथ हमारी स्वराज्यकी समस्या भी हल हो जाती है।

खद्दरकी उपयोगिता

—:०:—

(अप्रेल २८, १९२०)

इस समय स्वदेशी आन्दोलनकी प्रगति सन्तोष जनक है। हिन्दू और मुसलमान सभी इसे पूर्ण उत्साहके साथ अपना रहे हैं। इसलिये यह आवश्यक और उचित प्रतीत होता है कि स्वदेशीकी उन्नतिके लिये दो चार शब्द लिखा जाय। स्वदेशीका साधारण जानकारी रखनेवाला भी यह कह सकता है कि हम लोग अपनी आवश्यकताभर कपड़ा नहीं तैयार कर लेते। इसलिये यदि हम लोग केवल मिलका कपड़ा प्रयोगमें लाते हैं तो इससे एक तो हम गरीबोंको उनकी आवश्यकतासे वञ्चित करते हैं और दूसरे मिलके कपड़ोंका दाम बढ़ा देते हैं। इसलिये स्वदेशीका प्रचार बढ़ानेका एकमात्र उपाय यही है कि हम लोग इससे अधिक कपड़े तैयार करें। यह काम तभी संभव है जब हम हाथ से सूत कातना आरम्भ करें और हाथसे ही कपड़े बिनें। बरसाती कुकरमुत्तोंकी तरह तो मिलें एकाएक पैदा नहीं हो सकतीं। वर्तमान समयकी तरह सूत कभी भी मंहगा नहीं था और मिल-वाले इससे बेपरिमाण लाभ उठा रहे हैं। इसलिये एक गज सूत कातकर भी आप सूतकी समस्याको हल करने तथा उसकी दर घटानेमें सहायता करते हैं।

इसके बाद यह प्रश्न उठता है कि सूत किस तरह काता जाय और कपड़ा किस तरह बीना जाय। मैं इस बातको भली-भांति जानता हूं कि यदि खादीको सब लोग पहनना स्वीकार कर लें तो खादीकी तैयारी इतनी अधिक होने लगे कि बाजार उससे पट जाय। सरलादेवी चौधरानीने अपने कामसे यह भी दिखा दिया है कि खद्दरकी सारियां भी एकसे एक बढ़कर बन सकती हैं। राष्ट्रीय सप्ताहमें उन्होंने खद्दरकी सारी और खद्दरकी ही जाकेट पहनी थी। तमाम जलसों और समारोहोंमें वे उसी खद्दरके पोशाकमें ही आती जाती थीं। लोग इस बातको असम्भव समझते थे। लोगोंका कहना था कि जिस रमणीने आज तक मुलायमसे मुलायम सिल्क या ढाकाकी मलमलके सिवा और कुछ नहीं पहना है वह कभी इस मोटे खद्दरके भारको नहीं निबाह सकेगी। पर उन्होंने लोगोंकी भावनाओंको गलत प्रमाणित कर दिया और यह दिखला दिया कि यह उन लोगोंका मिथ्या भ्रम है। जो कार्य कुशलता और फुर्ती उनमें इस समय रहती थी जब वे मेहीनसे मेहीन साढ़ी पहनती थीं वही फुर्ती उनमें इस समय भी थी। जिस समय सरलादेवीके चाचा ठाकुर रवीन्द्रनाथने उन्हें इस खद्दरके पोशाकमें देखा तो उन्होंने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"यदि तुम यह कपड़ा सदा धारण कर सको तो फिर इससे उत्तम और क्या बात हो सकती है।" मैंने इस घटनाका उल्लेख केवल इसलिये किया है कि भारतके दो प्रधान कला मर्मज्ञोंने इस खद्दरमें कोई भद्दापन नहीं पाया है। इसी खद्दरका

प्रयोग मैं भारतके प्रत्येक प्रतिष्ठित और शिक्षित घरोंमें करवाना चाहता हूं क्योंकि इस प्रारम्भिक अवस्थामें स्वदेशी आन्दोलन केवलमात्र इसीकी सहायतासे ही सफल हो सकता है।

मेरी दृष्टिमें तो उसका मूल्य ढाका मलमलसे भी अधिक है क्योंकि इसके द्वारा उन अगणित प्राणियोंके पेटकी ज्वाला बुझानेका यत्न हो जायगा जो इस समयतक पेटकी ज्वालामें झुलस रहे हैं। इससे उन स्त्रियोंकी मर्यादाकी रक्षा होगी जो उपयुक्त काम न पाकर सड़कों या कारखानोंमें काम करके अपनी मर्यादा गंवाती रही हैं या कामके न रहनेसे आलस्यमें दिन काटती रही हैं और गृह कलहका बीजारोपण करती रही हैं। इन बातोंको देखकर यही कहना पड़ता है कि खद्दरकी आत्मा सजीव है। उसकी महत्ता अतुलनीय है। इसको पहनेवाला इसकी कथाको पूर्णतः स्मरण कर लेगा और इसके प्रति उसकी श्रद्धा अवश्य बढ़ जायगी। यदि हम लोगोंकी पसन्द इतनी गिर न गई होती तो कड़ीसे कड़ी गरमीमें भी हम लोग यही खद्दर पसन्द करते और अद्धी तथा तञ्जेबका नाम न लेते। जिन लोगोंने स्वदेशीके साथ साथ खद्दरका व्रत ग्रहण किया है वे हमारे इस कथनकी सार्थकता अवश्य दिखलावेंगे।

यदि कोई इसे अपना पोशाक बनानेमें शरमाये तो वह अन्दर तो इसे अवश्य पहन सकता है। जो लोग इसे अपने शरीरपर डालना नहीं चाहते वे इससे गमछा, टोपी, तौलिया, छन्ना, चद्दरा, तोशक, तकियोंका गिलाफ, पर्दा, चाननी, दरी, खोल

आदि बनवा सकते हैं। मैं इसके रंगानेकी भी व्यवस्था कर रहा हूं। इस तरहसे यह मैला भी कम होगा और चलेगा भी अधिक दिन तक।

चरखेकी राग।

—:o:—

(जुलाई २१, १९२०)

धीरे धीरे भारतवर्षकी प्रत्येक झोपड़ियोंमेंसे चरखेकी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। मालवीयजीने अभी कहा है कि मुझे तब तक सन्तोष नहीं हो सकता जब तक इस देशकी रानी और महारानियां चरखोंको न कातने लगें। जिस दिन वे चरखोंको अपने हाथोंमें थाम लेंगी और राष्ट्रके कल्याणकी योजना करेंगी उसी दिन हमारा उद्धार हो जायगा। सम्राट औरंजेबका इतिहास अभी २५० वर्षका ही पुराना है। वह टोपियां सीकर अपनी जीविका चलाता था। कबीर साहब स्वयं जुलाहे थे। उन्होंने अपनी कविताओंमें चराखेको स्थान देकर उसे अमर बना दिया है। जिस समय तक यूरोपमें भी यह शैतानी मशीन रूपी माया नहीं फैली थी यूरोपकी रानियां भो चरखे चलाती थीं और इसमें अभिमान समझती थीं। प्राचीन यूरोपीय भाषामें पत्नीके लिये जो शब्द प्रयुक्त होता था उसका यही अभिप्राय था कि पत्नीका काम चरखा कातना और कपड़ा बुनना भी है। आदम और

हौआको ही ले लीजिये। हौआ सूत कातती थीं और आदम कपड़े बुनते थे। यदि पण्डितजी भारतके राजघरानोंमें इस प्राचीन प्रथाका प्रचार कर सके तो हमारी सफलता धरी है। भारतकी स्वतन्त्रता और समृद्धि शस्त्र पर नहीं निर्भर करती। घर घर-में चरखेके प्रचारसे ही भारतकी उन्नति हो सकती है और वह अपनी विलुप्त विभूति पा सकता है। इसकी तानमें जो माधुर्य है उसे हारमोनियम और सितार आदिकी मधुरता नहीं पा सकती।

एक तरफ तो पण्डित मालवीयजी भारतके धनिक वर्गको चरखा चलानेका परामर्श दे रहे हैं उधर श्रीमती सरला देवी चौधरानीने—जो स्वयं भारतीय धनी और कुलीन वर्गकी हैं—चरखा चलाना सीख लिया है और इस कामको दिल व जानसे चला रही हैं। इसके बारेमें जो कुछ समाचार मिलते या सुनाई देते हैं उनसे पता लगता है कि वे स्वदेशीके पीछे पागल हो रही हैं। उन्होंने कहा है कि कठिनसे कठिन गर्मीमें भी मुझे खद्दरकी सारी ही सोहाती है क्योंकि मलमल और ढाकासे मैं परेशानी और असुविधा प्रतीत करती हूं। इस तरह खद्दरकी सारी पहन वह लोगोंपर जो प्रभाव डालती हैं वह उनके भाषणों और अपीलोंसे नहीं पड़ता। उन्होंने अमृतसर लुधियाना आदि स्थानोंमें भाषण किया और अमृतसरमें उन्होंने श्रीमती रतनचन्द और बुग्गाकी पत्नी तथा रतनदेवीको इस कामके लिये सन्नद्ध किया। रतनदेवीसे पाठक अवश्य परिचित होंगे। यह

वही रतनदेवी हैं जो उस दसवीं अप्रैल १९१९ ई० की कालरात्रिमें जलियांवाला बागमें सरकारी घोषणाकी परवा न कर सैकड़ों मुर्दोंके बीचमें अपने पतिका मृत शरीर अपने गोदमें लिये सारी रात बैठी रहीं। मैं इन महिलाओंको हृदयसे बधाई देता हूं। चरखेकी तान इनकी आत्माको शान्ति दे और राष्ट्रके काममें सहायक होनेका ध्यान इन्हें सन्तोष दे। मुझे पूरी आशा है कि अमृतसरकी अन्य महिलायें भी सरलादेवीकी इस काममें पूरी सहायता करेंगी और अमृतसरके पुरुष अपना कर्तव्य समझ लेंगे।

बम्बईके प्रधान प्रधान घरोंकी स्त्रियोंने चरखा कातना आरम्भ कर दिया है। श्रीमती मानिक भाई बहादुरजीने भी यह काम सीख लिया है। इसका प्रचार अपनी सेवा सदनमें कर रही हैं। जञ्जीराकी बेगम साहिबा तथा उनकी भगिनी (बहिन) श्रीमती अतियाबेगम रहिमानने भी चरखा कातना शुरू कर दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि चरखा कातना सीखकर ये देवियां राष्ट्रीय काममें योगदान करेंगी और अपने हिस्सेका सूत प्रतिदिन कातेंगी।

इस प्राचीन कलाके पुनरुद्धार करनेके लिये जो प्रयास किया जा रहा है उस पर कितने ही लोग हंसते हैं। ये कहते हैं कि इस मशीनरीके युगमें केवल पागल या उन्मत्त ही इस तरहकी कोशिश करेंगे। भला इस समय चरखेसे क्या हो सकता है। वे मित्र यह बात भूल जाते हैं कि सीनेकी कलें तथा टाइप राइ-

टरका प्रचार हुए आज सैकड़ों वर्ष बीत गये पर सूई और नर-कटकी कलमकी उपयोगिता इससे कहीं चली नहीं गई। आज भी उसकी वही कदर है जो कुछ दिन पहले थी। बड़े बढ़े होटलों-के बन जानेसे घरकी रसोइयां भी बन्द नहीं हो गई। फिर क्या कारण है कि मशीनके इस युगमें चरखा या करघा नहीं चल सकता। मशीनोंके साथ साथ यह भी चल सकता है। कोई दिन यह भी आवेगा जब टाइप राइटर और सीनेकी कल शायद गायब हो जाय पर सूई और नरकट तो चिरस्थायी हैं। उनका लोप हो ही नहीं सकता। मिलोंका नाश हो सकता है पर चरखा राष्ट्रीय आवश्यकता है। जिन लोगोंके चित्तमें किसी तरहकी आशंका है उन्हें उचित है कि उन किसानोंकी झोपड़ियोंमें जायँ जिन्होंने चरखा चलाना आरम्भ कर दिया है और उनसे पूछें कि इससे क्या फल हुआ है। उनके घरमें आशा और उद्धारके लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे हैं या नहीं।

मुझे इस बातसे आनन्द प्राप्त है कि श्रीयुत रावाशंकर जग-जीवनने उत्तम चरखेके सूत कातने वालेके लिये जो पुरस्कार रखा है उसका फल प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने लगा है। थोड़े ही दिनोंमें भारतमें एक नये तरहका चरखा जन्म ग्रहण कर लेगा। दाक्षिणका एक कारीगर इसको तैयार कर रहा है। देखनेमें यह बिलकुल साधारण है। दाम भी इसका अधिक नहीं होगा और इसके चलानेमें भी किसी तरहकी कठिनाई नहीं प्रतीत होगी। साधारण चरखोंसे इसमें सूत भी अधिक

निकलेगा और ५ वर्षका बालक भी इसे आसानीसे चला लेगा। चाहे इससे इन आशाओंकी पूर्ति हो या न हो पर मैं इतना दृढ़तासे कह सकता हूं कि भारतके आर्थिक और चारित्रिक पुनरुत्थानके लिये चरखे और करघेका प्रचार सबसे बढ़कर साधन होगा। २२ करोड़ भारतीय किसान हैं। उनके लिये किसी सहायक पेशेकी नितान्त आवश्यकता है। पहले चरखा और करघा भारतके घरेलू धन्धोंमें था और वही करोड़ों भारत-वासियोंको पेटकी ज्वालामें जलकर खाक हो जानेसे बचाता है। तो उनके पास चरखेका सन्देश पहुंचाइये और जुलाहोंको करगह बैठानेके लिए पुनः उत्तेजित कीजिये।

स्वदेशी

—:०:—

(अगस्त १६, १६२०)

जुलाई २१ के अंकमें 'चरखेकी राग' शीर्षक लेख मैंने यंग इण्डियामें लिखा था। उसकी आलोचना करते हुए प्रयागके लीडर पत्रने मेरे ऊपर ऐसे आक्षेप किए हैं जिसका मैं अनुमान भी नहीं कर सकता था। इसलिये स्वदेशीका सच्चा मर्म समझनेके हेतु उन भ्रान्त विचारोंको मिटाना जरूरी है जो इस समय प्रच-लित हो गई हैं। लीडरने लिखा है कि मिलोंके स्थानपर चरखे

तथा करघेका प्रयोग बतलाकर मैं उन्नतिकी गतिको उलट रहा हूं। पर यह उसका भ्रममात्र है। मैं इस तरहका कोई प्रयत्न नहीं कर रहा हूं। मिलोंका मैं विरोधी नहीं हूं। मेरे विचार अत्यन्त सरल और सहज हैं। भारतमें प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति १३ गज कपड़ेकी आवश्यकता पड़ती है। इस समय वह आधे से भी कम कपड़ा तैयार करती है। आवश्यकताभर रूई भारतमें पैदा होती है। अधिकांश रूई जापान और लंकाशायर चली जाती है और वहांसे कपड़ा तथा सूत बनकर फिर यहां आता है यद्यपि चरखों और करघोंके प्रयोगसे भारतवर्षमें ही यह काम हो सकता है। भारतका प्रधान पेशा कृषि है। किसी अन्य घरेलू धन्धों द्वारा इसकी सहायता आवश्यक है। उन करोड़ों किसानोंके योग्य केवलमात्र व्यवसाय चरखा कातना हो सकता है। १०० वर्ष पहले भारतीय राष्ट्रका यही सबसे बड़ा रोजगार रहा। लोग कहते हैं कि आर्थिक कठिनाई और दुर्व्यवस्था तथा आधुनिक कालकी मशीनोंने चरखे और करघेका नाश कर दिया इस्ट इण्डिया कम्पनीने बेइमानी और अन्यायपूर्ण उपायों द्वारा ही इस व्यवसायको मटियामेट किया। परिश्रम तथा खर्चमें थोड़ा परिवर्तन करनेसे ही इस व्यवसायका पुनरुत्थान हो सकता है और इससे मिलोंपर किसी तरहका घाटा नहीं पहुंच सकता। इस समय जो कपड़ेकी कमी है उसके पूरा करनेके लिये अधिक मिलोंको बैठाना उचित उपचार नहीं होगा। उसका उचित उपचार चरखों और करघोंका प्रचार ही

होगा। यदि चरखों और करघोंका प्रचार हो जाय तो हम लोग ६० करोड़ रुपया विदेशों भेजनेसे बचा लेंगे और यह उन गरीबों-में बट जायगा जो इस समय निस्सहाय और दीन होकर पड़े हैं। मेरी धारणा है कि भारतकी इस बढ़ती दरिद्रताका—जो उसे चक्की-में पीस रही है—आपसे आप निवारण हो जायगा। अनावृष्टिके कारण जिस समय काल पड़ता है उस समयके लिये तो यह सबसे उत्तम उपचार है।

पर इस समय पुनरुत्थानके लिये दो बातें आवश्यक हैं। पहले तो लोगोंकी रुचिमें परिवर्तन होना चाहिए। महीन कपड़ोंसे रुचि हटाकर खद्दरमें लगाना चाहिए और दूसरे देहातोंमें रूईकी पिउनी बांटने तथा सूत बटोरकर लानेका प्रबन्ध होना चाहिए।

सिर्फ एक वर्षमें कुछ थोड़े ही आदमियोंके प्रयाससे गुजरात-में हजारों रुपये इस तरह गरीब औरतोंको दिये गए हैं जो बड़ी प्रसन्नतासे इस कामको उठा रही हैं। जो स्त्रियां आजतक बेकार बैठी थीं वे भी आज दो पैसा कमाकर अपने बच्चोंकी देखरेख और सेवा यत्नमें लगा रही हैं।

लीडरने यही व्यवस्था शकरके व्यापारके लिये बतलाई है। पर वहां यह बात लागू नहीं है क्योंकि भारतमें चीनीकी जितनी खपत है उसके लिये काफी गन्ना (ईख) यहां नहीं पैदा होता। प्राचीन इतिहाससे भी यही प्रगट होता है कि भारतका राष्ट्रीय और सहायक व्यापार भी शकरका व्यापार नहीं था। हां यह बात कही जासकती है कि प्राचीन समयमें भारतने विदेशोंसे

शकर नहीं मंगाया था। इसका कारण यह था कि उस समय शकरकी मांग बहुत कम थी। वर्तमान समयमें शकरका प्रयोग अधिकाधिक होने लगा है और इससे भारतको लाचार होकर बाहरसे शकर मंगाना पड़ता है। पर इससे उतना रुपया विदेशोंमें नहीं चला जाता, जितना कपड़ोंके कारण चला जाता है। शकरका व्यापार बढ़ानेके लिए अधिक शकर पैदा करनेके लिए आवश्यकता है वैज्ञानिक ढंगसे गन्नेकी खेती करनेकी, गन्नेको पेरने तथा शकरको साफ करनेके लिए अच्छे कलोंकी। इस लिए शकरके व्यापारकी बात एक दमसे भिन्न है। शकरका व्यापार देशी बनाना वाञ्छनीय है पर देशी कपड़ेका व्यापार अनिवार्य अवश्यकता है।

खादीमें धोखेबाजी

(अगस्त १८, १९२१)

नकली माल

एक मित्र मदरासले लिखते हैं :—"इसके साथ मैं एक कपड़ेका नमूना भेजता हूं। बाम्बे स्वदेशी ष्टोरके द्वारा यह मद्रासमें १०–१५ आने गजके भाव शुद्ध स्वदेशी खादी (अर्थात्

हाथ कती और हाथ बुनी) के नामसे बेचा जाता है। ऐसी धोखेबाजीसे लोगोंका बचाव किस तरह किया जाय ? मुझे इसमें शक नहीं कि वह कपड़ा विदेशका बना हुआ है।"

मैंने नमूनेको देखा है। हां, इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि वह न तो हाथका बुना हुआ है और न उसका सूत ही हाथ-का कता हुआ है। मुमकिन है कि वह हिन्दुस्थानकी मिलोंमें तैयार हुआ हो। परन्तु मुझे तो उसकी चकचकाहट हिन्दुस्थानी-की अपेक्षा जापानी अधिक मालूम होती है। बड़े दुःखकी बात तो यह है कि ऐसा माल स्वदेशी स्टोर्समें बेचा जाता है। परन्तु ऐसी कुछ न कुछ धोखेबाजी तो होती ही रहेगी। यह बुलन्द आवाजसे इस बातका प्रमाण देती है कि स्वदेशीका जोश बढ़ता जा रहा है। पर सवाल यह है कि यह किस तरह पहचानी और रोकी जाय। रामबाण उपाय तो इसका यही है कि हम अपने लिये खुद ही सूत कातें और जुलाहोंसे अपनी ही देखरेखमें उसे बुनवा लें। निस्सन्देह ऐसा समय आ रहा है। यदि हम खुद न कात सकें तो सारे देशमें जो हजारों कातनेवाले तैयार हो रहे हैं उनसे कतवा लें। यदि हमसे यह भी न हो सके तो जब हम खादी पसन्द करने लगें तब जो कपड़ा किसी भी तरह मिलका बनासा मालूम हो उसे न छुएं। मोटे सूतके कपड़ेमें यह पहचानना बड़ा ही कठिन है कि कौन तो विदेशसे आया है और कौन यहांकी मिलोंमें बना है। हाथ कते सूतकी खादीमें मिलकी निर्जीव चमक नहीं रहती, बल्कि वह देखनेमें मोटी,

छितरी हुई, हलकी और छूनेपर गुदगुदी मालूम होती है। वह चिकनी और चमकदार तो होती ही नहीं।

एक दूसरा बचावका उपाय यह है कि कपड़ा रंगा हुआ न होना चाहिये। तीसरी एक और बात है, पर वह धोखेसे खाली नहीं। प्रत्येक कांग्रेस जिलेमें ऐसी स्वदेशी दूकानें होनी चाहिये जिन्हें कांग्रेसकी ओरसे लैसेंस दिया जाय। अच्छे जानकार निग्रहां रखे जायं जो लगातार ऐसी दूकानोंके मालकी जांच किया करें। मुमकिन हो तो हरएक चीजपर मुहर लगी रहे। मैं जानता हूं कि अभी हममें इतना संगठन नहीं हुआ है और हमें इतनी तालीम नहीं मिली है कि जिससे हम बहुत बड़े आकारमें इस कामको उठा सकें। परन्तु जबतक कि हरएक जिला अपने लिये आवश्यक खादी तैयार न करने लगे तबतक कुछ ऐसी निगरानीकी तो अवश्य आवश्यकता है और सच्चे दिलसे जो कुछ इसके लिये किया जा सकता है वह किया जाना चाहिये।

झूठे विज्ञापन

'स्वदेशी'के सम्बन्धमें झूठे विज्ञापनोंकी शिकायतें बराबर मेरे पास आ रही हैं। सत्याग्रह आश्रमके व्यवस्थापक, जिन्होंने इन सुधरे हुए और ईजाद किये हुए कहे जानेवाले लगभग तमाम चरखों और करघों आदिको आजमा कर देखा है, लिखते हैं कि अभी हालमें मुझे कलकत्ते से एक विज्ञापन मिला है जिसने पिछले

सब विज्ञापनोंके कान काट लिये हैं। उनकी राय है कि अभीतक कोई ऐसा चरखा नहीं पाया गया जो सादगी आराम और अधिक सूत कताईमें पुराने चरखेसे बढ़कर हो। वे तमाम सूत कातनेवालोंको चेतावनी देते हैं कि आप किसी नये ढंगके चरखे-के लिये रुपया बरबाद न करें। वे तमाम कांग्रेस कमेटियोंको सलाह देते हैं कि ऐसे सारे विज्ञापनोंकी जांच अपने अपने प्रान्तोंमें की जाय और हर एक कलको कमसे कम १ महीना तक आजमाकर देख लें, तब उनके बारेमें राय दी जाय। जैसे जैसे स्वदेशीकी जड़ जमती जाती है तैसे तैसे बनावटी अधिकार भी लोगोंके सामने आये बिना न रहेंगे। इसलिये ऐसे तमाम माम-लोंमें कांग्रेस कमेटियोंओको जरूर रहनुमा होना चाहिये।

एक तूणी सज्जन लिखते है कि कुछ बम्बईके दूकानदार महीन कपड़ा खरीदनेके लिये आन्ध्र-देशको पहुंचे हैं। और मेरे खबरदार कर देनेपर भी कुछ सौदागरोंने बेजवाड़ासे विलायती सूतके कपड़े भेजे। मैं तमाम खरीदारोंको होशियार किये देता हूं कि वे ऐसे कपड़ेसे दूर रहें। यहां स्वदेशी कपड़ेका सारा स्टाक खतम हो चुका है। इससे क्या नसीहत लेनी चाहिये सो साफ ही जाहिर है! "महीन कपड़ेसे बचो।" महीन हाथकता सूत बहुतायतसे मिलना मुश्किल है और इसलिये कांग्रेसके कार्यकर्ताओंके लिये सबसे अच्छी बात यह है कि महीन खादीसे अपनेको बचाये। जैसा कि श्रीमती सरोजिनी नायडूने फर्रुखा-बादमें कहा है, कि विलायती कपड़ा पहननेकी बनिस्पत तो पेड़के

पत्तोंसे अपना बदन ढक लेना अच्छा है। जिनके दिलमें यह भावना दिन रात जगमगाती रहती है वे कभी नफीस और महीन कपड़ेके खतरनाक जालमें न फंसे। वह समय जल्द ही आवेगा जब कि हमें बुने जाने लायक महीन हाथकते सूतकी कमी न रहेगी।

खिलाफत और स्वदेशी

(अगस्त २५, १९२०)

असहयोग कार्यक्रममें स्वदेशीको स्थान देनेमें मुझे अनेक तरहकी आशंकायें घेर रही थीं और बड़ी सोच विचारके बाद ही मैंने इसे स्वीकार किया। मौलाना हसरत मोहानी इसके लिये इतने तत्पर थे कि मुझे लाचार होकर दबना पड़ा। मेरी समझमें स्वदेशीके प्रचारमें मेरे और उनके ध्येयमें अन्तर है। वे ब्रिटिश मालके वहिष्कारके पक्षपाती हैं पर मैं उसपर विश्वास नहीं करता है जैसा कि मैंने लिखा है। ब्रिटिश मालके वहिष्कारके इतने अधिक विरोधी थे कि मौलाना हसरत मोहानीका अभीष्ट सिद्ध न हो सका और उन्हें लाचार होकर स्वदेशीका सहारा लेना पड़ा। इसलिये आवश्यकता प्रतीत होती है कि मैं इस बातको लिखूं कि मैंने असहयोग कार्यक्रममें स्वदेशीको किस तरह स्थान दिया।

असहयोग क्या है। आत्मत्याग और बलिदान करनेके लिये आत्मसंयमका दूसरा नाम असहयोग है। मेरी दृढ़ धारणा है कि राष्ट्रमें आत्मत्यागकी जितनी योग्यता होगी वह उतना ही ऊपर उठ सकेगा। आत्मत्याग जितना पवित्र होगा उन्नति उतनी ही तीव्र होगी।

स्वदेशीके द्वारा प्रत्येक मनुष्य बड़े ही पवित्र तरहका त्याग कर सकता है। इसके द्वारा हमें यह मालूम हो जायगा कि हम कितने त्याग तकके लिये तैयार हैं। इससे विदित हो जायगा कि खिलाफतके साथ जो अन्याय किये गये हैं उनका कितना गहरा असर लोगोंके हृदयोंपर पड़ा है। क्या देश इस आत्म-त्यागके प्रथम चरणको पूरी तरहसे अपनानेके लिये तैयार है? क्या देश अपनी रुचिको बदलनेके लिये तैयार है और सिल्क, मैंचेस्टरकी डोरिया और मलमल तथा फ्रांसकी जरीके स्थानपर खद्दर धारण करके ही अपने अंगकी शोभा बढ़ानेके लिये तैयार है? यदि देश आज विदेशी कपड़ोंको छोड़कर हाथकी तैयार खादी पहननेके लिये तैयार है तो हम दृढ़ताके साथ संसारको दिखला सकते हैं कि हममें संगठनकी योग्यता, शक्ति, सहयोग और आत्मत्यागकी पर्याप्त मात्रा मौजूद है और इसके द्वारा हम लोग आगे सहजमें अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेंगे। राष्ट्रीय एकताका इससे बढ़कर दूसरा प्रमाण नहीं हो सकता।

पर इस तरहकी सफलता केवल चाहनेसे नहीं प्राप्त हो सकती। और एकाकी मनुष्य भी चाहे कितना ही परिश्रमी

उद्योगशील और तत्पर वह क्यों न हो—इस काममें सफल नहीं हो सकता। भारतवर्ष भरमें स्वदेशीकी दूकानोंको खोल देनेसे भी यह प्रश्न नहीं हल हो सकता। इस प्रश्नके हल करनेका एक-मात्र उपाय नये उत्पादन तथा नियमित और उचित विभाजनसे हो सकता है। नये उत्पादनसे मेरा यह अभिप्राय है कि घर घरमें चरखे चलायने लगें, लाखों स्त्रियां यह काम करने लगें। इसके लिये ऐसे उद्योगी मनुष्योंकी आवश्यकता है जो प्रतिदिन घरोंमें रुईकी पिउनी पहुंचावें, कता सूत ले आवें और कताईकी मजूरी दे आवें। इससे हजारों चरखे चलने लगेंगे और जो जुलाहे अन्य पेशोंमें जा घुसे हैं अपने बपौती पेशेको फिरसे उठा लेंगे। करघा बैठाकर कपड़ा बिनने लगेंगे। इसी व्यवस्थाके अनुसार स्वदेशी असहयोग कार्यक्रममें स्थान पा सकता है। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि खिलाफतके काममें योग देनेवाले, असहयोगसे सहानुभूति रखनेवाले यदि और कुछ नहीं करेंगे तो स्वदेशीके प्रचारमें कपड़ेके उत्पादनको बढ़ाने और ठीक बटवारेमें अवश्य योगदान करेंगे। यदि कोई व्यक्ति केवल वर्तमान उत्पादकके बाटनेका ही प्रयास करता है तो वह केवल विना किसी लाभके चक्कर मार रहा है।
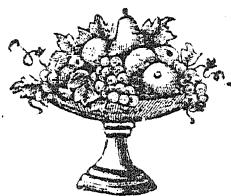
स्वराज्यकी कुंजी

—:०:—

(जनवरी १६, १६२०)

कांग्रेसके प्रस्तावमें स्वदेशीके महत्व और तन्निमित्त व्यापारियों द्वारा स्वार्थत्याग होनेकी आवश्यकतापर जो जोर दिया गया है वह बहुत ठीक है।

हिन्दुस्थान तबतक स्वतन्त्र नहीं हो सकता जबतक वह उस आर्थिक दोहनको प्रोत्साहित करता या सहता रहेगा जो डेढ़ शताब्दीसे हो रहा है। विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका अर्थ विदेशी कपड़ेका ही बहिष्कार है, इससे अधिक या इससे कम और कुछ नहीं। हम लोग जो दोहन होने दे रहे हैं उसमें सबसे बड़ा काम विदेशी कपड़ेका ही है। हम लोग जो विदेशी कपड़ा खरीदते हैं उसके लिये ६० करोड़ रुपया वार्षिक देना पड़ता है। यदि हिन्दुस्थान प्रयत्न करके इस दोहनको बन्द कर सके तो इतना करनेसे ही उसे स्वराज्य मिल जायगा।

हिन्दुस्थान विदेशी कपड़ेके व्यापारियोंका लोभ पूरा करनेके लिये गुलाम बनाया गया। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीने यहां प्रवेश किया उस समय हम लोग इतना कपड़ा तैयार कर लेते थे कि अपनी आवश्यकता पूरी करके बाहर भी भेज सकते थे। फिर कुछ ऐसी बातें हुई जिनका यहां वर्णन करनेकी आवश्यकता

नहीं है, पर जिनके कारण हिन्दुस्तान अपने वस्त्र परिधानके लिये विदेशी कपड़ेके कारखानेवालोंका मुंह निहारनेवाला बन गया।

पर हम लोगोंको परमुखापेक्षी न होना चाहिये। हिन्दुस्तान अपना कपड़ा आप तैयार कर सकता है यदि उसकी सन्तान उसके लिये उद्योग करे। यह सौभाग्यका विषय है कि हिन्दुस्थानमें इतने जुलाहे मौजूद हैं जो मिलोंसे निकलनेवाले कपड़ेसे, न हो सकनेवाली आवश्यकताकी पूर्ति कर सकते हैं। मिलोंसे कभी इतना कपड़ा तैयार नहीं होता, न हो सकता है जितना हमें चाहिये। पाठकोंको शायद यह न मालूम होगा कि इस समय भी मिलोंकी अपेक्षा जुलाहे ही अधिक कपड़ा तैयार करते हैं। पर मिलें विदेशी महीन पोतका ५ करोड़ गज कपड़ा तैयार करती हैं जो मोटे सूतके ४० करोड़ गजके बराबर होता है। विदेशी कपड़ेका वहिष्कार करना हो तो सूत अधिक तैयार करना ही उसका उपाय है और यह हाथसे सूत कातनेसे ही हो सकता है।

इस वहिष्कारको सफल करनेके लिये यह जरूरी है कि हमारे सब व्यापारी विदेशी माल मंगाना बन्द कर दें और जितना माल अभी हिन्दुस्थानमें हो वह सब घाटा सहकर भी बेच दें और जहां तक होसके विदेशी खरीदारोंके हाथ ही बेच दें। रुईका सट्टा तो उन्हें एकदम बन्द कर देना चाहिये और सब रूई यहींके लिये रख लेनी चाहिये। विदेशी कपड़ा खरीदना उन्हें बन्द कर देना चाहिये।

मिल मालिकोंको अपने लाभके लिये मिल न चलानी चाहिये,

बल्कि वे राष्ट्रके एक ट्रस्ट हैं ऐसा समझकर उन्हें मिल चलानी चाहिये और महीन सूत न कातकर केवल अपने देशके लिये ही कपड़ा बुनना चाहिये।

प्रत्येक गृहस्थ और घरवालीको फैशनका अपना ख्याल, कमसे कम फिलहाल बदल देना होगा और ऐसे महीन कपड़े पहनना जो शरीर ढँकनेके लिये नहीं पहने जाते, छोड़ देना होगा। उसे अपने मनको शिक्षा देकर ऐसा बना लेना होगा कि शुद्ध स्वच्छ गाढे में उसे सौन्दर्य और कौशल दिखाई दे और वह उसकी मृदु विषमताकी कदर कर सके। प्रत्येक गृहस्थको कपड़ेका ऐसा उपयोग करना सीखना होगा जैसा कोई कंजूस अपने धनका उपयोग करता है।

और जब गृहस्थ लोग पोशाकके सम्बन्धमें अपनी रुचि संशोधित कर लें तब किसी न किसीको जुलाहोंके लिये सूत कातना होगा। यह तभी हो सकता है जब हरएक मनुष्य अपनी फुरसतके समय प्रेमसे या धनके लिये सूत कातना आरम्भ करे।

हम लोग इस समय आध्यात्मिक संग्राममें लगे हुए हैं। साधारण समयमें किये जानेवाले सब काम असाधारण समयमें रोक दिये जते हैं। और यदि हम लोग एक वर्षके अन्दर स्वराज्य लेनेके लिये चले हैं तो इसका यह मतलब है कि और सब बातोंका कोई खयाल न करके अपनी सारी शक्ति इसी एक काममें लगा दें। इसलिये मैं हिन्दुस्तानके सब विद्यार्थीको यह सूचना देता हूं कि वे एक वर्षके लिये अपना नित्यका शिक्षाका काम

छोड़ दें और अपना समय चरखोंसे सूत कातनेमें लगावें। मातृभूमिकी यह इस समय सबसे बड़ी सेवा होगी और स्वराज्य-की प्राप्तिमें उनका अत्यन्त स्वाभाविक कार्यभाग होगा। अभी जो युद्ध हो चुका है उसमें हमारे शासकोंने हरएक कारखानेको अस्त्र शस्त्रागार बना कर गोलियां बनानेके काममें लगा देनेकी चेष्टा की थी। हमारे इस युद्धमें मेरा यह कहना है कि प्रत्येक राष्ट्रीय स्कूल और कालेज राष्ट्रके लिये सूत तैयार करनेवाला कारखाना बना दिया जाय। इस कामको करनेसे विद्यार्थियोंकी कुछ भी हानि न होगी। उन्हें यहां भी स्वराज्य मिलेगा और परलोकमें भी। हिन्दुस्तानमें कपड़ेका दुर्भिक्ष है। इस अकाल-का निवारण करनेमें सहायक होना सचमुच ही बड़े पुण्यका काम है। जैसे विदेशी सूतका व्यवहार करना पाप है वैसे सूत अधिकाधिक तैयार करना पुण्य है जिससे विदेशी सूतके बहि-ष्कारसे उत्पन्न होनेवाले अभावका हम सामना कर सकेंगे।

इस पर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि सूत तैयार करना जरूरी है तो क्यों नहीं हर एक गरीब स्त्री पुरुषको कुछ देकर उन-से यह काम लिया जाय? इसका उत्तर यह है कि कपड़ा बुनना बढ़ईका काम इत्यादिके समान हाथसे सूत कातना कोई पेशा नहीं है और न कभी था। अङ्गरेजोंके आनेके पहले हिन्दुस्तानमें सूत कातना हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंका काम था जो वे फुरसतके समय करती थीं और इस कामकी इज्जत थी। इस समय समयाभावसे स्त्रियोंमें उस कलाका फिरसे प्रचार करना बड़ा

कठिन है पर स्कूल जानेवाले लड़कोंके लिये यह बड़ा सहज है कि राष्ट्र की पुकार सुन कर वे इस काममें लगें। कोई यह न कहे कि यह काम मनुष्य या विद्यार्थियोंका गौरव कम करनेवाला है। इस कलाका प्रचार भारतवर्षकी स्त्रियोंमें ही मर्यादित था। इसका कारण यह है कि उन्हें उसके लिये समय मिलता था और काम शोभा तथा संगीतसे युक्त होने तथा इसमें विशेष परिश्रमकी आवश्यकता न रहनेके कारण इस पर स्त्रियोंका इजारा भी कायम हो गया था। पर क्या स्त्री और क्या पुरुष, सबके लिये इस काममें इतनी शोभा है जितनी यह कहिये कि संगीतमें है। हाथसे सूत कातनेके काममें स्त्रीके धर्मकी रक्षा, दुर्भिक्षसे देशके जीवनका बीमा और धन-धान्य-समृद्धि छिपी हुई है। इसमें स्वराज्यकी कुञ्जी रखी हुई है हमारे पूर्व पुरुषोंने विदेशी कारखाने वालोंके शैतानी प्रभावके सामने सिर झुका कर जो पाप किया उसका बहुत ही हलका प्रायश्चित्त हाथसे सूत कातनेका जीर्णोद्धार है।

स्कूल जानेवाले लड़के सूत कातनेके कामको फिरसे वह इज्जत दिला देंगे। वे मोटेको सुन्दर बनानेका काम शीघ्रतासे करेंगे। कारण, कोई माता या पिता, अपने बच्चोंके हाथके सूतका बना कपड़ा पहननेसे इनकार न करेंगे। और विद्यार्थियोंको इस कलाको मानते हुए देखकर हिन्दुस्तानके जुलाहे राह पर आ जायंगे। यदि हम चाहते हैं कि पञ्जाबी सैनिकके कामसे नहीं, बल्कि दूसरे देशोंके निरपराध और

स्वतन्त्र लोगोंका खून करनेवाले खूनीके कामसे उन्हें हटाना चाहते हैं तो हमें उन्हें कपड़ा बुननेका काम देना होगा। पञ्जाबके शान्त जुलाहोंकी जातिने अपना पेशा छोड़ दिया है। अब यह काम पञ्जाबके विद्यार्थियोंका है कि वे ऐसा प्रयत्न करें कि पञ्जाबी जुलाहे फिरसे अपने दोष-रहित पेशेको अख्तियार करें।

मैं किसी अगले अंकमें यह दिखलाऊंगा कि स्कूलोंमें यह परिवर्तन प्रवर्तित करना कितना आसान है और कितना जल्द इन शर्तों पर हम अपने स्कूल कालेजोंको राष्ट्रीय बना सकते हैं। हर जगह विद्यार्थी मुझसे यह पूछते हैं कि अपने राष्ट्रीय विद्यालयोंमें आप नई बातें क्या रखना चाहते हैं। मैं सबसे यही कहता आया हूं कि मैं नई बात हाथसे सूत कातनेकी अवश्य रखूंगा। पहलेसे भी बहुत स्पष्टताके साथ इस समय मैं यह देख रहा हूं कि इस आक्रमणके कालमें हमें लोगोंको सूत कातने और कुछ अन्य राष्ट्रोपयोगी बातोंकी तरफ अपना सारा ध्यान लगाना चाहिये जिसमें पहले की हुई उपेक्षाका निवारण हो जाय। और विद्यार्थी भी इससे नवीन शिक्षाक्रम स्वीकार करनेके लिए अधिक पात्र और प्रस्तुत हो जायंगे।

क्या मैं प्रगतिकी घड़ीका कांटा घुमाकर पीछे ले आना चाहता हूं? क्या मैं यह चाहता हूं कि मिलोंका स्थान चरखे और करघे अख्तियार कर लें? क्या मैं यह चाहता

हूं कि रेलगाड़ीकी जगह बैलगाड़ी आ जाय? क्या मैं मशीनरी (यांत्रिक सामग्री) को बिलकुल ही नष्ट कर डालना चाहता हूं? कुछ समाचार पत्रके सम्पादकों और सार्वजनिक पुरुषोंने मुझसे ये प्रश्न किये हैं। मेरा उत्तर यह है—यदि मशीनरी नष्ट हो जाय तो मैं उस पर आंसू न बहाऊंगा या उसे कोई अनिष्ट न समझूंगा। पर मशीनरीके विरुद्ध मेरी कोई कार्रवाई नहीं है। इस समय मैं जो कुछ चाहता हूं वह यही है कि हमारी मिलोंसे जितना कपड़ा और सूत तैयार होता है वह कम है और उस कमीकी पूर्ति होनी चाहिये। करोड़ों रुपया जो हम हिन्दुस्तानके बाहर भेजते हैं वह बचना चाहिए और वह झोपड़ियोंमें रहनेवालोंको मिलना चाहिए। यह मैं तब तक नहीं कर सकता जब तक लोग फुरसतके समय हाथसे सूत कातनेका काम करनेके लिये तैयार न हों। इस उद्देश्यसे हमें उन उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये जो मैंने सूचित किये हैं जिसमें सूत कातनेका घर घर प्रचार हो, और यह काम जीविका-निर्वाहके लिये नहीं, बल्कि कर्तव्य जान कर करना चाहिये।

सूत कातनेका कर्तव्य

स्वराज्यकी कुञ्जीवाले लेखमें मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि घर घर सूत कातनेका प्रचार करनेमें देशका कितना बड़ा लाभ है। भविष्यके किसी भी शिक्षाक्रममें, सूत कातना एक आवश्यक विषय होना चाहिये। जैसे हम लोग विना सांस लिये, विना भोजन किये जी नहीं सकते, वैसे ही घरमें सूत कातनेकी प्रथाका जीर्णोद्धार किये विना हमारा आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करना और इस प्राचीन भूमिसे दरिद्रताको भगा देना असम्भव है। मेरा तो यह मत है कि प्रत्येक घरके लिये चरखा उतना ही आवश्यक है जितना कि रसोई घरमें चूल्हा। इसके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है जिससे इस देशकी दिन दिन बढ़ती हुई दरिद्रताका प्रश्न हल हो सके।

तब घर घरमें चरखेका प्रवेश कैसे हो? मैंने तो पहलेसे ही कह रखा है कि प्रत्येक राष्ट्रीय विद्यालयमें चरखा चलाना और सूत निकालना सिखाया जाना चाहिए। जहां एक बार हमारे लड़के लड़कियोंने यह कला सीख ली वहां वे उसे आसानीसे अपने घर ले जा सकते हैं।

पर इसके लिये संगठनकी आवश्यकता है। चरखा प्रति दिन २ घण्टे चलाना चाहिये। अभ्यस्त मनुष्य एक घण्टेमें

ढाई तोला सूत कात सकता है। इस समय सूतका जो दाम मिलता है वह औसत हिसावसे ४० तोले या आधा सेर सूतके पीछे चार आना है, अर्थात् एक घण्टेका एक पैसा पड़ा। इस लिये हर चरखेसे रोज तीन आना मिलना चाहिये। मजबूत चरखा ७) रुपयेमें मिलता है। इस तरह २ घण्टे रोज काम करनेसे ३८ दिनसे कम ही समयमें इसका दाम निकल आता है। इस हिसावको ध्यानमें रखकर कोई भी अपने कामका हिसाब बैठा सकता है। इस हिसाबसे हिसाब कोई लगाता जाय तो परिणाम देखकर उसके आश्चर्यका पारावार न रहेगा।

यदि प्रत्येक स्कूलमें सूत कातना सिखाया जाय तो शिक्षाका व्यय चलानेके सम्बन्धमें आज जो हमारे विचार हैं वे एकदम बदल जायं। हम दिनमें छः घण्टेका स्कूल रख सकते हैं और लड़कोंको मुफ्त शिक्षा दे सकते हैं। मान लीजिये कि एक लड़का नित्य प्रति ४ घण्टे चरखा चलाता है तो वह रोज १० तोले सूत निकालेगा और इस तरह स्कूलके लिये वह रोज एक आना कमावेगा। मान लीजिये कि पहले महीनेमें उसने काफी सूत न निकला और २६ दिनका स्कूल रहा। पहले महीनेके बादसे वह १॥≈) महीना कमा लेगा। इसी हिसावसे जिस श्रेणीमें ३० वालक हैं उस श्रेणीको पहले महीनेके बादसे ४८॥। महीनेकी आमदनी हो जायगी।

मैंने साहित्यकी शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है। यह शिक्षा ६ घण्टोंमेंसे बाकीके दो घण्टोंमें दी जा सकेगी। इससे

यह स्पष्ट हो जाता है कि हर एक स्कूल विना विशेष परिश्रमके अपना खर्च आप चला सकता है। और देश अपने स्कूलोंके लिये अच्छे अनुभवी अध्यापक पा सकता है।

इस स्कीमको अमलमें लानेमें बड़ी भारी कठिनाई चरखेकी है। यदि इस कलाको लोग पसन्द कर लें तो हमें हजारों चरखोंकी जरूरत होगी। सौभाग्यका विषय है कि हर गांवमें बढ़ई आसानीसे यह यन्त्र तैयार कर सकता है। आश्रमसे या और कहींसे चरखा मंगाना बड़ी भारी भूल है। सूत कातनेकी कलामें खूबी यह है कि विलकुल सीधा सादा काम है, जल्दी सीख सकते हैं और हर गांवमें विशेष व्यय किये विना इसका प्रचार कर सकते हैं।

यह शिक्षा-क्रम मैंने केवल इसी शुद्धि और उम्मेदवारीके वर्षके लिये ही सूचित किया है। जव फिरसे ठीक ठाक हो जायगा और स्वराज्यकी स्थापना हो लेगी तब सूत कातनेका काम केवल १ घण्टा कर सकते हैं और बाकी समय साहित्यकी शिक्षामें लगा सकते हैं।

स्वदेशी भण्डार

पहले लेखमें मैंने यह बतानेकी चेष्टा की थी कि स्वदेशी भण्डारोंमें मिलोंमें तैयार किये गये कपड़े बेचनेसे स्वदेशी वस्तु-प्रचारका कार्य अग्रसर नहीं होता, बल्कि इसके कारण कपड़ेकी दर और चढ़ती चली जाती है। इस लेखमें मैं यह बतानेकी चेष्टा करूंगा कि कम पूंजीसे असली स्वदेशी वस्तु प्रचारके कार्यमें किस तरह सहायता की जा सकती है और साथ ही अपना जीविका निर्वाह भी हो सकता है।

मान लीजिये कि एक परिवारमें पति, पत्नी और दो लड़के हैं। एककी उमर १० वर्षकी और दूसरेकी ५ वर्षकी है। यदि उनके पास कुल पांच सौ रुपयेकी पूंजी हो तो वे एक खद्दर (मोटिया कपड़ा) भण्डार खोल सकते हैं। २०००० आदमियोंकी बस्तीमें यदि वे एक घर या घरका हिस्सा—जिसमें वे रह सकें और दूकान भी कर सकें—भाड़ेपर लें तो उनको करीब १०) रुपये देने पड़ेंगे। यदि वे १० फी सैकड़ा मुनाफा रखकर माल बेच दें तो उन्हें प्रति मास ५०) रुपया मुनाफा होगा। उसके नौकर नहीं हैं। स्त्री और लड़के अपने अवकाशके समयमें उस आदमीको सहायता कर सकते हैं। जब वह बाहर जायगा तो उसके बदले दूकान भी चला सकते हैं और चीजोंकी देख भाल भी कर सकते हैं। स्त्री और दोनों

लड़के अपने अवकाशके समयमें सूत कातनेका भी काम कर सकते हैं।

सम्भव है पहले पहल खद्दर (या मोटिया कपड़े) की बिक्री दूकानपर नहीं हो। ऐसी अवस्थामें पतिको चाहिए कि वह खद्दर खरीदनेकी ओर लोगोंकी रुचि उत्पन्न करनेके लिए फेरी करके बेचा करे। तुरन्त ही उसे ग्राहक मिलने लगेंगे।

पाठकको इस बातपर आश्चर्य-चकित नहीं होना चाहिए कि मैंने १० फी सैकड़ा मुनाफा क्यों रखा। बात यह है कि यह खद्दर भण्डार बिलकुल गरीब आदमियोंके लिए नहीं है। खद्दर खरीदनेमें जितना दाम खर्च करना पड़ता है खद्दरके व्यवहारसे उनका आधा तो जरूर ही निकल आता है। केवल इस लिये नहीं कि वह साधारण कपड़ेसे अधिक मजबूत होता है (मजबूत तो होता ही है) बल्कि इस लिए कि इसके व्यवहारसे हमारी रुचिमें विप्लव उत्पन्न होता है। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं कि धनका मूल्य क्या है। जो लोग देशभक्तिके खयालसे खद्दर खरीदेंगे वे इसके लिये १० फी सैकड़े मुनाफा दे सकते हैं और अन्तिम बात यह है कि खद्दरकी ओर अभिरुचि उत्पन्न होनेसे इधर लोगोंका ध्यान आकर्षित होगा, श्रद्धा उत्पन्न होगी और परिश्रमकी मात्रा बढ़ेगी। एक बात और यह है कि जो लोग खद्दर भण्डार खोलेंगे वे निश्चित स्थानसे थोक दर पर थोक माल नहीं

पावेंगे, उनको बढ़िया खद्दरके लिए बड़ी खोज करनी होगी। उन्हें अपने यहांके जुलाहोंको देशी चरखेसे तैयार किये सूतसे खद्दर बुननेके लिये उत्साहित करना होगा। उन्हें अपने आस-पासके गांवोंमें स्त्रियों द्वारा सूत कातनेके लिये उत्साह सञ्चार करना होगा। उन्हें रूई धुनवाने, सुलझाने आदिके लिये धुनियोंके घर घर जाना और उनसे काम कराना पड़ेगा। अर्थात् उन्हें अपनी बुद्धि, बल और संगठन-शक्तिका व्यय करना पड़ेगा। अतएव जिस आदमीमें निर्दिष्ट योग्यता है उसे १० सैकड़ा मुनाफा लेनेका भी अधिकार है। इस पद्धतिसे खोला गया स्वदेशी भण्डार ही वास्तविक स्वदेशी प्रचारका केन्द्र-स्थान हो सकता है। अभी जो स्वदेशी भण्डार मौजूद हैं उनके मनेजरोंसे मैं इस ओर ध्यान देनेको कहता हूं। सम्भव है, वे कमसे कम खद्दरके व्यापारमें इस नीतिसे काम लें।

स्वदेशीमें धोखेबाजी

देश द्रोही और सोलह आना स्वार्थी मनुष्योंकी बदौलत ही हमें गुलाम बनना पड़ा है और आज हम स्वार्थत्यागके लिये तैयार नहीं होते हैं! अत एव हम गुलाम बने रहनेके ही योग्य हैं! आज कल स्वदेशी प्रचारका काम जोरशोरसे चल रहा है। पर इस समय भी ठग लोग अपनी करतूतसे

बाज नहीं आते! वे तो अपना काम बना ही रहे हैं। बम्बईमें कुछ लोग विलायती सड़ी गली बनात, विलायती ही साटन और धागेकी बनी टोपियां स्वदेशीके और मेरे नाम पर बेच रहे हैं! ये टोपियां काली हैं। अतएव स्वदेशी टोपी पहननेवालेको मैं सलाह देता हूं कि वे सिर्फ सफेद और खादीकी ही टोपी पहना करें, सफेद टोपियोंमें जितनी शोभा, स्वच्छता और सुविधा है उतनी रंगी टोपियोंमें नहीं! वे टोपियां हमेशा धोई जा सकती हैं। काली टोपियोंमें मैल लगी रहती है और बदबू निकला करती है। पसीना लग-लग कर वे गन्दी हो जाती हैं। सफाईका खयाल रखनेवाला तो उन्हें पहन ही नहीं सकता। जिस टोपीमें चमड़ा लगा रहता है उसका असर दिमाग पर भी अच्छा नहीं होता। अंग्रेज चमड़ेवाली टोपियां देते हैं। परन्तु वे तो सिर्फ उसी वक्त पहनते हैं जब कि घरसे बाहर होते हैं। फिर वे बदलते भी बार बार हैं। परन्तु हम लोग तो बरसों तक एक ही टोपी देते हैं और दिन भर सिरपर रखे रहते हैं। चमड़ेवाली टोपियां या पगड़ियां ऐसोंके तो काम आनी ही न चाहिये। खादीकी टोपी साफ और हलकी होती है इससे वह बिलकुल निर्दोष है। फिर मोटोसे मोटी खादीका इससे बढ़कर उचित उपयोग और क्या हो सकता है कि उसकी टोपियां बनाई जायं? जो सिरसे पैरतक खादी पहननेका प्रेमी है उसे पहले सिरसे ही 'श्रीगणेश' करना चाहिये! इस खादीकी टोपीको क्या धनी और क्या निर्धन, सभी

पहन सकते हैं। धनी लोग खादीकी टोपीको हमेशा धोवेंगे, उस पर बेल-बूटे कढ़ावेंगे, उसमें ज्यादा तहें लग जायंगी। इतना फ़ेरफार चाहे भले ही हो, पर टोपियां तो सबके सिरपर एक ही तर्जकी होनी चाहिये, यह विचार उपेक्षा करने योग्य नहीं है। आखिरी फैसला तो यही होना चाहिये कि अकेली खादीकी टोपी ही स्वदेशी मानी जाय। ऐसी टोपीके लिये किसी मापकी जरू-रत नहीं। स्वदेशी टोपी तो ऐसी होनी चाहिये कि उसे बालक भी पहचान सके। जिस प्रकार हम अपने दिमागसे दिखाव और ढकोसला निकालकर स्वराज्यवादी हो सकते हैं उसी प्रकार हमारी टोपियोंमेंसे भी दिखाव और ढकोसला दूर हो जाना चाहिये। जो लोग स्वदेशीके नामपर विदेशी टोपियां बेचते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि आप अगर ईमानदारीके साथ अपना रोजगार न कर सकते हों तो कमसे कम देशहितके काममें तो बेईमानी करनेसे बाज आइये। चोर भी अपनी एक नीति बनाकर चोरी करते हैं। वे आपसमें चोरी नहीं करते। कोई गरीबोंको छोड़ देते हैं। आज सारे देशमें एक महायज्ञ हो रहा है। तो क्या इसमेंसे हम अपनी नीच स्वार्थ साधनका विचार रखनेकी नालायकीसे अपनेको नहीं बचा सकते? लोगोंसे तो मैं यही कहूंगा कि जो लोग इस तरह लोगोंको धोखा देते हैं उनकी दूकानका तो सर्वथा बहिष्कार करना ही उचित है।

यह तो 'स्वदेशी टोपी' की बात हुई। अब स्वदेशी 'नानक-लाट' की कथा सुनिये। शिमलासे एक पत्र मुझे मिला है।

उसमें लिखा है कुछ लोग जापानी नानकलाट परसे जापानका नाम काटकर उसे फिरसे धोकर और बम्बईकी छाप लगाकर स्वदेशीके नामसे बेचते हैं और कुछ मिलें भी इस काममें शरीक हैं। मुझे आशा है कि इस समय मिलोंके मालिक तो देशके साथ दगाबाजी करनेमें हाथ न बढ़ावेंगे। इस शुद्ध आन्दोलनके समय तो देश उनसे सहायताकी ही आशा रखता है।

पर खरीदारोंको भी सचेत रहनेकी जरूरत है। यदि लोग महीन कपड़े पहननेका मोह छोड़ देंगे तो धोखा होनेको कम सम्भावना रहेगी। तरह तरहकी मांडी लगे मालका त्याग करनेसे सभी लोग अपने आप स्वदेशी मालको परख लेंगे। इन सब झंझटोंसे छुटकारा पानेका उपाय है विना घुली हुई खादी। हर गांव अपनी जरूरत भर खुद ही बना ले तो कोई किसीको धोखा नहीं दे सकता।

मिलोंके मालिक स्वदेशी हलचलमें जितनी सहायता कर सकते हैं उतनी दूसरे कोई नहीं कर सकते। अहमदाबादके मिल मालिकोंने तिलक-स्वराज्य फंडमें दान देकर अपना नाम उज्ज्वल किया है। श्रीयुत अम्बालाल साराभाईने भाव न बढ़ानेका तथा छोटी छोटी दूकानें खोलकर सस्ते भावसे फुटकर खरीदारोंको माल बेचनेका निश्चय किया है और मिलवालोंकी कीर्ति बढ़ाई है। वे असहयोगसे भय खाते हैं, इसीलिये हम उनकी पूरी सहायता न प्राप्त कर सके। जिस समय असहयोगी अपने संयमके द्वारा सबको अभय कर देंगे तब मैं आशा करूंगा कि वे असह-

योगमें भी पूरी तरह शामिल हो जायंगे। इस बीच उनका यह निश्चय कि भाव न बढ़ाया जायगा, निस्सन्देह बहुत सहायता देगा। मुझे आशा है कि दूसरे मिल मालिक भी श्रीअम्बालाल-जीका अनुकरण करके स्वदेशी प्रचारमें सहायक होंगे।

कपड़ेके व्यापारी तो मुझे यहांतक कहते हैं कि मिल मालि-कोंको केवल भाव न चढ़ाना चाहिये, इतना ही नहीं, बल्कि आज भी उनके भाव हद्से ज्यादा, जापानकी मिलोंसे भी ज्यादा बढ़े हुए हैं। सो मालिकोंको इस विषयमें विचार करके कोई निर्णय अवश्य करना चाहिये।

देशकी जरूरतको जानकर उन्हें परदेशके आर्डर भी कम लेना चाहिये। सूत भी वहांसे बहुत बाहर जाता है। तथापि इस विषयमें ज्यादा विचार करनेकी जरूरत रहेगी। हमें यह जान पड़ेगा कि जबतक बाहरवालोंको हमारे मालकी जरूरत रहेगी तबतक तो हमें उन्हें वह पहुंचाना ही होगा। परन्तु हमारी बात इंग्लैण्डसे जुदी है। इंग्लैण्डका जो व्यापार हमारे साथ है उसमें एक प्रकारका बलात्कार रहा है। हमारे व्यापारमें ऐसा कभी नहीं हो सकता। विदेशोंके साथ हमारे व्यापारका विषय तो भिन्न और नाजुक है। तथापि तीन बातोंके विषयमें तो सन्देह नहीं। अफीमका व्यापार बिलकुल अनीतिका है। इसमें भारत सरकारने जो अनीति की है उसमें हमने पूरा भाग लिया है। चीनको हानि पहुंचानेका पाप हमारे माथे जरूर ही रहेगा। जहां तक हिन्दुस्थानकी जरूरत पूरी न हो तहांतक अनाज और रूई

बाहर जानी ही न चाहिये। उसके बदले हमारा बहुतसा अनाज लड़ाईके समयमें भेजा जा चुका है। रूईके सम्बन्धमें हम कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं। इसकी पूरी खबर अभी पीछेसे पड़ेगी।

मिलके मालिकोंसे आखिरी मदद जो चाही जाती है वह मालकी शुद्धताके विषयमें है। वे परदेशी सूतका माल देशी कह-कर न बेचें, हदसे ज्यादा मांड़ी न लगावें। मुझे आशा है कि मिल मालिक विचार करके ऐसा निर्णय करेंगे जिससे देशके हितकी रक्षा होगी।

चरखेकी उपयोगिता

—:०:—

(जुलाई ८, १९२१)

साधारण वारिस भी भूतलको जिस तरह तर कर सकती है मनुष्यका अधिकाधिक उद्योग भी उस तरह तर नहीं कर सकता। सिंचाईका कैसा भी प्रबन्ध क्यों न कीजिये, नहर आदि कितना भी क्यों न बनाइये उस नहरकी सफलता कभी भी नहीं मिल सकती। पर मेह सब कामोंको इतनी आसानीसे कर देता है कि उसकी सरलता ही आकृष्ट करनेके लिये पर्याप्त है। चरखेको भी मेह ही समझिये। इसके द्वारा भी लाखों और करोड़ों घरोंमें अति सहजमें ही काम और दाम पहुंचा दिया जा सकता है। हममेंसे जिन्हें अपना पेट भरनेके लिये सिरसे पैरतक पसीना नहीं बहाना

पड़ता वे नहीं जान सकते कि इसकी क्या मर्यादा है क्योंकि दो तीन आने पैसे उनके लिये कुछ है ही नहीं, वे उनके विचारके नीचे हैं। यह बात उनके विचारमें आती ही नहीं कि इस मंहगीके दिनमें भी भारतमें ऐसे ऐसे स्थान हैं जहां यह तीन आना ईश्वर-की देनी समझी जायगी। पर चरखेकी उपयोगिता हमें केवल इसी लिहाजसे नहीं देखनी है। राष्ट्रीय उत्थानका यह महान अस्त्र है। यदि हम वास्तवमें स्वराज्य चाहते हैं तो हमें आर्थिक स्वतन्त्रताके लिये सबसे पहले प्रयत्नशील होना चाहिये। विदेशी वस्त्रोंका वहिष्कार इसीका निषेधात्मकरूप है। इसको सफल बनानेके लिये हमें आवश्यकताके अनुसार पर्याप्त कपड़ा तैयार करना चाहिये। इसकी पूर्ति केवलमात्र चरखेसे हो सकती है। इस प्रश्नको हल करना मिलों द्वारा नहीं हो सकता। यदि हम लोग केवल मिलोंपर ही निर्भर रहेंगे तो मिलके कपड़ोंका दाम बेतरह बढ़ जायगा और गरीब लोग उसे खरीद नहीं सकेंगे। निदान हम लोगोंकी वही दशा होगी जो १९०७-८ के स्वदेशी आन्दोलनके समय हुई थी।

इसके अतिरिक्त भारतकी जलवायुके लिहाजसे भी तीनों मौसिमोंमें इसका भलीभांति प्रयोग हो सकता है। जिन लोगोंने इस गर्मीमें खादीका इस्तेमाल किया है उनका कहना है कि इसके पहननेका स्वाद पाकर अब मलमल या ट्वील पहननेकी इच्छा ही नहीं होती। साधारण (औसत दर्जेका)जाडा भी खादीसे कट सकता है। भारतकी जलवायुमें यह आवश्यक है कि

कपड़ा जितना अधिक हो सके धोया जाय। इस तरहकी अनवरत धुलाई केवल खादीकी हो सकती है। किसी समय समस्त राष्ट्र इसी कपड़ेको पहनता था। इस बातका अनुमानकर अतिशय प्रसन्नता होती है कि पटेल तथा देशमुख खादीका वस्त्र धारण कर कितने सुन्दर प्रतीत होते थे। कितने गांव ऐसे थे जिन्हें इस बातका अभिमान था कि सिवा निमकके और कोई भी वस्तु उन्हें बाहरसे नहीं खरीदनी पड़ती थी। जहां यह अवस्था हो वहां रुपयेकी खींच रही नहीं सकती और परराज्यका दखल भी नहीं हो सकता। छोटा गांव भी अपनी मर्यादाके अनुसार ही अपने शासकके साथ मेल रख सकता था। क्या विलासिताकी नशा हमारे दिमागमें इस तरह चढ़ गई है कि स्वराज्य सी अमूल्य वस्तुके लिये भी हम उसे अपने अधीन नहीं कर सकते।

फिर चरखा

(फरवरी ६, १९२१)

'सरवेण्ट आफ इण्डिया' ने चरखे पर आक्षेप किया है। चरखा औरतोंके धर्मकी रक्षा करता है क्योंकि इसके ही द्वारा भारतवर्षकी लाखों कुलीन स्त्रियां जीवन निर्वाहके लिए सड़कों पर काम कर अपना सतीत्व नाश करनेके बदले घर बैठे अपनी रोटी पैदाकर सकती हैं। वस्तुतः बहुत सी स्त्रियां आज चरखे

कातने लग गयी हैं जो कहती हैं कि इसमें बड़ी बरकत है। हमारे देशकी भूखी नंगी औरतोंके लिये तो चरखा सुखका मूल है क्योंकि यह उन्हें अन्न और वस्त्र दोनों ही दे सकता है।

यह भारतवर्षकी चिरकालकी दरिद्रताको दूर करता है और अकालका तो दुश्मन है। और यदि घर घर चरखेका प्रचार हो जाय तो मैं जोर देकर कहता हूं कि अकाल कभी नहीं पड़ेगा।

मैं अपनी जातिकी दरिद्रताको जानता हूं और मेरा विश्वास है कि चरखा इस देशके लिये कामधेनु है। ईस्ट इंण्डिया कम्पनीके आगमनके पहले भारतवर्षके घर घरमें चरखेका प्रचार था और भारतवर्षमें इतनी रूई पैदा होने पर भी इसका अन्य देशोंसे एक गज भी कपड़ा मगाना बड़ा भारी दोष है।

सं० १९१७ ई० सालमें भारतवर्षमें ६२०७ करोड़ पौण्ड सूत तैयार होने पर भी अन्य देशोंसे कई करोड़ गज सूत आया था।

हमारे यहां आज मिलोंकी अपेक्षा हाथसे ज्यादा कपड़ा बुना जाता है परन्तु सूत अधिकांश विदेशी रहता है। इस कारण हमारे बुननेवाले विदेशी सूत कातनेवालेको सहायता पहुंचाते हैं। सूत कातना बलपूर्वक बन्द करके हम लोगोंको दासत्व और आलस्य मिले इसीका मुझे अधिक खेद है।

हमारी मिलें हमारी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर सकतीं और यदि करें भी तो विना किसी प्रकारका दवाव डाले वे मूल्य नहीं घटावेंगी, क्योंकि रुपया पैदा करनाही उनका उद्देश्य है। इस लिये चरखाका प्रचार अत्यावश्यक है क्योंकि इसके द्वारा

बिचारे ग्रामवासियोंका लाखों रुपया उनके हाथमें रह जायगा। कृषि प्रधान देशोंमें एक सहायक व्यवसायकी आवश्यकता है। और चरखा इसके लिये बहुत उपयोगी है और यही भारतवर्षके प्राचीन गौरवको प्राप्त कर लेनेका एकमात्र उपाय है।

भारतवर्षके प्रत्येक विद्यार्थी यदि प्रति दिन ४ घण्टे भी चरखा कातें तो ६४००० विद्यार्थी प्रतिदिन १६००० पाउण्ड सूत कातेंगे और उस सूतका कपड़ा बुनकर ८००० बुननेवाले अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं। विद्यार्थीगणसे इस साल केवल प्रायश्चित्तके ख्यालसे चरखा कातनेको कहा जाता है और इनके द्वारा इसका प्रचार भी होगा। परन्तु यदि सब इसी कार्यमें लग जायं तो प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपया विदेश जाना बन्द हो जायगा। इसीसे आप सोच सकते हैं कि चरखा भारतवर्षके लिये कितने महत्वकी चीज है।

अकालसे बीमा

(मार्च १६ १९२१)

जिस समय मैंने यह लिखा था कि चरखेको अकालसे बीमा समझना चाहिये उस समय यह नहीं समझ सका था कि इस दृष्टान्तको हम किस तरह चरितार्थ कर सकेंगे। उस समय विचार शक्तिद्वारा जो कुछ मैं धुंधलासा देख रहा था उसीको इस

समय अनुभव द्वारा प्रत्यक्ष देख रहा हूं। इस समय बीजापुर अहमदनगर तथा गुजरातके कतिपय स्थानोंमें प्लेग अपना दौरा कर रहा है। इस समय चरखेके द्वारा जो उपकार किया जा रहा है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वास्तवमें यह अकालसे बीमा है?

हम यहां पर कुछ अंक उद्धृत कर देना उचित और आवश्यक समझते हैं। चरखेका मूल्य हुआ ६ रुपया। एक घरमें तीन प्राणी हैं। दो चरखे उन्हें दे दिया गया और बारी बारीसे तीनोंने इस पर ८ घण्टेके हिसाबसे काम किया। इस तरह उनकी मजदूरी ।≈) आना हुई। अकाल आदि कष्टके दिनोंमें साधारण आदमी ।≈) आनामें अपना गुजर मजेमें कर सकता है। पर वे कामका घण्टा बढ़ाकर ८ से बारह कर सकते हैं। और इस तरह अपनी आमदनी ड्योढ़ी कर सकते हैं। इस प्रकार १२००० रुपये लगाकर हमलोग चार मास तक तीन हजार आदमियोंका पालन कर सकते हैं और उसके बदलेमें हमें

$$\frac{१००० \text{ घर} \times ६ \text{ आना} \times १२० \text{ दिन}}{१६ \text{ आना}} = ४५,०००)$$ के बराबरका

काम या मजूरी होगी। हां, यह आवश्यक है कि रूईके अतिरिक्त ४५,०००) रुपयोंकी चिन्ता करनी होगी। इन लोगोंसे जो सूत तैयार कराया जायगा उसका प्रयोग राष्ट्र करेगी। आरम्भमें कुछ नुकसान होगा क्योंकि सीखते समय कुछ सूत और रूई अवश्य बरबाद होगी।

इसके अलावा चरखा देकर इन्हें हम भूखों मरनेसे बचाते हैं। यदि हमलोगोंने उन्हें चरखा दे दिया तो उन्हें केवल रूई प्राप्त करने और सूत बेचनेकी चिन्ता रह जायगी। इसका तजर्बा किया जा सकता है और यदि हमलोग इसका प्रयोग बढ़ाते जायं तो हम दावेसे कह सकते हैं कि इसके द्वारा अकाल आदिसे देशकी रक्षा आसानीसे की जा सकती है। हमने यहां पर मान लिया है कि यदि काल है तो रुपयेका काल है और यदि रुपयेकी व्यवस्था कर दी जाय तो लोगोंको अन्न मिलनेका प्रबन्ध हो सकता है। तीन वर्ष पहले जब खेड़ामें प्लेग हुआ था तब यही बात थी, गत वर्ष उड़ीसामें यही हालत थी और इस वर्ष गुजरातमें भी यही हालत है। इस लिये जनतासे हमारा अनुरोध है कि वे इसकी परीक्षा करें। दानवीरोंसे हमारी प्रार्थना है कि आप सरकारी एजेंसियोंको अपना द्रव्य सहायता करनेके लिये मत दीजिये क्योंकि वे जिस तरह सहायता देती हैं उससे बिचारी गरीब प्रजा और भी लाचार हो जाती है। हमारी सलाह है कि वे कुछ इमानदार काम करनेवालोंको चुन लें और अपनी निजी कमेटी बनाकर काम करना आरम्भ कर दें। उन्हें जल्दी ही पता लग जायगा कि इसमें उन्हें किसी तरहकी नुकसानी नहीं होती और सहायता पानेवाले भी इस ख्यालसे दबे ही जायंगे कि वे जनताके दानके सहारे ही रहते हैं। इसके प्रयोगसे वे दिन दिन आत्मनिर्भर होते जायंगे।

किसीको इस भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये कि चरखा एक

तरहका खिलौना है। इस समय देशमें हजारों चरखे चल रहे हैं। गरीबोंके घरोंमें इस समय हजारों रुपये बांटे जा रहे हैं। यदि थोड़े ही दिनों तक यह काम और भी जारी रहा तो इस भूमि पर चरखा अपना जड़ जमा लेगा।

सूतके धागेमें स्वराज्य

मुझे आशा थी कि दौरेसे लौटकर आप लोगोंसे मिलूंगा, सलाह मसलहत तथा सुख दुःखकी बातें करूंगा और अपनी यात्राके अनेक अनुभवोंमेंसे कुछ आप लोगोंको भी सुनाऊंगा। उस समय मुझे पता न था कि जो संदेसा आज दो दिनसे मैं जिसे तिसे दे रहा हूं वही मैं आपको भी दूंगा। आजकी यह चीज कुछ नई नहीं है। यह वस्तु सदासे मेरे मनमें बसती आई है। मैं समय असमय इसका विचार तथा अमल भी करता रहा हूं। पर अपने जीवनमें किन्हीं किन्हीं वस्तुओंको मैं कुछ खास समयोंमें ही दिनके प्रकाशकी भांति देख सकता हूं। जैसे रौलट ऐक्ट आन्दोलनके समय नदियादमें मुझे एक दिन यकायक सूझी कि विनय पूर्वक कानून तोड़नेके लिये जनता अभी तैयार नहीं है। नदियादमें मैं स्वयं रहा था और अपनी समझके अनुसार वहां मैंने बड़ेसे बड़ा काम किया था। पर वहीं आदमियोंने ऐसी भूल की जिसकी हद नहीं। इससे मुझे जान

पड़ा कि कानूनको विनय पूर्वक वही तोड़ सकता है जिसने भयसे नहीं बल्कि समझकर ज़िन्दगीभर उसका आदर किया हो।

मुझे अपना अस्त्र वापस लेना पड़ा। इसी प्रकार कोई कोई बात खास समयमें ही सूझ पड़ती है। विद्यार्थी अवस्थामें रेखागणित मेरी समझमें बिलकुल न आता था। पर बादको १३ वीं शकलको जिस समय शिक्षकने बोर्डपर समझाया उस समय यकायक मेरे हृदयमें प्रकाश हो गया और तबसे मैं शौकसे रेखागणितका अभ्यास करने लगा। इसी तरह आज तीन चार दिनसे मुझे एक चीज़ सूझी है। अगर हम असहयोगकी सफलता चाहते हों, विद्यार्थियोंसे इसमें भाग लिवाना चाहते हों, और एक वर्षमें स्वराज्य लेना चाहते हों तो हमें क्या करना चाहिये? जिस चीज़को मैं पहलेसे मानता आया हूं वही इस समय आपके सामने पेश कर रहा हूं। मेरा तो इस चीज़में आदिसे ही अटल विश्वास था तथापि यह क्यों था इसका एक रुख मैंने इस बार जैसा समझा वैसा पहले नहीं समझ पाया था।

मैं कुलपतिके नाते आपसे कुछ कहने नही आया हूं। बड़े भाई अथवा किसी बुजुर्गकी भांति सलाह देने और मसलहत करने आया हूं। वह सलाह आग्रह पूर्वक देता हूं किन्तु जितनी दृढ़ता और विश्वाससे आज मैं इन चीज़ोंको कहूंगा उतनी दृढ़ता और विश्वाससे पहले कभी मैंने इस बातको आपके सामने न रखा था। अगर आप कहें कि पाठशालायें छोडना —शिक्षाशून्य होना तो अपघात करनेके समान है तो मैं आपसे कहूंगा कि पाठशालामें

रहनेका पाप छोड़कर आप अवश्य अपघात कीजिए। ईश्वर आपको इस अपघातके लिये क्षमा करेगा। अब तक मैं आपको अनेक बानगियां परसता था पर आज तो मैं सिर्फ यह कहने आया हूं कि अगर आप असहयोगको सफल करना चाहते हों तो अपना बचा घण्टा सूत कातनेमें लगा दीजिये। बात आपको नई मालूम होगी, आपको चोट लगेगी। बी० ए० बननेकी लालसावालोंसे, और जिन्हें इस विद्यापीठ द्वारा डिग्री देनेका विश्वास दिलाया गया है उनसे मेरा कहना है कि आज हिन्दुस्थानके लिये चरखा चलाना ही सबसे बड़ी डिग्री है। मेरे इतने ज़ोर देनेकी वजह यह है कि इस समय मेरे विचारोंमें जितना वेग है उतना ही मैं आप लोगोंमें भी देखना चाहता हूं।

हिन्दुस्थानके हमारे हाथसे जानेका कारण स्वदेशीका त्याग ही है। हिन्दुस्थानमें सूत कातनेका कोई अलग धन्धा न था। प्रत्येक वर्गकी प्रत्येक स्त्री सूत कातती थी, कितने ही पुरुष भी कातते थे। ढाकेकी मलमलका सूत निकालनेवाले पुरुष थे। पर यह तो मैंने कुछ पेशेवरोंकी बात कही। सामान्य रूपसे कातना यह धन्धा नहीं बल्कि कर्तव्य समझा जाता था। जब तक हिन्दुस्तानमें कताईकी प्रथा जारी थी तब तक हिन्दुस्तान आबाद था, समृद्ध था। हमारे पैदा किये हुए कपड़ेसे केवल देशकी भीतरी मांग ही पूरी न होती थी बल्कि बचता था और परदेश जाता था। पिछला इतिहास इसकी गवाही दे रहा है कि इस्ट-इण्डिया कम्पनीने किन पवित्र और अपवित्र साधनोंसे कपड़े

बुननेका यह काम नष्ट किया, करोड़ों रुपयोंके लोभसे लड़ाइयां कीं, बंदर सर किये, व्यापारपर कब्जा किया और अन्तमें राज्य जमा लिया। हम लोग जब तक पश्चात्ताप न करें, बाप दादोंपर गुजरे हुए जुल्मोंके लिए प्रायश्चित्त न करें तब तक स्वराज कैसे ले सकते हैं? दूसरोंको दण्ड देकर हम कभी नहीं ले सकते। दण्ड देनेकी पद्धति तो हमें छोड़ ही देनी ठहरी। दण्डसे नहीं बल्कि आत्मशुद्धिसे ही सामर्थ्य प्राप्तकर हमें अंगरेजोंको शासनसे रोकना चाहिए। हमारी अपवित्रताके कारण ही वह राज्य कर रहे हैं, टिक रहे हैं, यदि आप इसे मानते हों और निर्मल साधनोंसे ही हिन्दुस्तानका उद्धार करना चाहते हों तो आपका क्या कर्तव्य है? प्रायश्चित्त करना चाहिए। पहलेका कताईवाला काम फिरसे उठा लेना चाहिए। आप कहेंगे, यह तो स्त्रियोंका काम है, हम उन्हें कातनेको कहनेके लिए तैयार हैं। मैं कहता हूं, उतनेसे काम नहीं चलेगा, जब पञ्जाबकी स्त्रियोंकी शरम हमारे देखते लुट गई तब इस लाजसे भी पुरुषोंको यह कताईका धन्धा उठा लेना चाहिये। यह कुली धन्धा है, यह किसी धन्धेके बदलेमें करनेका नहीं, बल्कि इससे प्रजाके व्यर्थ समयका उपयोग होगा और इससे हमें हिन्दुस्थानका उद्धार करना है। अपना प्रायश्चित्त पूरा तो तभी होगा जब स्त्री पुरुष और बालक सब कातने लग जायंगे। ब्रिटिश मालके बहिष्कारके हिमायती लैंकशायरकी कमर तोड़नेके लिये बहिष्कारकी बात करते हैं पर दूसरोंको पछाड़नेकी अपेक्षा स्वयं किसीसे पछाड़े

जानेकी बात मुझे अच्छी लगती है। जापान, विलायत और अमरीकाकी लूट बन्द करनी हो तो हमें अपनी जरूरतका सारा कपड़ा अपने ही घरमें पैदा कर लेना चाहिए। जबतक हम सूत पैदा नहीं करते तब तक अपनी जरूरतके मुआफिक कपड़ा नहीं बुन सकते। अनुभवी व्यापारियोंका कथन है कि अपनी जरूरतका सारा कपड़ा मिलोंकी मार्फत लेनेकी इच्छा कीजिए तो उतनी मिलें खड़ी करनेको पचास बरस चाहिए। फिर नौ महीनेमें यह काम कैसे पूरा पड़ेगा। मिलोंसे आप करोड़ोंका उद्धार कदापि न कर सकेंगे। हम अपने अनेक नंगे घूमते हुए भाई बहनोंके तन मिलके सूतसे न ढांक सकेंगे। आज तक कोई भी देश केवल खेती पर नहीं टिक सका और न टिक सकता है। खेतीके साथ दूसरे किसी धन्धेका सहायक होना ज़रूरी है। वह कताई ही है। उसके पुनरुद्धार न करने तक उसे सीख न लेने तक और सारी पढ़ाई फजूल है।

इन बातोंसे मैं सिद्ध करना चाहता हूं कि यदि यह सत्य जान पड़ती हो—और देशकी राष्ट्रीय महासभाने प्रस्ताव पास कर इस बातकी सत्यता प्रगट रूपसे स्वीकार कर ली है तो अब आपको क्या करना चाहिये? जो नौ महीनेमें स्वराज्य लेना हो तो विद्यार्थियोंके लिये सच्ची विद्या यही है कि हिन्दुस्थानसे कपड़ेका अकाल दूर करें। आज हिन्दुस्थानमें कपड़ेका जितना अकाल है अनाजका उतना नहीं। इस कपड़ेके पीछे हर साल साठ करोड़ रुपये विदेश चले जाते हैं। हिन्दुस्थान आज ४०

करोड़ पाउंड सूत विदेशसे मंगाता है। इतना सूत तो अपने घरमें ही कात लेना चाहिए। बुननेवालोंकी अपने यहां कमी नहीं है, अभाव कातनेवालोंका ही है। बुननेवालोंकी ठीक संख्या तो मुझे अभीतक नहीं मिली है। पर ५० लाखसे अधिक ही होगी। इस द्रव्यको बचाना हो तो हमें सूत कातनेमें जुट जाना चाहिये। ६० करोड़ रुपयेका व्यापार अपने देशमें ही होनेसे कितने आदमियोंको रोजी मिलेगी ज़रा इसका विचार कीजिये। कपड़ेको घीकी भांति वर्त्तना चाहिए। इस समय हम भरपूर कपड़ेका व्यवहार करनेकी हालतमें नहीं है। एक पहिरावेसे काम चले तो दूसरा कुछ न पहनना चाहिए। ओछी धोतियोंसे काम चला सके तो लम्बी न पहननी चाहिए। ६० करोड़की बड़ी रकम बनानेके लिए उतना ही बड़ा बलिदान करना पड़ेगा।

विद्यार्थी इस सालभरमें इसी कामको उठा लें तो महासभाके प्रस्तावानुसार एक वर्षके अन्दर स्वराज्य लिया जा सकता है पर इसके लिये महा प्रयत्न करनेकी जरूरत है। किसी खास शर्तसे ही आप अपना ध्येय प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थियोंको अपनी पढ़ाई रोक कर हिन्दुस्थानके लिये मजदूर बनना चाहिए। अपनी मजदूरीके लिये आप कोई मेहनताना न लें तो आपकी मेहरबानी है, पर जिन्हें लेना हो वह खुशीसे ले सकते हैं।

अगर आप मुझे सलाह देने योग्य समझें तो मैं कहूंगा कि आप अपने कालेज छोड़ दें। स्वराज्यके संग्राममें अपनी ओरसे पूरा भाग लेना चाहें तो हिन्दुस्थानके लिये जितना सूत कात

सकते हों उतना कातें। रोज छः घण्टे नहीं तो कमसे कम चार घण्टे तो जरूर कातनेमें लगाइए। मैं आग्रह नहीं करता कि आप अध्ययन बिलकुल छोड़ दें। पर छोड़ देनेसे आपकी विचार शक्ति घट जायगी, यह मैं नहीं मानता। जिसका मन मलीन न हो तो उसकी विचार शक्ति कभी नहीं घटती। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जब मैं जेलमें था, मुझे पढ़नेको कोई पुस्तक न मिलती थी तब मैं ज्यादा विचार कर सकता था। हमारे दिमाग पढ़ते पढ़ते सड़ गये हैं, इसीसे मैंने आपको छः घण्टे कातने और शेष समयमें पढ़नेकी सलाह दी है। आपको तो मैं यह भी कहता हूं आप कातनेके काममें कुशल हो जायंगे तो आप गांवोंमें जाकर रह सकते हैं। आपमें इतना आत्मविश्वास न हो तो आप कालेजमें भी रह सकते हैं। पर यह तो पक्की बात समझिए कि जब तक सब लोग चार, छः घण्टे कातनेमें न लगावें तब तक हमें स्वराज नहीं मिल सकता। एक महीनेमें या अधिकसे अधिक तीन महीनेमें आप कातना सीखकर गांवोंमें पहुंच जानेके लिए तैयार हो जायंगे और वहां उसका प्रचार कर सकेंगे। सूतका अकाल मिटाकर हम हिन्दुस्थानको जितना आगे बढ़ा सकते हैं उतना और किसी उपायसे नहीं बढ़ा सकते। दूसरे अब तो आपको महासभाके संगठनके अनुसार मददाता संघ तैयार करने हैं। अगर आप गांवोंमें न फैले तो वह कैसे तैयार होंगे? गुजरातके ग्रामोंको आज मैं क्या पैगाम पहुंचा सकता

हूं ? अंग्रेजोंको गालियां देनेको कहूं ? क्या उन्हें तलवार, बन्दूक दे दूं ? नहीं तो और उनसे क्या कहूं ? आज मेरा यही सन्देशा है कि सब लोग जुट जाइए। एक ग्रामीण अहमदाबादसे कपड़ा खरीद कर ले जाता है, यह मुझे बहुत अखरता है। हमारा स्वदेशी धर्म यह है कि प्रत्येक ग्राम अपनी ज़रूरतकी चीजें स्वयं ही पैदा कर ले। इस प्राचीन प्रथाको अगर हम फिरसे ला सकें तो इस हिन्दुस्थानको कोई टेढ़ी निगाहसे न देख सकेगा। आचार्य महाराज और अध्यापकोंसे मैं प्रार्थना करता हूं कि एक वर्षके लिए आप यही ढंग अख्तियार कीजिए और विद्यार्थियोंको गांवोंमें जानेके लिए तैयार कर दीजिए।

इस सालमें आपकी इतनी शिक्षा हो जाय तो काफी है। अपनी गुजराती सुधारें, अंग्रेजीका त्याग करें हिन्दुस्तानी सीखें। उर्दू लिपिका अभ्यास करें और चर्खा चलाना सीख लें। इतना कर लेनेके बाद हम लोग आगामी वर्षके लिए ताजा हो जायंगे। मैं तो चाहता हूं कि स्वराज्य मिलने तक यही क्रम चले। यह न हो तो कमसे कम एक वर्ष तो ज़रूर रखें। यही मेरा आजका सन्देसा है।

तुम बेधड़क ही कर अपनी शंकाओंका समाधान कर लो। मैं नहीं जानता कि इस विषयपर श्रद्धारहित कोई भी विद्यार्थी यह काम करे। तुम्हारी बुद्धि और हृदय स्वीकार करे तभी मेरी बात मानना।

सवाल जवाब ।

विद्यार्थी—मा बाप कहेंगे कि तुम्हें महाविद्यालयमें पढ़ने भेजा था, चर्खा कातने नहीं ।

गांधीजी—उन्हें कहिए कि चर्खा कातना भी पढ़ना ही है ।

विद्यार्थी—मा बाप गांवोंमें जानेकी इजाज़त न देंगे, कहेंगे घर ही बैठो ।

गांधीजी—तो अच्छा है, आप घर बैठकर कातिए । कातनेका भी निषेध करें तो विनय पूर्वक उन्हें समझाइए । दिनभर चर्खा कातनेवाले लड़केको मां बाप एक दिन, दो दिन, बहुत तो चार दिन लड़ेंगे लेकिन अन्तमें तो समझ ही जायंगे । मैंने ऐसे भी मां बाप देखे हैं कि जो लड़केको झूठ बोलनेको कहते हैं । लड़का झूठ न बोले तो नाराज होते हैं, लेकिन दो चार दिन नाराज हो हवाकर अपने आप चुप हो जाते हैं । आपमें इतनी दृढ़ता होनी चाहिये और कालेजके विद्यार्थियोंमें तो इतनी दृढ़ता-की आशा मैं जरूर ही रखता हूं ।

विद्यार्थी—चरखेसे असहयोगके संग्राममें क्या सहायता मिलेगी ?

गांधीजी—चरखेसे हिन्दुस्थानके लिये आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकेगी । आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त किये विना हम स्वराज्य भोग ही न सकेंगे । आप साबुन विना, दियासलाई

विना, आलपीन विना काम चला सकते हैं। लेकिन कपड़े विना नहीं चला सकते। इस समय हम बाहरसे जितना माल लेते हैं उतना दे नहीं सकते। इसीसे हर साल हमारी आर्थिक हानि बढ़ रही है। हमें सरकारी सेनाका भीषण खर्च उठाना पड़ता है। ६० करोड़ रुपये कपड़ेके लिये दे देने पड़ते हैं और दूसरी बेकार जरूरतोंमें जो जाता है वह अलग। ऐसी दशामें हमें आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी बहुत अधिक आवश्यकता है। जो ६० करोड़ रुपये हम बचा सकते हैं वह तो बचा ही लेने चाहिये। ६० करोड़ बचा लेंगे तो और भी बचानेकी शक्ति आ जायगी। उस समय दूसरी चीजें बाहरसे लेनेकी शक्ति भी रहेगी। सूई या घड़ीका कारखाना हिन्दुस्थानमें न हो तो इससे हिन्दुस्थान कुछ अनाथ न हो जायगा। पर कपड़े विना तो हिन्दुस्थान वास्तवमें अनाथ हो रहा है।

विद्यार्थी—चरखेके प्रवेशसे विद्यार्थियोंमें फिर हलचल मच जायगी।

गांधीजी—हलचलसे तो विद्यार्थी उन्नत होते हैं। हलचल करना तो मेरा और अध्यापकोंका धर्म है। इस समय विद्यार्थी जागृत होनेपर भी सोये हुए हैं। मा बापसे, संसारसे, अपने साथियोंसे इस तरहका झगड़ा हो जाय तभी जाग सकते हैं। उसमें हानि नहीं है।

विद्यार्थी—विद्यार्थियोंके सिवा आप दूसरोंसे कातनेको क्यों नहीं कहते हैं। विद्यार्थियोंसे अध्ययन क्यों छुड़वाते हैं?

गांधीजी—कातनेको शिक्षा न समझना यह आपकी पहली भूल है और बलिदानको शिक्षा न समझना दूसरी भूल। यदि कल सब लड़कोंकी समझमें आजाय कि अध्ययनका बलिदान करके देशसेवा करनी है तो उसी क्षण मैं समझूंगा कि मेरा एक वर्षका काम पूरा हो गया।

विद्यार्थी—चरखेसे जीवन निर्वाह कैसे हो सकता है ?

गांधीजी—बुद्धिसे काम लेनेवाले कमा भी सकते हैं। लेकिन इस समय तो मैं चरखेको आपद्धर्मकी भांति पेश कर रहा हूं। हिन्दुस्थानके सब लड़के रोज चार घण्टा सूत कातनेकी प्रतिज्ञा कर लें तो महीने भरमें सूतके दाम घट जायं।

विद्यार्थी—पाठशालाओंमेंके इस फेरफारसे असहयोगके आन्दोलनको धक्का न पहुंचेगा ?

गांधीजी—नहीं, सरकारी स्कूल छोड़नेवाले सरकारी शिक्षाको बुरा समझकर ही छोड़ते हैं। अगर वह इस विद्यालयके लालचसे ही छोड़ते हों तो उन्हें वही कालेज मुबारक रहे। जिन्हें केवल अक्षर ज्ञान ही देना हो वे भले ही वैसे अलग कालेज खोलें। हमें अपना यही कर्तव्य सूझता हो कि बरस भर यह काम करनेसे देशका कल्याण होगा, हम स्वराज्य प्राप्तिके साधनभूत होंगे, तो हमें यह काम जरूर ही करना चाहिए।

विद्यार्थी—आप मानते हैं कि आपके नये विचारके लिए देशका वातावरण तैयार है? आप इस संग्राममें यकायक प्रजाको विकट स्थितिमें डालना चाहते हैं।

गांधीजी—मैं वातावरणको तैयार समझता हूं। इसीसे तो मैं यह बात कर रहा हूं। गत तीन महीनोंमें देश बहुत आगे बढ़ा है। वातावरण रेलकी चालसे नहीं बल्कि बरफ पड़नेकी भांति भूमितिकी रीतिसे सरपट बढ़ रहा है। मैंने आठ वर्ष पहले लिखा था कि हिन्दुस्थानको यह मार्ग ग्रहण करना होगा, उस समय मुझे मालूम न था कि १९२१ की १३ जनवरीको मैं आपसे यह बात करूंगा।

विद्यार्थी—क्या देशसेवासे पहले कुटुम्ब सेवा कर्तव्य नहीं है?

गांधीजी—जरूर है। पर कुटुम्बसेवा लोकसेवामें बाधक नहीं हो सकती। पहले अपनी सेवा फिर कुटुम्बसेवा, फिर ग्राम-सेवा और तब देशसेवा मैं यह क्रम मानता हूं, पर कोई भी जगतके कल्याणके विरुद्ध न होनी चाहिये। देशकी इस दरिद्रा-वस्थामें कुटुम्बसेवाके नामपर बहनके व्याहमें बीस हजार रुपये खर्च करना उचित न समझा जायगा।

विद्यार्थी—देशरक्षार्थ पुलिसकी जरूरत होगी। चरखा कत-वानेके बदले कवायद सिखाकर आप विद्यार्थियोंको उस कामके लिये क्यों नहीं तैयार करते?

गांधीजी—पुलिसका काम मैं आपको कैसे सिखा सकता हूं? जहां भय है वहां जाकर हटनेकी शक्ति आनी चाहिये। तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि उच्च शिक्षा पूरी कर लेनेपर स्वराज्यकी पैरवी करेंगे?

सवाल—स्वराज्यके माने क्या हैं?

जवाब—सेनाविभागका, आमदनी खर्चका, कर स्थिर करने-का और अदालतोंका अधिकार हमारी मुट्ठीमें आनेका नाम ही स्वराज्य है। ऐसा स्वराज्य मिलनेपर हम लोग सब अत्या-चारोंको दूर कर सकते हैं। इसमें आर्थिक स्वतन्त्रता तो इतनी आवश्यक है कि उसे आजकी घड़ी प्राप्त कर लेना भी अच्छा है। वह चरखेसे ही मिल सकती है। देश आज ही कदाचित् इस वस्तुको न भी बरदास्त करे।

सवाल—आप बराबर 'लड़ाईकी स्थिति' 'लड़ाईकी स्थिति' किया करते हैं तो क्या वह वालंटियर आर्मी बनाये विना सम्भव है? विद्यार्थियोंको सैनिक शिक्षा भी देनी ही चाहिये। तो क्या इस समय चरखेके बजाय उसपर ज्यादा जोर देनेकी जरूरत नहीं है?

गांधीजी—यह सैनिक शिक्षा तो आनन-फाननमें दी जा सकती है। सैनिक शिक्षाके माने क्या है? बहादुरी। (गांधीजी-को मालूम था कि प्रश्नकर्त्ता विद्यार्थी भाई पुराणीके अखाड़ेका भी शागिर्द हैं) बहादुरी क्या अटापटा खेलनेसे आती है? लहरमें पीछेसे तूफान मचे और लोग घर जलाने लगें तो तुरन्त दौड़कर जो बीचमें पड़कर कहे कि मुझे मारनेके बाद ही आप घर जला सकेंगे वही सच्चा बहादुर है। उस वक्त क्या हुक्म देने और सुननेका समय होगा? 'मार्च' 'क्किक मार्च' सुननेके लिये ठहरना होगा? उस वक्त कवायद भी गायब हो जायगी। ऐसे प्रसंगपर तो मैं यही कह सकता हूं कि भाई, जितना दौड़ा जाय दौड़कर

उस जगह पहुंच जाओ। मैं तो ऐसा समय आनेपर कुछ भी साथ लिये विना जूते पहनता होऊं तो उन्हें भी पहनना छोड़कर दौड़ूं और आगे बढ़कर भस्म हो जाऊं। मैं जो इस तरह भस्म न होऊं तो कहियेगा कि गांधी व्यर्थ ही बड़ी बड़ी बातें हांका करते थे।

एकने पूछा कि अगर केवल खिलाफतके मांगके सिवा अपनी और सब मांगें सरकार पूरी कर दे, तोभी क्या वास्तवमें यह लड़ाई चलती रहनी चाहिये।

जवाब—जरूर, मैंने अनेक बार कहा है कि इस्लामके बचानेमें मैं हिन्दू धर्मके बचानेकी शिक्षा पा रहा हूं। इस्लामके बचानेमें ही गोरक्षा निर्भर है और जबतक हिन्दुस्थानमें एक भी गाय मरती है तबतक मेरा मांस, स्नायु और रुधिर पानी हो रहा है। मैं गायको बचानेकी तालीम ले रहा हूं, तपश्चर्या कर रहा हूं, अनेक फल लाभ कर रहा हूं मैं इस गोरक्षाका मन्त्र जपते जपते ही मरूंगा।

सवाल—अगर सब केवल चरखेका ही ध्यान करेंगे तो वर्तमान शिक्षा विसर जायगी, इसे क्या आप नहीं मानते हैं?

जवाब—चरखेकी प्रवृत्तिसे स्वतन्त्र होकर अक्षर ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हम सच्ची योग्यता प्राप्त करेंगे। अतएव इस चरखेकी प्रवृत्तिसे तो इस समयकी शिक्षा सतेज हुई रहेगी।

गीतामें चरखा

कवीवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने, एक धार्मिक विधि समझ कर चरखा कातनेके विषयमें, जो आक्षेप (माडर्न रिव्यूमें) किये हैं उनके उत्तर देनेका प्रयत्न मैंने ('यंग इण्डिया' में) किया है। मैंने उसमें अपनी पूरी नम्रतासे काम लिया है और वह कविवरके तथा उनके सदृश विचार रखनेवाले लोगोंके समाधान करनेके हेतुसे लिखा है। पाठकोंको यह जानकर कुतूहल होगा कि मेरे इस मतको अधिकांशमें भगवद्गीतासे गति मिली है। इस विषयसे सम्बन्ध रखने वाले भगवद्गीताके कुछ श्लोक (अध्याय ३ से) यहां उद्धृत किये जाते हैं।

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

* * * * ॥८॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगो समाचर ॥९॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥१०॥

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणम् ॥१३॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

यहां कामसे अभिप्राय निस्सन्देह शारीरिक श्रमसे ही है और यज्ञके रूपमें किया जानेवाला कर्म तो एकमात्र वही हो सकता है जो सब लोगोंके लाभके लिये सब लोगोंके द्वारा किया जाय। और ऐसा कर्म—ऐसा यज्ञ अकेला चरखा कातना ही हो सकता है। यहां मैं यह सूचित करना नहीं चाहता हूं कि भगवद्गीताके रचयिताने चरखेको ही लक्ष्य करके यह लिखा है। उन्होंने तो व्यवहारके मूलभूत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। और भारतवर्षमें बैठकर उसका मनन करते हुए तथा भारत पर उसको घटाते हुए मेरे ध्यानमें तो योग्यसे योग्य और अधिकसे अधिक मान्य यज्ञ-रूप शरीर-कर्मके स्थान पर चरखेके सिवा और कुछ नहीं आता। कोई भी इससे अधिक उच्च और स्वाभाविक बात मेरे दिमागमें नहीं आ रही है कि हम सब प्रतिदिन एक घण्टा वही काम करें जो गरीब आदमीको अवश्य ही करना पड़ता है और इस तरह हम उनके

साथ और फिर सारी मनुष्य-जातिके साथ अपना तदात्म्य कर लें। मुझे ईश्वरकी पूजाका इससे बढ़कर साधन सूझ ही नहीं सकता कि मैं उसके नाम पर गरीबोंके लिए वैसी ही मिहनत किया करूं, जैसी कि वे खुद करते हैं। चरखा पृथ्वीकी सम्पत्तिको अधिक सम-भागमें बाटनेका साधन है

अकालकी दवा

(अक्तूबर ६, १९२१)

सीडेड डिस्ट्रिक्ट (जो जिले पहले पहल आर्कटके नवाबने कम्पनी सरकारको दे दिये थे उन्हें सीडेड डिस्ट्रिक्ट कहते हैं) में दौरा करने मैं अभी गया था। चरखेका यहां जिस तरह प्रचार हो रहा है और उससे जिस तरह सहायता पहुंचायी जा रही है उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि अकालसे रक्षासे यह सर्वोत्तम साधन है। इन जिलोंके कई भागोंमें भीषण अकाल फैल रहा है। अभी एक आदमीने मुझसे कहा है कि एक महिलाने अपने तथा अपने बच्चोंका पालन न कर सकनेके कारण जलमें डूबकर प्राण दे दिया। इस तरह हजारों या लाखों आदमियोंकी दानसे सहायता करना संभव नहीं और जो लोग इस तरह दान पर निर्भर रहते हैं हर तरहसे आत्मभिमान खो देते हैं। यह भी बात नहीं है कि अकाल पीड़ित क्षेत्रोंमें अन्नकी कमी है। यदि किसी वस्तुकी कमी है तो कामकी और रुपयेकी। सरकार केवल गिट्टी तोड़ने और ढोनेका काम लेती है। एक आदमीने

मुझसे कहा कि इन लाचारोंके लिये काम तलाश करनेके हेतु सरकारने सड़क तोड़वाकर उसकी फिरसे मरम्मत करवाई। उसके लिये चाहे सरकारको सड़क तोड़वानी पड़े या नहीं, पर ऐसे अवसरोंपर सरकार केवल यही काम लेती ही है। इस तरह गिट्टी तोड़कर एक आदमी दस पैसा और एक औरत एक आनासे पांच पैसे कमा लेती है। दूसरी ओर मैंने देखा कि आठ घण्टे चरखा चलवाकर कांग्रेस कमेटियां तीन आना प्रतिदिन दे रही थीं।

जिस दरसे उन्हें दिया जारहा है उसी दरसे वही काम अन्य अकाल पीड़ित पुरुषों और स्त्रियोंको भी दिया जा सकता है। इन जिलोंमें पुरुषोंके लिये भी तीन आना रोज बहुत है। चरखेमें आमदनीकी जो सम्भावना है अन्य कामोंमें नहीं है। रूई धुननेसे लेकर बिनउल निकालना, ओटना पिउनी बनाना, सूत कातना और बिनना आदि भिन्न भिन्न काम इसमें होता है। इन जिलोंमें चरखा कातना बड़ी आसानीसे सिखाया जा सकता है। यदि भारतकी आवश्यकता भर कपड़ा चरखों द्वारा ही तैयार करनेका संकल्प कर लिया जाय तो हजारों घरोंकी रक्षा और पालन हो सकता है। इस तरह हजारों आदमियोंको घर बैठे काम मिल सकता है। जितने काम करनेवाले मिले सबोंने यही कहा कि हमलोगोंको आशा हो गई है कि चरखेका प्रचार अपना निर्दिष्ट काम बड़े मजेमें कर सकता है और इसी लिये हमलोग इसके प्रचारमें विशेष दत्तचित्त हो रहे हैं। कातनेवालोंने भी यही

बात दोहराई। कितने आदमी ऐसे भी मिले जो मुझसे कहने लगे कि जब आपने शुरू शुरूमें लिखा कि चरखेसे अकाल पीड़ितोंकी रक्षा हो सकती है तो हमलोग इसकी हंसी उड़ाते थे पर इस समय प्रत्यक्ष प्रमाणसे विदित हुआ कि आपका कहना सर्वथा सच है।

मैं भलीभांति समझता हूं कि अभी यह परिवर्तनका आरम्भ हो रहा है। पर जिस समय यह आरम्भ हो जायगा, एक भी स्त्री या पुरुष विना काम या विलबिलाते या भूखों मरते नहीं दिखाई देंगे। आज जहां कहीं अकाल पड़ जाता है वहांका दृश्य देखिये। हजारों आदमी दान और सदावर्तके सहारे जीवन यापन करते हैं और बेकार बैठे रहकर अपना जीवन नष्ट करते जाते हैं तथा अपनी मर्यादा खोते जाते हैं। इतने पर भी भर पेट भोजन नहीं मिलता।

इसीलिये प्रत्येक कांग्रेस कमेटियों तथा खिलाफत कमेटियों-को मैं प्रति दिन यही सलाह देता रहता हूं कि अन्य कोई काम न करके आपलोग सबसे पहले अपने अपने ग्रामोंमें चरखेका प्रचार कर डालिये। हम लोगोंको इस बातके लिये शर्म आनी चाहिये तथा उद्योग करना चाहिये कि कोई भी स्त्री और पुरुष बेकार न बैठा रहे या काम विना भूखों न मरे। धनिक वर्गसे मेरी प्रार्थना है कि विना समझे बूझे दान देनेकी प्रथाको त्याग दें। यदि आज हम भारतको दान देने वाले और दान लेने वालोंमें विभक्त कर देते हैं तो भावी सन्तति इसके लिये आपको

और हमें कोसेंगी तथा गालियां देंगी। यदि हम राष्ट्रका आत्माभिमान और आत्मगौरवकी शिक्षा देना चाहते हैं तो हमें उचित है कि अभीसे ऐसी व्यवस्था कर दें जिससे अकालकी पीड़ा कोई सहने न पावे, उसका किसीको आभास न हो। इसलिये जो गरीबोंको दान दिया करते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि उनके लिये चरखेका प्रबन्ध कर दीजिये और सीखनेकी सुविधा कर दीजिये।

—०—

करघेका अधिक प्रयोग

—:०:—

(मई ११, १९२१)

श्रीयुत सम्पादक, यंग इण्डिया,

महाशयजी, जिन्हें देशकी भलाईका कुछ भी ध्यान है वे एक स्वरसे यही कहते हैं कि भारतको अपने कपड़ेकी आवश्यकता आप पूरी कर लेनी चाहिये अर्थात् भारतको न तो विदेशी कपड़ा खरीदना चाहिये और न विदेशी सूत। पर प्रश्न यह उठता है कि इस काममें शीघ्रतासे शीघ्र सफलता किस तर प्राप्त हो सकती है। महात्मा गांधीका कहना है कि यह काम चरखेके प्रचारसे सफल हो सकता है। पर हमलोगोंकी धारणा है कि इसके अतिरिक्त और भी तरीके हैं जिनके द्वारा यह काम और आसानीसे, शीघ्रतासे तथा अच्छी तरह निस्पन्न हो सकता है। लोग पूछ सकते हैं कि यह कौनसा

तरीका है। इसलिये हमलोग यहांपर उनका दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं। (१) भारतमें करघेकी संख्या बढ़ाकर (२) लोगोंको इस बातकी शिक्षा देकर कि उन्हें भारतके बने सूतके मोटे और गाढ़े कपड़ोंसे ही सन्तोष करना चाहिये और विदेशी पतले और महीन सूतसे बने मुलायम कपड़ेका त्याग करना चाहिये। इसका विस्तृत विवरण कर देना उचित होगा। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि देश मोटा कपड़ा पहननेके लिये तैयार है। ऐसी दशामें यदि चरखा चलाकर केवल भारतीय मिलोंसे बने तागोंके प्रयोगसे करघोंमें कपड़े बिने जायं तो भारतकी कमीकी आवश्यकता पूरी हो सकती है। आप जानते ही हैं कि प्रतिवर्ष इस देशसे १४३००००० पौंड सूत विदेश जाता है। बस इस सूतका कपड़े बिननेका प्रबन्ध कर दिया जाय तथा देशको मोटा कपड़ा पहननेके लिये तैयार कर लिया जाय तो कपड़ेकी समस्या आपसे आप ही हल हो सकती है। प्रश्न यह उठता है कि क्या वर्तमान करघे इतने सूतका कपड़ा बुन सकेंगे? इसका उत्तर सिवा "नहीं"के और कुछ नहीं हो सकता। ऐसी दशामें क्या करना चाहिये। साधारणतः यही उत्तर मिलेगा कि करघोंकी संख्या बढ़ाइये। इसमें भी हाथसे चलनेवाले करघे ही बढ़ाये जा सकते हैं, क्योंकि मशीनसे चलने वाले करघे इतनी आसानीसे नहीं बढ़ाये जा सकते। इसके लिये विदेशोंसे मशीनोंके मंगानेकी आवश्यकता पड़ेगी।

इसके लिये अनेक तरहकी कठिनाइयों, दिक्कतों और बिनि-

मयकी दरकी कमी वेशीका खतरा उठाकरभी दो तीन वर्ष तक उनके लिये ठहरना पड़ेगा। पर हाथसे चलाये जानेवाले करघोंको बैठाना कोई कठिन काम नहीं है। यहीं स्थान स्थान पर ये बड़ी आसानीसे तैयार किये जा सकते हैं और इनमें खर्चभी अधिक नहीं पड़ सकता। गणना विभागने जो अङ्क १९१९ में प्रकाशित किया था उससे स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान करघोंकी संख्या दूनी कर देनेसे ही हमारा काम चल सकता है। इसलिये मेरी सानुरोध प्रार्थना है कि इस पत्रके पाठक मेरे इस प्रबन्धपर गौरसे विचार करें और यदि इसे उपयोगी समझें तो कार्यमें इसे परिणत करने की चेष्टा या यत्न करें।

कलकत्ता
१९ अप्रैल

आपका विश्वासपात्र
एस० वी० मित्र

इस पत्रके लेखकने इस बातको ताख पर रख दिया है कि चरखेके साथ साथ करघेकाभी प्रचार होगा। यदि चरखेके सूत करघे पर नहीं बिने जायंगे तो कपड़ेकी समस्या नहीं हल हो सकती। पर केवल करघोंके प्रचारसे यह प्रश्न नहीं हल हो सकता। हाथसे कपड़ा बिननेकी कला अभी तक कहीं नहीं है। इस समय हाथसे चलाये जानेवाले करघोंकी संख्या कलसे चलाये जानेवाले करघोंकी संख्या से अधिक है। पर उनमें अधिकतर विदेशी सूतही काममें लाये जाते हैं। इस बात-को बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं कि हमें मोटे कपड़ेसे ही सन्तोष करना चाहिये और जुलाहोंको देशी सूतका प्रयोग

करनेके लियेही मजबूर करना चाहिये। इसके साथही साथ इस पत्रके लेखकको मिलके मालिकोंसे भी इस बातके लिये प्रार्थना करनी चाहिये कि वे मिलके सूतको विदेशोंमें भेजनेकी चेष्टा न किया करें। पर यही कठिन है क्योंकि जो लाभ उन्हें सूत भेजनेसे होता है उसको छोड़ देना या उसमें कमी करना उनके लिये कठिन है। विदेशी वस्त्रोंके पूर्ण अधिकारको सफल बनाना केवल मिल मालिकों और रईसोंके हाथमें है। यदि ये दोनों अपना कर्तव्य समझ लें और देशकी आवश्यकताकी बात इनके दिमागमें समा जाय तो ये इसको सहजमें हल कर दे सकते हैं। इतनेपरभी चरखेकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि केवल विदेशी कपड़ों के वहिष्कारसेही सारा प्रश्न नहीं हल हो जाता। उन करोड़ों किसानोंके लिये किसी सहायक पेशेके प्रबन्धकी नितान्त आवश्यकता है। पहलेकी भांति उन्हें इस समयभी अपने फालतू समयके लिये किसी सहायक पेशेकी नितान्त आवश्यकता है। जो लोग बिना काम धन्धेके भूखों मर रहे हैं उनके लिये किसी व्यवसायकी आवश्यकता है जिससे उनका पेट पालन हो सके। यह केवल चरखेसे साध्य है। इस पत्रके लेखकने जिस बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है वह चल ही रहा है। करघोंकी संख्या दिन दिन बढ़ती जा रही है, जनता भी मोटे कपड़ेकी ओर रुचि बढ़ाती जा रही है। पर वर्तमान समयकी दरिद्रताका प्रतिकार एकमात्र चरखेसेही हो सकता है। हम अपने विश्वासको और भी जोरदार भाषामें

रखना चाहते हैं। हमारी तो यही धारणा है की विना चरखे-के भारतवर्ष आत्मनिर्भर, निर्भीक तथा आत्मावलम्बी नहीं हो सकता।

—०—

चरखेका सन्देश

—:०:—

(जून २६, १९२१)

इण्डियन सोशल रिफार्मरके किसी सम्वाददाताने चरखेकी उपयोगिताकी प्रशंसामें एक लेख लिखा है। यह लेख सोशल रिफार्मरमें प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें लेखकने एक बातपर ध्यान आकृष्ट किया है कि चरखेका प्रयोग इतनी तेजीके साथ नहीं होना चाहिये जिससे कातनेवाले घबरा जायं। मि० अमृत लाल थक्कड़ काठियावाड़में इसके प्रयोगका अनुभव कर रहे हैं। उसके सम्बन्धमें उन्होंने टिप्पणी लिखी है कि किसानोंकी स्त्रियां चरखेका प्रयोग तेजीसे कर रही हैं। लक्षणसे मालूम होता है कि वे उससे घबरा नहीं जायंगी, क्योंकि यह उनकी जीविकाका सहारा है और पूर्वकालकी भांति उनकी सहायता करेगा। सूत कातनेका काम उन्होंने इस लिये छोड़ दिया था क्योंकि उनके काते सूतकी पूछ उठ गई थी। नगरके लोग मुमकिन है इससे घबरा जायं यदि उन्होंने केवल क्षणिक जोश या फैशनके फेरमें पड़कर चरखा चलाना शुरू किया है। इस पर वे ही लोग अटल रह सकते हैं जो इसे अपना कर्तव्य समझकर

उठाते हैं और इसे राष्ट्रीय आवश्यकताका परम आयोजन समझकर ग्रहण करते हैं और अपना फालतू समय इसमें लगाते हैं। स्कूलमें पढ़नेवाले लड़के तीसरे दर्जेके कातनेवालोंमें हैं। राष्ट्रीय पाठशालाओंमें चरखेका प्रयोग बड़ा ही उपकारी होगा, इसकी मुझे दृढ़ आशा है यदि इसका प्रयोग उचित तरीकेसे किया जाय और यदि शिक्षक लोग इस बातको समझते हैं कि इससे भारतके सात लाख ग्रामोंकी शिक्षाकी व्यवस्था बड़ी आसानीसे हो सकती है और यदि इस विश्वास पर वे लड़कोंको चरखा चलाना सिखावें तथा उन्हें उद्यत करें तो इससे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इसमें घबराहट और थकाहटकी कोई सम्भावना नहीं है बल्कि उलटे राष्ट्र सार्वजनिक शिक्षाका प्रश्न विना किसी अतिरिक्त करके लगाये अथवा बुरे तरीकोंसे (शराबखोरी आदि) आमदनी किये विना इस प्रथाको हल कर सकते हैं। सोशल रिफार्मरके सम्वाददाताका कथन है कि चरखों पर पतले सूत भी काते जाने चाहिये। मैं उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूं कि थोड़े दिनोंके बाद यह भी सम्भव हो जायगा। इसी चरखेसे ढाकाके मलमलका मुकाबिला किया जायगा। सूत कातनेका काम सितम्बरसे आरम्भ हुआ और दिसम्बरमें अर्थात् ४ मासके बाद ही भारतका विश्वास जम गया यह साधारण बात नहीं है।

लेखकने इस बात पर खेद प्रगट किया है कि चरखेके सूतका प्रयोग पूरी तरहसे नहीं किया जा रहा है। यह बात

ठीक है। पर इसका उपचार करघोंकी संख्या बढ़ानेसे नहीं हो सकता। इसके लिये जुलाहोंको समझाना चाहिये कि वे चरखेके सूतका अधिक प्रयोग करें। सूत कातनेसे कपड़ा बिननेका काम कुछ कठिन होता है। सूत कातना केवल सहायक पेशा है। यही कारण है कि यह सूत कातनेकी तरह एकदमसे नष्ट नहीं हो गया। इस समय भी भारतमें इतने काफी करघे हैं कि यदि उन्हें पूरी तरह चलानेका प्रबन्ध किया जाय तो भारतके बस्त्रका प्रश्न उसी दिन हल हो सकता है। इस बातको सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि मद्रास तथा महाराष्ट्रके हजारों करघे जापान और मैनचेस्टरसे सूत मगाते हैं और उनका प्रयोग करते हैं। इन करघोंमें चरखेके सूतका प्रयोग करवाना चाहिये। इस कामको सफल करनेके लिये सबसे पहले देशकी रुचि बदलनेकी आवश्यकता है। आज तक जो लोग महीन और मुलायम कपड़ा पहनते आये हैं उन्हें मोटा कपड़ा पहननेका अभ्यास कराना है। मलमलके बनानेमें कोई लाभ नहीं है। जिस मलमलसे शरीर ढकनेके बजाय खुला रह जाय उसके तैयार करनेसे क्या लाभ। कलाके जो भाव हम लोगोंके दिमागमें अब तक घुसे हैं उनमें परिवर्तन होना चाहिये। यदि पतला या मेहीन कपड़ा बिनना लोगोंकी रुचिके अनुसार आवश्यक है तो भी इस समय, जबकि हम स्वतन्त्रताके युद्धमें परिणित हैं, जब हम स्वतन्त्र होनेके लिये जी जानसे चेष्टा कर रहें हैं, ऐसी अवस्थामें तो हमें उन्हीं कपड़ोंसे सन्तोष करना चाहिये जो हमारे

देशमें आसानीसे उत्पन्न हो सकते हैं। इस लिये हमें फैशन-बाजोंसे प्रार्थना करनी है कि इस समय मोटे कपड़ेसे ही सन्तोष कीजिये। पर साथ ही साथ हमें कातनेवालोंसे भी प्रार्थना करनी है कि वे धीरे धीरे अपना हाथ बैठाते जायं और महीन सूत कातते जायं।

लेखकने लिखा है कि मिलके मालिक कपड़ों पर मनमाना नफा बैठा रहें हैं! उन्हें दाम कम करना चाहिये। इसके लिए हमलोग मिलके मालिकोंको मजबूर कर सकते हैं पर इसका एकमात्र तरीका चरखोंका चलाना और हाथसे कते सूतका करघोंमें प्रयोग करना तथा देशवासियोंको मोटे कपड़े पहननेके लिए तैयार करना है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा तरीका नहीं है। जिनका काम ही अधिकाधिक लाभ उठाना है उनसे देश-भक्तिके नाम पर किसी तरहकी आशा करना व्यर्थ है।

लेखकने लिखा है कि लोग खद्दर धारण करनेमें बड़ी बेइ-मानी दिखाते हैं अर्थात् सार्वजनिक जलसोंपर वे खद्दरधारी बन जाते हैं पर अन्य अवसरोंपर फैशनेबुल सूट [कोट पैंट] पहन कर निकलते हैं। इसके अलावा खद्दर पहनकर भी कीमती सिगार मुंहसे नहीं निकाल फेंकते। पर यह सब बातें एक दिनमें नहीं छूट सकतीं। ज्यों ज्यों नये फैशनका प्रचार होता जायगा पुराना आपसे आप ही गायब होता जायगा। इसमें मेरा पक्का विश्वास है कि जिस दिन हमलोग स्वदेशीका काम पूरा कर लेंगे उसी दिन हमलोग इतने उन्नत हो जायंगे कि हम

लोग अपने राष्ट्रीय जीवनका संगठन सादगी और सरलताके आधार पर कर सकेंगे। उस समय हमें साम्राज्यवादका भय नहीं रह जायगा जिसने अध्यात्मिकताका नाश करके उसके स्थान पर भौतिकताको ला पटका है और उसीमें लिप्त होकर कम-जोरोंका रक्त चूसता जा रहा है। उस समय साम्राज्यवादके स्थान पर हमलोग सर्व सम्मत राष्ट्रकी स्थापना करेंगे। वह राष्ट्र अपनी योग्यतानुसार संसारको कुछ न कुछ उपयोगी वस्तु दे सकेगा, संसारकी रक्षाका साधन बनेगा, पर वह पशुबलके हटानेका ही यत्न करेगा और आत्मबल तथा आत्मयातनाके सहारे दुर्बल राष्ट्रोंकी रक्षाकी योजना करेगा। असहयोग इसी बातकी क्रांतिकी योजना कर रहा है। और यह परिवर्तन केवल चरखेकी सफलता पर निर्भर है। भारत इस योग्यताका प्रमाण तभी दे सकता है जब वह प्रलोभनों और बाहरी आक्र-मणोंका शिकार नहीं बन सकनेकी योग्यता प्रदर्शित कर दे। और यह तभी सम्भव है जब उसकी दो आवश्यकताओंका प्रश्न हल हो जाय, अर्थात् भोजन और वस्त्र।

मेरी भूल

—:०:—

(अगस्त १८, १९२१)

परमात्मा अकेला जानता है कि मैंने कितनी बार भूलें की हैं। जो लोग यह समझते हैं कि मुझसे भूल नहीं होती वे मुझे नहीं पहचानते। मेरे निजी अनुभवोंने तो मुझे यही सिखाया है कि हम नम्रतापूर्वक इस बातको जानें और मानें कि भूलोंके साथ संग्राम करना ही जीवन है।

१९१९ में जब मैंने बड़े हर्षके साथ सत्याग्रह आरम्भ किया, मैंने देखा कि मैंने बड़ी भारी गलती की। ज्यों ही मैंने नदियाद (गुजरात) में दूरदेशीका अभाव पाया त्यों ही मैंने उसे "हिमालयके बराबर गलत—अन्दाजी" बताया। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं थी। और यदि इससे भारतकी नैतिक उन्नतिमें हानि नहीं हुई है तो इसका कारण यह है कि भूलको साफ और पूरे तौरपर कुबूल करलेनेकी बुद्धि मुझमें थी। अब अगले कुछ सप्ताहों में "स्वदेशी" का आंदोलन एकाग्र होकर करना है। ऐसे समय, मैं एक और भूल स्वीकार कर लेना चाहता हू। अध्यापकों और विद्यार्थियोंके साथ बातचीतमें तो मैंने उसे पहले ही कुबूल कर लिया है। परन्तु अपने चित्तकी शांति और साथही वर्तमान स्वदेशी प्रचारके कार्य्यके लिए उसे सब लोगोंके सामने अधिक निश्चित रूपसे स्वीकार कर लेना

आवश्यक है। इन नौ महीनोंके अनुभवोंने यह बात पक्की कर दी है कि सरकारी शिक्षा—संस्थाओंका बहिष्कार करना ठीक ही था। परन्तु उस समय विद्यार्थियोंको जो मार्ग बताये गये उनमें मेरी कमजोरी थी। इसमें कमजोरी इसलिए कहता हूं कि मैंने अपने विश्वासका निश्चय दूसरेको करा देनेकी अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं किया। मैंने इसके नतीजेको भगवानके भरोसे छोड़ देनेके बजाय खुद ही उसकी चिंता की और इससे मुझमें दुर्बलता आगई एवं लड़कोंसे कहा कि मदरसे छोड़ देने पर, चाहो गलियोंमें घूमते फिरो, चाहे वैसी ही पढ़ाई पढ़ो या, सबसे बेहतर, स्वराज्यके स्थापित होने तक हाथ कताईके काम में लग जाओ। परन्तु नागपुर कांग्रेसके प्रस्तावके बाद ही मैंने जान लिया कि लड़कोंको बहुतेरे मार्ग बताकर मैंने गलती की। परन्तु अकाज तो पहले ही हो चुका था। वह पिछले सितम्बरमें शुरू हुआ और जनवरीसे मैं उसे सुधारने लगा। परन्तु मरम्मत तो हमेशा पेंवदका काम देती है। और इसी तरह अधिकतर असहयोगके विद्यालयोंमें चरखा कातना एक अनावश्यक कार्य्य या कालक्षेपका साधन हो गया है। मुझे साहस करके सारी सच्ची बात कहनी चाहिये थी और बताना चाहिये था कि हाथसे कातना और बुनना शिक्षा संस्थाओंके बहिष्कारके प्रस्तावका अभिन्न अंग है। हां, यह सच है कि इससे बहुत थोड़े लड़कोंने स्कूल छोड़े होते। परन्तु उन्होंने उन लड़कों की बनिस्पत जिन्होंने इस मार्गके विषयमें

निश्चित कल्पना किये विना ही स्कूल और कालेज छोड़ दिये बहुत ज्यादा काम किया होता। अबतक तो वे हाथ कताई और हाथ बुनाईमें प्रवीण हो गये होते और हमारा स्वदेशी का काम ज्यादा आसान हो गया होता। मैं जानता हूं कि असहयोगी विद्यालयोंके अध्यापक और विद्यार्थी अपनी काफी शक्ति इसमें लगा रहे हैं। परन्तु यह मानना होगा कि उसे दिक्कतके साथ कर रहे हैं। वे सामान्य रूपसे स्वदेशी या हाथ कताईके विषयमें कोई विश्वास लेकर नहीं आये हैं। उन्होंने इस प्रश्नपर सिर्फ शिक्षाकी दृष्टिसे ही विचार किया है। और ऐसा करनेका उन्हें अधिकार भी था। उनके लिये तो बस इतना ही काफी था कि वे सरकारी शिक्षालयोंसे निकल आये और सरकारका मान कम कर दिया। अब यह कहना उनको अखरेगा कि तुम्हारा वहिष्कार पूर्ण तभी हो सकता है जब तुम सूत और खादी तैयार करो, और इस नयी (स्वराज्यकी) शिक्षा विधिकी आरम्भिक पढ़ाई तो यही है कि इस संग्रामके समयमें हाथ कताईका तथा कपड़ा तैयार करनेकी दूसरी क्रियाओंका ज्ञान प्राप्त किया जाय।

परन्तु अब जब कि गलती हो चुकी है तो मुझे उसकी सजा भोगना लाजिम है और वह इस रूपमें कि मैं धीरजके साथ शंकाकर्ताओंको यह इत्मीनान दिलानेका प्रयत्न करूं कि यदि मैंने असहयोगके शिक्षा विभागमें हाथ कताईको भी एक आवश्यक बाब बनाने पर जोर दिया होता तो अच्छा होता। अत-

एव मैं उन सब लोगोंको जिनका मत मुझसे मिलता है, आवाहन करता हूं कि आप अब इस हानिको पूरा करनेमें जल्दी कीजिये और जिन राष्ट्रीय संस्थाओं पर आपका प्रभाव है उनमें सूत और खादी तैयार करानेके काममें सरगर्मीसे लग जाइये। शिक्षकोंकी मांगे मुझसे न कीजिये। मेरे पास ही बहुत थोड़े हैं। परन्तु उन्हें मैं यह बताये देता हूं कि कपड़ा बनानेके लिये गांठकी रुई पर जो, आम तौर पर मिलती है, कौनसी क्रिया किस तरह करनी चाहिए। सबसे पहले वह धुनी जानी चाहिए। हिन्दुस्तानका ऐसा कोई हिस्सा नहीं जहां धुनिया या पिंजारे न मिलते हों। वे धुन दे सकते हैं और एक दो रोज ध्यान देने से आप उस रीतिको समझ सकते हैं। छः घण्टा रोजके हिसाबसे एक हफतेके अभ्याससे आप साधारणतः अच्छी तरह धुन सकते हैं। धुनी हुई रूईकी अब पूनियां बना लीजिये। पूनी बनाना तो इतना सीधा काम है कि एकाएक कोई उस पर विश्वास भी नहीं करेगा।

अब रुई सूत कातने योग्य हो गई। सूत कातना तो कोई भी सूतकार सिखा सकता है। वही सूत 'सूत' हो सकता है जिसमें गर्द न लिपटी हो, जो बराबर सकसा हो और अच्छा बट खाया हुआ हो। एकसा और अच्छा बट खाया हुआ न होगा तो वह बुना नहीं जायगा।

इसके बाद मांड़ी लगाई जाती है। इसका अभ्यास कुछ कठिन है। मुझे उसका कोई वैज्ञानिक नियम मालूम नहीं

जिससे यह बताया जा सके कि उसमें कौन वस्तु कितनी होती है। वह काम किसी तजरिबेकार जुलाहे--बुननेवाले--से जानना चाहिये।

सूत सांधनेकी क्रिया भी अलहदा सीखनी चाहिये। सायकल पर बैठना सीखनेकी तरह इसमें भी कुछ तरकीबसे काम लेना पड़ता है, जो कि आसानी से आ सकती है।

अब रही बुनाई। यह केवल अभ्यासकी बात है। इसका तत्व एकही दिनमें समझमें आजाता है। मैं दावेके साथ कहता हूं कि इसकी क्रिया बड़ी आसानीके साथ सीखी जा सकती है। पाठक इसपर आश्चर्य न करें। सारा आवश्यक और स्वाभाविक कार्य्य आसान है। बस, प्रवीणता प्राप्त करनेके लिये सिर्फ लगातार अभ्यासकी जरूरत है, और यह कामके पीछे पड़े रहने से होता है। कामके पीछे पड़े रहनेकी योग्यता ही स्वराज्य है। यही योग्य है। और न पाठकोंको वही काम बार बार करते हुए उकता ही जाना चाहिए। एकरूपता अर्थात् एकही बातका बार बार होना तो प्रकृतिका नियम ही है। सूर्यको देखिये, किस तरह वह बार बार उदय होता है। यदि सूरज, लहरी बनकर, कहीं मनोरंजन करनेमें अटक जाय तो खयाल किजिये, दुनियां पर कैसी आफतका पहाड़ टूट पड़े? एकरूपता ही से रक्षा और एक रूपता हीसे संहार होता है। आवश्यक कार्यों की एकरूपता से प्रफुल्लता और जीवन मिलता है। कारीगर अपनी कारीगरीसे कभी नहीं उकताता। जो सूतकार

सूत कातनेकी विद्यामें निपुण है वह निश्चय ही बिना थकावटके लगातार काम करता रहेगा। सूत कातनेमें जो संगीत निकलता है उससे अच्छा कातनेवाला तुरंत ही आनंद लाभ करने लगता है और जब भारत वर्ष सूत कातने के बलपर स्व-राज्य को प्राप्त कर लेगा तो उसका यह काम सौंदर्य सृष्टिके नाम से प्रसिद्ध होगा, और सदाके लिये आनंदका विषय होगा। परन्तु यह चरखेके बिना नहीं हो सकता। अतएव भारतवर्षके लिये सबसे श्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षा यही है कि बुद्धि पूर्वक चरखे-के कामको हाथमें लिया जाय।

जानकार चाहिए

(सितम्बर २२, १९२१)

चरखेके प्रयोगपर अनेक तरहके आक्षेप किए जारहे हैं। इतनेपर भी मेरा यही विश्वास है कि जबतक इसका प्रयोग भार-तकी प्रत्येक जनता नहीं करने लगेगी स्वराज्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके लिए मुझे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। साधारण बात यह है कि जबतक भारत अपने पैरोंपर खड़ा नहीं हो सकता उसका जिवित रहनाही कठिन है। और जबतक किसी तरहका सहायक पेशा हाथमें नहीं आजाता, भारतवर्ष अपने पैरोंके बल नहीं खडा हो सकता। इसलिए यदि हम अप-ने वस्त्रोंके लिए मिलोंपर ही निर्भर रहें तो हमारा अभीष्ट नहीं

सिद्ध हो सकता। यदि घर घरमें चरखेका प्रचार हो जाय तो वस्त्रोंमें जो करोड़ों रुपये बचेंगे उसका कुछ न कुछ भाग प्रत्येक घरोंमें पहुंचेगा और इसके लिए किसी तरहके जटिल यन्त्रोंका प्रयोग नहीं करना पड़ेगा। भारत अपनी आवश्यकता भर कपड़ा तैयार कर सकता है। यह निश्चय है कि जिसदिन चरखेका प्रचार हो जायगा उसी दिन जुलाहे भी पुराने पेशोंको पुनः ग्रहण करनेके लिए सन्नद्ध हो जायंगे। चरखेका यह आर्थिक उपयोग है।

इससे हम लोगोंके स्त्रियोंकी इज्जतकी रक्षा होगी जिसे उन्हें मजबूरन गंवाना पड़ता है। भीख मांगकर खानेका व्यापार उठ जायगा। हम लोगोंसे बेकारी उठ जायगी, हम लोगोंके मनमें स्थिरता आजायगी और जिस समय हम इसे परम पवित्र कर्तव्य मानकर स्वीकार करेंगे उस समय हमारा प्रेम ईश्वरकी ओर भी अधिकाधिक बढ़ने लगेगा। यह चरखेकी धार्मिक उपयोगिता है।

जिस समय नरनारीके हाथमें चरखा शोभा देने लगेगा और जिस दिन विदेशी वस्त्रोंका प्रयोग हमारे लिए अतीत कालकी बात हो जायगी उस दिन यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि भारत तत्पर है, शान्त है और अपने संग्रामकी अहिंसात्मक वृत्तिको जानता और समझता है।

सम्प्रति विदेशियोंको उस बातका विश्वास नहीं है कि हमलोग चरखे और करघेके प्रयोगसे अपने आवश्यकता भर कपड़ा तैयार कर लेंगे और विदेशी वस्त्रोंका पूर्णतया वहिष्कार कर

सकेंगे। पर जिस दिन हम इसे चरितार्थ कर देंगे उसी दिन हमारी बातें भी उन्हें माननी पड़ेगी और उस समय यदि आवश्यकता पड़ी तो केवल पूर्णरूपसे सविनय अवज्ञा करके सरकारका सिर नीचा कर देंगे। यह चरखेका राजनैतिक महत्व है।

इसलिए मुझे इस बातका अत्यन्त खेद था कि बंगालमें चरखेकी ओर पूर्ण उदासीनता दिखलाई जारही है। एकभी ऐसा व्यक्ति नहीं हैं जो इस काममें कुशल हो और अपना समय देकर लोगोंके पास तक इसका सन्देश पहुंचाता हो। साथही मैंने यह भी देखा कि जनता इसके प्रयोगके लिए है तो तैयार भी उसको सिखाने वाला तथा राह दिखानेवाला कोई नहीं है। यही बात प्रायः सभी प्रान्तोंमें है। प्रत्येक प्रान्तमें हमें एक तरह का चरखा चलाना चाहिए और उसके लिए कुछ ऐसे सुचतुर लोग होने चाहिए जो इसकी शिक्षा दे सकें और लोगोंको असानीसे सिखा सकें। यदि कोई सुचतुर व्यक्ति इसकी शिक्षा देनेवाला हो तो इसमें भी बुद्धिका कम खर्च नहीं है। नेशनल कालेज कलकत्ताके भवनमें पन्द्रह तरहके चरखे प्रदर्शित किए गये थे। उसके लिए एक ऐसे सुचतुर व्यक्तिकी आवश्यकता थी जो इन्हें देख भालकर बताता कि इसमें उपयोगी कौन है। मैंने भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न तरहके चरखेका प्रयोग देखा। पर मैंने एकभी ऐसा व्यक्ति नहीं पाया जिसमें इसके पहचानकी योग्यता हो। इस समय बंगालमें हजारों चरखे चल रहे हैं। पर इसकी जांच करनेवाला कोई नहीं है कि

किसमेंसे कितना काम हो रहा है। इसलिये प्रत्येक कांग्रेस कमेटियोंको चाहिये कि कमसे कम ६ पुरुष और ६ स्त्री जो पूरी योग्यता रखते हों और विश्वसनीय हों—इस कामके लिये नियुक्त कर दें। सत्याग्रह आश्रम से उन्हें किसी तरहकी शारीरिक सहायता नहीं दी जा सकती। जो कुछ सम्भव है इस तरहके लेखोंद्वारा बतला दिया जाता है। जो लोग इसमें योग्यता प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि इन लेखोंको ध्यानसे पढ़ें। पर केवलमात्र उन लेखोंके पढ़नेसे कोई भी दक्ष नहीं हो सकता। दक्षता केवल प्रयोग और अनुभवसे हो सकती है। सर्वसाधारण उसका प्रयोग अपनी आमदनी बढ़ानेके लिये करेगा, कुछ लोग धार्मिक वस्तु समझकर इसका उपयोग करेंगे पर कुछ ऐसे भी होने चाहिये जो इसका प्रयोग वैज्ञानिक ढंगसे करें। इन लोगोंको आरम्भमें ही कमसे कम आठ घण्टा प्रतिदिन लगाना चाहिये और इन्हें सूतकी बारीकी पर सदा ध्यान रखना चाहिये। उन्हें प्रतिदिनका हिसाब रखना चाहिये कि अमुक दिन उन्होंने कितने समयमें कितना काता। उन्हें ताना तानने और बिननेका भी काम सीखना चाहिये। उन्हें भिन्न भिन्न तरहके रूईयों और चरखोंका ज्ञान होना चाहिये। साथ ही साधारण मरम्मत कर लेनेकी भी उनमें योग्यता होनी चाहिये।

जब तक हमलोगोंका संगठन पूर्ण एकताके आधार पर नहीं होगा हमलोग स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। स्वदेशी राष्ट्रीय

आवश्यकताकी दूसरी प्रधान वस्तु है। इसको सफल करनेके माने हैं राष्ट्रीय उपयोगिताकी दूसरी प्रधान आवश्यकतामें सरकारसे असहयोग करना।

हमलोग विदेशी चरखोंका वहिष्कार क्यों कर रहे हैं, क्योंकि हम लोग चरखे कात कर और करघे चलाकर कपड़ा बनानेके लिये तैयार हैं। पर जब तब इस परिवर्तनके युगमें हम लोगोंमेंसे प्रत्येक व्यक्ति चरखा चलानेके लिये तैयार नहीं है हमलोग वहिष्कारके प्रश्नको पूर्णतया हल नहीं कर सकते। इसके लिये प्रत्येक प्रान्तको अपने लिये वस्त्र तैयार करना होगा और इसके लिये दक्षोंकी आवश्यकता है। विना उनके यह काम नहीं साध्य है।

—०—

खादीके नाशका प्रयत्न

(सितम्बर २, १९२१)

खादी टोपीके ऊपर भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें सरकारी अधिकारियोंने जो चक्र चलाया है उससे तो हमलोग परिचित ही हैं। परन्तु बिहारमें मैंने सुना कि एक मजिस्ट्रेट ने दर असल फेरी लगाने वालोंको भेजा कि जावो विलायती कपड़ा बेचो? मारवाड़में नाम पैदा करने वाले मि० पेंटर तो और भी आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने सरकारी तौर पर एक सरकूलर निकाला है, जसमें वे कहते हैं—

"जिला मजिस्ट्रेट और कलेक्टरके मातहत तमाम अफसरोंको चाहिए कि वे लोगोंको यह बतलावें कि जहांतक हिन्दुस्तान अपने तमाम लोगोंकी जरूरतसे कम माल तैयार करता है विलायती कपड़ेका वहिष्कार करने से अथवा उसके जलाने या बाहर भेजनेसे कपड़ेके दाम जरूर ही बहुत बढ़ जायंगे। इसका नतीजा यह हो सकता है कि बड़ा गोलमाल फैले और यह सब सरकारके किसी कामसे नहीं, बल्कि श्रीयुत गांधीके आन्दोलन के बदौलत होगा।"

इसके बाद, दो हिस्सोंमें उन्होंने यह भी बताया है कि इस स्वदेशी प्रचारका मुकाबला किस तरह किया जाय:—(१) सभायें की जांय और—(२) जो व्यापारी वहिष्कारके खिलाफ हों उन्हें नियत समय पर कलेक्टरके दफ्तरमें बुलाया जाय। मद्रास सरकार ने तो इससे भी बढ़कर अपनी विद्या बुद्धि दिखानेवाला एक सरकूलर निकाला है। इन हुकमनामोंका मतलब साफ है। यह व्यापारियों और दूसरे लोगों पर दबाव डालता है जिससे वे वहिष्कारमें साथ न दे सकें। अब नीचके हुक्काम इसमें इतनी आजादीसे काम लेंगे जितना कि उन सरकूलरोंके निकालनेवालोंने सोचा भी न होगा। परन्तु अब देशके सौभाग्यसे हाकिमोंकी इन धमकियोंका असर लोगों पर कुछ भी नहीं, या बहुत थोड़ा होता है और हाकिम लोग दबे-छुपे अथवा खुले आम न्याय नीतिको ताकमें रख कर अथवा भलमन्सीके साथ, चाहे

कितना ही विरोध करें, स्वदेशी आन्दोलन तो आगे बढ़ता ही रहेगा।

हाकिम लोग इतने अज्ञान और हठीले हैं कि जिस "गोलमाल और लूट—मार" का डर उन्हें हो रहा है उसको टालनेका रामबाण उपाय वे नहीं करते, और वह यही कि स्वदेशी प्रचारमें लोगोंका साथ दें और देशी माल तैयार करनेमें उत्तेजना दें। पर वे तो, विलायती कपड़ोंके खिलाफ उठाये गये इस आन्दोलनको वांछनीय और आवश्यक समझना तो एक ओर रहा, उलटा उसे दबाने योग्य खराबी समझते हैं और फिर भी जो मैं इस शासन व्यवस्थाको जो कि जनताके सद्भावपूर्ण आन्दोलनको रोकना चाहती है, 'शैतानी' कहता हूं तो शिकायत की जाती है। देशी कपड़ोंकी तंगी यहां क्यों होनी चाहिये? क्या हिन्दुस्तानमें कपास काफी नहीं है? क्या यहां ऐसे स्त्री पुरुषोंकी संख्या काफी नहीं है जो सूत कात सकते और कपड़ा बुन सकते हैं? क्या यह मुमकिन नहीं है कि जरूरतके लायक तमाम चरखे थोड़े ही दिनोंमें बन कर तैयार हो जायं? हर एक घरमें जिस प्रकार अपना भोजन बनाया जाता है उसी प्रकार अपना कपड़ा भी क्यों नहीं तैयार होना चाहिए? अकालके दिनोंमें क्या अकाल पीड़ितोंको कच्चा अनाज बांटना ही काफी नहीं है? फिर, जो लोग कपड़ेके मोहताज हैं उन्हें कोरा कपास ही देना क्यों काफी न होना चाहिए? तब फिर क्यों यह कपड़ेकी तंगीका पाखंड भरा यह झूठमूठका शोर मचाया जाता है जबकि बिनाही कल—

कारखानोंकी सहायताके भारतमें एक महीनेके अन्दर उसकी जरूरतके मुताबिक काफी कपडा बन सकता है ? लोग विचारे अबतक जानबूझ कर अथवा बेजाने—बूझे अंधेरेमें रक्खे गये हैं ! उन्हें जो यह विश्वास करना सिखाया गया है कि अपनी जरूरतके मुताबिक कपडा हिन्दुस्तानके घरोंमें प्राचीन समयकी तरह, नहीं बनाया जा सकना, बिलकुल गलत है। अगर अलङ्कारकी भाषामें कहें तो वे पहले अपंग बना दिये गये हैं और फिर विलायती या मिलके बने कपडोंके बिना उनका काम ही न चलने लगा। अच्छा हो कि वे लोग जिनके यहां वे सरकूलर निकाले गये हैं, इसका वैसाही योग्य और गौरव—पूर्ण उत्तर दें वे फौरन् अपने सारे विलायती कपडे जला डालें या बाहर भेज दें। और हिम्मत और जवांमर्दीके साथ यह कस्द करलें कि अपनी जरूरतके लायक हम खुदही कातें और खुदही बुनेंगे। निकम्मे और सुस्त आदमीको छोड़कर हरएकके लिए ऐसा करना बायें हाथका खेला है।

नया निश्चय

अपनी जिन्दगीमें अबतक जो जो फेर-बदल मैंने किये हैं वे महान् प्रसंगोंके आ जानेपर ही किये हैं। और वे सब मैंने इतने सोच विचारके बाद किये हैं कि उनके लिए मुझे शायद ही कभी पछताना पड़ा हो। फिर वे परिवर्तन मैंने उसी हालतमें किये हैं जब मैंने देख लिया कि इसके बिना तो काम चल ही नहीं सकता। ऐसा ही एक परिवर्तन मैंने मदरासमें अपने पोशाकमें किया है।

सबसे पहले बरीसालमें यह खयाल मेरे दिमागमें आया। खुलनाके अकाल पीड़ित लोगोंके लिए जब मुझसे व्यंगमें यह कहा गया कि एक ओर तो यहांके लोग भूखों मर रहे हैं और नंगे वदन फिर रहे हैं और दूसरी ओर आप ये कपड़ोंकी होलियां जलाते हैं, तब मैंने सोचा कि मैं भी अपना कुरता-टोपी और धोती उतारकर डाक्टर रायके हवाले कर दूं और सिर्फ अंगोछा ही पहना करूं। लेकिन मैंने अपने उभारको रोका। क्योंकि उसमें अहंकारकी भावना थी। मैं यह जानता था कि इस तानेमें कुछ भी जान नहीं है। खुलनाको सहायता पहुंच ही रही थी और सिर्फ एक ही बंगाली जमींदार उसका निवारण करनेमें समर्थ थे। मुझे वहांके लिये कुछ भी करनेकी जरूरत नहीं थी।

दूसरा मौका उस समय आया जब मेरे साथी महम्मदअली, मेरे आंखों देखते, पकड़े गये। उनकी गिरफ्तारीके जरा ही देर

बाद मैं एक सभामें गया। उसी समय मैंने कुरता और टोपी उतार डालनेका इरादा किया, परन्तु मैंने यह सोचकर कि इसमें दिखावा करनेका दोष हो सकता है उस समय भी अपने आवेश-को रोक रखा।

तीसरा प्रसंग आया मद्रासकी मुसाफिरीमें! लोग मुझे कहने लगे कि हमारे पास तो काफी खादी हुई नहीं। और जो खादी कहीं मिलती भी है तो हमारे पास पैसा नहीं। "मजदूर बेचारे अपने विदेशी कपड़े जला डालें तो फिर खादी कहांसे लावें?" यह बात मेरे दिलमें पैठ गई। इन दलीलोंमें मुझे कुछ सार दिखाई दिया। 'गरीब बेचारे क्या करें' इस ध्वनिने मुझे बेचैन कर दिया। अपना यह दर्द मैंने मौलाना आजाद सोबानी, श्रीराजगोपालाचारी, डाकृर राजन् इत्यादिसे कह सुनाया और उन्हें जताया कि अब मुझे केवल अंगोछा पहनकर ही रहना चाहिये। मौलाना साहबने मेरे दर्दको पहचाना। उन्हें मेरा यह खयाल बड़ा पसन्द आया। पर दूसरे साथी सोचमें पड़ गये। उन्होंने समझा कि मेरे इस प्रकार वस्त्रान्तरसे लोग व्याकुल हो उठेंगे। कुछ लोग उसका मर्म नहीं समझेंगे और कुछ लोग मुझे दीवाना बतायेंगे और उसकी नकल करना सब लोगोंको असम्भव नहीं तो कमसे कम कठिन जरूर मालूम होगी।

मैं चार दिनोंतक इस प्रश्नपर बराबर विचार करता रहा और दलीलोंपर दिमाग छीलता रहा। इधर मैं अपने भाषणोंमें कहने लगा कि "अगर तुम्हें खादी न मिलती हो तो लंगोटी ही पहनकर

रहो, पर विदेशी कपड़ा तो बदनपरसे निकाल ही डालो।" परन्तु जबतक मैं खुद कुरता-टोपी पहनता था तबतक मेरी बातका कुछ जोर नहीं पड़ता था।

फिर मद्रासमें मैंने स्वदेशीका भी अभाव पाया। इससे भी मेरा जी व्याकुल हुआ। लोगोंमें प्रेम तो खूब दिखाई दिया, पर वह मुझे रूखा मालूम हुआ।

अब फिर दिलमें तूफान उठा। फिर अपने साथियोंसे चर्चा की। उनके पास नई दलील तो थी ही नहीं। इसी बीच सित-म्बरका अन्त आंखोंमें तैरने लगा। सितम्बरके अखीरमें बहिष्कार पूरा हो जाना चाहिये। यह कैसे हो? या मैं उसके लिये क्या उपाय कर सकता हूं?

इसी तरह विचार करते हुए हम २२ ता० की रातको मदुरा पहुंचे। मैंने निश्चय किया और यह तय किया कि कमसे कम अक्टूबरके अन्ततक तो बस, मैं सिर्फ अंगोछा भर पहनकर ही रहूंगा। सवेरे मदुराके जुलाहोंकी ही सभा थी। वहां मैं सिर्फ अंगोछा पहनकर ही गया। आज यह तीसरी रात है।

मौलाना साहबको तो यह बात इतनी पसन्द पड़ी है कि खुद उन्होंने भी अपने पहनावमें उतना फेर-बदल कर डाला है जितना कि शरीरके मुताबिक वे कर सकते थे। अब वे पजामेके बदले एक छोटी सी लुंगी पहनते हैं और बदनमें सिर्फ एक निमा-स्तीन! हां, नमाजके वक्त सिरपर टोपी दे लेते हैं, क्योंकि उस समय सिरपर कोई कपड़ा होना जरूरी है।

दूसरे साथी लोग शान्त हैं। मद्रासके सामान्य श्रेणीके लोग दांतों उंगली दबाकर देखते रहते हैं।

पर मुझे हिन्दुस्तान पागल कहे तो इससे क्या? अथवा साथी लोग नकल न करें तो इससे क्या? यह कार्य इसलिए तो किया ही नहीं गया है कि साथी लोग नकल करें। इसके द्वारा तो जन-समाजको धीरज देकर रास्ता बताना है और अपना रास्ता साफ करना है। जबतक मैं खुद अंगोछा न पहनूं तबतक मैं दूसरोंको कैसे कह सकता हूं कि तुम्हें अंगोछा ही पहनना पड़े तो परवा नहीं। हिन्दुस्तानमें जब कि लाखों आदमी नंगे बदन रहते हैं तब मेरी कौन कथा? आखिर सवा महीना अंगोछेपर रहकर तजरिबा ही क्यों न करूं? कमसे कम यह सन्तोष तो प्राप्त करूं कि मुझसे जो कुछ हो सकता था उतना तो मैंने कर डाला?

यह सोचकर मैंने यह काम किया है। अब मेरे सिरका तो बोझ उतर गया। यहांकी आबोहवा ऐसी है कि सालमें आठ मास तो कुरते आदिकी जरूरत हो नहीं रहती। फिर मद्रासमें तो साल भरमें सरदी बराय नामके भले ही होती हो। और मद्रासमें जो लोग भले आदमी माने जाते हैं वे भी धोतीके सिवा दूसरा कपड़ा बहुत ही कम इस्तेमाल करते हैं।

भारतके करोड़ों किसानोंका पोशाक तो बस अंगोछा या धोती ही है। मैं चारो ओर यही देखता हूं कि इससे अधिक कपड़े वे लोग नहीं पहनते हैं।

इन सबका निचोड़ मैं यही निकालना चाहता हूं कि पाठक

मेरे मनके सन्तापको पहचानें। मैं यह नहीं चाहता कि मेरे साथी अथवा पाठक खुद भी अंगोछा भर पहनकर रहें। पर मैं यह जरूर चाहता हूं कि वे विदेशी कपड़ेके वहिष्कारका अर्थ अच्छी तरह समझें और वहिष्कार करनेके लिए तथा खादी उत्पन्न करनेके लिए उनसे जो कुछ हो सके उसे करनेमें कोई वात बाकी न उठा रखें और यह समझें कि इस स्वदेशीमें ही हमारा सर्वस्व है।

लंगोटी ही अच्छी

श्रीगांधीजीने जनतासे नीचे लिखी अपील की है—

"राष्ट्रीय महासभा-समितिने विदेशी कपड़ेके वहिष्कारका जो फरमान जारी किया है उसको पूरा करनेकी मीयादके अव बहुत ही थोड़े दिन वाकी रह गये हैं। अगर कांग्रेसका हरएक कार्यकर्ता, चाहे वह पुरुष हो वा स्त्री, अपना सारा ध्यान वहिष्कारको सफल बनानेमें ही लगा दे तो अब भी वक्त है। अगर हर आदमी यह महसूस करता हो कि स्वदेशीके विना अर्थात् विदेशी कपड़ेके वहिष्कार और उसकी जगहपर आवश्यक तमाम कपड़ा चरखेके सूतसे हाथ करघोंपर बुनकर तैयार किये बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सकता, और विना स्वराज्यके न तो खिलाफतके न पञ्जाबके मामलेका निपटारा हो सकता है तो इस वहिष्कारको कामयाव वनाना और आवश्यक कपड़ा तैयार करना कोई कठिन बात नहीं है। हां, यह बात मैं जानता हूं कि

कितने ही लोग अपने तमाम विदेशी कपड़ोंकी जगह आज ही सब स्वदेशी कपड़े न प्राप्त कर सकेंगे। लाखों लोग इतने गरीब हैं कि वे विदेशी कपड़ोंको त्यागकर उनके बजाय काफी खादीको न खरीद सकेंगे। उनके लिए मेरे पास एक ही सलाह है—वही जो मैंने मद्रासके समुद्र-तटपर दी थी। बस, वे सिर्फ अंगोछा या लंगोटी लगाकर ही अपना काम चला लें। हमारे देशकी आबोहवा ही ऐसी है कि गरमीके दिनोंमें हमें तो शरीरकी हिफाजतसे ज्यादा कपड़ा पहननेकी जरूरत ही नहीं है। पोशाकके सम्बन्धमें झूठी लज्जाकी कोई जरूरत नहीं। हिन्दुस्थानमें कभी इस बातपर जोर नहीं दिया गया है कि पुरुषके लिये अपने सारे बदनको ढांक रखना जरूरी है, और वह भी इस खयालसे कि यह सभ्यताकी कसौटी है।

मैंने अपनी जवाबदेहीका खूब अच्छी तरह खयाल रखकर यह सलाह दी है। और मैं खुद भी इसका उदाहरण बननेका विचार करता हूं। कमसे कम ३१ अक्तूबर तक मैं अपनी टोपी और कुरता पहनना छोड़ दूंगा और सिर्फ अंगोछा या लंगोटी पहनकर ही रहूंगा। कभी जरूरत मालूम हुई तो महज शरीरकी रक्षाके लिए सिर्फ चद्दरको काममें लूंगा। मेरे इस वेषान्तरका यह कारण है कि आजतक मैंने लोगोंको कोई बात ऐसी नहीं बताई है जिसे करनेके लिए मैं खुद तैयार नहीं रहा हूं। दूसरे मैं इस बातके लिए उत्सुक हूं कि स्वयं आगे बढ़कर उन लोगोंका रास्ता सुगम कर दूं जो कि विदेशी कपड़ेके त्यागसे होनेवाले

वेषान्तरसे हिचपिचाते हैं। टोपी और कुरतेके त्यागको मैं इस-लिये भी आवश्यक मानता हूं कि यह शोक-चिह्न है। और मेरे गुजरात प्रान्तमें नंगा सिर और खुला बदन मातमका ही निशान माना जाता है। ज्यों ज्यों इस सालके समाप्त होनेके दिन नजदीक आ रहे हैं और ज्यों ज्यों मैं देखता हूं कि अभी तक हम स्वराज्य-हीन ही हैं, त्यों त्यों यह खयाल कि हम शोकग्रस्त हैं मेरे दिमागमें अधिक ही अधिक प्रबल होता जाता है। यहां मैं यह साफ साफ बतला देना चाहता हूं कि मैं अपने साथियोंसे यह उम्मीद नहीं कर रहा हूं कि वे भी टोपी और कुरतेका पहनना छोड़ दें—हां, जब उन्हें खुद अपने स्वीकृत कार्यके लिए ऐसा करना जरूरी मालूम हो तबकी बात दूसरी है।

मेरा यह निश्चित मत है कि अगर काफी तादादमें काम करनेवाले लोग हों तो हर एक प्रान्त और हर एक जिलेमें अपनी जरूरतके लायक कपड़ा एक महीनेमें तैयार किया जा सकता है। और इसलिए मैं यह सलाह देता हूं कि एक महीनेतक 'स्वदेशी' के सिवा दूसरे तमाम काम मुलतवी कर दिये जायं। मैं तो शराबकी दूकानोंका पहरा उठा देनेके लिये भी कहूंगा। यह भरोसा रखकर कि शराबखोर लोग आत्मशुद्धिके इस नये तेजको पहचान जायंगे। मैं हरएक असहयोगीको सलाह देता हूं कि आप लोग जेल जानेको अपने जीवनकी एक मामूली घटना समझें और उसके विषयमें जरा भी आगा-पीछा न करें। अगर हम सिर्फ इतना ही भर करें कि इस अक्तूबर महीनेमें

कपड़ा तैयार करनेके लिए ठीक ठीक व्यवस्था कर दें और विदेशी कपड़ा घर घरसे इकट्ठा करा लें तथा ऐसा करते हुए न तो कोई सभा करें और न किसी तरहकी उत्तेजनासे काम लें तो हम ऐसा शान्त वायुमण्डल तैयार कर सकेंगे कि जिसमें विना खरखशा वा अदब कानूनको तोड़नेके लिए अगर उस वक्त उसकी जरूरत मालूम हुई तो कदम बढ़ा सकेंगे। लेकिन मुझे इस बातका पक्का यकीन हो चुका है कि अगर हम अपने चरित्र-बल-का संगठन-क्षमताका और अनुकरणीय संयम-शक्तिका जो कि पूर्ण स्वदेशीके लिए आवश्यक है, परिचय देंगे तो हम विना ही अधिक प्रयासके स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।"

सहकारिता

(नवम्बर ३, १९२१)

शायद ही किसीने इस बातपर ध्यान दिया है कि अधिकाधिक चरखेका प्रचार अधिकाधिक सहकारिताका द्योतक है। यह सहकारिता उन लाखों प्राणियोंके बीच है जो इस भूमिपर इधर उधर फैले हुए हैं और अपनी रोटी कमा रहे हैं। यह निर्विवाद है कि खेतीमें सहकारिताकी आवश्यकता पड़ती है पर चरखेकी सहकारिता उससे कहीं प्रबल होती है। जबतक कि उसको कातनेवाले वे करोड़ों व्यक्ति आपसमें पूर्ण सहकारिता न रखे चरखेका काम असम्भव है। हम लोगोंको वैसी स्थिति

बना लेना है जहां कते सूतको बेचने तथा पीउनी बनी रुईको खरीदनेकी बाजार हमें तैयार मिले। यदि मैं यह कहूं कि चरखेसे जन समुदायकी बढ़ती दरिद्रता दूर हो सकती है तो मैं किसी तरहकी अत्युक्ति नहीं करता। एक अंग्रेज मित्रने मेरे पास किसी समाचारपत्रका कतरन भेजा है। उसमें यह दिखलाया गया है कि चीनमें कलोंने कितनी जल्दी उन्नति की। उन्होंने इस बातको मान लिया है कि चरखेके प्रचारकी शिक्षा देनेमें मैं कलोंके विरुद्ध अपने सिद्धान्तका प्रतिपादन कर रहा हूं। पर यह बात सर्वथा सच नहीं है। यदि आज कोई मुझे साबित करके दिखला दे कि कलोंके प्रयोगसे भारतकी बढ़ती दरिद्रता दूर हो सकती है तो मैं उसके लिये तैयार हूं। मैंने चरखेके प्रयोगपर केवल इसीलिये जोर दिया है कि इसके द्वारा भारतकी दरिद्रता दूर हो जायगी, कहत और अकालोंकी सम्भावना कम हो जायगी और कपड़ेसे बचा हुआ रुपया सबके हाथोंमें पड़ जायगा। चरखा भी तो एक तरहका उपयोगी यन्त्र है। भारतकी विशेष अवस्थाके अनुरूप मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार सुधारकी भी योजना की है। कोई भी मनुष्य जिसके हृदयमें भारतके लिये कल्याणके भाव भरे हैं, उसके लिये केवलमात्र विचारणीय विषय यह है कि किस उपायसे भारतके कल्याणकी योजना की जाय और उसकी हीनता तथा दरिद्रता दूर की जाय। सिंचाव तथा कृषि आदिके काममें किसी तरहका भी सुधार—जो मनुष्यकी बुद्धिके अनुसार किया जा सकता है—इस विकट प्रश्नको नहीं

हल कर सकता। और न इस तरहकी योजनासे उन लाखों और करोड़ों भारतीयोंको काम ही मिल सकता है जो कारण विशेषसे समय समयपर बेकार हो जाते हैं। अनुमान कीजिये कि एक जाति केवल ५ घण्टे प्रति दिन काम कर सकती है। यह भी अपने मनसे नहीं बल्कि लाचारीके कारण। इसके अनुमान कर लेनेपर आप भारतकी अवस्थाका भलीभांति अनुमान कर सकते हैं।

यदि कोई पाठक वास्तवमें उस स्थितिका अनुमान करना चाहता है तो उसे फैक्ट्रियोंका कोलाहल, अति कठिन और परिश्रमका काम तथा कलोंमें गुलामोंकी तरह पिसे रहना आदि अवस्थाओंका अनुमान मनसे उठा देना होगा, क्योंकि ये समुद्रमें जलविन्दुवत हैं। उसे उन ८० प्रति सैकड़े भारतीयोंका चित्र खींचना चाहिये जो केवल खेती पर निर्भर करते हैं और सालमें केवल ६ या ८ मास काममें लगे रहते हैं और ४ मास बेकारीमें काटते हैं तथा भूखों मरते हैं। यही इस देशकी औसत अवस्था अकालोंकी पुनरावृत्ति इस बेकारीकी अवस्थाको और भी बढ़ा देती है। इसलिए प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कौन ऐसा काम है जिसे ये लोग अपने घरोंमें बैठे बैठे कर सकते हैं और इस तरह अपनी खेतीको सहायता पहुंचा सकते हैं। क्या इतने पर भी किसीको इस बातका सन्देह रह गया है कि इसके निवारणके लिए चरखा ही एकमात्र शस्त्र है। इसके सिवा और किसीसे कुछ नहीं हो सकता। मैं यह बात पूर्ण साहस और दृढ़ता

के साथ कह सकता हूं कि यदि काम करनेवाले कटिबद्ध हैं तो इसका सर्वव्यापी प्रयोग अति सहजमें हो सकता है। जितना प्रयत्न किया जारहा है उसीसे इसका प्रचार भी परिमाणमें बढ़ रहा है। इसका संगठन करनेके लिए सुचतुरोंकी आवश्यकता है। जनता इसके अपनानेके लिए तैयार है। एक बात और है। यह कोई नयी चीज नहीं है जिससे प्रयोगमें उन्हें किसी तरहकी कठिनाई उपस्थित हो सकती है, बलिक अभी थोड़ा दिन पहले भक्त लोग इसका प्रयोग करते आये हैं। इससे इसकी अवस्थासे जानकारी रखते हैं। इसके पुनः प्रचारमें उद्योगकी आवश्यकता है और दक्षताकी आवश्यकता है, साथही साथ पहले दरजेकी ईमानदारी और सहकारिताकी आवश्यकता है। यदि भारत इस एक काममें पूरी सहकारिता प्राप्त कर ले तो कौन अस्वीकार कर सकता है कि केवलमात्र इसके बलपर ही भारत स्वराज्य प्राप्त कर सकता है।

भारतीय अर्थशास्त्र

(दिसम्बर ८, १९२१)

भारत सरकारकी आज्ञासे मिस्टर ए० सी० कोचा सी० बी० ई० ने भारतके कपड़ेके व्यापारका पर्चा तैयार किया है। उसकी एक प्रति मेरे किसी मित्रने मेरे पास भेजी है। उस परचेके आरम्भमें निम्न लिखित नोट दिया गया है: भारत सरकार इस सूचनाके द्वारा सबको जता देना चाहती है कि इस चिट्ठेके आरम्भमें जो मत दिये गये हैं वे इस परचेके लेखकके निजी मत हैं। पर यदि यही बात है तो भारत सरकारने करदाताओंके रुपयेको इस तरहके फजूल काममें क्यों लगाया। इस परचेका १६ वां नम्बर मेरे पास है। क्या इनमें उस प्रश्नके दोनों पहलूपर विचार कया गया है, जो परचा मेरे हाथमें है? और जिसपर मैं विचार करना चाहता हूं वह स्वदेशी आन्दोलनके उत्तरके रूपमें तैयार किया गया है। यह परचा एक तरहका विस्तृत चिट्ठा है जिसमें आंकड़ोंद्वारा यह दिखलाया गया है कि बाहरसे कितना माल आता है तथा घरोंमें कितना माल तैयार होता है और इसमें हाथके तैयार किये वस्त्रोंका कितना भाग है। पर इससे इस अन्दोलनकी प्रगतिकी जांचमें किसी तरहकी सहायता नहीं मिलती। इस परचेके लेखक महोदयने जहां इसे तैयार करनेमें इतना कष्ट उठाया वहां इस वर्तमान आन्दोलनकी समीक्षा परीक्षा करनेमें तथा इसपर

विचार करनेमें जरा भी प्रयत्न नहीं किया। जिस व्यवस्थाके अनुसार ये परचे निकाले जा रहे हैं तथा इनमें जो बातें दी जाती हैं, तथा भारतीय बीमाके प्रश्नोंपर जिस तरह विचार किया जाता है उसे देखकर यही कहना पडता है कि भारत-सरकार प्रजाकी ओरसे चलाये गये किसी भी उन्नतिशील और सहकारिता युक्त आन्दोलन या प्रयासको घृणाकी दृष्टिसे देखती है और उस काममें जनताकी सहायता न करके उन्हें हतोत्साह तथा अधीर बना देनेके लिये बेकार और निरर्थक प्रतिवादोंमें प्रजाका द्रव्य व्यय करती है।

स्वदेशीके व्यापारके विषयमें इन परचोंके लेखकने लिखा है:-

(१) यदि यह आन्दोलन सफल हो गया तो इससे व्यापारिक नीति संरक्षित न हो कर निर्बाधित हो जायगी।

(२) इससे भारतीय पूंजीपतियोंके जेब नित्यप्रति गरम होते जायंगे और प्रयोग करनेवालोंकी अवस्था गिरती जायगी।

(३) इससे बाहरसे आनेवाले मालपर किसी तरहका असर नहीं पड सकता क्योंकि जो माल बाहरसे आता है वह भारतमें तैयार नहीं किया जाता।

(४) इस तरह विदेशी कपड़ोंके बहिष्कारसे कपड़ेकी दर चढ़ जायगी पर इसके बदलेमें किसी तरहका लाभ नहीं होगा।

(५) इस तरह बहिष्कार मांग और पूर्तिके नियमोंके प्रतिकूल होनेके कारण तथा प्रयोग करनेवालोंके स्वार्थके प्रतिकूल होनेके कारण अन्तमें अवश्य असफल होगा।

(६) चरखेका प्रचार उठ जानेके लिये हमें भी शोक है पर जैसा हमने दिखलाया है इसका कारण कुछ दूसरा ही है अर्थात् वैज्ञानिक उन्नतिके कारण ऐसे यन्त्रोंका निर्माण होना जिनसे समयकी बहुत ही अधिक बचत होती थी, इसके ह्रासका अनिवार्य कारण हुआ।

(७) भारतीय किसानोंकी तबाहीकी जिम्मेदारी उनके सिर पर कुछ कम नहीं है, क्योंकि उन्होंने कपासकी खेतीकी ओर उत्साह नहीं दिखाया और उसे एकदम बन्द कर दिया। किसी जमानेमें कपासकी खेती यहां बड़ी ही उत्तम होती थी।

(८) इस लिये हमारी समझमें किसानोंका सबसे अधिक उपकार वही व्यक्ति कर सकता है जो उन्हें इस बातकी सलाह दे कि वे कपासकी खेतीमें तत्परता दिखावें तथा इसमें दत्तचित्त हों।

(६) यदि हमलोग इस तरहके व्यर्थके आन्दोलनमें अपनी शक्तिका ह्रास न करके कपासकी खेतीको बढ़ानेका उद्योग करें तथा लम्बे रेशेवाली रूई अधिक संख्यामें उगानेका प्रयत्न करें तो इसका लाभदायी परिणाम आजही नहीं दृष्टिगोचर होगा बल्कि इसका फल चिरस्थायी होगा।

इस तरह इस परचेको पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि जिन बातोंको मैं भारतके आर्थिक उद्धारका मूल कारण समझता हूं उन्हींको इस परचेके लेखक महाशय भारी भूल और पूर्ण मूर्खता बतलाते हैं। इस लिए इनके मत औरमेरे मतमें

किसी तरहका सानिद्ध्य नहीं है। तमाशा तो यह है कि एक तरफ भारत सरकार अपनी पहलू बचानेकेलिये यह सूचना निकालती है कि ये पत्रलेखकके निजी मत हैं और दूसरी ओर लेखक महाशय वही मत देते हैं जो सरकारके मत हैं. जहांतक स्वदेशीका सम्बन्ध है मैंने प्रत्येक व्यक्तिको — चाहे वह सहयोगी हो, असहयोगी हो, सरकारी मुलाजिमहो या और कोई हो — इस वस्त्र-समस्याको हल करनेकेलिये निमन्त्रित किया है। यदि उनका विश्वास स्थिर नहीं है तो वे उसकी राजनैतिक उपयोगितापर विश्वास न करें और यदि चरखेके प्रयोगके बढ़ जानेसे उनकी आशाके प्रतिकूल जनताकी राजनैतिक शक्ति बढ़ जाती है तो उसके लिये किसी भी तरह दुःखी नहीं होना चाहिये। खादीके खिलाफ इस प्रकार शस्त्र लेकर खड़े न होकर वे लोग इसके प्रयोगमें सहायता कर सकते हैं और इस तरह देशी किसानोंके बलपर विदेशी व्यापारी जो अतुल लाभ उठा रहे हैं उसका निवारण करते और उसके प्रति उनके चित्तमें यदि किसी तरहकी आशंका होती तो उसे दूर करते। मैं सदा उनसे इस काममें हाथ मिलानेके लिये तैयार रहता हूं। चाहे राजनैतिक आन्दोलनको जो रूप दिया जाय, उसका संचालन चाहे जिस तरह किया जाय पर इतना तो अनिवार्य है कि यदि भारतवर्षकी दरिद्रताका नाश करना है तो स्वदेशी आन्दोलनको इसी तरह जारी रखना होगा और इसी रूपमें इसे चलाना होगा।

इतना लिखनेके बाद अब मैं उचित समझता हूं कि मिस्टर

कोत्राके मन्तव्योंके विषयमें भी कुछ लिखकर उनकी धारणाओं-का उचित उत्तर दे दिया जाय।

(१) इस आन्दोलनका यही उद्देश्य है कि विदेशी मालका आना आपसे आप रुक जाय।

(२) इससे न तो पूंजीवालेही किसी तरहसे अनुचित लाभ उठा सकते हैं और न प्रयोग करनेवालोंकोही किसी तरहकी क्षति होसकतीहै। इस परिवर्तनकी प्रारम्भिक अवस्थामें यह सम्भव है कि घरके बने कपड़ोंकी दर बढ़ जाय पर इसका असर बहुतही कम दिन रहेगा, क्योंकि थोड़ेही दिनोंमें स्वयं प्रयोग करने-वाले उत्पादक हो जायंगे। इस तरह यह घरेलू धन्धा रसोई पानीकी तरह घरका साधारण काम होजायगा और इसमें किसी तरहके बहुव्ययिताकी आवश्यकता नहीं रहेगी। प्रायः २५ करोड़ नागरिक अपने लिये सूत अपने हाथों तैयार करेंगे और आस-पासके गावोंमें जुलाहोंद्वारा बुनवालेंगे। यह २५ करोड़ जनता एकमात्र खेतीपर निर्भर करती है और प्रायः चार मासतक बेकार बैठी रहती है।

इस फालतू समयमें जब वे अपने लिये सूत कात लेंगे और उसीका कपड़ा बनवा कर पहनने लगेंगे तो किसीभी मिलके बने कपड़े इनकी प्रतियोगिता नहीं कर सकते। और यह कपड़ा किसी भी मिलके कपड़ेसे सस्ता होगा। यदि शेष जनता इस कामको न भी करे तो भी उन २५ करोड़के प्रयाससे जो सूत तथा कपड़ा तैयार होगा उससे सबकी आवश्यकताकी पूर्ति हो जायगी।

(३) यह बात मैं स्वीकार करता हूं कि जिन आयातोंसे भारतीय वस्त्रोंकी प्रतियोगिता है उनके मुकाबिलेमें जिनकी किसी तरहकी प्रतियोगिता नहीं है उन्हींका ही आयात अधिक है। पर मैंने जो व्यवस्था निश्चित की है उसमें इस तरहका प्रश्न उठताही नहीं। मैंने देशको यह आदेश इसलिये नहीं दिया है कि विदेशी वस्त्रव्यापारियोंके साथ हम व्यवसायिक संग्राम करें बल्कि मेरा अभिप्राय तो उनकी उस बेकारीके समयके लिये कुछ काम देनेका है जिसमें वे सुस्त बैठे रहते हैं और अपनी जीविकाका कोई प्रबन्ध नहीं कर सकते। इस प्रकारसे अपना प्रबन्ध वे कर लेंगे और धीरे धीरे उस बढ़ती दरिद्रताको दूर कर सकेंगे।

(४) ऊपरके विवरणसे मैंने स्पष्टतया दिखला दिया है कि विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारका परिणाम कपड़ेकी दरमें बढ़ती नहीं होसकती।

(५) जिस तरहके बहिष्कारकी व्यवस्था की गई है उसमें उत्पादन और मांगके नियमोंके विरोधी भाव कहींसे भी नहीं आते। उत्पादन तो इससे बढ़ही जायगा। इससे मांगकी आवश्यकता पूरी होगी, फिर मांग बनी कहांसे रह सकती है कि दर बढ़नेकी सम्भावना हो। हां, इसमें थोड़ा त्याग की अवश्य आवश्यकता है। जो लोग विदेशी तड़क भड़कके चक्करमें पड़ गये हैं, जो लोग पतला और महीन कपड़ा पहनते चले आये हैं उन्हें अपनी रुचिमें परिवर्तन डालना होगा और पतलेके स्थान पर मोटा पहनना होगा।

(६) मैंने पहले किसी लेखमें दिखाया है कि चरखेका प्रचार रोकनेके लिये उस पर विविध तरहसे कुठाराघात किया गया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके एजेंटोने उसपर बुरी तरहसे आक्रमण किया था। यदि सचेष्ट होकर इसके नाशके लिये किसी निर्दय-ता पूर्ण तरीकेका व्यवहार न किया गया होता तो किसी भी यन्त्रादिसे इसको निर्मूल नहीं किया जासकता था।

(७) कपासकी खेतीके प्रति उदासीनता दिखलानेकी जिम्मे-दारी किसी भी तरह भारतीय रैयतोंपर नहीं है। चरखेकी उपयोगिता नष्ट कर देनेसे ही सारा जोश चला गया और सर-कारने इसके उत्पादनके लिये कभी भी चेष्टा नहीं की।

(८) इस नये प्रयासका फल यह हुआ कि रैयतोंका ध्यान कपासकी खेतीकी ओर आकृष्ट होने लगा है। जनताकी रुचिकी पूर्तिकेलिये मुलायम और महीन कपड़ोंकी आवश्यकता पड़ेगी। इस तरहके महीन सूत बिना लम्बे रेसेवाली रूईके नहीं तैयार हो सकेगा। इसलिये समयकी प्रगतिके साथ रूईका प्रश्न आपसे ही हल होजायगा। पर मैं यह दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि केव-ल कपासकी खेतीसे भारतकी दरिद्रताकी समस्या नहीं हल हो सकती, क्योंकि इससे तो उस बेकारीका प्रश्न हल नहीं हुआ जो रैयतोंके ऊपर चार मासके लिये प्रतिवर्ष आगिरती है।

(९) इन बातोंके देखनेसे एकमात्र चरखेको ही इस योग्य समझता हूं जो भारतकी बढ़ती दरिद्रताको तथा उसके आर्थिक प्रश्नको अति सहजमें उचित ढंगसे विना किसी खर्चके और व्य-

वसायिक रीतिके अनुसार हल करदेगा । इसलिये—जैसा कि बिना जानकारी हासिल किये हुए इस परचेके लेखकने लिखा है —चरखा बेकार और निष्प्रयोजन नहीं है बल्कि यह प्रत्येक घरके लिये आवश्यक और अनिवार्य शस्त्र है। यह राष्ट्रकी समृद्धका लक्षण है इसलिये स्वतन्त्रताका चिह्न है। यह व्यवसायिक युद्धका लक्षण नहीं है बल्कि व्यवसायिक शान्तिका लक्षण है। इसमें संसारको किसी भी राष्ट्रके प्रति दुर्भावनाकी कोई बात नहीं है बल्कि प्रत्येक राष्ट्रके प्रति सद्भाव और आत्म निर्भरताकी शिक्षा देता है। इसके प्रचारके बाद हमें अपनी रक्षाके लिये सामुद्रिक सेना रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी जिससे संसारकी शान्ति भंग होती हो बल्कि इसके प्रयोगसे प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शान्तिके साथ धर्मके नाम पर अपने घरोंमें बैठकर अपना काम करता जायगा और अपनी आवश्यकताकी पूर्ति कर सकेगा। इसमें मुमकिन है मुझसे किसी तरहकी भूल हो जाय और मैं आगामी सन्ततिके कोप और निन्दाका कारण बनूं। पर इतना मैं पूर्ण विश्वासके साथ कह सकता हूं कि इसके लिये (चर्खेके पुनः-प्रचारके लिये) वे मुझे हृदयसे आशीस देंगे, इसके लिये मैं सर्वस्व गवांनेके लिये तैयार हूं। चरखेकी प्रत्येक चक्रसे शान्तिके प्रत्याशा और प्रेमकी ध्वनि निकलती है। इसीके नाशसे भारतके ऊपर दासताकी विपत्ति घहराई है। अब यदि आपसे आप इसका पुनः प्रचार होगया तो इससे भारतका उद्धार अवश्य हो जायगा।

कपड़ेकी समस्या

(अगस्त ४, १९२०)

अभी हालमें ही लङ्काशायरके कपड़ेके व्यापारियोंकी एक कमेटीके सामने प्रोफेसर जोन ए० टाईने १९२० की कपासकी स्थितिपर एक गम्भीर भाषण किया है। उन्होंने अमरीकाकी कपासके सम्बन्धी सम्भावनाओंकी पूरी अलोचना की है।

उन्होंने अपने भाषणमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है:—अमरीका अब हमारी कपासका प्रधान जरिया नहीं रहा और यह बात अब सदाके लिये स्थिर समझिये। मेरे अनुमानसे कुछ दिनके बाद हमलोगोंको कपासके लिये बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा।" अमरीका सबसे अधिक कपास उत्पन्न करता है। जब वह इंगलैण्डकी मांग नहीं पूरा कर सकेगा तो स्वभवतः इंगलैण्डको भारत और मिस्रका मुंह ताकना पड़ेगा। अमरीकासे कपासके चालानमें कमी होनेकी सम्भावना यूरोपके कपड़ेके व्यापारियोंको पहलेसे ही होगई थी, इससे उन्होंने इसके प्रतिकारका उपाय भी कर लिया था। मिस्रमें कपासकी खेतीका काम ९० फी सैकडे बढ़ा दिया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय कपास संघने भारत सरकारका भी दरवाजा खटखटाया और उससे कुछ काम भी हुआ। युद्धके ठीक पहले भारतकी कपासकी उपजमें

दूनेकी बढ़ती हुई थी अर्थात् ३,०००,००० गांठसे ६,०००,००० हो गई थी। यदि दस वर्ष तक पूर्ण शान्ति रह जाती तो भारतकी कपासकी उपज अमरीकाका मुकाबिला करने लग जाती। यही सर चार्ल्स मकेराका भी मत है। यह विदेशियोंके प्रयाससे हुआ है। इससे हमलोग भलीभांति समझ सकते हैं कि कपासके मामलेमें हमारी क्या स्थिति है। इस समय संसारकी कपासकी मांग बढ़ रही है और माल काफी नहीं मिल रहा है। ऐसी हालतमें हम एक विशेष अवस्था पर पहुंच गये हैं, क्योंकि हमारे यहां जितनी कपास पैदा होती है उतनेसे हमारी आवश्यकता तो मजेमें पूरी हो सकती है।

* * * * *

इसके अतिरिक्त कपड़ेका प्रश्न केवल रूईपर ही निर्भर नहीं करता। मिस्टर राइलेने भारतके सिल्कके संबन्धमें जो पुस्तक लिखी है उसे देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतका यह प्रधान आमदनीका जरिया एक दम पीछे फेंक दिया गया है। उक्त पुस्तकके लेखकने इस विषयपर भारतीय बाज़ारके आधारपर प्रकाश नहीं डाला है बल्कि इंगलैण्ड और फ्रांसके बाजारके आधार पर इसका निरूपण किया है। इस बातको हमें नहीं भूल जाना चाहिये कि सम्प्रति भारतमें प्रायः २,०००,००० पौंड सिल्क प्रतिवर्ष आता है और सबका सब खर्च हो जाता है। यदि विदेशियोंके अनुसन्धानसे यह बात विदित होती है कि हमारी आवश्यकता भरके लिये हर तरहका कच्चा माल हम तैयारकर

लेते हैं और इसकी बढ़तीके लिये हमारे पास साधन भी मौजूद है और साथ ही हम इसमें तरक्की भी कर सकते हैं तो ऐसी अवस्थामें हम विदेशोंसे कच्चा माल या कपड़ा क्यों मंगाते हैं? इसमें तो कोई शक नहीं कि हमारी मिलोंकी संख्या इतनी पर्याप्त नहीं कि जितनी कपास या रेशम हम प्रतिवर्ष उत्पन्न कर करते हैं उनका प्रयोग वे सम्पूर्णतया कर सकें। और भविष्यमें बहुत दिनोंतक पर्याप्त यन्त्रादि मंगालेनेकी भी संभावना नहीं हैं। इस लिये चरखों और करघोंका प्रयोग ही एकमात्र अवलम्ब है जिससे हमारी रक्षा हो सकती है। इसे भी मैं स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं कि हाथके सूतका करघेमें विना हुआ कपड़ा मशीनके कपड़ेसे कहीं महंगा होगा। पर हमें इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि हमलोग अपने व्यापार और रोजगारकी मजबूत दीवार एक दिनमें नहीं खड़ी कर सकते और विना किसी भारी त्यागके इस बातकी संभावना भी नहीं है। जिस समय इंगलैण्ड अपनी व्यवसायिक विकासमें लगा हुआ था उसे कम त्याग और प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी थी। १३वीं सदीमें कानून बनाये गये कि प्रत्येक व्यक्तिको घरका बना कपड़ा पहनना पड़ेगा और उसकी उन्नतिकी चेष्टा करनी पड़ेगी। अंग्रेजी पार्लिमेंटका जन्मदाता सिमन डे माण्ड फोर्डने विदेशी प्रतिस्पर्धासे रक्षा करनेके निमित्त घरके बने मोटे कपड़ोंके प्रयोगके निमित्त पहला कानून बनाया। विदेशी प्रतियोगितासे भारतके नव जात वस्त्र व्यवसायकी रक्षाके लिये इसी तरहके कानूनोंके

निर्माणकी आवश्यकता है। क्या हमारी पार्लिमेंट या जिम्मेदार सरकारके कार्यकर्त्तागण इस आवश्यक बातकी ओर अपना ध्यान ले गये हैं। पर जब किसीतरहका रक्षा कानून नहीं बना है तो ऐसी अवस्थामें हमारी रक्षाका एकमात्र उपाय घरोंमें कपड़ेको तैयार करनेसे ही सम्पन्न हो सकता है।

—०—

करघा या कल

(जुलाई २८, १९२०)

जब कभी हाथके कते सूत और करघेसे बने कपड़ेकी चर्चा चलती है—जैसाकि इस समय चलरही है—तो लोग भौंहें तनेन करके यह कहने लगते हैं कि क्या इस मशीनके युगमें हाथके पुरुषार्थसे मशीनोंका कारबार बन्द कर देनेकी लोग चेष्टा करते हैं। लोग कहते हैं कि भला हाथसे चलाये जानेवाले करघे मशीनसे चलाये जाने वाले करघेका मुकाबिला कहां तक कर सकते हैं। जमना भूमिके एक संवाददाताको भी इसी प्रकार भ्रम उत्पन्न हो गया है। घरेलू धन्धोंके पुनरुत्थानका जो प्रयास होरहा है उससे चिढ़कर असाधारण क्रोध प्रगट करते हुए इस लेखकने लिखा है:—"इस समय इन दोनोंके बीचमें (अर्थात् मशीनोंके बने कपड़े तथा हाथके करघेसे बनाये कपड़े) यह प्रश्न नहीं है कि किसके द्वारा हम अपने करोड़ों देशवासियोंका पेट

पालन तथा वस्त्र पूरीकरनेकी आवश्यकता सहजमें हल करलेंगे पर प्रश्न यह है कि हमारी राजनैतिक और आर्थिक शक्तिका बल किसके द्वारा बढ़ेगा। यह काम हाथसे चलाये जाने वाले करघे द्वारा अति सहजमें हो सकता है या मशीनसे चलाये जाने वाले करघोंद्वारा। प्रधान विचारणीय प्रश्न यह है कि हमारे व्यवसायका आधार क्या होगा हाथकी कारीगरीया मशीनोंका प्रयोग।

इस कथनसे यह नहीं विदित होता कि देशके राजनैतिक तथा आर्थिक बलसे लेखकका क्या अभिप्राय है। यद्यपि लेखकके लेखसे यही भाव टपकता है तथापि हम सहसा इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि वह भारतकी राजनैतिक और आर्थिक समृद्धिका उत्पादन और संपन्नता विना उन हजारों और लाखोंका पेट भरे और तन ढाके हो सकता है। जो इस समय अन्न तथा वस्त्रके अभावसे निरीह अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं। इस समयमें भी—जब देशमें मशीनों तथा कल कारखानोंकी प्रधानता सर्वव्यापक होरही है—देशका बल इन मशीनों तथा कल कारखानों पर नहीं अवलम्बित है बलिक उन हजारों बलिष्ठ और शक्ति सम्पन्न देश दुलारों पर। कल पुर्जे तथा मशीन आदिमें जर्मनीका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं था पर जर्मनीका पतन हुआ और इसका मुख्य कारण यह था कि अन्तिम समयमें जर्मनीके वीर हताश होगये। हम लोग अपनी राष्ट्रीय शक्तिका संगठन करना चाहते हैं। इसका सम्पादन केवल उत्पादनकेसाधनोंको सर्वोत्तम बना देनेसे नहीं होगा बलिक उसके विभाजनको

नको भी ठीक कर देनेसे होगा। यहांपर हमें केवल कपड़ोंके उत्पादनपर विचार करना है। इसको दो तरहसे पूरा किया जा सकता है। (१) नयी मिलोंको खोलकर और उनमें अधिकसे अधिक यन्त्रोंको बैठाकर तथा वर्तमान यन्त्रोंकी उत्पादक शक्तिको बढ़ाकर (२) करघोंकी संख्या बढ़ाकर और उनमें सुधार लाकर। ये दोनों काम एक साथही हो सकते हैं। प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जीने अपनी पुस्तक "फौण्डेशन आफ इण्डियन इकोनोमिक्स" नामी पुस्तकमें बड़ी योग्यताके साथ दिखलाया है कि हाथसे चलाये जानेवाले करघोंमें तथा मशीनोंमें किसी तरहकी प्रतियोगिता नहीं हो सकती। जिन लोगोंका विचार इसके प्रतिकूल है वे भ्रममें हैं।

हाथके करघे मिलोंके साथ किसी तरहकी प्रतियोगिता नहीं करते बल्कि निम्न लिखित प्रकारसे वे उसकी सहायता करते हैं।

(१) उससे जो माल तैयार होता है वह मिलोंमें नहीं तैयार हो सकता।

(२) जिस तरहके सूतका उपयोग वह करता उसका प्रयोग इस समय मिलोंमें नहीं हो सकता।

(३) मिलोंमें जितना सूत तैयार होता है सबकी खपतका प्रबन्ध मिलोंमें नहीं हो सकता। इससे बहुतसा सूत बाहर भेजा जाता है। करघोंके चलानेसे यह सूत घरमें ही खप जायगा और इस तरह वह विदेशोंमें नहीं भेजा जायगा।

(४) गृह-शिल्प होनेके कारण स्थानीय आवश्यकताओंकी इससे पूर्ति हो जायगी। थोड़ी पूंजीवालोंको रोजगारका

सहारा मिल जायगा और जुलाहों तथा ग्रामके अन्य कारीगरों-को काम मिल जायगा।

(५) शिक्षित भारतवासियोंके लिये भी इसके द्वारा नेक पेशेका सहारा मिल जायगा जिसकी आवश्यकता बहुत दिनोंसे प्रतीत होती थी।

करघोंके लाभका यह संक्षिप्त विवरण है। पर इतना ही बस नहीं है। मिलोंके द्वारा स्वदेशीके लिये असीम सहायता मिल सकती है। पर इसके कारण हमारा चारित्रिक अधःपतन किस तरह हुआ है इसका पूरा विवरण स्वर्गीय मिस्टर रमेश-चन्द्र दत्तने दिया है। इस अधःपतनको किनारे रखकर भी यह प्रश्न उठता है कि क्या इससे वह समस्या हल हो सकती है जिसके लिये एक मात्र स्वदेशीके सहारेका प्रयत्न किया जा रहा है और जिसकी उत्पत्ति भी स्वदेशीके त्यागसे ही हुई है। जिस किसीने भारतके वाणिज्य व्यवसायपर कुछ लिखनेका साहस किया है, चाहे वह किसी भी परिणामपर क्यों न पहुंचा हो, भारतके भविष्य वाणिज्यके विषयमें उसके मत कैसे भी क्यों न हों, उसने यह बात तो जोर देकर लिखी है कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी स्थापनाके बहुत दिन बादतक कृषिके बाद चरखा और करघा ही भारतका प्रधान राष्ट्रीय व्यवसाय रहा है। किसान-लोग अपने फालतू समयको चरखा कातनेमें बिताते थे और इस तरह अपने रोजगारकी सहायता करते थे। मिस्टर दत्तने फ्रांसिस बुकायनके आर्थिक आंकड़ोंसे अवतरण दिया है। ये आंकड़े उक्त

डाकृर साहबने दक्षिण भारतकी अवस्थाकी जांचकर १७६८--१८१४ में लिखे थे। उन्होंने दिखलाया है किस तरह लाखों नर नारी इस काममें लगे रहते थे। अपना फालतू समय इस काममें व्ययकर वे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया कमा लिया करते थे।

हमारे इस घरेलू धन्धेकी यह अधोगति किस प्रकार हुई, इसमें पतनका क्या कारण था यह बात किसीसे छिपी नहीं है इसलिये इस विषयमें कुछ लिखना निरर्थक है। हमें केवल इतनाही कह देना है कि हम अपने देशमें उस तरहकी राजनैतिक तथा आर्थिक व्यवस्था नहीं करना चाहते जिसके कारणसे आज पश्चिम त्रस्त है, जिसका परिणाम जातिमें, वर्गमें तथा पूंजी और मजूरीमें घोर संग्राम है। हम लोग एकमात्र स्वदेशीकी सहायतासे अपना आर्थिक और राजनैतिक सुधार चाहते हैं। हमारी स्वदेशीकी समस्या उन ८० प्रति सैंकड़े देशवासियोंकी समस्या है जो अपना ६ मासका समय बेकारीमें बिताते हैं और कामकी लाचारीसे भूखों मरते हैं। उस फालतू समयके लिये उनके योग्य कोई काम आवश्यक है। हमें उन्हें राष्ट्रकी शक्तिका आधार और कारण बनाना है। इसकी सम्भावना एकमात्र स्वदेशीपर ही निर्भर है।

मिलका कपड़ा

(फरवरी २३, १९२२)

एक सवाल अक्सर पूछा जाता है-यदि हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी ही, फिर वह चाहे रुईकी हो, ऊनकी हो अथवा रेशमकी हो, इस्तैमाल करना वर्तमान कालका धर्म हो तो फिर देशकी आर्थिक व्यवस्थामें मिलके कपड़ेका कौनसा स्थान है ? यदि देहातमें रहनेवाले लाखों लोग आज चरखेका सन्देश पा सकें, उसका रहस्य समझ सकें और उसका व्यवहार भी कर सकें तो मैं कह सकता हूं कि हमारी घरेलू आर्थिक व्यवस्था-में मिलके कपड़ेके लिये-फिर वह चाहे विदेशी हो चाहें हिन्दु-स्तानी-कहीं भी जगह नहीं है और यदि ऐसा हो तो मिलके कप-ड़ेके इस पूर्ण अभावसे देशकी दशा बेहतर ही होगी।

इस कथनका सम्बन्ध न तो यन्त्र-सामग्रीसे है न विदेशी कपड़ेके बहिष्कारके प्रचारसे है। यह तो केवल भारतीय जनता-की आर्थिक स्थितिका प्रश्न है।

परन्तु जबतक वह जगदीश्वर सहायताके लिये हाथ न बढ़ा-वे और सहसा चमत्कार दिखाकर लोगोंका ध्यान चरखेकी और न खींचे और वे उसे अपना आश्रय-स्थान समझकर न दौड़ पड़ें हिन्दुस्तानी मिलोंको कुछ न कुछ खादी कुछ सालतक अवश्य ही तैयार करके देनी होगी। लोग सच्चे दिलसे यह चाहते हैं कि भारतके बड़े बड़े मिल-मालिकोंसे यह विनय अच्छी तरह की

जाय कि मिलोंके उद्योगको आप एक राष्ट्रीय ट्रस्ट समझिये और आपको यह भी जानना चाहिये कि इसका उचित स्थान क्या है। मिल-मालिक जनताको हानि पहुंचाकर रुपया पैदा करनेकी इच्छा नहीं कर सकते। बल्कि इसके विपरीत उन्हें अपने व्यवसायको आदर्शरूप और राष्ट्रीय आवश्यकताओंके अनुकूल बनाना चाहिये और उस निन्दाके कारणोंको दूर कर देना चाहिये जिसका आरोप वंग-भंगके आन्दोलनके समय उनपर किया गया था और जो ठीक भी था। अब भी कलकत्तेसे तथा दूसरे स्थानोंसे ऐसी शिकायतें आ रही हैं कि हिन्दुस्तानकी मिलें अपनी धोतियोंके दाम मैंचेस्टरवालोंसे भी अधिक लेती हैं, यद्यपि उनकी धोतियां मैंचेस्टरवालोंसे हलके दरजेकी हैं। यदि यह खबर सच हो तो यह बड़ी देश-धर्मके विपरीत बात है और इस धन खींचनेकी नीतिसे देश और देश-कार्य दोनोंको हानि पहुंचनेकी सम्भावना है। ऐसे समयमें जबकि भारत-माता प्रसव-वेदनासे पीड़ित हो रही है, असाधारण दाम लेना निंद्य नहीं तो और क्या है? ऐसा करना केवल इस लोकप्रिय आन्दोलनसे अलग खड़े रहना ही नहीं, बल्कि सचमुच बुरी तरह उससे उदासीन रहना है।

मिल-मालिक लोग, यदि स्थितिका विचार व्यापक दृष्टिसे करेंगे, तो खादीके आन्दोलनका रहस्य समझ जायंगे, उसकी कद्र करेंगे और उसका पोषण करेंगे तथा लोगोंकी जरूरतोंको जानकर देशकी नवीन आवश्यकताओंके अनुसार माल तैयार करेंगे।

पर वे लोग ऐसा करें चाहे न करें, देशकी आजादीकी गति किसी संस्थापर अथवा मनुष्य-मंडलपर अवलम्बित नहीं रह सकती। यह तो जनताके हृदयका प्रतिबिम्ब है। जनता मुक्तिकी ओर तेजीसे दौड़ रही है और इन पूंजी-पतियोंकी मदद उन्हें मिले चाहे न मिले उसकी गति तो रुक ही नहीं सकती। अतएव यह आन्दोलन पूंजी-पतियोंसे बिल्कुल अलग रहकर चलना चाहिये; पर फिर भी उनका विरोध इसमें न होना चाहिये। पर यदि पूंजीपति लोग जनताकी सहायताके लिये आगे बढ़ चलें तो इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ेगी और भावी सुखके दिन जल्दी नजदीक आ जायंगे।

पहले यहां यही हालत थी। भारतके इतिहासमें कभी पूंजीपति और श्रमजीवियोंका सम्बन्ध बुरा नहीं रहा है। चार वर्णोंकी यह व्यवस्था केवल धार्मिक दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि आर्थिक और राजनैतिक दृष्टिसे भी की गई है। और मुसलमानी संस्कृतिके मिश्रणसे भी उसकी स्थिति खराब नहीं हो गई है। क्योंकि मुसलमानी संस्कृति अनिवार्यतः धार्मिक अतएव गरीबोंके लिये कल्याणकर है। इसलाम जिस प्रकार नाजायज सूदखोरीको मना करता है उसी प्रकार वह पूंजीपति बननेके भी खिलाफ नजर आता है।

और इस वर्तमान समयमें भी यह कहना सम्भवनीय नहीं है कि पूंजीपति लोग इस आन्दोलनसे दूर रह रहे हैं। तिलक स्वराज्य-फण्डमें इस उदारतासे रुपया किसने दिया? विनय-

शील पूंजीपतियोंने ही। लेकिन यह बात भी दुःखके साथ कबूल करनी पड़ती है कि दुर्भाग्यवश अधिकांश मिल-मालिक इससे अलग ही रहे हैं। इस देशमें सबसे बड़ा उद्योग अगर कोई है तो वह है "पीस गुड्स" तैयार करना। अब समय आगया है कि वह अपना मार्ग निश्चित कर ले। वह इसे अपनावेगा या इससे दूर रहेगा?

—:०:—

पवित्रताकी हद

मैंने यह कई बार कहा है कि खादीकी पवित्रता केवल उसके स्वदेशीपनमें ही है। गेहूं पवित्र अन्न है। पर उसे सन्यासी भी खाते हैं और चोर भी खाते हैं। इसी प्रकार पवित्र खादीको पाखण्डी और पुण्यवान दोनों पहनते हैं। हिन्दुस्तानके शरीरका जो धर्म है उसका जो लोग त्याग करते हैं वे भूल करते हैं और भारतको हानि पहुंचाते हैं। इस संक्रमण कालमें खादीपर दूसरे गुणोंका आरोपण हो रहा है और पाखण्डी लोग खादी पहनकर अपने ढोंग-ढकोसलेका पोषण करते हैं। यह सच है। पर यह सिलसिला अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। जब खादी पहनना हमारा सहज धर्म हो जायगा तब उसकी वही कीमत की जायगी जो वास्तवमें उसकी होगी। जो खादी पहनने तथा उसे पैदा करनेके धर्मका मर्म समझ गये हैं वे तो खादीका

दुरुपयोग होते हुए भी अपने–उसे पहननेके--धर्मको कभी न छोड़ेंगे।

एक मित्रने कुछ धर्म संकटके प्रश्न उठाये हैं। उनको हल करनेमें अब दिक्कत नहीं हो सकती। यह सद्भाग्य है जो देशमें अब विवाह तथा मृत्युके अवसरोंपर खादीका उपयोग करना आवश्यक माना जाने लगा है। अहमदाबादमें हालमें ऐसे कितने ही विवाह हुए हैं जिनमें सोलहों आना तो नहीं, पर प्रधा-नतया खादीका ही उपयोग किया गया था। सुनते हैं कि एक दूलहराजने तो यहां तक निश्चय किया था कि यदि दुलहिनको खादीकी साड़ी न पहनाई जायगी तो मैं शादी ही न करूंगा। प्रश्न यह उत्पन्न हुआ है कि क्या हमें खादीको उत्तेजना देनेके लिये आक्षेपयोग्य विवाहोंमें भी जाना उचित है? न जानेसे कहीं उन वर-वधूको दुख हो और वे खादीका त्याग कर दें तो? इस प्रश्नमें भीरुता है। खादीका स्वीकार हम घूसके तौरपर तो कर ही नहीं सकते। हर चीज़की कीमत उसके गुण–दोषको तौलकर ही आंकनी चाहिये। साठ बरसका बुड्ढा यदि बारह बरसकी कन्याको गेरुई खादी पहनाकर अपने गलेमें रुद्राक्षकी माला डाल-कर और ललाटपर खौर मलकर विवाह करने लगे तो भी, खादीको उत्तेजना देनेके खातिर उस विवाहमें शरीक होकर उसकी सादगीकी तारीफ न करनी चाहिये। उसी प्रकार यदि पच्चीस बरसका युवक अपनी पत्नीका स्वर्गवास होते ही श्मशानमें दूसरी स्त्रीके साथ सगाई करे और दूसरे ही दिन बरातकी तैयारी

करे तो वहां भी न जाना चाहिये । खादीका तथा विवाहका नैतिक स्वरूप भिन्न २ है। जिस प्रकार हम उचित विवाहमें यदि खादीका उपयोग न हो तो जानेमें आनाकानी करें उसी प्रकार खादीसे सजे हुए अनुचित बेजोड़ विवाहोत्सवमें भी हमें न जाना चाहिये।

इस विषयपर एक और मित्रने पत्र लिखा है। उसमें वे लम्बी सांस खींचकर लिखते हैं "खादीकी महिमा तो जानी। पर ऐसी जगह क्या करना चाहिये जहां विवाह-मण्डली तो खादीमय हो, स्त्रियां भी खादी मण्डित हों पर वे ऐसी गालियां और सीठने गाती हों कि जिनके मारे कानके देवता कूच कर जाते हों? खादीके खातिर इन गालियोंको सुनें या खादीकी पोषाकका ख्याल न करके इन सीठनोंसे अपने कानोंको अपवित्र होनेसे बचावें।" यह सवाल मैंने जवाब देनेके लिये नहीं उद्धृत किया है। पत्र—लेखकने जवाबकी गरजसे पूंछा भी नहीं है। उन्होंने तो चर्चाके मिस इस कुप्रथाकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। स्त्रियां जब अश्लील गीत गाती हैं तब उन्हें उनकी अश्लीलताका ध्यान शायद ही रहता हो। इन कुप्रथाओंके अब तक न मिटनेके दोष—भागी पुरुष लोग ही हैं। पुरुष—वर्ग आसानीसे बहुत सत्याग्रह कर सकते हैं। पुरुष—वर्गने इस बातका विचार ही नहीं किया है कि हमें जिस बातका ज्ञान या ध्यान है वह स्त्रियोंको भी करावें। यह जमाना तो नवजवानोंका है। वे यदि नीतिमान और नम्र हों तो इन दोषोंको

तुरन्त दूर कर सकते हैं। पढ़ी लिखी स्त्रियां भी इन रिवाजोंके खिलाफ सत्याग्रह करके उन्हें दूर कर सकती हैं। हर एक पाठिका इन बातोंको ग्रहण करके ऐसी कुप्रथाओंका विरोध कर सकती हैं। समझदार स्त्रियां यदि ऐसे कार्यों में शरीक ही न हुआ करें तो यह कुरीति तुरन्त दूर हो जाय।
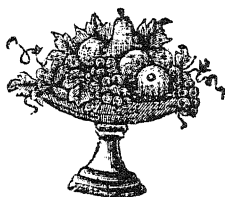
५—बहिष्कार

बहिष्कार और स्वदेशी

(जनवरी १४, १९२०)

मिस्टर बतिस्ताने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि बहिष्कार स्वदेशी ही नहीं बल्कि उससे भी बढ़कर है। अपने कथनके समर्थनमें उन्होंने कहा है कि एक तो यह घरके बने कपड़ेके प्रयोगके लिये लोगोंको उत्साहित करता है और दूसरे विदेशी वस्त्र-व्यवसायियोंकी आमदनीपर चोट पहुंचाकर दूसरी तरह-का असर पैदा करता है। मिस्टर बतिस्ताने यह भी कहा है कि बहिष्कारकी मेरी (महात्माजीकी) धारणा अर्थात् आत्मबलकी धारणा उनके दिलपर जरा भी असर नहीं करती। बहिष्कार-को वे लोग सदासे नियमबद्ध और उपयुक्त साधन मानते आये हैं।

जो लोग बहिष्कार और स्वदेशीको एक बतलाते हैं उन्होंने न तो स्वदेशीका तात्पर्य समझा है न बहिष्कारका। स्वदेशी एक अविहित सिद्धान्त है जिसके प्रति असावधानी दिखलानेसे असंख्य हानियां उठानी पड़ती हैं। स्वदेशीके माने हैं अपने ही देशमें माल तैयार करना और लोगों तक पहुंचानेकी व्यवस्था

करना। इसके वर्तमान संकुचित अभिप्रायमें यह मतलब निकला कि इस तरह स्वदेशीके प्रचारसे वर्तमान जन संख्याका प्रयोगकर प्रति वर्ष अपने देशका ६० करोड़ रुपया बचा लेना। साथही साथ ७७ प्रति सैंकड़े मनुष्योंको सहायक पेशा देनेका भी अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। स्वदेशी विधायक कार्यक्रम है। बहिष्कार निषेधात्मक है। इसके द्वारा ब्रिटिश जनताकी आमदनीपर चोट पहुंचाकर हम उन्हें लाचार कर देना चाहते हैं। इसलिये अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये बहिष्कारका इस तरह अनुचित प्रयोग करना उसका दुरुपयोग करना है। स्वदेशी वस्त्रोंको अधिकाधिक तैयार करनेकी प्रवृत्ति बहिष्कारके द्वारा तभी आनेकी सम्भावना है जब इसका प्रचार बहुत दिनोंतक होता रहे नहीं तो इससे अन्य विदेशी वस्त्रोंके प्रचारकी भी सम्भावना है क्योंकि बहिष्कारमें केवल ब्रिटनके मालकी योजना है। इससे अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि अन्य देशोंके जैसे अमरीका तथा जापानके वस्त्रोंका प्रचार बढ़ जायगा। जापानका व्यापार भारतीय बाजारमें जिस तरह अपना प्रभुत्व जमाता जा रहा है उसे मैं सदा आशंकाकी दृष्टिसे देखता हूं। बहिष्कार जबतक सर्वव्यापी न हो, अर्थात् जबतक इसको स्वीकार करनेके लिये सम्पूर्ण जनता तैयार न होजाय इसका असर लाभदायक नहीं हो सकता पर स्वदेशीका अवलम्बन जितने ही लोग करते जायंगे उतना ही लाभ होगा। यदि एक आदमीने भी स्वदेशी स्वीकार किया तो राष्ट्रका कुछ न कुछ

कल्याण उसके द्वारा अवश्य हो सकेगा। केवल क्रोध, रोष और आवेश उत्पन्न करनेवाले साधनोंके सहारे ही बहिष्कारकी सफलता सिद्ध हो सकती है। इससे असम्भावित शोकजनक घटनायें भी उपस्थित हो सकती हैं और इससे दोनों दलोंका आजन्म वैमनस्यका भी बीजारोपण हो सकता है। इसपर मिस्टर बप्तिस्ताका लिखना है कि यदि मेरे (महात्माजीके) सदृश कोई व्यक्ति इसकी देखरेख करनेवाला हो तो इससे किसी तरह-के उत्पातकी सम्भावना नहीं हो सकती पर मैं इस बातको दृढ़तासे कह सकता हूं कि मिस्टर बप्तिस्ताकी यह कल्पना निर्मूल है। जिस मनुष्यपर घोरतम अत्याचार किये गये हैं, जो उत्पीड़नके बोझमें अन्दर दबा कराहें ले रहा है उसे जरा भी बहाना उत्तेजित कर देगा। ब्रिटिश वस्तुके बहिष्कारमें बुराई करनेवालेको दण्डप्रदान करनेका आन्तरिक भाव छिपा है। इस शस्त्रके प्रयोगसे वह अत्यन्त प्रसन्न होगा। दण्ड देनेके निमित्त वह अतिशय प्रसन्नताके साथ इस शस्त्रको ग्रहण करेगा। पर आप जानते हैं कि दण्ड देनेका भाव ही क्रोध और हिंसाकी प्रवृत्तिसे भरा है।

मिस्टर जहूर अहमदने भी मेरी बातोंकी आलोचना करते हुए लिखा है कि सहयोग-त्याग और बहिष्कारमें कोई भेद नहीं है। दोनों एकही बातें हैं भेद केवल इतनाही है कि इसका प्रयोग सुगमताके साथ नहीं हो सकता इससे असल अभिवा-ञ्छित फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि मैं किसी पापीके

साथ सहयोग करता हूँ तो मैं भी पापाचारमें शामिल होता हूं। इसलिये जिस समय पापीके पापाचारकी मात्रा बढ़ जाती है उस समय उसके साथ सहयोग त्याग करना आवश्यक हो जाता है। और यदि एक आदमी भी उसके साथसे सहयोग खींच लेता है तो उतना असर उसके कामपर अवश्य पड़ता है। पर बहिष्कार एक प्रकारका दण्डप्रदान है और दण्डप्रदान कभी कर्तव्यकी कोटिमें नहीं आ सकता। इसलिये जबतक बहिष्कार अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता तबतक उसके लिये जो कुछ किया जाय केवल निष्फल है और परिश्रमको व्यर्थ खोना है। कुछ थोड़े आदमियोंद्वारा बहिष्कारका वही फल होगा जो हाथीको मदारके फलसे मारनेसे होता है।

मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि बहिष्कारका विरोध मैं आत्मबलकी योजनापर ही करता हूं। अर्थात् मैं आत्माके नियमोंको राजनैतिक क्षेत्रमें भी लाना चाहता हूं। मैं इस बातको माननेके लिये तैयार नहीं हूं कि ब्रिटनके लोग इसे नहीं समझेंगे। दक्षिण अफ्रिकाके यूरोपियनोंको मैंने इस सिद्धान्तको बड़ी आसानीसे समझाया और इसे समझकर इसकी व्यापकताकी उन्होंने हृदयसे प्रशंसा की। इसे चरितार्थ करनेके लिये आत्मबलकी प्रेरणासे कोई उसी तरहके कार्यसाधनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। मेरा कहना केवलमात्र इतनाही है कि आत्माके सहारे जो काम किया जाय उसे बड़ी आसानीसे समझ लिया भी जा सकता है और उसपर

आचरण भी बड़ी आसानीसे हो सकता है। यदि आत्मबलकी प्रेरणासे किया हुआ भी कार्य व्यवहारिकतापूर्ण नहीं है तो उसका कोई प्रभाव नहीं है। यह तो ठीक उसीके बराबर है कि हमारा हाथ गन्दा है और उसे धोकर साफ करनेके लिये कोई मुझसे कहे और मैं उससे कहूं कि मैं आपका अभिप्राय नहीं समझता। गन्दे हाथको साफ करना बड़ाही सहज काम है पर यह सदाचारके नियमके आधारपरही है और उसीमें अधिष्ठित है। पर जिस तरह सदाचारिक नियमकी आवश्यकता न भी स्वीकार करते हम हाथको साफ करनेकी आवश्यकता समझते हैं उसी तरह हम बहिष्कारकी असफलता और असहयोगकी आवश्यकताको स्वीकार कर सकते हैं और इसके लिये हमें इनके सदाचारिक या आत्मिक अंशको समझनेके लिये किसी तरहकी प्रतीक्षा नहीं करनी है।

तो क्या बहिष्कार सम्भव और व्यावहारिक है ? मिस्टर बतिस्ता ब्रिटिश मालके बहिष्कारके पक्षपाती हैं। मेरा कथन यह है कि जिस बातमें देशका स्थायी और अमिट कल्याण है उसका प्रभाव यदि व्यापारियोंपर यह असर नहीं डाल सकता कि वे स्वदेशीका पक्ष ग्रहण करें और इस तरह विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करें तो ब्रिटिशसे न्याय करानेके लिये ब्रिटिश वस्तुओंके बहिष्कारके लिये व्यापारियोंसे अपील करके किसी तरहका लाभ उठानेकी संभावना व्यर्थ है। उससे कुछ भी नहीं हो सकता। जब कोई घटना होगयी तो उसपर बहिष्कार किसी तरहका प्रभाव

नहीं उत्पन्न कर सकता। यदि उस घटनाके परिणामपर बहिष्कारका कोई असर डालना है तो वह तात्कालिक होना चाहिये। मेरी धारणा है कि तात्कालिक कार्यवाहीके लिये हममें पूर्ण संगठन नहीं है। क्षणिक सूचनाद्वारा जो संगठन हम कर सकते हैं उससे जो फल निकल सकता है उसका प्रभाव बहिष्कारपर कुछ नहीं पड़ सकता। बहिष्कार उसके दायरेके बाहर है। इसके अतिरिक्त ब्रिटनके लोग दूसरी तरकीबसे भी अपना माल भारतमें भेज सकते हैं। कई वर्ष पहले जिस तरह जर्मनी दूसरे देशोंद्वारा अपना माल यहां भेजता रहा उसी प्रकार ब्रिटन भी दूसरे देशोंद्वारा जैसे अमरीका या जापानकी सहायतासे भारतीय बाजारमें अपना माल गांज सकता है।

स्वदेशीका आधार विकासवाद है। जिस तरह इसका प्रयोग किया जायगा उसी तरह इससे सुधार होता जायगा। इसीलिये मैं स्वदेशीकी शपथ ग्रहण करता हूं। इसकी सहायता छोटेसे छोटे संगठनद्वारा भी हो सकती है। शासकवर्ग—चाहे वह ब्रिटन हो या कोई अन्य हो—के न्याय या अन्याय आचरणसे यह रहित है। अर्थात् इसपर उसका कोई असर नहीं पड़ सकता। इसका पारितोषिक वही है। अर्थात् आचरणही पारितोषिक है। इसमें असफलता और शक्तिह्रासकी सम्भावना नहीं। इस धर्मपर शनैः आचरण भी मनुष्यको भारी भयसे बचा लेता है। इसलिये स्वदेशी और बहिष्कार

एकत्र होकर एकदमसे भिन्न और उलटे हैं। दोनों एक दूसरेके प्रतिकूल हैं।

—:o:—

बहिष्कार और असहयोग कार्यक्रम

(अगस्त २५, १९२०)

मद्रासमें समुद्रके किनारे भाषण करते हुए मैंने असहयोग कार्यक्रमके प्रथम-चरणकी व्याख्या की थी। उसके समर्थनके पक्षमें मैंने जो कुछ कहा था उसका मिस्टर कस्तुरीरंग ऐयरने विरोध किया है। केवल उपाधियोंके परित्यागके पक्षमें वे हैं, नहीं तो उन्होंने अन्य सभी कार्यक्रमोंसे अपना मतभेद प्रगट किया है। अन्य कार्यक्रमोंके स्थानपर उन्होंने विदेशी मालके बहिष्कारकी सिफारिश की है। मिस्टर कस्तूरीरंग ऐयर सदृश नेताने इस बातका (बहिष्कारका) समर्थन और प्रतिपादन किया है इससे आवश्यक हो गया है कि मैं इसपर अपना मत पुनः प्रगट करूं और ऐसा करनेमें मुझे पुनः उन्हीं बातोंको दोहरानी पड़ेगी जिन्हें मैं यंगइण्डियामें एकबार लिख चुका हूं। इसके लिये यंगइ-ण्डियाके पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

सबसे पहले बहिष्कारकी योजना दण्ड देनेकी अभिलाषासे की गई है। इससे असहयोग कार्यक्रममें उसका कोई स्थान नहीं हो सकता। क्योंकि असहयोगका आधार आत्मत्याग

और बलिदान है। इसलिये वह एक तरहका परम पवित्र कर्तव्य है।

दूसरे यदि हम लोग दण्ड देनेकी ही योजना करते हैं तो उसके लिये हम लोग जो दण्डविधान निर्धारित करते हैं वह तेज; निश्चित और उपयुक्त होना चाहिये और जिस बातको चरितार्थ करनेके लिये हम लोग उसका प्रयोग करना चाहते हैं उसके मुकाबिलेका होना चाहिये। इसलिये बहिष्कारका वैयक्तिक प्रयोग किसी तरहका फलप्रद नहीं हो सकता। और जबतक उससे किसी तरहके फलकी प्राप्ति नहीं हो सकती उससे सन्तोष भी नहीं होसकता। इसके विपरीत असहयोगका प्रत्येक कार्यक्रम फलप्रद, इसलिये सन्तोषप्रद है।

तीसरे ब्रिटिश मालका बहिष्कार हरतरहसे असम्भव है; क्योंकि इसके लिये करोड़ोंका त्याग होना चाहिये मेरी समझमें यह सबसे कठिन काम है। वकीलको वकालत छोड़नेमें उतने त्यागकी आवश्यकता नहीं, उपाधिधारियोंको उपाधियोंके छोड़नेमें उतने त्यागकी जरूरत नहीं और यदि आवश्यकता आपड़े तो अभिभावकोंको अपने बालकोंकी शिक्षा बन्द कर देनेमें भी उतना त्याग नहीं करना पड़ेगा जितना त्याग ब्रिटिश वस्तुओंके बहिष्कारमें करना पड़ेगा। इसके साथही साथ इस बात परभी विचार करना है कि हालमें ही व्यापारी लोग राजनीतिमें भाग लेने लगे हैं। इसलिये वे अबतक राजनीतिको सशंक नेत्रोंसे देखते हैं और डरते हैं। पर असहयोग सबसे पहले जिन वर्गों

पर अपना बोझ डालना चाहता है वह वही वर्ग है जो राजनीतिमें सदासे भाग लेता आया है। उसकी गति और चाल ढालको सदासे समझता आया है और त्याग करता आया है। इसलिये त्यागकी मीमांसाको समझानेके लिये भी उसे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है।

ब्रिटिश वस्तुओंके बहिष्कारकी योजना भी हो सकती है जब इसे सारा देश एक साथ ही स्वीकार करे और एक साथ इसका प्रयोग आरंभ हो। नहीं तो इसे नहीं अपनाना चाहिये। बहिष्कार एक तरहका घेराव है। घेरावमें आपको तभी सफलता मिल सकती है जब आपके पास घेराव डालनेके लिये पर्याप्त आदमी हों और साथ ही जिस पर घेराव डाला गया है उसे नष्टकर डालनेके लिये आपके पास पर्याप्त साधन हों। ऐसा न करके यदि कोई एक आदमी जाकर उस स्थानकी दीवारको अपने नाखूनसे खुरचने लगे तो सिवा अपने नखमें चोट पहुंचानेके वह और क्या कर सकता है। उस स्थानको तो वह किसी तरहकी क्षति नहीं पहुंचा सकता। यदि एकही उपाधिधारीने अपनी उपाधि त्याग दी तो उसकी आत्माको इस बातका तो अवश्य सन्तोष हो जायगा कि जिस पापाचारसे यह सनी हुई थी उसके भारसे मैं मुक्त हो गया। चाहे उसके अन्य समकक्षी अपनी अपनी उपाधियोंका परित्याग भलेही न करें पर उससे उसकी किसी तरहकी क्षति नहीं हो सकती। पर बहिष्कारका आन्तरिक भाव दण्डप्रदान है इसलिये उसमें उन व्यवहारिक

बातोंका सर्वथा अभाव है जो असहयोगमें पाई जाती हैं। यदि हममें दण्डप्रदानकी अभिलाषा उठती है तो निश्चय जानिये कि हममें दुर्बलता है। इसलिये असहयोग शक्ति प्रदान करनेवाला तथा शुद्ध करनेवाला शस्त्र है। इससे दोनों का लाभ हो सकता है। जो इस तरहके आत्मत्यागके लिये प्रेरित करता है उसका तथा जिसे इस तरहके त्यागके लिये प्रेरित किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि भारत संसारके सामने कुछ नई बातें उपस्थित करना चाहता है, यदि संसारको किसी नये ज्ञान और प्रकाशकी शिक्षा देना चाहता है तो उसे पश्चिमी जातियोंके संदिग्ध शस्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये और इस तरहसे आत्मत्यागकी शुद्धता और मर्यादा कलंकित नहीं कर देनी चाहिये। असहयोगमें जिस त्यागकी आवश्यकता है और जिसे करनी पड़ेगी वह निष्कपट है और ईश्वरकी दृष्टिमें भी परम पवित्र है।

विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार कैसे हो ?

(जुलाई ६, १९२१)

इस अवस्थापर पहुंच कर अब यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार प्रतिहिंसाके किसी तरहके भावसे प्रेरित होकर नहीं किया गया है बल्कि राष्ट्रीय जीवनको कायम रखनेके लिये वह उतनाही आवश्यक है जितना प्राणकी रक्षाके लिये साफ हवा। इसलिये इसको जितना शीघ्र निस्पन्न किया जायगा देशका उतनाही अधिक कल्याण होगा। विना इसके न तो स्वराज्यकी स्थापना ही हो सकती है और स्थापना हो जाने पर भी वह स्थायी नहीं रह सकता इसलिये यह जान लेना सबसे आवश्यक है कि आगामी पहली अगस्तके पहले ही हम इसे किस प्रकार सम्पन्न कर लें।

इसलिये बहिष्कारको पूर्णतया सफल बनानेके लिये निम्न-लिखित बातोंकी आवश्यकता है:— (१) मिलके मालिकोंको चाहिये कि वे अपना नफा बांधलें और ऐसी वस्तु उत्पन्न करें जो भारतकी मांगके उपयुक्त हो। (२) माल मंगानेवाले व्यापा-रियोंको उचित है कि वे विदेशी वस्त्रोंको मंगाना छोड़ दें। इसके लिये तीन प्रकार विदेशी वस्त्रोंके व्यापारियोंने आरम्भ भी कर दिया है (३) प्रयोग करनेवालोंको चाहिये कि वे हर तरहके

विदेशी कपड़ोंको खरीदना छोड़ दें और जहांतक सम्भव हो केवल मात्र खादी खरीदें (४) प्रयोग करनेवालोंमें जो जानकार हैं उन्हें चाहिये कि मिलोंके कपड़े तो गरीब भाइयोंके लिये छोड़ दें क्योंकि उन्हें देशी और विदेशीके पहचाननेकी तमीज नहीं है (५) जबतक पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्ति न हो जाय और खादीकी तैयारी न बढ़ जाय तबतक केवल उतनेही वस्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये जितने से तन ढक जाय। (६)जिनके पास विदेशी कपड़े हों उन्हें उचित है कि वे विदेशी कपड़ोंको उसी तरह त्याग दें जिस तरह नशा न छूनेकी शपथ लेने पर नशीली वस्तुओंको नष्ट कर देते हैं। इसके दो उपाय हैं। या तो देशसे कहीं बाहर भेज दीजिये या उसे जला दीजिये या गन्दा काम करनेमें उसका प्रयोग कर उसे फाड़ डालिये।

इस बातकी पूर्ण आशा की जाती है कि जिन लोगोंके लिये ऊपर कहा गया है वे उन बातों पर उचित ध्यान देंगे। और सन्नद्ध होकर काम करनेके लिये तैयार हो जायंगे। पर अन्तिम सफलता प्रयोग करनेवालों पर ही निर्भर करती है। यदि उन्होंने दृढ़ता और तत्परता दिखलाई तो विजय निश्चित है। उन्हें केवल मात्र इतनाही करना है कि वे इस बातकी शपथ उठालें कि दासताका यह चिन्ह अब क्षणभरके लिये भी हम अपने शरीर पर न रखेंगे।

विनाश क्यों हो

(जुलाई २८, १९२१)

मैंने विदेशी वस्त्रोंके जलानेकी योजना की है। इससे लोग हमसे बिगड़ गये हैं और चारों ओरसे बौछारें आरही हैं। लोगोंने अपनी अपनी धारणाके अनुसार इसके विरुद्ध युक्तियां पेशकी हैं पर समस्त युक्तियोंको देखकर मुझे विवश होकर यही कहना पड़ता है कि विदेशी वस्त्रोंके लिये इससे उपयुक्त दूसरा कोई उपचार नहीं है। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंने लोगोंको इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी है कि चाहे लोग विदेशी वस्त्रोंको जलादें या स्मिर्ना तथा अन्य किसी देशमें भेज दें। इस प्रकार देशके सामने विनाशके अतिरिक्त एक उपाय और भी है जिसका अवलम्बन वह कर सकता है। और इसी अवस्थामें इस प्रश्न पर विवाद करना भी इतना महत्वपूर्ण नहीं हो सकता जितना उस अवस्थामें होता यदि एकमात्र उपाय विनाश ही होता। विनाशकी आवश्यकता लोगोंकी भावनासे उत्पन्न होती है। विदेशी वस्त्रोंके त्यागकी जितनी अधिक भावना लोगोंके हृदयोंमें होगी उतना ही तेज शस्त्र उसके विनाशके लिये होना चाहिये। जिस तरह कोई नशेबाज नशाके प्रयोगको छोड़ देनेकी शपथ लेनेके बाद वह अपनी बची खुची

नशीली वस्तुको अपने पड़ोसीको देनेकी धृष्टता नहीं कर सकता उसी तरह जिस व्यक्तिने स्वदेशीका व्रत ग्रहण किया है वह अपने पासके विदेशी वस्त्रोंको अपने पड़ोसीको कभी भी नहीं देगा। मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि इस देशमें विदेशी वस्त्रोंका उतनाही बुरा असर पड़ रहा है जितना नशेका। संभव है किसी किसी अंशमें वह खराबसे खराब असर पहुं-चाता हो। विगत १५० वर्षोंसे भारतवर्ष अपने घरेलू धन्धे अर्थात् चरखे और करघेके गलेपर छुरी फेरकर विदेशोंसे वस्त्र मंगाकर अपनी आवश्यकता पूरी कर रहा है। स्व-र्गीय श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्तने अपने इतिहासमें दिखलाया है कि देशी वस्त्र-व्यवसायको नष्ट करनेके लिये धीरे धीरे किस तरहकी योजना की गई और इसका परिणाम यह हुआ कि बिहार प्रान्त तो किसी समय सबसे समृद्ध प्रान्त था उसका कारोबार नष्ट कर दिया गया और वह अति दरिद्र प्रान्त बन गया यदि हम लोग कंपनीके अत्याचारोंकी कल्पना मात्र करें यदि हम लोग केवल एकबार इस बातपर विचार करें कि हम लोगोंने कम्पनीके गुमास्तोंके चक्करमें पड़कर अथवा उन प्रलोभनोंमें पड़कर जो समय समयपर कम्पनीकी ओरसे हमें दिये गये थे— हम लोगोंने अपना नाश जिस प्रकार किया तो मारे शर्मके हमें अपना सिर नीचा कर लेना पड़ता है। यदि हम लोग उस समय इस तरह नहीं दब गये होते तो आज हमारा राष्ट्रीय व्यवसाय इस तरह नष्ट नहीं हो गया होता, हमारी माताओं, बेटियों और

बहनोंको इस तरह सड़कोंके खोदनेका काम नहीं करना पड़ा होता और यदि स्वदेशीका कारोबार आज उसी तरह चलता होता तो इस देशके थोड़े मनुष्य सालका अधिकांश भाग बेकारी और नरीह अवस्थामें नहीं बिताते होते। इसलिये मेरी समझमें जिस वस्त्रके साथ इतनी कालिमा लगी है, जिसको देखने से हमें उन लज्जाजनक और अपमानकारी घटनाओंका स्मरण हो आता है उसका इस तरह विनाशही सबसे उपयुक्त उपचार है। इसे गरीबोंको देना किसी भी तरह उचित नहीं है। जिस बातका हम दासताका चिन्ह समझते हैं उसे उन्हें देते समय हमें उनके हार्दिक भावों तथा राष्ट्रीय संस्कृतिपर उचित ध्यान देना चाहिये। क्या भारतके गरीबोंमें राष्ट्रीयताका भाव नहीं भरा है? क्या उन्हें भी मर्यादा और आत्म सम्मानका वही भाव नहीं रखना चाहिये जो हममें वर्तमान है? मैं नहीं चाहता हूं कि हममें साधारणसे साधारण और नीचसे नीच व्यक्ति भी ऐसा हो जिसमें राष्ट्रीयता और देशाभिमानका भाव न भरा हो। इसलिए जिस तरह हम उन्हें सड़ा भोजन अथवा जो भोजन हम लोग नहीं खा सकते उसके देनेसे हिचकते हैं, उसी तरह हमें उन्हें वह वस्त्र भी नहीं देना चाहिये जिसे हम नहीं पहन सकते या जिसके पहननेसे हम अपनेको कलंकित समझते हैं। यदि स्थिर होकर क्षण कालके लिये हम विचार करें तो यह भी व्यक्त हो जायगा कि जिन उत्तम और बहुमूल्य कपड़ेको हम फेंकनेकी योजना कर रहे हैं वह गरीबोंके लिये निष्प्रयोजन तथा

निरर्थक है। जिन हैटों और टोपियोंको हम छोड़ रहे हैं, जो हमारे शरीरके पसीने और तेलके मैलसे बदबूदार हो गयी हैं उन्हें लेकर वे क्या करेंगे अथवा उन महीन मलमल, तंजेब तथा जरीके कपड़ोंको और किमख्वाब आदिको ही वे लेकर क्या करेंगे। जो लोग इनका प्रयोग कर रहे थे उनके अतिरिक्त अन्य किसीके लिये इन वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं है। इन वस्त्रोंसे अकाल पीड़ितोंकी आवश्यकताकी पूर्ति नहीं हो सकती। जिन वस्तुओंसे उनका कुछ भी उपकार हो सकता है उनकी संख्या न्यूनातिन्यून है। पर मैं विनाशकी योजना इसलिये नहीं करता कि ये वस्त्र किसी भी प्रकार हमारे लिये उपयोगी नहीं हैं। मेरी योजनाका आधार दूसराही है और हमारे हृदयके अन्तःस्तलतक पहुंचा हुआ है। यदि आज कोई व्यक्ति बृटिश झण्डेपर कटाक्ष करे तो एक सच्चा अंगरेज उसे पूर्ण अपमान समझता है। इसका क्या कारण है? समझता है कि हमें अपमानित समझना चाहिये और उसकी धारणा सही है। एक क्षणके लिए यदि मैं अपने सच्चे आन्तरिक भावको छिपाकर लाखों और करोड़ोंका फायदा उठा सकूं तो इसमें क्या क्षति है? फिर यदि संसारका साम्राज्य भी मुझे दे दिया जाय तो मैं ऐसा करनेके लिये तैयार नहीं हूं, उसी तरह और उन्हीं कारणोंसे हमें अपने उतारे हुए विदेशी कपड़े गरीबोंको नहीं देना चाहिये और स्मिर्ना आदि स्थानोंमें उतारे हुए विदेशी वस्त्रोंकी योजनाकर बहिष्कारका कार्य अति सहज और सुविधाजनक कर दिया गया

है। पर इस तरह बाहर भेजनेके लिए उतना भीषण विरोधका भाव नहीं है जितना देशमें रखकर उसका प्रयोग किसीके द्वारा होनेमें।

—:०:—

बम्बईमें वस्त्रोंकी होली

—:०:—

(अगस्त ४, १९२१)

जुलाई ३१, १९२१ को विदेशी वस्त्रोंके पूर्ण बहिष्कारकी योजना की गई। उस दिन उसके बहिष्कारका सबसे उत्तम उपाय उन्हें जला देनाही बतलानेके हेतु बम्बईमें बहुमूल्य और उत्तम २ वस्त्रोंकी बृहत् होलिका जलाई गई। उसके दूसरे दिन स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलककी बरसी मनानेके लिये एक महती सभा की गई। उस सभामें महात्माजीने उपस्थित जनतामें निम्न लिखित परचा बांटा था:—

स्वर्गीय लोकमान्यके नाममें विचित्र जादू भरा है। उनके नाम परही कल मिस्टर सोबानीके मैदानमें प्रायः दो लाख जनताकी भीड़ उपस्थित थी। उस दृश्यको देख देखकर मेरा हृदय उछल पड़ता था। बम्बईने कल जो दीपक जलाया है वह पारसियोंकी पवित्र अग्निकी भांति सदा प्रज्वलित रहेगा और अपनी शिखा द्वारा हमारे सभी पापोंको जलाकर भस्म कर देगा जिस तरह

कल उसने हमारी बाहरी अपवित्रता या पाप अर्थात् विदेशी वस्त्रोंको जलाया। हमें यहींसे दृढ़ संकल्प करलेना चाहिये कि आजसे हम विदेशी वस्त्र छूयेंगे नहीं। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, जैन, ईसाई तथा अन्य जातियां जिन्होंने इस देशको अपनी जन्म-भूमि बनाली है उन्हें विदेशी वस्त्रोंको अछूता समझनेको अपना धर्म बना लेना चाहिये। भारतकी प्रत्येक जातियोंको इसे अपना साधारण और सम्मिलित धर्म मान लेना चाहिये। पतित जातियोंको अछूत माननेमें प्रत्येक हिन्दू जितना निन्दनीय काम करता है इन विदेशी वस्त्रोंको अछूत समझनेमें हम उतनाही पुन्य काम करते हैं। इस ख्यालसे कल हम लोगोंने जो त्याग किया वह अतिशय उदार और प्रशंसनीय था। कलके त्यागसे बम्बईने दिखला दिया कि हम लोकमान्यकी बरसी मनानेके सर्वथा उपयुक्त हैं। उनके आत्म-त्याग, बल, पौरुष, साहस, तथा सरलताको हमें सदा स्मरण रखना चाहिये। देशभक्तिही उनका परम धर्म था। जिस स्वराज्यका उन्होंने स्वप्न देखा था, जिसकी प्राप्तिमें उन्होंने अपना जीवन गंवाया था, भाइयो उसीके लिये हम अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दें। यदि हम उनकी स्मृति चिरस्थायी करना चाहते हैं तो इसका एक मात्र उपकरण भारतमें स्वराज्य स्थापित कर देना है। विना इसके दूसरे किसी भी उपायसे आप उनके लिये उपयुक्त स्मारक नहीं खड़ा कर सकते।

जैसा मैंने कल कहा था भारतकी मुक्तिका एक मात्र उपाय स्वदेशी है। विना स्वदेशीके स्वराज्य नहीं मिल सकता। कल

जिस अग्निको हम लोगोंने प्रज्वलित किया है वही बलिदानकी बेदीकी सच्ची अग्नि है ।

जो बात हम अपने बाहरके विषयमें कह सकते हैं वह भीतरके लिये भी चरितार्थ हो सकती है । कल जिस अग्निको हम लोगोंने प्रज्वलित किया है हमारी दृष्टिमें वह अग्नि हमारे हृदयस्थ प्रज्वलित भावोंका प्रतिस्वरूप है जो भीतर ही भीतर हमारी कमजोरियों, दुर्बलताओं, तथा अन्य मानसिक तथा हृदयस्थ बुराइयोंको जलाकर दूर कर देगी। इस तरह शुद्ध होने पर हमारी आत्मा और हमारा मनस्त्र हमें स्वदेशीकी आर्थिक उपयोगिताकी शिक्षा देगा । और हमारा शुद्ध हृदय हमें विदेशी वस्त्रोंकी चमक दमकके प्रलोभनमें पड़नेसे बचावेगा । भारतके बाहर वह कितना ही उपयोगी और लाभप्रद क्यों न हो, पर भारतके लिये तो न वह उपयोगी ही है और न लाभप्रद ही है ।

जो दीपशिखा हम लोगोंने कल प्रज्वलित किया है, यदि वह हमारे हृदयके सच्चे भावोंसे प्रेरित है, आजका यह समारोह यदि हृदयकी सच्ची भक्ति और भावनासे प्रेरित है तो हमें पक्का विश्वास है कि हम उसी तरहकी चेष्टा करते रहेंगे जिससे हम देशको किसी तरहसे धोखेमें न डाल सकें । खादी हमारा पोशाक बननेके लिये हर तरह से उपयुक्त है। समारोह या उत्सवके अवसरोंपर अब भविष्यमें हमारे शरीरकी शोभा बढ़ानेके लिये विदेशी मलमल या किमखावको नहीं पहनेंगे बल्कि शुद्ध और पवित्र खादीही हम लोगोंके शरीरको विभूषित करेगी।

यदि कलके त्यागका यही अभिप्राय है यदि आजका समारोह उसी भावको व्यक्त करनेके लिये हुआ है—जहां १२ मास पहले हमने अपने प्यारे और पूज्य नेताका अन्तिम संस्कार किया था तो हमें इस स्थानसे एक कदमभी पीछे नहीं रहना चाहिये हमें अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहना चाहिये, हमें केवल क्षणिक जोश या दिखौआपनसे ही काम नहीं चलाना चाहिये। आजसे हमें सदाके लिये विदेशी वस्त्रोंका त्याग कर देना चाहिये। जिस तरहसे फटा दूध हम पीने योग्य नहीं समझते और उसे फेंक देते हैं उसी तरह हमें इन विदेशी वस्त्रोंको समझना चाहिये और उनका त्याग कर देना चाहिये। यदि हम लोगोंने यह दृढ़ विचार कर लिया है कि आजसे हम विदेशी वस्त्रोंका प्रयोग नहीं करेंगे तो अपने पास विदेशी कपड़ोंका गट्ठर बांधकर रखना सिरपर बोझ लादना ही है। यूरोपकी ही हालत लीजिये। जो वस्त्र उनके फैशनके खिलाफ हो जाता है उसे वे फौरन उठाकर फेंक देते हैं। मैं यह चेतावनी इसो स्थलपर केवल इसलिये दे देता हूं कि मैं जानता हूं कि बहुतसे लोग ऐसे हैं जिन्होंने अभी भी अपना बहुतसा कपड़ा इसलिये बचाकर रखा है कि यदि समय आवेगा तो वे उसका प्रयोग करेंगे। विदेशी वस्त्रोंका संग्रह रत्नों और जवाहिरातोंके संग्रहकी तरह नहीं है कि केवल अंश मात्र दे देनेसे काम चल जायगा। इसके विपरीत विदेशी वस्त्रोंका परित्याग करके कूड़े करकटकी भांति जिसे चतुर और मिहनती गृहस्थ सदा साफ करके बाहर फेंक देगा और घरमें तिनका तक नहीं रहने

देगा। यदि विदेशी वस्त्रोंको बेचनेवाली दूकानें हमारे शहरमें रह भी जायं तो हमें अपनी रुचिको इस तरह बदल देनी होगी कि हम उनकी तरफ ताकें तक नहीं। हमें नकलके लिये कभी तैयार नहीं होना चाहिये। यदि हम लोग ऐसा करेंगे तो इस बातकी भी सम्भावना है कि विदेशोंसे नकली खादी तैयार हो हो कर हमारे पास आने लगे। इस समय जब तक हम लोग परिवर्तनके युगमें है मोटी खादी ही हमारे लिये सबसे उपयुक्त होगी। मैं स्वदेशीका व्रत इसलिये धारण करता हूं कि इससे हमें अपनी समस्त इन्द्रियोंके प्रयोगका अवसर मिलता है और प्रत्येक भारतवासी—चाहे वह बालक हो, जवान या वृद्ध हो, स्त्री हो या पुरुष हो, को जांचका अवसर मिलता है। इसमें सफलताकी आशा तभी की जा सकती है जब भारतवर्षके सभी प्राणी एक दिल होकर काम करनेके लिये सन्नद्ध हो जायं। यदि भारतने स्वदेशीमें इन बातोंको चरितार्थ किया तो उसे स्वराज्यका रहस्य विदित हो जायगा। उस समय उसे विनाश और निर्माण दोनोंकी योग्यता हो जायगी और वह सुचारु रूपसे इसका उपयोग करने लग जायगा।

जिस स्थानपर कल हम लोगोंने अपने पापके एक अंशको जलाया वह स्थान हमारे लिये परम पवित्र तीर्थक्षेत्र हो गया। हमें पूरी आशा है कि जिस उदारताके साथ मिस्टर सोबानीने इस राष्ट्रीय काममें योगदान किया है तथा अपने पुत्रको मातृभूमिकी सेवाके लिये उत्सर्ग कर दिया है उसी उदारताका

परिचय दे करके उस स्थानको—जहांपर कल हम लोगोंने विदेशी वस्त्रोंको जलाया—राष्ट्रको दे देंगे ताकि इस तीर्थको चिर-स्मरणीय बनानेके लिये वह उसके ऊपर स्मारक खड़ा कर दे उसी प्रकार हमें इस स्थानको प्राप्त करनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये जहां हम लोग आज एकत्रित हुए हैं और जहां १२ मास-पूर्व हम लोगोंने अपने प्यारे और पूज्य नेताका अन्तिम संस्कार किया था। यहीं पर उनकी चितासे असहयोगका दिव्यरूप निकला था। पारसालकी पहली अगस्तको असहयोगका जन्म हुआ था। और कल मिस्टर सोबानीके मैदानमें देशने उस शस्त्रको ग्रहण किया है जिसे स्वराज्यकी उपलब्धिमें मैं सबसे बलिष्ठ और महत्वशाली समझता हूं। मेरी प्रभुसे यही विनय है कि आगामी ३० सितम्बर तक वह भारतको पीछे न रहने दे।

स्वयं सेवकोंके सम्बन्धमें भी मैं दो शब्द कहना चाहता हूं। संगठनकी कमी या अभावका हमपर दोषारोपण किया जाता है। पर कल न तो पुलिसकी आवश्यकता प्रतीत हुई और न कोई दुर्घटना ही घटित हुई। विदेशी वस्त्रोंको मंगाकर एकत्रित करना तथा उसमें आग लगाना आदि सारा काम आरंभसे लेकर अन्त तक स्वयंसेवकोंने ही किया था। इस समारोहके इस तरह बीत जानेका सारा श्रेय उन्हें तथा उनके सहायकोंको है। इसी तरहकी शान्तिधैर्य तथा शान्तिमय उपायों द्वारा हम लोग इस स्वराज्यके संग्राममें विजयी हो सकते हैं।

बम्बईमें विदेशी वस्त्रोंकी जो होली हुई थी उसके सम्बन्धमें महात्माजीने अगस्त ११; १९२१ के यंग इण्डियामें निम्न लिखित लेख लिखा था:---

विदेशी वस्त्रोंके जलानेकी उपयोगिता और आवश्यकताके सम्बन्धमें जिन्हें कुछ संदेह रह गया था उन्हें कलके दृश्यने मिटा दिया होगा। कल मिस्टर सोबानीके मैदानमें विदेशी वस्त्रोंकी होलिका जलाई गई थी उसे देखनेपर किसी तरहकी आशंका इसकी उपयोगिताके सम्बन्धमें नहीं रह जा सकती थी।

उस समारोहमें हजारों आदमी एकत्रित थे। दृश्यको देखकर जो उत्साह उठता था वह अवर्णनीय था। जिस समय अग्नि शिखाने अपने लाल मुंहसे एकत्रित वस्त्र समुदायको लपेट लिया और निगल जानेके लिये प्रवृत्त हुई उस समय चारों ओरसे विचित्र हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। वह हर्षध्वनि आकाशको चीर रही थी। ऐसा प्रतीत हुआ मानों हम लोगोंकी दासताकी लोह-शृङ्खला टूट कर चूर चूर हो गई। उपस्थित समारोहमें स्वतन्त्रताके भाव व्याप्त थे। यह काम जितना महत्वशाली था उतनेही महत्वके साथ इसका सम्पादन किया गया। मेरा अनुमान तो यही है कि स्वदेशीने जितना प्रभाव लोगों पर डाला है उतना अन्य किसी बातने नहीं। इस होलिकामें केवल फटेपुराने चिथड़ेही नहीं जलाये गए थे। इसमें बहुमूल्य साड़ियों, जाकटों, कोटों और कमीजों का ढेर था। मैं अच्छी तरहसे जानता हूं कि इस समारोहके

लिये माताओंने उत्तमसे उत्तम वस्त्र उठाकर दे दिये हैं। इस विनाशका महत्व बहुमूल्य वस्त्रोंको जलानेमें है। कमसे कम डेढ़ लाख वस्त्र इस होलीमें जलाये गये हैं और उनमेंसे अनेक तो सैकड़ों रुपयेके मूल्यके थे। मेरी पक्की धारणा है कि यह सब काम देशके हितके ख्यालसे किया गया है। इन वस्त्रोंको गरीबोंको पहननेके लिये दे देना पाप होता। जरा अनुमान कीजिये कि एक गरीब आदमी बहुमूल्य वस्त्र पहनकर बाहर निकलता है तो क्या इससे उसका उपहास नहीं होगा? क्या यह उसे असुविधाजनक नहीं प्रतीत होगा? मध्यम श्रेणीके लोगोंका पहनावा इस तरहका हो गया है कि विचारे गरीब उनका प्रयोग नहीं कर सकते। यह तो उसीके बराबर होगा जैसे उन्हें बाल झाड़नेकी कीमती कंघी या ब्रुश दे दिया जाय। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि वस्त्रोंके विनाशका काम बिना किसी तरहके विघ्न बाधाके बराबर चलता रहेगा और भारतके कोने कोनेमें फैल जायगा और जबतक देशका सारा विदेशी वस्त्र न जला दिया जायगा तबतक यह बन्द नहीं होगा।

विनाशकी मीमांसा

(सितम्बर सन् १९२१)

श्रीयुत एण्ड्रयूज साहबने मुझे एक बड़ाही करुणा पैदा करने-वाला पत्र लिखा है। उसे मैं यहां देता हूं। आशा है कि पाठक उसकी कद्र करेंगे।

मैं यह बात जानता हूं कि आप जो विलायती कपड़ा जलाते हैं वह गरीबोंकी मदद पहुंचानेके ख्यालसे जलाते हैं। मगर मैं समझता हूं कि इसमें आपने गलती की है। अगर विलायती कपड़ोंके पूरे या ज्यादातर बहिष्कारमें आपको सफलता मिली तो मुझे यह स्वयंसिद्ध मालूम होता है कि मिलके बने कपड़ों की कीमत बढ़ जायगी और गरीबोंको धक्का पहुंचेगा। लेकिन इसके सिवा, यह 'विदेशी' शब्द जातिविरोधका सूक्ष्म भाव झलका देता है और मैं समझता हूं कि इसको उत्तेजना देनेके बजाय रोकनेकी ही आवश्यकता है। आपके हाथों उस भारी ढेरके जिसमें बढ़िया २ और सुन्दर कपड़े थे जलाये जानेका चित्र देखकर मेरे दिलको गहरा धक्का पहुंचा। ऐसा जान पड़ता है कि जिस विशाल सुन्दर जगतके हम एक अंग हैं उसका ध्यान हम भुला रहे हैं। और स्वार्थवश होकर केवल भारतको अपना लक्ष्य बना रहे हैं। मुझे अन्देशा है कि यह प्रवृत्ति फिर

से हमें उसी पुराने, मतलबी, वाहियात राष्ट्रीयवाद तक खींच ले जायगी। अगर ऐसा हुआ तो हम भी उसी पापपूर्ण घेरेमें पहुंच जायंगे—कूप-मंडूक हो जायेंगे जिसमेंसे निकलनेका प्रयत्न आज योरप इतनी मायूसीके साथ कर रहा है। लेकिन मैं इस पर वादविवाद नहीं कर सकता। फिर भी मैं तो यह कह सकता हूं कि इससे मेरा दिल दहल उठा है और मुझे तो यह प्रायः हिंसाका ही एक रूप नजर आता है। यद्यपि मैं यह जानता हूं, कि हिंसासे आपको कितनी चिढ़ है। विदेशी कपड़ेके प्रश्न-को धर्मके अन्दर घुसेड़नेकी बातको मैं बिलकुल पसन्द नहीं करता।

"जिस समय आप बड़े बड़े नैतिक दोषोंपर जैसे कि शराब-खोरी, नशा-पत्ता, छुआछूत, जातिका घमंड, इत्यादिपर जोर-का वज्रपात कर रहे थे, जिस समय आप वेश्यावृत्तिके घृणित पापको दूर करनेका प्रयत्न, अपने हृदयकी उस अनोखी और सुन्दर कोमलताके साथ कर रहे थे तब उसे देखकर मुझे परम सुख होता था। लेकिन यह विलायती कपड़ोंकी होलीका जलाना और लोगोंसे यह कहना कि विदेशी कपड़ोंको पहनना पाप है, अपने ही साथी पुरुषों और स्त्रियों, दूसरे देशके अपने ही भाइयों और बहिनोंके हाथकी बढ़िया कारीगरीको आगमें जला देना, यह कहकर कि इनको पहनना अपवित्र होता है यह सब मैं नहीं कह सकता, कि मुझे कितना भिन्न, कितना अटपटा मालूम होता है। क्या आप जानते हैं कि अब मैं आपके दिये हुए

खद्दरको पहननेसे प्रायः चौंकता हूं ? मुझे यह ख्याल होता है कि कहीं मैं अपनेको एक "फैरिसी', की तरह यह कहते हुए कि "मैं तुमसे ज्यादह पवित्र हूं " दूसरोंसे श्रेष्ठ न समझने लगूं। इसके पहले मेरे दिलमें कभी ऐसा ख्याल न उठा था।

"यह तो आप जानते ही हैं कि जब जब मेरे दिलमें किसी बातसे चोट पहुंचती है तब तब मैं जरूर आप तक पुकार मचाता हूं। इस बातसे भी मुझे बड़ा दुःख हुआ है।

'माडर्न रिव्यू' के लिये मैंने जो लेख लिखे उन्हें मैंने बड़े उत्साह और हर्षके साथ भेजा है, क्योंकि मुझे यकीन हो गया था कि मैंने आपके निजके जीवनके रहस्यका पता पा लिया है। परन्तु अब मेरा मन आप तक पहुंचकर पुकार मचाता है कि आपका यह काम हिंसापूर्ण, कुछका कुछ और अस्वाभाविकसा हो रहा है। जब आपने अपने भाईको कुछ बेजा काम करते हुए पाया था तब आपका प्रेम उसके प्रति और भी बढ़ गया था। उस तरह मेरे हृदयमें भी इस समय प्रेमका भाव जोरसे उमड़ रहा है। मुझे बताइये कि इसमें आपका क्या हेतु है? 'यंग इण्डिया' में अबतक आपने जो कुछ कहा है उससे मेरा जरा भी समाधान नहीं हुआ।"

यह उनके स्वभावका प्रतिबिम्ब ही है। जब मेरे किसी कामसे उनको व्यथा होती है (और यह ऐसा पहला ही मौका नहीं है) तभी आप मुझपर पत्रोंकी इस तरह भरमार करते हैं, उत्तरका रास्ता तक नहीं देखते। क्योंकि यह तो

हृदयसे हृदयकी और प्रेमसे प्रेमकी बात-चीत है, बहस नहीं, यह एक व्यथित मित्रके हृदयका उभार है और इसका कारण है विदेशी कपड़ोंका जलाया जाना।

जो बात एण्ड्रयूज साहबने प्रेमभरी भाषामें कही है उसीको इससे पहले बहुत लोग जो मुझसे सहमत नहीं हैं, भद्दे, गुस्साभरे और ग्राम्य शब्दोंमें कह चुके हैं। एण्ड्रयूज साहबके शब्द, प्रेम और दुखसे भरे होनेके कारण मेरे दिलमें गहरे पैठ गये हैं और पूरा उत्तर पानेके अधिकारी हैं। परन्तु जिन लोगोंके शब्द क्रोध भरे थे उन्हें वैसे ही अलग रख देना पड़ा, कहीं चलते र उनपर कोई बात कह दी तो भले ही। एण्ड्रयूज साहबके शब्दोंमें हिंसाका भाव नहीं है और वे प्रेमसे सने हुए हैं। इस-लिये वे मुझपर असर कर गये हैं। दूसरे लोगोंके शब्द हिंसा-युक्त और डाह भरे थे। इसलिये कुछ भी असर न डाल सके और यदि मुझे उलटकर वैसे ही जवाब देनेकी आदत होती या मैं उनके योग्य होता तो उनकी बदौलत गुस्साभरा ही जवाब मिलता। एण्ड्रयूज साहबका यह पत्र उस अहिंसाका नमूना है जो स्वराज्यको ठीक प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है।

यह बात तो विषयके बाहर थी। विदेशी कपड़ोंको जलाने-की आवश्यकताके विषयमें तो मेरा मत अब भी वैसा ही पक्का बना हुआ है। इसकी क्रियामें जाति-विरोधपर कहीं भी जोर नहीं है। किसी पवित्रताके पाबन्द रहनेवाले और उत्कृष्ट परि-वारमें अथवा मित्रोंकी मण्डलीमें भी मैं ठीक ऐसा ही करता।

मैं जो कुछ करता हूं या जिसके करनेकी सलाह देता हूं उसे मैं एक अचूक कसौटीपर कसता हूं। वह यह है कि आया यह काम मेरे अजीज और नजदीकी लोगोंके लिये फायदेमन्द होगा? और इस विषयमें मैंने जिस अपने प्रिय सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है वह अचूक और निर्भ्रान्त है। चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, मुझे तो सबके साथ एकसा ही रहना चाहिये। और यही विश्वास इस बातका कारण है जो मुझे अपने ऐसे कितने ही कार्यों पर यकीन होता है, जिनसे अक्सर मेरे मित्र उलझनमें पड़ जाया करते हैं।

मुझे याद है कि मैंने एक दफा एक बड़ी अच्छी दुर्बीनको समुद्रमें फेंक दिया था। क्योंकि उसके सबबसे मेरे एक प्यारे मित्रमें और मुझमें बराबर बहस मुबाहसा हुआ करता था। पहले पहल तो वे भी हिचकिचाये लेकिन फिर उन्होंने समझ लिया कि हां इस कीमती और सुन्दर चीजका नाश कर देना ही अच्छा था, यद्यपि वह एक मित्रके द्वारा नजर की गई थी। तजरूबेसे मालूम होता है कि बड़ेसे बड़ा बढ़िया तोहफा भी, अगर वह हमारी नैतिक उन्नतिमें बाधा डालता है तो जरूर ही नष्ट कर डालना चाहिये, जरा भी हिचकिचानेकी अथवा नुकसानकी पूर्तिका ख्याल करनेकी जरूरत नहीं। अगर घरकी कीमतीसे कीमती पुरानी चीजोंमें प्लेगके जन्तु फैल जायं तो उन्हें स्वाहा कर देना क्या हमारा कर्तव्य नहीं हो जाता है? मुझे याद पड़ता है कि जब मैं नवजवान था, मैंने खुद अपनी धर्म-

पत्नीकी प्रेमभरी चूड़ियां टुकड़े टुकड़े कर डाली थीं क्योंकि उनकी बदौलत हमारे बीचमें भेद-भाव होता जाता था। और अगर मुझे ठीक ठीक याद होता है तो वे चूड़ियां उनकी मांकी दी हुई थीं। मैंने यह काम घृणा या द्वेषके वश होकर नहीं बल्कि प्रेमवश किया। यद्यपि अब अपनी पकी उम्रमें मैं देखता हूं कि वह प्रेम प्रकृत प्रेम था। इस विनाशने हमको सहायता दी और हमारी जुदाई दूर की।

हां, अगर तमाम विदेशी चीजोंपर जोर दिया गया होता तो यह बात जातिका विरोध करनेवाली, सङ्कीर्णता-युक्त और शरारतभरी होती। परन्तु जोर तो सिर्फ तमाम विलायती कपड़ोंपर दिया जाता है। दुनियांकी तमाम भिन्नता दन्धनसे उत्पन्न होती है। मैं यह नहीं चाहता कि अंग्रेजी 'लिवर वाच' या सुन्दर जापानी वार्निश भारतमें न आने पावे। लेकिन मुझे योरपकी उम्दासे उम्दा किस्मकी शराब जरूर नष्ट करनी होगी, फिर चाहे वह कितनेही परिश्रम और कितनीही खबरदारी-के साथ क्यों न बनाई गई हो। शैतानका जाल बड़ी मायाके साथ बिछा रहता है और जहां कार्य्य और अकार्य्यका भाव इतना सूक्ष्म रहता है कि उसका पहचानना कठिन होता है वहां तो वह बहुतही मोहोत्पादक हो जाता है। भेद तो वैसाही दृढ़ और अमिट बना हुआ है। जरासी उसकी सीमाका उल्लंघन हुआ नहीं कि बस निश्चय पूर्वक मौत समझिये।

भारतमें आज जाति-विरोध विद्यमान है। बड़ी ही

कोशिशों के बाद लोगोंके दुर्विकारों—दुर्भावोंकी गतिको रोक रखनी सम्भवनीय हुआ है। आमतौर पर लोगों के दिल बुरे भावों से भरे हुये हैं। इसका कारण यह है कि वे कमज़ोर हैं और अपनी कमज़ोरीको निकालनेका उपाय बिल्कुल नहीं जानते। उनके इस दुर्भावको मैं मनुष्योंपरसे हटा कर बस्तुओं की ओर ले जा रहा हूं।

विदेशी कपड़ेके प्रेम या मोहकीही बदौलत यहां विदेशियों-का आधिपत्य हुआ, मुफलिसी छा गई और इससे भी बुरा और क्या होगा, कि कितने ही घरों की लाज जाती रही! पाठक शायद यह बात न जानते होंगे कि थोड़े ही दिन पहले काठियावाड़ के "अछूत" बुननेवाले जरूरत देख कर बम्बईकी म्युनिसिपेल्टी-में मेहतरों का काम करने लगे। और अब इन लोगोंका जीवन इतना कठिन हो गया है कि बहुतेरे लोग तो अपने बाल-बच्चोंसे हाथ धो बैठते हैं, उनकी नीति नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। कुछ लोग तो इतने बेबस हो गये हैं कि अपनी बेटियों और बीवियों तक की लाज को जाते हुये अपनी आखों से देखते हैं पर कुछ कर नहीं सकते। पाठक जानते होंगे कि गुजरातमें इस श्रेणी की बहुतसी औरतें कोई घरधंधा न होने के कारण आम सड़कोंपर काम करने के लिये लाचार हुई हैं और वहां वे किसी न किसी ढंगके दबावसे अपनी इज्जतको बेचने पर मजबूर होती हैं। पाठक यह तो जानते होंगे कि पंजाब के स्वाभिमानी बुननेवालों को जब कोई पेशा न रहा तो उन्होंने, बहुत वर्षों की बात नहीं है,

तलवार हाथमें ली और अपने अफसरोंके हुकमपर स्वाभिमानी और बेगुनाह अरबोंका संहारा करनेके लिये वे एक हथियार बन गये। और यह उन्हें अपने देशके लिए नहीं बल्कि रोटियोंके लिये करना पड़ा। और अब उन बहके हुए भड़ैतियोंको समझाकर इस खूनी पेशेसे छुड़ाना कठिन मालूम होता है। जो पेशा किसी जमानेमें उनको एक इज्जतका और कारीगरीका मालूम होता था आज वही उन्हें बदनामी करानेवाला दिखाई देता है। जब ढाकाके बुननेवाले जुलाहे विश्वविख्यात सबनम बनाते थे तब तो वे बदनाम नहीं समझे जाते थे।

तो क्या अब यह कोई ताज्जुबकी बात है जो मैं विदेशी कपड़ेको छूना पाप समझूं? क्या उस मनुष्यके लिये जिसका मैदा बहुत कमजोर पड़ गया है 'भारी' भोजन करना पाप नहीं होगा? क्या ऐसे खानेको उसे नष्ट न कर देना चाहिये? अथवा फेंक न देना चाहिये? अगर मेरा लड़का बीमार पड़ा हो और उसे भारी भोजन करना बिल्कुल मना हो परन्तु फिर भी वह उसे खाना चाहे तो मैं जानता हूं कि उस समय मुझे उस अन्नको क्या करना चाहिये। उसकी हवस छुड़ानेके लिये मैं उसे हजम करनेकी ताकत होते हुये भी खुद उसे न खाऊंगा और उस के सामने उसे नष्ट कर दूंगा, जिससे कि उसके खानेका पाप उसे अच्छी तरह जंच जाय।

यदि विदेशी कपड़ेका जलाना ऊंचीसे ऊंची नैतिक दृष्टिसे अकाट्य सिद्धान्त हो तो स्वदेशी कपड़ेकी कीमत बढ़ जानेके

अन्देशेसे हमको घबड़ा न जाना चाहिये। यह अग्निसंस्कार मालकी उत्पत्तिको उत्तेजना देनेका तेजसे तेज उपाय है। बस, एक ही दीर्घ प्रयत्न और द्रुतअग्नि संस्कारके द्वारा हिन्दुस्तानको उसपर जबरदस्ती लादी गई सुस्ती और अकड़ाहटसे चैतन्य करता है। आसाम गजेटियरके रचयिता मि० अलेनने १९०५ में कामरूपके विषयमें लिखा है। "इधर कुछ बरसोंसे लोग विदेशी कपड़ोंको पसन्द करने लगे हैं। यह परिवर्तन ऐसा है जिसका समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि जो समय पहले करघोंपर बिताया जाता था उसमें अब कोई दूसरा उपयोगी काम धन्धा नहीं किया जाता।"

आसामियोंसे मैंने यह बात कही और उन्होंने भी बहुत नुकसान उठानेके बाद इन बातोंकी सत्यताका अनुभव किया। हिन्दुस्तानके लिये विदेशी कपड़ा वैसा ही है जैसा कि शरीरके लिये विजातीय द्रव्य है। हिन्दुस्तानको आरोग्यलाभ करनेके लिये विदेशी कपड़ेको दियासलाई दिखाना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर स्वास्थ्यके लिये विजातीय द्रव्यका नाश करना आवश्यकीय है। एक बार जहां आपने स्वदेशोकी तुरन्त आवश्यकताको मान लिया कि फिर अग्निसंस्कार किये विना छुटकारा नहीं।

और न हमें इसो बातसे डरना चाहिये कि सर्वांगपूर्ण स्वदेशी भावनाका विकाश करते हुए हम कहीं सङ्कीर्णता और दूसरे लोगोंसे अपनेको अलग रखनेकी भावनाकी उन्नति न कर

बैठें। बात यह है कि दूसरोंकी पवित्रताकी रक्षा करनेके पहले हमको स्वयम् अपने शरीरको भोगसे होनेवाले विनाशसे बचाना चाहिये। भारत आज एक बिल्कुल निर्जीव पिण्ड है, जो दूसरोंकी इच्छाके अनुसार चलन-वलन करता है। आत्मशुद्धि, आत्मसंयम और आत्मविरागके द्वारा उसमें प्राणका सञ्चार होने दीजिये और वह स्वयम् अपने लिये तथा सारी मनुष्य जातिके लिये एक वरदान रूप होगा। पर अगर लापरवाहीके साथ उसे भोगलिप्त लड़ाका और लोभी होने दिया और फिर उसका उत्थान हुआ तो वह कुम्भकर्णके सदृश सर्व संहारके लिये होगा और वह अपने तथा मनुष्य जातिके लिये शापरूप हो जायगा।

और जो मनुष्य स्वदेशीमें दृढ़ विश्वास रखता है उसे तो खादी पहनकर इस ख्यालसे सन्तुष्ट न होना चाहिये कि मैं औरोंसे श्रेष्ठ हूं 'फेरिसी' अर्थात् अपनेको श्रेष्ठ बनाये रखनेवाला तो सद्गुणका आश्रयदाता है। स्वदेशीके ख्यालसे जो खादी पहनता है वह तो उस मनुष्यकी तरह है जो अपने फेफड़ोंसे काम लेता है। दूसरे लोग जो इसकी आवश्यकता या उपयोगिताके कायल नहीं हैं वे चाहे इसे बुरे भावसे करें अथवा बिल्कुल इससे दूर रहें पर हमें तो इसे एक स्वाभाविक और नित्य कर्मकी तरह करना है।

विजयकी शर्तें।
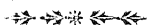
(अगस्त ११, १९२१)

यदि हम लोग ३० सितम्बरके पहले ही विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारकी समस्या हल कर लेना चाहते हैं तो हमें बिना किसी सोच विचारके अपनी रुचिमें परिवर्त्तन लाना होगा, सादगीको अपनाना होगा और अपनी आवश्यकताको अल्पतम करना होगा। प्रत्येक असहयोगीको चाहिये कि वह तीन वस्त्रसे अधिक अपने पास न रखे। हमें बेजवाड़ाके मुलायम और महीन वस्त्रोंके लिये लालायित नहीं होना चाहिये। हमें मोटी खादीसे ही सन्तोष करना चाहिये। पर यह केवल आरम्भ मात्र है। यदि हम लोग व्यवसायिक रीतिसे काम नहीं करेंगे तो हमें सफलता मिलने की सम्भावना नहीं है। अभी तक हम लोग स्कूलों और छात्रोंमें लगे रहे और उन्होंने अपनी योग्यता भर हमारा पूरी तरहसे साथ दिया। बहुतसे असहयोगी छात्र धरना तथा प्रचार आदिके रूपमें बहुत ही उपयोगी काम कर रहे हैं। एक असहयोगी स्कूलमें प्रायः सभी सार्वजनिक काम होते दिखाई देते हैं। पर केवल स्कूलोंके बहिष्कारसे ही स्वराज्य नहीं मिल सकता। हमें जुलाहोंके हृदयपर प्रभाव डालना होगा। हमें उनका संगठन करना आवश्यक है। कामके न रहनेसे जो

जुलाहे अपना अपना पेशा छोड़कर दूसरे पेशोंमें जा बसे हैं उन्हें समझा बुझाकर हमें फिर इस पेशेमें लाना होगा। उनकी सभायें करके हमें उन्हें समझाना होगा कि यद्यपि हाथके कते सूतके धागे विषम (अर्थात् एक तरहके न होकर मोटे और पतले होंगे) तो भी उन्हें धैर्यके साथ इसीका प्रयोग करना चाहिये और विदेशी मिलोंके बने कपड़ेको छूना उन्हें पाप समझना चाहिये। इसी तरह हमें धुनियोंको उत्साहित कर कातने लायक रुई तैयार कराना चाहिये तथा पूनी बनवाना चाहिये। कपड़ेके दूकानदारोंको समझाना चाहिये कि वे विदेशी मालका बेचना छोड़कर स्वदेशी कपड़ेको ही बेचें। हमें ऐसे लोगोंको निरीक्षणके लिये नियुक्त करना चाहिये जो देशी तथा विदेशी हाथके धागे तथा मिलके धागेके बने कपड़ोंको पहचान सकें। जब तक हम लोग पूर्ण विस्तारके साथ अपना संगठन नहीं कर लेते तब तक यह काम संभव भी नहीं है। और इस तरहका संगठन तब तक संभव नहीं जब तक प्रत्येक कांग्रेसका सदस्य अपनी सारी शक्ति स्वदेशीमें ही लगा दे अर्थात् अन्य कार्य क्रमशः त्याग कर दे और केवल मात्र स्वदेशीको ही उठा ले।

आदर्श यह है कि जिस तरह अधिकांश ग्राम अपनी आवश्यकता भरके लिये सभी अन्न उत्पन्न कर लेते हैं उसी तरह प्रत्येक ग्रामको अपनी आवश्यकताभर सूत कात लेना तथा उससे कपड़ा बिन लेना चाहिये। अपनी आवश्यकता भर सभी तरहके अन्न पैदा कर लेनेके बनिस्बत अपनी आवश्यकता-

भर सूत कात लेना तथा उससे कपड़ा बिन लेना कहीं सहज है। प्रत्येक गांव गेहूं, जव या धान नहीं पैदा कर सकता पर यह प्रत्येक गांवके लिये सहज है, कि वह अपनी आवश्यकता भर रुई रख ले और बिना किसी कठिनाईके कातता और कपड़ा बिनता रहे। पर इस शुभ दिनपर पहुंचनेके लिये कुछ कालकी आवश्यकता है। पर जिन प्रान्तोंमें पर्याप्त सगठन हो गया है; जैसे पञ्जाब आदि उन्हें केवल अपने बाजारसे विदेशी कपड़ा निकालकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये बल्कि उन्हें अपना फालतू अंश उन अन्य प्रान्तोंमें भेज देना चाहिये जहां अभी बहुत खादीकी आवश्यकता है। पञ्जाब, बिहार, आन्ध्र तथा अन्य प्रान्त खादीके उत्पादनके लिये सबसे अधिक तैयार प्रतीत हो रहे हैं इसलिये इन प्रान्तोंको खादीके उत्पादनके लिये इस तरह तैयार हो जाना चाहिये जिससे वे लोग खादीकी मांगको पूरी कर सकें।

यदि हम इस महत् कार्यका बोझ अपने सिरपर उठाना चाहते हैं तो हमें व्यर्थ वार्तालापमें समय नहीं खोना चाहिये और यदि हमें वार्तालाप करना है तो उसका रूप व्यवसायिक होना चाहिये। हमें व्यर्थका विरोध और एतराज उठाना छोड़ देना और अपनेको तभी संलग्न करनेकी प्रवृत्ति भी छोड़ देनी चाहिये जब दूसरे उसके लिये तैयार होते दिखाई दें। कांग्रेस अब वकीलोंका विवाद-गृह नहीं होना चाहिये जो वकालत नहीं छोड़ना चाहते बल्कि अब वह उन लोगोंकी संस्था होनी चाहिये

जो पैदा करनेवाले तथा तैयार करनेवाले हैं और जो इन बातोंकी आवश्यकता समझते हैं और उसके अनुसार अपने हृदयके सच्चे भावोंको व्यक्त करते हैं। जो वकील वकालत नहीं छोड़ना चाहते वे चुपचाप सहायता तथा चन्दा आदि देकर इस यज्ञमें भाग ले सकते हैं। जिस अवस्थामें वे रहना चाहते हैं उससे भी मेरी सहानुभूति है पर उन्हें अपनी सीमित मर्यादाका सदा ध्यान रखना चाहिये। उनकी पूछ फिर एक बार होगी जब देश उस स्थितिको पहुंच जायगा कि वह न्यायके लिये तथा न्याय निर्माणके लिये ऐसी सभाओंकी शरण लेगा जिनमें उसकी आवश्यकता होगी। पर आज उसको किसीसे भी आशा नहीं है। किसीमें भी विश्वास नहीं रह गया है क्योंकि वे इतनी गिर गई हैं कि कोई ठिकाना नहीं है। जिस समय राजा और प्रजाका प्रश्न उपस्थित हो जाता है, अदालतें न्यायको ताकपर रख देती हैं। उनकी योग्यता तथा उपयोगिता तभी चरितार्थ हो सकती है जब वे दोनों दलोंके बीच पूर्ण न्यायकी मीमांसा करें न कि केवल प्रजाके बीचमें ही न्याय की ठीक योजना करें। यह न्यायतो उसी प्रकारका हुआ जैसे एक शेर भेड़के मेमनोंको आपसमें एक दूसरेको खाजानेसे बचावे या उनको बीमार होकर मरनेसे बचावे जिससे वह बारी बारीसे सबको खा सके।

महिलाओंकी सेवामें

(अगस्त १७, १९२१)

प्रिय बहनो ! आल-इण्डिया कांग्रेस-कमेटीने लोकमान्य तिलककी स्मृतिमें ३१ जुलाईको बम्बईमें बलिदानके अग्नि-प्रज्वलन (होली) के साथ प्रारम्भ होनेवाले विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारकी अन्तिम ता० ३० सितम्बर निश्चित की है। बड़े भारी ढेरमें, जिसमें कि बहुतसी ऐसी मूल्यवान् साड़ियां तथा अन्य पोशाकें थीं कि जिन्हें आप अभी तक बढ़िया और सुन्दर समझती हैं, मैंने ही अग्नि प्रज्वलित की थी। मेरा खयाल है कि जिन बहनोंने अपने मूल्यवान् वस्त्र प्रदान किये वे बुद्धिमान् थीं और उन्होंने उचित किया। जिस प्रकार प्लेगकी दूषित चीजोंका अत्यन्त आर्थिक और सर्वोत्तम उपयोग उनका ध्वंस होता है, ठीक उसी प्रकार विदेशी वस्त्रोंका अत्यन्त आर्थिक उपयोग भी आपकी कर्त्तव्य शक्तिके विचारसे ध्वंस ही था। यह राजनैतिक क्षेत्र-मेंसे बहुतसे भयावह रोगों (Complaints) के निवारणकी एक जर्राही (Surgical) उपाय था।

आप भारतीय स्त्रियोंने गत बारह मासमें मातृभूमिके लिए अद्भुत कार्य किये हैं। आप देवताओंकी भांति चुपचाप कार्य करती रही हैं। आपने अपनी सम्पत्ति तथा उत्तम आभूषण

प्रदान कर दिये हैं। आप चन्दा संग्रह करनेके लिए घर-घर फिरी हैं। आपमेंसे कई, जो कि विविध रंगोंकी उत्तम पोशाक पहनती थीं और दिनमें कई बार वेष बदलती थीं, अब सफेद निष्कलंक, किन्तु भारी खादीकी, स्त्रीकी प्राकृतिक पवित्रताका स्मरण दिलानेवाली साड़ी व्यवहार करने लगी हैं। आपने यह समस्त कार्य भारत, खिलाफत और पंजाबके लिए किया है। आपके शब्द या कार्यमें किसी प्रकारका छल नहीं है। यह आपका क्रोध या घृणासे रहित निर्मल और बिल्कुल शुद्ध बलिदान है। मुझे आपके प्रति यह स्वीकार करने दीजिए कि समस्त भारतमें आपके निज इच्छानुसार प्रेम-पूर्वक आगे बढ़नेके उत्साहने मुझे विश्वास दिला दिया है कि परमेश्वर हमारे साथ है। हमारे आन्दोलनके आत्मशुद्धिका आन्दोलन होनेमें इसके अतिरिक्त और किसी प्रमाणकी आवश्कता ही नहीं कि भारतकी लाखों-स्त्रियां इस कार्यको करके क्रियात्मक-रूपसे इसका साथ दे रही हैं।

यद्यपि आपने सहायता अधिक की है, किन्तु उससे अधिककी आवश्यकता है। यद्यपि तिलक-स्वराज्य-फण्डके चन्देमें पुरुषोंने प्रधान भाग लिया है, किन्तु स्वदेशी कार्य-क्रमकी पूर्ति केवल तब ही सम्भव है जब आप अत्याधिक भाग लें। बहिष्कार असम्भव है, यदि आप विदेशी वस्त्र न त्यागेंगी। जब तक रुचि मौजूद रहती है, तबतक पूर्ण त्याग नहीं हो सकता। जिस प्रकार हम कृतज्ञता-पूर्वक उन बच्चोंसे ही, जिन्हें ईश्वर

प्रदान करता है—फिर वे चाहे कैसे ही क्यों न हों—सन्तुष्ट रहते हैं उसी प्रकार हमें उसी कपड़ेसे सन्तुष्ट रहनेके लिए तत्पर रहना चाहिए जिसे भारत पैदा कर सकता है। मैं ऐसी किसी माताको नहीं जानता जो अपने बच्चेको, इस खयालसे कि वह बाहरी आदमीको कुरूप दीखता है, फेंक दे। अतएव देशभक्त स्त्रियोंको हस्त-कौशल सम्बन्धमें इसी प्रकारकी होनी चाहिए। आपको यह जान लेना चाहिए कि हाथसे कातना और हाथसे बुनना ही हस्त-कौशल हो सकता है। अवस्थान्तरमें आप केवल खुर्दरी खादी ही बहुतायतसे प्राप्त कर सकती हैं। अतः आपको आवश्यक है कि वे सब खूबियां जिनको आपका हृदय चाहता हो या जो आवश्यक हों, आप इसमें सम्मिलित करें। यदि आप कुछ मास तक खुर्दरी खादीसे संतुष्ट रहेंगी तो भारतकी प्राचीन, उत्तम, मूल्यवान तथा रंगीन पोशाकोंको जिनके लिए एक समय संसारको हसद और निराशा होती थी, फिरसे देखनेसे निराशा जाती रहेगी। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि छः मासके मन मारनेका फल आपको बतायेगा कि आज जिसे हम कारीगरी कहते हैं वह भ्रममात्र है और सच्ची कारीगरीका चिह्न केवल आकार ही नहीं, किन्तु और भी कुछ होता है जो कि फिर मालूम हो जायगा। पश्चिमसे आनेवाले, बारीक वस्त्र (Fine Fabric) ने हमारे लाखों भाई और बहनोंका बिलकुल नाश कर दिया है और हमारी सहस्रों प्रिय भगिनियोंका जीवन लज्जित बना दिया है। सच्ची कारीगरी उसके निर्माताकी प्रसन्नता, सन्तोष और

शुद्धताका प्रमाण होनी चाहिए। यदि आप अपनी यह कारीगरी पुनः जीवित करना चाहें तो आपके लिए वर्तमान समयमें, खादी का व्यवहार सर्वोत्तम एवं आवश्यक है।

स्वदेशीके कार्यक्रमकी सफलताके लिए केवल खादीका व्यवहार ही आवश्यक नहीं है, किन्तु यह भी आवश्यक है कि आपमें से प्रत्येक अपनी फुर्सतके समय चर्खा कातें। मैंने बच्चों और पुरुषोंको भी सूचित किया है कि उन्हें भी चर्खा कातना चाहिये। और मैं जानता हूं कि उनमेंसे हजारों लोग रोज कातते हैं। किंतु कातनेका मुख्य भार पहलेकी भांति आपके कंधोंपर रहना आवश्यक है। दो हजार वर्ष पूर्व भारतीय स्त्रियां केवल घरकी मांगके लिए ही नहीं, किन्तु अन्य देशोंके लिए भी कातती थीं। वे केवल खुद्दी ही नहीं, किन्तु अत्युत्तम श्रेणीका सूत कातती थीं, जैसा संसारमें कदाचित् ही कभी किसीने काता हो। अभी तक मशीन द्वारा काता हुआ सूत हमारे पूर्वजों द्वारा काते हुए सूत तक नहीं पहुंचा है। यदि हमें दो मास और उसके बाद खादीकी मांगका सामना करना है, तो आपको स्पिनिंग क्लब बनाना, कताईकी वृद्धि करना और भारतके बाजारोंको हाथके कते हुए सूतसे पाट देना आवश्यक है। इसके लिए आपमेंसे कुछको कातने, धुनने और चर्खोंकी दुरुस्ती करनेमें सिद्ध-हस्त होना चाहिए। इसीका अर्थ है—लगातार श्रम। आप निर्वाहके लिए नहीं कातेंगी। मध्यम श्रेणीके लिए यह कुटुम्बकी आयमें वृद्धिके रूपमें होना चाहिए। और बहुत गरीब स्त्रीके लिए

निस्संदेह यह निर्वाहका एक उपाय है। चर्खा पहलेकी भांति विधवाओंका प्यारा साथी होना चाहिए। परन्तु आपका जो कि इस अपीलको पढ़ेंगी, चर्खा कातना कर्तव्य है, धर्म है। यदि भारतका शुभ चाहने वाली समस्त स्त्रियां कुछ निश्चित तादाद में रोज सूत कातेंगी तो बहुत शीघ्र ही इच्छित सफलता प्राप्त करा देंगी।

इस प्रकार भारतकी आर्थिक और नैतिक मुक्ति आपसेही है। भारतका भविष्य आप ही पर निर्भर है, क्योंकि भविष्य संतान आपके ही हाथोंमें है। आप भारतके बच्चोंको साधारणतः परमेश्वरका भय रखनेवाले तथा वीर बना सकती हैं और आप ही उन्हें कायर, निकम्मा और गंवार बना सकती हैं। आप ही उन्हें विदेशी शृंगारोंके व्यसनका जन्म भरके लिए शिकार बना सकती हैं। आगामी कुछ सप्ताहोंमें विदित हो जायगा कि भारतकी स्त्रियोंने क्या किया है? मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि आप जो कुछ करेंगी भारतके भलेके लिए ही करेंगी। भारतका भाग्य गवर्नमैण्टकी अपेक्षा, जिसने भारतकी शक्तिका दुर्व्यवहार करके उसके आत्म-विश्वासकी शक्तिको खो दिया है, आपके हाथमें कहीं अधिक सुरक्षित है। स्त्रियोंकी प्रत्येक सभामें मैंने राष्ट्रीय प्रयत्नोंकी सफलताके लिए आपके आशीर्वाद मांगे हैं और यह इसी विश्वासपर कि आप शुद्ध, सरल, पवित्र और आशीर्वाद देनेके योग्य हैं। आप अपने विदेशी वस्त्र त्याग कर और अपने अवकाशके समय राष्ट्रके लिए नियमित रूपसे चर्खा

कात कर अपने आशीर्वादके फलाफलका विश्वास जतला सकती हैं।

—:o:—

गरीबोंका सहारा
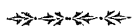
(सितम्बर २६, १६२१)

महात्माजीने जनताके नाम निम्न लिखित अपील निकाली है:–

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने विदेशी वस्त्रोंके पूर्ण बहिष्कारके लिये जो अवधि नियत की थी उसका अन्तिम दिन निकट चला आ रहा है। उस दिनके भीतर ही हमें बहिष्कार-को पूरा कर देना चाहिये। यदि कांग्रेसका प्रत्येक सदस्य—चाहे वह नर हो या नारी—इसके लिये दत्तचित्त होकर काम करनेमें लग जाय तो यह काम अभी असम्भव या अति कठिन नहीं है। यदि सब लोग इस बातको भली प्रकारसे समझ लें कि बिना स्वदेशीके विदेशी वस्त्रोंका पूर्ण बहिष्कार नहीं हो सकता और जबतक हाथसे सूत कातकर करघोंमें कपड़े न बिने जायँ तबतक स्वदेशीकी समस्या पूर्णतः हल नहीं हो सकती और बगैर इतना किये स्वराज्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती तथा बिना स्वराज्यकी प्राप्तिके खिलाफत और पञ्जाबके प्रति किये गये अन्यायों और अत्याचारोंका प्रति-शोध नहीं हो सकता तो हम लोग जिस बहिष्कारकी योजना कर रहे हैं और जिस स्वदेशीके प्रचारकी व्यवस्था कर रहे हैं वह सहजमें ही हो सकता है।

मैं यह जानता हूं कि बहुतसे ऐसे हैं जिन्हें विदेशी कपड़ोंका तुरन्त बहिष्कार करके देशीका प्रयोग करना अति कठिन काम है। करोड़ों आदमी इतने गरीब हैं कि वे अपने तनपरके विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करके उनके स्थानपर देशीका प्रयोग तुरन्त करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। उनके लिये मेरी वही सलाह, जो मैंने किसी समय मद्रासके समुद्रके किनारेपर दी थी। उन्हें कमर ढांक कर ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। भारतवर्षकी जलवायु ऐसी ही है कि वर्षके अधिकांश मासमें हमें तन ढकनेके लिये किसी तरहके कपड़ेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कपड़ेमें किसी तरहके बनावट या दिखावटकी आवश्यकता नहीं, भारतीय सभ्यता कभी भी नहीं चाहती कि पुरुषको भी अपना शरीर हर तरफसे ढांक कर रखना चाहिये।

जो सलाह मैं दे रहा हूं अपनी जिम्मेदारीको भली भाँति समझ कर दे रहा हूं। इसलिये उदाहरण उपस्थित करनेके लिये मैं आजसे अपनी टोपी और कुर्तेका परित्याग करता हूं तथा केवल कमर ढांकने भरके लिये वस्त्र पहनना तथा आवश्यकता पड़नेपर शरीर ढकनेके लिये चादरको ग्रहण करता हूं। मैं इस व्यवस्थाको कई कारणोंसे अंगीकार करता हूं। पहले तो मैं किसीको भी ऐसा काम करनेकी सलाह नहीं देता जिसे स्वयम् मैं न कर सकूँ और दूसरे इससे उन गरीबोंका मार्ग सुगम हो जाता है जो साधन न रहनेके कारण विदेशी वस्त्रोंको पूरी तरह से त्याग नहीं सकते। इससे हम लोगोंकी उदासीका भी भाव-

गम्य होगा क्योंकि प्रत्येक देशमें उदासीके यही वर्त्तमान लक्षण देखे जाते हैं कि लोग नंगे पाँव तथा नंगे सिर रहते हैं। हम लोग मातम मना रहे हैं, शोकावस्थामें हैं, यह बात हमें और भी स्पष्ट होती जा रही है ज्यों ज्यों साल समाप्त होने पर आ रहा है और हम देखते हैं कि हमें स्वराज्य नहीं मिला बल्कि हम स्वराज्यसे कहीं दूर पड़े हैं। मैं यह स्पष्टतया कह देना चाहता हूं कि हमारे अन्य काम करनेवाले साथी अपनी टोपी तथा कुरताका त्याग तबतक न करें जबतक अपने दायरेके अन्तर्गत कोई कामको चरितार्थ करनेके लिये वे ऐसा करना आवश्यक नहीं समझते।

मैं यह भी निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि यदि काम करनेवाले तैयार हो जायँगे तो प्रत्येक जिलाकी आवश्यकता भर माल एक महीनेके अन्दर तैयार हो सकता है। उस एक मासकी अवधि तकके लिये मेरी सलाह है कि हम खादीके अतिरिक्त और सब कामको छोड़ दें। शराबकी दूकानपर जो पहरा दे रहे हैं उन्हें भी मैं पहरा उठाकर यही काम करनेको सलाह दूँगा और आशा करूँगा कि शराबी और पियक्कड़ इस नये ढंगको स्वीकार करेंगे। मैं प्रत्येक असहयोगीसे कहूंगा कि वह जेलखानेकी अपने जीवनकी साधारण दैनिक घटना समझे और उसकी जरा भी परवा न करे। यदि हम लोग अक्टूबर भर चुपचाप केवल एक काम करते रह गये अर्थात् चरखे-करघेका प्रचार तथा विदेशी वस्त्रोंको बटोर बटोर कर

जलाना तो इस एक मासमें ही हम इतनी योग्यता और शक्ति उत्पन्न कर लेंगे कि यदि इसके बाद आवश्यकता पड़े तो हम सहजमें ही असहयोग कर लेंगे। मुझे इस बातका दृढ़ विश्वास है कि यदि हमने पूर्ण आत्मबल दिखलाया, संगठनकी पूर्ण योग्यता प्रगट की, आत्म-संयमकी पूर्ण दृढ़ता दिखलाई—क्योंकि विना इनके स्वदेशीका काम पूरा नहीं हो सकता—तो इतनेमें ही हमारे स्वराज्यका मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

---

३० वीं सितम्बर

(अक्टूबर ६, १९२१)

पूर्ण वाद-विवादके बाद अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी में विदेशी वस्त्रोंके पूर्ण बहिष्कारके लिये ३० सितम्बरको अन्तिम तिथि नियत थी। बहस इस बातपर थी कि इसके लिये ३० सितम्बर रखी जाय या ३० अक्टूबर। जो लोग ३० सितम्बरके पक्षमें थे उनका कथन था कि यदि हम ३० अक्टूबर तक बहिष्कारका प्रश्न हल कर सकते हैं तो हम उसे ३० सितम्बर तक भी हल कर सकते हैं। यह निःसंकोच स्वीकार करना चाहिये कि जो प्रस्ताव हम लोगोंने स्वीकार किया था उसे पूरा करनेमें हम लोग सफल नहीं हो सके। हाँ, यह हम स्वीकार कर सकते हैं कि काम बहुत हुआ है। खादीका प्रयोग अधिकाधिक

होने लगा है और उसका सौन्दर्य भी बढ़ गया है। कितने स्थानोंमें उसमें बहुत कुछ सुधार हो गया है। बहुतसे चरखे काम कर रहे हैं। करघोंकी संख्या भी बढ़ गई है। जो उन्नति इस समय तक हुई है उसे सन्तोषजनक अवश्य कह सकते हैं। पर यह ख्याल कर कि हम लोग इस संग्राममें प्रवृत्त हैं यह सफलता सन्तोष जनक नहीं कही जा सकती।

इस आन्दोलनकी सफलता प्रयोग करनेवालों पर निर्भर है। माल मँगानेवालोंने कुछ सहायता अवश्य की है पर प्रयोग करने वालोंने केवल आंशिक बहिष्कारसे सन्तोष कर लिया है। प्रायः सब लोगोंने विदेशी टोपियोंका बहिष्कार कर दिया है पर धोतियोंका बहिष्कार तो बहुत ही कम लोगोंने किया है। प्रयोग करनेवालोंने माल मँगानेवालोंकी सहायता ठीक तरहसे नहीं की है। सूत कातनेका काम कुछ गरीबोंने ही उठाया है। प्रयोग करनेवालोंने पूर्ण परिवर्त्तनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत की। उसने उस जीवनकी पूर्ण कल्पना नहीं की जो स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर धारण करना होगा। धोखेबाजीकी चालसे हमें सफलता नहीं मिल सकती। हमारी सफलताके लिये पूर्ण परिवर्त्तनकी आवश्यकता है।

इसके साथही बंगाल तथा मद्रासमें भ्रमण करते समय मैंने यह भी देखा कि लोगोंकी रुचि तथा प्रवृत्ति इस ओर है। कितने लोग आशान्वित थे वे यही कहते थे, कि थोड़ा और समय लगाकर हम लोग पूरा संगठन कर लेंगे और बिना किसी कठिनाईके

खादी तैयार करने लगेंगे। स्वदेशीके विषयमें औरतें अधिक कठिनाईका कारण हो गयी हैं। पुरुषोंकी भाँति वे परिवर्त्तनको इतने सहजमें स्वीकार कर लेनेके लिये तैयार नहीं हैं। पर इन कठिनाइयोंका पार करना ही हमें साहस, आशा, दृढ़ता और साथ ही साथ भारतकी वास्तविक दशाका ज्ञान देगा। स्वदेशीके माने हैं भारतके व्यवसायका पूर्ण जीर्णोद्धार तथा भारतकी दरिद्रताका विनाश। जिस समय राज्यकी सहायता बिना हम लोग अपने वस्त्रकी आवश्यकता पूरी कर लेगें और इस प्रश्नको हल कर लेंगे, जिसे हम लोग हल होने लायक नहीं समझते थे उसी दिन हम अपना प्रबन्ध आप कर लेनेके योग्य हो जायँगे।

आज सर विलियम विन्सेंट (होम सदस्य) हमें अपनी मद्दु-अरकी सुरपर नचा रहे हैं। वे अपने मनसे ही जनताके प्रतिनिधि बन बैठे हैं और लोगोंको यह बात समझाते फिरते हैं कि भारतके अल्प मतवालोंके स्वार्थोंकी रक्षाका प्रयत्न, एकमात्र ब्रिटिश सरकार द्वारा ही साध्य है। वे हर तरहसे यह बात साबित करनेमें लगे हैं कि आज तक भारतमें इतने भी वीर नहीं निकल सके जो विदेशियोंके आक्रमणसे सीमा प्रान्तकी ही रक्षा कर सकते।

पर जिस दिन हम लोग अपनी सबसे प्रधान आवश्यकताकी पूर्त्ति ब्रिटेनकी सहायता बिना ही करने लग जायँगे, उस दिन हम सबके योग्य हो जायँगे और जब इस बातका पता सर विलि-

यम विन्सेण्टको लग जायगा कि हम अब अपनी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिये सरकारका मुँह नहीं जोहते तो वे भी अपना पुराना राग छोड़ देंगे और नया राग अलापने लगेंगे।

खिलाफतकी समस्याका हल होना एक मात्र स्वदेशीपर निर्भर है। स्वदेशीको हमें कामधेनु समझना चाहिये। जिस समय हम स्वदेशीकी समस्या हल कर लेंगे, हम खिलाफतकी रक्षा बड़ी ही आसानीसे कर लेंगे। उस समय हमें आत्म-रक्षा की योग्यता आजायगी। हम सीमान्त प्रदेशोंको बाहरी आक्रमणसे बचा सकेंगे और अपना प्रबन्ध भी आप कर सकेंगे।

यदि ३० करोड़ भारतवासी आज दृढ़ मत हो जायँ, यदि एक करोड़ कांग्रेसके सदस्य ही आज जी जानसे लपट जायँ तो आगामी महासभामें स्वदेशीके प्रचार और विदेशीके बहिष्कार की समस्या हल हो सकती है। इसके लिये तीन बातें आवश्यक हैं। पहले हमें हर तरहके विदेशी वस्त्रोंका परित्याग करना चाहिये, दूसरे कमसे कम वस्त्रसे ही अपनी आवश्यकता पूरी करनी चाहिये और इस कमसे कम आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिये हम जितनी खादी आवश्यक समझें उसके लिये अपने हाथसे सूत कात कर तैयार करें और गाँवके जुलाहोंसे कपड़े बिनवालें।

९—हिन्दू मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम मेल

(मई ११, १९२०)

एकतामें असीम बल है। इस कहावतको चरितार्थ करने के लिये अनेक तरहकी किस्से तथा कहानियाँ पुस्तकोंमें लिखी मिलती हैं। पर हिन्दू मुस्लिम एकाने इसे प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा चरितार्थ कर दिया। यदि हम लोग अलग अलग रहना चाहते हैं तो हमारा पतन अवश्यम्भावी है। जबतक भारतके हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार बैठे रहेंगे तब तक कोई भी विदेशी शक्ति उन्हें अपना दास बनाकर अपने आधीन कर सकती है। हिन्दू मुसलमान मेलका यह अभिप्राय नहीं है कि केवल भारतीय हिन्दू तथा मुसलमानोंमें परस्पर मेल हो जाय बल्कि भारतकी उन समग्र जातियोंमें परस्पर भ्रातृ-भावकी स्थापना हो जाय जो भारतको अपना घर समझती हैं और अनन्त कालसे उसमें रहती आ रही हैं। इस एकताकी स्थापनाके लिये धार्मिक भेद भावका विचार कोई विघ्न बाधा नहीं पहुंचा सकता।

इस बातको मैं अच्छी तरह समझता हूं कि इस तरहके मेल की नींवको हम लोगोंने इतना दृढ़ नहीं कर दिया है कि वह हर तरहके भारको बर्दाश्त कर सके। मेलका यह पौधा अभी उगा

है। इसकी डालियाँ अभी बहुत ही नर्म तथा मुलायम हैं। इसकी देख-रेखकी अभी नितान्त आवश्यकता है। जिस समय नेलोरमें इसका स्थूल प्रमाण मेरे सामने उपस्थित हुआ उस समय मुझे यह बात सूझी। मैंने उस समय देखा कि हिन्दू और मुसलमानोंका परस्पर सम्बन्ध सन्तोषजनक नहीं है। अभी दो वर्ष भी नहीं बीते हैं कि एक साधारणसी बातपर दोनों लड़ पड़े थे। कुछ हिन्दू बाजा बजाते हुए जा रहे थे। मार्गमें मसजिद पड़ गई। उन्होंने बाजा बजाना बन्द नहीं किया। यह मुसलमानोंको असह्य था। बस, इसीको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हम लोगोंको उचित है कि इस तरहकी साधारण साधारण बातोंको विकट धार्मिक प्रश्नोंमें न मिला लें। इसलिये यह आवश्यक नहीं है, कि हिन्दू सदा बाजा बजाते ही चलें। इसके लिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुरानी नजीरोंसे प्रगट हो जायगा कि इस तरह यहाँ सदासे बाजे बजते चले आये हैं। मसजिदके समीपसे जाते हुए वे बाजा बजाना बन्द कर दे सकते हैं। मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासके अनुसार मसजिदके चारों तरफ हर समय पूरी शान्ति रहनी चाहिये। इस शान्तिके लिये सबको प्रयास करना चाहिये। जो बात हिन्दूके लिये आवश्यक नहीं है वही एक मुसलमानके लिये आवश्यक हो सकती है और जो बातें हिन्दू धर्मके अनुसार आवश्यक नहीं हैं उनका त्याग कर देना--यदि ऐसा करनेकी प्रेरणा मुसलमानोंकी ओरसे हो—प्रत्येक हिन्दूका धर्म है। जरा जरासी

बातपर लड़ मरना अव्वल नम्बरकी बेवकूफीमें शामिल है। जिस मेल और एकताकी हम लोग आकांक्षा करते हैं वह तभी प्राप्त हो सकती है जब हम लोग एक दूसरेके प्रति उदारता तथा सद्भाव रखनेकी चेष्टा करेंगे। गो माता हिन्दुओंको प्राणोंसे भी प्यारी है। इसलिये मुसलमानोंको उचित है कि वे इस विषयमें हिन्दू भाइयोंकी मर्यादा रखें। प्रार्थनाके समय मुसलमानोंके लिये अटल शान्तिकी आवश्यकता है इसलिये हिन्दुओंको उचित है कि वे मुसलमानोंके इस भावकी रक्षा करें। यही पूर्णताकी कसौटी है। पर हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें बदमाशोंकी कमी नहीं है जो साधारणसी बातोंके लिये भी झगड़ जानेको तैयार रहेंगे। इस तरहके झगड़ोंके निपटाराके लिये हमें ऐसी पञ्चायतें बैठा देना चाहिये जिनमें इस तरहके झगड़ोंपर विचार हो और उनके निर्णयको सर्वमान्य समझा जाय। इन पञ्चायतोंकी मर्यादाको स्वीकार करानेके लिये जनताका ध्यान उनकी तरफ आकृष्ट करना चाहिये जिससे उनकी उपयोगितापर किसी तरहका विवाद न उठ खड़ा हो।

मैं यह भी जानता हूं कि अभी तक एक दूसरेका परस्पर विश्वास नहीं जम सका है। कितने हिन्दू हैं जो मुसलमानोंकी नियतपर सन्देह प्रगट करते हैं। उनका कहना है कि स्वराज्य में मुसलमानोंकी प्रधानता हो जायगी, मुसलमानोंका राज्य कायम हो जायगा। उनकी धारणा है कि ब्रिटिशका प्रभाव भारतसे उठ जाते ही यहाँके मुसलमान अन्य विदेशी मुस-

लमान राज्योंकी सहायतासे भारतमें पुनः एक बार मुसल-
मानी राज्य स्थापित कर लेंगे। उधर मुसलमानोंके दिलमें
यह चोर पैठा है कि हिन्दुओंकी संख्या हमसे कहीं अधिक
है और इसका परिणाम यह होगा कि वे लोग हमें कुचल
डालेंगे। इस तरहके भावोंने दोनोंके हृदयोंको दुर्बल बना
डाला है। यदि और कुछ नहीं तो एक साथ रहनेकी
अभिलाषा ही उन्हें शान्त और परस्पर विश्वास युक्त रहने
देनेके लिये प्रेरित करती। दोनों धर्मोंमें ऐसी कोई बात
नहीं है जिससे दोनों अलग अलग होकर रहें। वह जमाना
बीत गया जब किसी पर बलात्कार करके उसे जबर्दस्ती मुसल-
मान बना लिया जाता था। गौका प्रश्न अलग कर दीजिये ;
मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंके वैमनस्यका कोई कारण नहीं रह
जाता। मुसलमान धर्मके अनुसार गोबध आवश्यक नहीं है।
मुख्य बात यह है कि आज तक हम लोगोंने इस बातकी कभी
चेष्टा ही नहीं की, कि हम लोग आपसमें मिलकर समझौता करलें
और इस तरह परस्पर भेदभावको मिटाकर मेलसे रहना सीखें।
और एक ही मातृ भूमिके पुत्र बनकर प्रेम तथा सद्भावसे रहें।
इस समय हम दोनोंके हाथमें एक अपूर्व सुअवसर आ उपस्थित
हुआ है। खिलाफतका प्रश्न फिर नहीं उपस्थित होगा। यदि
हमारे हिन्दू भाई मुसलमानोंका सद्भाव प्राप्त करना चाहते हैं तो
उनके लिये यह सबसे उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। उन्हें उचित
है कि इस्लामके लिये मुसलमानोंके साथ वे कट मरें।

हिन्दू मुस्लिम मेल

(अक्तूबर ६, १९२०)

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि असहयोगकी सफलता शान्ति तथा अहिंसापर जितनी निर्भर करती है, हिन्दू मुस्लिम एकतापर भी उतनी ही निर्भर करती है। इस संग्रामको चलानेके लिये दोनोंपर भीषण बोझ लादा जायगा और यदि इस भारतको दोनोंने सम्हाल लिया तो विजय उसके सामने नाचती फिरेगी।

इसकी पहली परीक्षा आगरेमें हुई। (जिस समय गोवध-का प्रश्न लेकर दंगा हो गया था)अपनी अपनी रक्षा तथा न्याय-के लिये जब दोनों दल अधिकारियोंके पास गये, उन्होंने उनका उपहास करके कहा कि शौकत अलीके पास जाओ, गांधीको खोजो। भाग्यवश उस समयके लिये उपयुक्त आदमी मिल गया। हकीम अजमलखां कट्टर मुसलमान हैं, साथही हिन्दुओं-का भी उनपर अटल विश्वास रहता है। अपने साथियोंके साथ वे फौरन आगरा पहुंचे, समझौता करा दिया। इस समय दोनों दल पूर्ववत् मित्र बन गये हैं। इसी तरहकी दूसरी दुर्घटना दिल्लीके पास हुई। वहां भी हकीमजीके प्रभावने शान्ति स्थापित की। यदि हकीमजी वहां ठीक समयपर न पहुंच गये होते तो अनर्थ मच गया होता।

अब अकेले हकीमजीके लिये कब सम्भव है कि शांतिका झण्डा लिये सब जगह इस तरहके झगड़ोंको मिटानेके लिये ठीक समय-पर पहुंच सकें। और न मैं ही सब जगह पहुंच सकता हूं, न मौलाना शौकत अली ही पहुंच सकते हैं। पर तोभी विच्छेद करानेके लिये जितने भी प्रयत्न किये जायं सबको विफलकर दोनों दलोंमें पूर्ण एकताकी स्थापना होनी चाहिये।

आगरेमें अधिकारियोंसे सहायताके लिये प्रार्थना क्यों की गई। यदि हमलोग असहयोग आन्दोलनको थोड़ा भी सफल बनाना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता इस बातकी है कि परस्पर कलहके निपटारेके लिये हमें सरकारकी सहायताका ध्यान छोड़ देना चाहिये। यदि हम लोग अपने परस्पर झगड़ेके निपटारेके लिये ब्रिटिश सरकारकी सहायताकी अपेक्षा करते हैं, या किसी अभियुक्तको दण्ड देनेके लिये उसके पास जानेकी आवश्यकता समझते हैं तो हमारे असहयोग आन्दोलनका सारा कार्य-क्रम व्यर्थ और निष्फल समझिये। प्रत्येक गांव या नगरमें कमसे कम एक हिन्दू और एक मुसलमान तो ऐसा अवश्य ही होना चाहिये जो दोनों दलोंको लड़नेसे रोक सके और यदि वे लड़ भी जायं तो उनका निपटारा कर सके। कभी कभी तो सगे भाई ही लड़ पड़ते हैं। प्रारम्भिक अवस्थामें कहीं कहीं इस तरहका प्रयत्न कर सकते हैं। हमें खेदके साथ लिखना पड़ता है कि हम लोगोंने—जिन्हें सार्वजनिक काम करनेका अभिमान है—जनताकी मानसिक स्थिति समझने तथा उनपर अपना प्रभाव

डालनेका बहुतही कम प्रयास किया है। उनमेंसे जो बदमिजाज या झगड़ालू हैं उनका तो हम लोगोंने ख्यालही नहीं किया है। जब तक हम लोग जन साधारणपर अपना पूरा प्रभाव नहीं डाल लेते और जबतक हम लोग उद्दण्डोंको अपने वशमें नहीं कर लेते, तबतक इस तरहकी बदमिजाजीकी घटनायें कभी कभी अवश्य हुआ करेंगी। पर ऐसी शोक जनक घटनाओंके उपस्थित हो जाने पर हमें सरकारका मुंह ताकना छोड़ देना चाहिये। हम लोगोंको इस समय क्या करना चाहिये यह हकीमजीने दो स्थलोंपर प्रत्यक्ष करके दिखला दिया है।

जिस एकताके लिये हम लोग चेष्टा कर रहे हैं वह एकता बनावटी एकता नहीं होनी चाहिये। बल्कि हिन्दू और मुसलमानोंका दिल बिलकुल एकमें मिल जाना चाहिये। उन्हें यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनी चाहिये कि जबतक हिन्दू और मुसलमान एक ग्रन्थिमें सदाके लिये बंध नहीं जाते, एक रस्सीमें बट नहीं जाते, तबतक जिस स्वराज्यका सुख स्वप्न देखा जा रहा है वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। केवल सन्धि या मेलसे यह काम नहीं सिद्ध हो सकता। पर जबतक दोनों एक दूसरेसे लड़ते रहेंगे, यह सम्भव नहीं है। यह मेल दो बराबरी हैसियतवालोंका मेल होना चाहिये जिसमें दोनों बराबरी हैसियतसे मिलते हैं और एक दूसरेके धार्मिक भावोंकी मर्यादा स्वीकार करते हैं और उसका समुचित आदर करते हैं।

यदि कुरान धर्ममें कोई ऐसी बात होती जिसके कारण मुस-

लमान लोग हिन्दुओंको अपना सहज बैरी समझते या हिन्दुओंके धर्म शास्त्रोंमें कोई ऐसी बात होती जिसके कारण हिन्दू लोग मुसलमानोंको अपना जानी दुश्मन मानते तो मैं इस तरहके मेल-को सर्वथा असम्भव समझता और इस ओरसे सर्वथा निराश हो जाता ।

यदि हम लोगोंकी यही धारणा है कि हम लोग अतीत कालमें आपसमें लड़ते आये हैं, एक दूसरेके लिये शत्रु ही बने रहे हैं, अवसर मिलनेपर एक दूसरेका गला काटनेके लिये सदा तैयार रहे हैं इसलिये भविष्यमें भी यदि ब्रिटन हम लोगोंको अपनी शक्ति-शालिनी बाहुओं द्वारा फासिलेपर रखनेका यत्न न करता रहेगा तो हम फिर भी आपसमें कट मरेंगे, तो हमें यही कहना पड़ेगा कि हम लोगोंने अपने इतिहासका मनन ठीक तरहसे नहीं किया है। हिन्दू धर्मशास्त्र तथा इस्लाम धर्मका हमने जहां तक मनन किया है, उससे हम इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि हिन्दू धर्म शास्त्रमें ऐसी कोई बातें नहीं हैं जिनके आधारपर हम इस तरहकी धारणा कर लें। यह बात सब कोई स्वीकार कर सकते हैं कि स्वार्थी पुरोहितों या धर्माध्यक्षोंने समय समयपर हमें उभार कर एक दूसरेसे लड़नेके लिये विवश किया है। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि ईसाई राजाओंकी तरह मुसल-मान बादशाहोंने भी इस्लाम धर्मके प्रचारके लिये तलवारकी सहायता ली थी अर्थात् उन्होंने बलपूर्वक मुसलमान बनानेका यत्न किया था। पर अब वह समय नहीं रहा। यद्यपि वर्तमान

युगके सिरपर अनेक तरहकी बुराइयोंका काला टीका लगा है तो भी वह इस समय धर्म-प्रचारमें इस तरहका बलात्कार स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है जैसे वह बलात्कार दासताको देखना नहीं चाहता। वर्तमान युगके परिवर्तनका यह सबसे जबर्दस्त और सजीव विकास है। इस विकासवादके फेरमें पड़कर ईसाई तथा इस्लाम धर्मकी अनेक भ्रमात्मक बातें दूर हो गईं। इस युगमें एक भी ऐसा मुसलमान नहीं दिखाई देता जो धर्म प्रचारके हेतु किसी तरहकी ज्यादती या बलात्कारका समर्थन करता दिखाई देता हो। इस समय जिन बातोंका प्रभाव मनुष्य हृदयपर पड़ सकता है उसके मुकाबिले तलवारका प्रभाव कुछ भी नहीं है।

यद्यपि पश्चिमी जातियां रक्त-पात, धोखेबाजी, दगाबाजी आदि-के प्रयोगमें अबभी प्रवीण हैं और उसका धड़ाधड़ प्रयोग करती हैं तो भी समस्त मानव समाज धीरे धीरे उन्नतिके पथपर आगे बढ़ता जा रहा है। भारत यदि आज हिन्दू मुस्लिम एकताका प्रश्न हल करके अहिंसात्मक असहयोग द्वारा आत्मत्यागके सहारे अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कर लेता है तो वह संसारको एक नया मार्ग दिखला देगा जिसकी सहायतासे लोग वर्तमान युगके पंकजसे बाहर निकलेंगे।

हिन्दू मुस्लिम मेल

(जुलाई २८, १६२१)

यह बात अब सब पर प्रगट हो गई है कि जबतक हिन्दू तथा मुसलमानोंमें मैत्री नहीं स्थापित हो जाती, देश उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता। यह भी सबको विदित है किजिस सीमैण्टसे ये दोनों जोड़े गये हैं वह सूख कर कड़ी नहीं हो गई है, वह अभी सर्द है और उखड़ सकती है। परस्पर अविश्वास अब तक बना है। राष्ट्रके नेताओंको यह बात भलीभाँति विदित हो गई है कि जबतक दोनोंका परस्पर विश्वास दृढ़ नहीं हो जाता तथा साथ काम करनेके लिये दोनों तैयार नहीं हो जाते, भारत उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता और न सच्ची उन्नति ही कर सकता है। जनताकी परिस्थितिमें परिवर्त्तन अवश्य हो गया है पर स्थायी सुधार अभी तक आशाजनक नहीं हुआ है। अभी तक मुसलमान जनसाधारण स्वराज्यकी आवश्यकतापर वही प्रधानता देनेको तैयार नहीं है जो हिन्दू देते हैं। सार्वजनिक सभाओंको ही ले लीजिये मुसलमानोंकी संख्या उतनी नहीं देखनेमें आती जितनी हिन्दुओंकी रहती है। यह काम जबर्दस्ती या दबाव डाल कर नहीं कराया जा सकता। पर अभी इसमें विलम्ब नहीं हुआ है। मुसलमानोंमें राजनैतिक स्पर्धाके उठनेके लिये जितने समयकी आव-

श्यकता है उतना समय अभी तक नहीं बीता है। इस थोड़ेसे समयमें जो कुछ हुआ है उसका अनुमान करके हताश होनेका कोई कारण नहीं है। इसके थोड़े ही दिन पहले मुसलमान जनता कांग्रेसके नाम तकको नहीं जानती थी; उसके प्रति सर्वथा उदासीन थी—उसकी कार्यवाहीमें भाग लेना तो दूरकी बात थी। पर आज वही मुसलमान जनता सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें कांग्रेसका सदस्य बन रही है। इसे साधारण बात नहीं कह सकते।

पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता। इस कामको सफल बनानेका भार हिन्दुओंपर है। जहाँ कहीं वे मुसलमानोंको उदासीन देखें उन्हें प्रोत्साहन देकर मैदानमें ले आवें। हिन्दुओंके मुंहसे बहुधा इस बातकी शिकायत सुननेमें आती है कि मुसलमान जनता न तो कांग्रेस संगठनमें भाग लेती है और न तिलक स्वराज्य फण्डके लिये चन्दा देने तथा बटोरनेमें उत्साह दिखाती है। पर क्या इसके लिये उन्हें उत्साहित किया गया है? क्या उन्हें अभी भी शामिल होनेके लिये बुलाया गया है? प्रत्येक जिलेमें, नगरमें तथा गाँवमें हिन्दू जनताका यह धर्म होना चाहिये कि वह मुसलमान जनताके पास जाती है और उन्हें मैदानमें आनेके लिये प्रोत्साहित करती है। जबतक हम लोगोंमें ऊँच नीच, बड़े छोटेका भाव बना रहेगा तबतक हम लोगोंमें सच्ची समता कभी भी स्थापित नहीं हो सकती। जहां दो बराबरीके मनुष्य काम कर रहे हैं वहाँ संरक्षता या इस तरहका प्रश्न

नहीं उठा करता। जहाँ मुसलमानोंकी संख्या कम है या जहाँ उनमें शिक्षाकी कमी है वहाँ हिन्दुओंकी तरफसे ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिये जिससे उन्हें इस न्यूनताके लिये खेद प्रगट करना पड़े या दुःख उठाना पड़े। जहाँ शिक्षाकी कमी है वहाँ उसकी पूर्त्ति, प्रचार द्वारा होनी चाहिये और संख्याकी न्यूनता तो एक तरहकी बरकत है। कभी कभी संख्याकी अधिकतासे अनेक तरहकी कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई हैं। वास्तविक गणना चरित्र बलकी है।

मैंने इस लेखको लिख कर चारित्रिक शिक्षाकी योजना नहीं करनी चाही है और न उसके लिये नियम तथा उपनियम बनानेका विचार है। इस लेखके लिखनेका मेरा एकमात्र अभिप्राय यह है कि मैं निकट भविष्यमें हमारे सामने पड़े हुए कामकी योजना करना चाहता हूँ। हालमें ही बकरीद तेवहार आ उपस्थित होगा। उस समय हिन्दू मुसलमानोंमें झगड़ा करवानेके लिये अनेक तरहके यत्न किये जायँगे। मुसलमानोंको हिन्दुओंके खिलाफ और हिन्दुओंको मुसलमानोंके खिलाफ उभाड़ा जायगा। उस समय हमारा क्या कर्त्तव्य होगा? किस उपायसे हमें उस झगड़ेको रोकना होगा और अपने दुश्मनोंकी सारी चेष्टाओंको व्यर्थ करना होगा। बिहारमें सबसे अधिक आशंका है। यद्यपि पहलेकी अपेक्षा वहाँकी दशा बहुत कुछ सुधर गई है फिर भी पूर्णतः चिन्तारहित नहीं हो गई है। व्यर्थका हिन्दुत्वकी डींग मारनेवाले हिन्दू, इस प्रश्नको उठानेकी तैयारी

कर रहे हैं। इस तरहके लोग इन उभाड़नेवाले दुष्टोंकी चेष्टा-ओंके शिकार अति सहजमें हो जाते हैं। इस तरहकी चेष्टाय कभी कभी सरकारकी ओरसे भी हो जाती हैं। गोरक्षाका प्रश्न हिन्दुओंके मनको अधीर कर देता है, गोमाताके नामपर उनका हृदय एकदमसे पराभूत हो जाता है। इसलिये गोरक्षाके प्रश्नपर हमारी दशा बिगड़ सकती है, हम आपेसे बाहर हो सकते हैं और इसलिये जिस सिद्धिकी हम इस समय योजना कर रहे हैं उसीके बाधक या घातक बन सकते हैं। इस बातको प्रत्येक हिन्दूको देखना और समझना चाहिये कि उनकी मानकी रक्षाके लिये, उनके चित्तको शान्ति प्रदान करनेके लिये मुसलमानोंने गोरक्षाके लिये अतिशय यत्न किया है। यदि हम लोग उनके श्रमकी अवहेलना करते हैं या उनका उचित मूल्य नहीं देते तो इसमें हमारी कृतघ्नता साबित होती है। पर यदि एक क्षणके लिये भी हम गोरक्षाका प्रश्न लेकर मदान्ध हो जायँगे तो उनके सारे प्रयासको विफल कर देंगे। आजतक गोरक्षाके प्रश्नपर हम लोगोंने ठीक तरहसे विचार नहीं किया और न उस प्रश्नके निपटारेके लिये उचित तरीकेका अवलम्बन ही किया। जहाँ कहीं गोवध होते हमने देखा उसके लिये लड़ाई की, सिर फोड़ा, जेल भरा पर इसका कुछ परिणाम नहीं निकला। एक बार भी हमने अपने मुसलमान भाइयोंको समझाकर नीति—परायणतासे काम लेकर उनके चित्तपर इस प्रश्नकी महत्ताका प्रभाव डाल कर स्वयं इन्हें इसे रोकनेके लिये सचेष्ट करनेका यत्न नहीं किया।

हम लोगोंने अपने मनमें यही समझ लिया है कि इनसे मैत्री करके इस प्रश्नको हल करना असम्भव है।

पर इस समय वे सङ्कटमें हैं। हम लोग उनकी सहायताके लिये उनका साथ दे रहे हैं। यह काम हम लोग जान बूझ कर कर रहे हैं। पर इसके लिये हमें इनसे किसी बदलेकी आकांक्षा नहीं रखना चाहिये। यदि हमने किसी प्रति-दानके भावसे प्रेरित होकर उनकी सहायता की तो फिर उस सहायताका कोई मूल्य नहीं रह जाता। मैत्री, लेन देनके व्यवहारसे नहीं चल सकती। मैत्रीमें किसी भेद-भावका विचार नहीं रहता। सेवा एक तरहका धर्म है और धर्म एक तरहका ऋण है। और उस ऋणका प्रतिशोध न करना पाप और महापाप है। यदि हम लोग वास्तवमें मुसलमानोंके साथ मैत्री स्थापित करना चाहते हैं तो हमें उनको सहायता अवश्य करनी चाहिये, चाहे वे गोरक्षाका प्रयत्न करें या न करें। उनको हमारे साथ किस तरहका व्यवहार करना चाहिये इसे हमें बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। इस भारको हम उनके ही मत्थे छोड़ देते हैं। हम लोग जो सहायता दे रहे हैं उसके बदलेमें हमें किसी तरहके उपकार-की माँग उनके सामने रखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस तरह-का उपकार तो खरीदा हुआ उपकार समझा जायगा और यदि मुसलमान लोग इसे लेना स्वीकार न करें तो उन्हें किसी तरहका दोष नहीं देना चाहिये। इन कारणोंसे मुझे पूरी आशा है कि बिहार तथा अन्य प्रान्तके हिन्दू सावधान हो जायँगे और

अव्वल दर्जेकी सहनशीलता प्रगट करनेकी चेष्टा करेंगे। चाहे इस बकरीदके अवसरपर मुसलमान लोग कुछ भी क्यों न करें, हमें उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे देनी चाहिये कि वे क्या करते हैं।

हम लोग मुसलमानोंपर जितना दबाव डालनेकी चेष्टा करेंगे उतनाही अधिक गोवध बढ़ता जायगा। इसलिये इस सम्बन्धमें हमें यही उचित है कि हम कुछ न बोलें और सारी बात मुसलमानोंकी मर्यादा और कर्त्तव्य ज्ञानपर छोड़ दें। यदि पूर्ण संयमके साथ इस कामको निष्पन्न कर लें तो हम गोरक्षा-के लिये आवश्यकतासे अधिक प्रयास कर चुके रहेंगे।

गोरक्षाका उपाय मुसलमानोंके साथ लड़ने या उन्हें मार डालनेमें नहीं हो सकता। इसके लिये मेरी समझमें एक ही उपाय दिखाई देता है और वह यह है, कि हम लोग खिलाफतके साथ न्याय करानेके लिये मुसलमानोंके साथ, प्राण देनेके लिये तैयार हो जायँ और यदि आवश्यकता आ पड़े तो मर मिटें पर गोरक्षाका नाम न लें, उसकी चर्चा तक न करें। गोरक्षा भी एक प्रकारकी आत्म शुद्धि है। इसे एक तरहकी तपस्या समझनी चाहिये। जिस समय हम बिना प्रयोजनके प्राण देनेको तैयार हो जाते हैं और उस बलिदानसे किसी तरहकी आकांक्षा नहीं रखते उस समय हमारी यातनाकी चर्चा ईश्वर तक पहुंचती है और उसका सिंहासन हिल उठता है। ईश्वर उसकी रक्षाके लिये तुरंत तैयार हो जाता है। यही धर्मका मर्म है और यदि एक मनुष्य भी इस योजनाके अनुसार काम करता है

तो उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। एक बात और है और मैं इस बातको पूर्ण दृढ़ता तथा साहसके साथ कह सकता हूं, कि हिन्दू धर्म-शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार यह कहींसे भी सिद्ध नहीं होता कि हम केवल मात्र गोरक्षाके लिये किसी मनुष्यका प्राण ले लें। इस तरहके आचरणको हिन्दू धर्मके अनुसार नहीं कह सकते। इस समय प्रश्न यह उपस्थित है, कि कितने हिन्दू, मुसलमानोंका साथ देनेके लिये तैयार हैं? कौन लोग बिना किसी बदलेके ख्यालके मुसलमानोंकी धार्मिक रक्षाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेके लिये तैयार हैं। यदि हिन्दुओं की ओरसे इस प्रश्नका उत्तर धार्मिक उत्साहके साथ निकला तो इससे हम केवल मुसलमानोंकी स्थायी मैत्री ही नहीं प्राप्त कर लेंगे, बल्कि हम गोरक्षाके प्रश्नको सदाके लिये हल कर लेंगे। पर हमें इन मुसलमान भाइयोंके बड़ेसे बड़े नेताओंसे भी कोई खास आशा नहीं कर लेनी चाहिये। वे हमारी सहायता मात्र कर सकते हैं। जो लोग परम्परासे गोवध करते आ रहे हैं और ऐसा करते समय जिन्होंने हिन्दुओंके चित्तकी प्रवृत्तिपर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया है, उनके हृदयके भाव इस तरह एकाएक नहीं पलट सकते पर ईश्वरकी प्रेरणा अपरम्पार है। एक क्षणमें न जाने वह क्या से क्या कर सकता है, वह क्षण भरमें उनकी चित्तकी वृत्ति बदल सकता है और उसमें दयाका भाव भर सकता है। यदि प्रार्थनाके साथ ही साथ तपस्या भी की जाय तो उसका महत्व बहुत

अधिक बढ़ जाता है। ईश्वर केवल उसी तरहकी प्रार्थनाको सुनता है।

अब मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे दो शब्द कहना चहता हूँ। यदि उद्दण्ड और उद्धत प्रकृतिका कोई जिद्दी हिन्दू कोई काम कर दें तो उन्हें उससे उत्तेजित नहीं होना चाहिये। उत्तेजित किये जानेपर जो आत्म-संयम नहीं खोता, अन्तिम विजय उसी की होती है। उन लोगोंको यह बात भली भांति समझ लेना चाहिये कि जिन हिन्दुओंमें जरा भी विचार है वे इस समय मुसलमानोंके साथ किसी लाभके भावसे प्रेरित होकर नहीं गये हैं। प्रत्येक हिन्दूका यह विश्वास है कि मुसलमानोंकी माँग न्यायोचित है, खिलाफतके साथ अन्याय किया गया है और इस तरह के न्यायोचित काममें मुसलमानोंकी सहायता करना भारतकी सेवा करना है; क्योंकि दोनों एक ही भूमिसे पैदा हुए हैं, एक ही जलवायुमें रहते हैं, एक ही भारत माताका पय पान करते हैं और अन्न खाते हैं।

हिन्दू मुस्लिम मेलबनावटी

(अक्टूबर २०, १९२१)

मार्डन रिव्यूके वर्त्तमान अङ्कमें हिन्दू मुस्लिम मेलपर एक नोट निकला है। इसका उत्तर देना आवश्यक है। चतुर सम्पादकने 'बनावटी' शीर्षक देकर लिखा है कि यह मेल या एकता केवल ऊपरी या दिखौआ है, इसकी तहमें कुछ नहीं है। मेरी समझमें ऐसी बात नहीं है। यह मेल बनावटी या दिखौआ न होकर स्थायी रूप ग्रहण कर रहा है। यह बात अवश्य है और मैंने पिछले लेखोंमें यह बात स्वीकार भी की है, कि अभी यह मेल एक दम नया है, पक नहीं गया है, इसलिये इसको सावधानीसे पकड़ना होगा। पर यदि दोनों एक ही तरहकी विपत्ति या आशंकाकी सम्भावनाको भलीभांति समझते हैं तो इसे बनावटी या दिखौआ कहनेका कोई अवसर नहीं उपस्थित होता।

मुझे यह बात खेदके साथ लिखनी पड़ती है कि अभी तक हम लोगोंके चित्तमेंसे जात्याभिमान या पक्षपात दूर नहीं हो गया है। परस्पर एक दूसरेको आशंकाकी दृष्टिसे भी देखते हैं। प्राचीन समयमें जो जो अत्याचार किये गये हैं उनकी अशुभ स्मृति भी अभी दूर नहीं हुई है। आज भी हम लोग निर्वाचन आदिमें योग्यताकी परवा नहीं करते, केवल धार्मिक धारणा या

विश्वासके सहारे ही चलते हैं। इन बातोंपर विचार करना हिन्दू मुस्लिम एकताकी कठिनाईपर विचार करना है। जब दोनों दल इस बातको जानते हैं और इन कारणोंके रहते भी जब परस्परमें मेल स्थापनाकी चेष्टा कर रहे हैं तो इस मेलको दिखौआ, या बनावटी कहना तो उचित नहीं प्रतीत होता।

यह कहना भी उचित नहीं है और साथ ही सच भी नहीं है कि खिलाफत कमेटीने गो हत्या रोकनेके लिये जो अपील की है उसपर मुसलमानोंने ध्यान नहीं दिया है। सबसे बढ़कर हर्षकी बात तो यह होनी चाहिये कि खिलाफत कमेटीके लोग—जो स्वयं मुसलमान हैं गो हत्या बन्द करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। इसके अलावे माडर्न रिव्यूके सम्पादकको मैं इस बातका पक्का विश्वास दिलाना चाहता हूं कि खिलाफत कमेटीकी अपीलका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा है। क्या यह साधारण बात है कि गो-रक्षाका समस्त भार मुसलमानोंने अपने ऊपर ले लिया है। क्या यह दृश्य साधारण था जिस समय मियां छोटानी और खत्री अपने मुसलमान भाइयोंसे गायें ले लेकर हिन्दुओंके हाथों सौंप रहे थे? क्या उस दृश्यको देखकर हृदय उमंगसे नहीं भर जाता था?

यह बात मैं स्वीकार करता हूं कि मैं और मुहम्मदअली दोनों इस बातकी सदा चेष्टा करते हैं, कि किसी तरह एक दूसरे-को धार्मिक आघात नहीं पहुंचा सकें। पर यदि न्यायसे काम लिया जाय, सच्ची बात कही जाय तो हम लोगोंको कोई इसके लिये नीचा भी नहीं दिखा सकता। हम लोगोंके लिये मेल बना-

घटी नहीं है, दिखौआ नहीं है बल्कि इसका महत्व हम लोगोंकी दृष्टिमें इतना अधिक है कि इसको चरितार्थ करनेके लिये हम लोग अपना प्राण तक निछावर कर सकते हैं। मैं इतना सन्तोषके साथ लिख सकता हूं कि हमारे दौरेमें एक बार भी यह अवसर उपस्थित नहीं हुआ है, जब हम लोगोंके मनमें किसी तरहका क्षोभ या रोष उत्पन्न हुआ हो या एक दूसरेकी कार्रवाईसे हम दुःखी हुए हों। सम्पादक महोदयने अपने निम्न लिखित वाक्यका वज्र प्रहार बहुत ही बुरी तरह किया है। इसके मर्माघातसे हृदय विदीर्ण हो गया है। उन्होंने लिखा है:—“दोनोंके भाषणोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि एककी चेष्टायें तो सुदूर खिलाफतके साथ न्याय कराने तथा तुर्कोंको उनके विजित प्रदेशोंको लौटा देनेके लिये हैं और दूसरेकी सारी चेष्टायें भारतको पूर्ण स्वाधीन बना देनेके लिये हैं।” मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि हम दोनोंका प्रधान लक्ष्य खिलाफतके साथ न्याय कराना है। मुहम्मद अली मुसलमान हैं। मुसलमान धर्मके अनुसार खिलाफतके प्रश्नके साथ न्याय कराना उनका प्रधान कर्तव्य है। और मैं खिलाफतके प्रश्नमें इसलिये तनमनसे लगा हूं कि इस संकटके समय मुसलमानोंका साथ देकर हम उनकी मैत्री प्राप्त करते हैं और इस तरह मुसलमानोंके तेज छुरोंसे गौमाताकी रक्षा हो जाती है। हिन्दूका कर्तव्य गोमाताकी रक्षा करना है। साथ ही हम दोनों स्वराज्यके लिये भी उतने ही उत्सुक हैं क्योंकि हम दोनों इस बातको समझते और जानते हैं कि स्वराज्यसे ही

हमारे धर्मकी रक्षा हो सकती है। इसे लोग संकीर्ण विचार भले ही कहें पर इसके छिपानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यदि भारत अपनी शक्तिके प्रयोगसे खिलाफतके साथ न्याय करा देता है तो हम उसे स्वराज्य प्राप्त समझते हैं। हमारे मैत्री तथा धर्मका आधार प्रेम है। मैं प्रेमके द्वारा ही मुसलमानोंकी मैत्री प्राप्त करना चाहता हूं। और यदि एक तरफा भी प्रेम काम करेगा तो हमारी एकता दृढ़ समझिये। मौलाना मुहम्मद अलीके बारेमें यह कहना कि वे जिस उर्दूका प्रयोग करते हैं उसे अधिकांश बंगाली मुसलमान नहीं समझ सकते, अनर्गल है। मैं इस बातको भलीभांति जानता हूं कि अपने भाषणमें मौलाना मोहम्मद अली यथासम्भव सरल उर्दू का ही प्रयोग करते हैं।

इस बातको भी मैं अत्यन्त खेदके साथ स्वीकार करता हूं कि इस समय भी ऐसे हिन्दू मुसलमान हैं जो परस्पर विश्वास न रखनेके कारण विदेशी शक्तियोंका प्रभुत्व आवश्यक समझते हैं। यही सब कारण हमलोगोंके मार्गमें अतिशय कठिनाई उपस्थित कर रहे हैं और हमलोग अपने ध्येय तक नहीं पहुंच सकते। दुःख तो इस बातका है कि हमलोग अभी तक इस बातको नहीं समझ सके हैं कि स्वतन्त्र होकर हमलोगोंके परस्पर कलहकी सम्भावना, विदेशी शक्तिके पञ्जेके तले रहनेसे कहीं उत्तम और श्रेयस्कर है। यदि हमलोगोंकी यही धारणा है कि ब्रिटिश सरकारने अपने बलिष्ठ हाथके प्रयोगसे हमलोगोंको अलग कर रखा है और हमलोग आपसमें लड़ नहीं रहे हैं तो

हमारी यही हार्दिक इच्छा है कि हमलोग इस तरहके युद्धके लिये जितने शीघ्र मुक्तकर दिये जायं उतना ही अच्छा है, क्योंकि इससे हममें साहस होगा, धैर्य आवेगा, बलवीर्य बढ़ेगा और हम अपनी तथा अपने धर्मकी रक्षा करने योग्य हो जायंगे। यदि हमलोग जान बूझकर परस्पर लड़ें तो यह कोई नई बात नहीं होगी। कदाचित इसी तरहके युद्धसे हम अपना होश संभाल लें। ब्रिटनका इतिहास यही बतलाता है। वे लोग प्रायः २१ वर्षतक आपसमें लड़ते रहे और इतने वर्षतक लड़नेके बाद ही वे शान्त होकर रहने लगे। फ्रांसका इतिहास भी इस तरहके उदाहरणोंसे भरा है। फ्रांसमें जो परस्पर संग्राम चला था, जिस क्रूरताके साथ फ्रांसवाले आपसमें लड़ रहे थे जो जो अत्याचार उन्होंने एक दूसरे पर किया था उसका तो संसारका इतिहास मुकाबिला ही नहीं कर सकता। और अमरीकाको ही ले लीजिये, स्वतन्त्रता प्राप्त होजानेपर भी उसे इसी तरहके संग्राममें प्रवृत्त होना पड़ा था। इसलिये केवलमात्र इस आशंकासे कि हमलोग आपसमें लड़ मरेंगे हमें अपना बल, अपना पौरुष तथा अपना साहस किसी भी तरह घटाना नहीं चाहिये। चतुर सम्पादक भी इस एकताकी अभिलाषा उसी तरह रखते हैं जिस तरह हममेंसे कोई भी व्यक्ति रखता है, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि, इस एकताके स्थापित करनेके लिये आदिसे अन्त तक परिवर्तनकी आवश्यकता है, जड़से लेकर पत्ते तक नया भाव लानेकी आवश्यकता है। पर उन्होंने इस समूल परिव-

र्तनके लिये कोई उपाय नहीं बताया है। उन्होंने समझ लिया है कि इस लेख (सम्पादकीय) को पढ़नेवाले उसे स्वयं ढूंढ़ निकालेंगे। उचित तो यह था कि उन्होंने इसका उपाय भी बतला दिया होता और उसके व्यवहारकी विधि भी लिख दी होती। उनकी अभिलाषा शायद यह है कि हमलोग खान पान और शादी विवाहका विचार आरम्भसे ही छोड दें अर्थात् असवर्ण विवाह और खान पान ही आरम्भ करें। यदि उनका यही भाव है और यदि वे वास्तवमें समझते हैं कि स्वराज्य इसी तरह प्राप्त हो सकता है तो मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि उस विधिसे स्वराज्य पानेके लिये हमें सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि हिन्दू लोग अपना सनातन धर्म छोड़ दें। मैं यह नहीं कहता कि यह करना अच्छा है या बुरा। पर इस तरहका सुधार व्यवहारिक और राजनीतिके दायरेके बाहर है। और यदि कोई दिन ऐसा भी आया कि लोगोंके विचारमें इस तरहके परिवर्तन आ गये और इसके द्वारा हिन्दू मुस्लिम एकताकी स्थापना हुई तो हम इसे हिन्दू मुस्लिम एकता कह भी नहीं सकते। वर्तमान आन्दोलनका क्या अभिप्राय है। वर्तमान आन्दोलन यह चाहता है कि हिन्दू मुसलमानोंमें पूर्ण एकताकी स्थापना हो जाय। पर इसके लिये न तो हिन्दू ही अपना धर्म छोड़ें न मुसलमान ही अपने धर्मसे अलग हों। यही कारण है कि मैं बहुधा अपने भाषणोंमें उपस्थित जनतासे यह बात कहा करता हूं कि हिन्दू मुस्लिम एकता किस तरहकी होनी चाहिये

इसका अनुमान मुझे और मुहम्मद अलीको देखकर आप लोग कर लीजिये। मैं इस बातको अभिमानके साथ कह सकता हूं कि हम दोनों अपने धर्मके कट्टर पक्षपाती हैं। चाहे मेरे हृदयमें अली बन्धुओंके लिये कितना भी प्रगाढ़ प्रेम क्यों न हो पर मैं उनके लड़केके साथ अपनी लड़कोकी शादी करनेके लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकता और न वे ही इसके लिये तैयार हो सकते हैं, यद्यपि वे इस बातको समझते और जानते हैं कि मेरा लड़का इतना सुधारक होगया है कि वह उनकी पुत्रीका पाणिग्रहण करनेके सर्वथा योग्य है। मैं उनका भोजन कभीभी ग्रहण नहीं करता और मेरे धार्मिक कट्टरपनकी वे पर्याप्त मर्यादा रखते हैं, उसका समुचित आदर करते हैं। इतनेपर भी मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि जो मैत्री हम लोगोंमें है, जिस तरहके दृढ़ बन्धनमें हम लोगोंका हृदय बंधा हुआ है, उसका मुकावला करनेवाला कोई भी उदाहरण नहीं मिल सकता और सर्व साधारणको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम लोगोंकी यह मैत्री बनावटी या दिखौआ नहीं है बल्कि इसका दृढ़ आधार है, यह स्थायी है और इसमें हमलोगोंकी भावनाओंके पूर्ण मर्यादाका भाव भरा हुआ है। और मुझे इस बातकी आशंका कहीं से भी प्रतीत नहीं होती कि यदि आज ब्रिटिश सरकार हमलोगों पर कृपा करके यहांसे चली जाय तो अली बन्धु या उनके साथी अन्य मुसल्मान मेरी स्वतन्त्रता अपहरण करेंगे या मेरे धर्म पर प्रहार करेंगे। मुझे इस तरहकी आशंका नहीं है क्योंकि एक

तो मैं जानता हूं कि मैं ईश्वरसे डरता हूं और उसने कह रखा है कि जो मुझसे डरता है उसकी रक्षा की मैं सदा चेष्टा किया करता हूं। इससे मुझे पक्का विश्वास है कि आवश्यकताके समय वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा। दूसरा कारण अली बन्धुओंकी मर्यादाका है। वे इतने गिर नहीं गये हैं कि ईश्वरके नियमोंको इस तरह कुचल डालेंगे, यद्यपि मैं जानता हूं कि ताकतमें वे मुझसे इतने बढ़े चढ़े हैं कि मेरे सदृश दस या बारह आदमी भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। वे अकेले एकको एक साथ ही पराश्त कर सकते हैं। इसलिये व्यक्ति गत उदाहरणके आधार पर मैं समस्त भारतके लिये इसी धारणा पर पहुंचता हूं। और इसी धारणाके अनुसार मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि हिन्दू मुसस्लिम एकता तभी स्थापित हो सकती है हम लोगोंके चित्तमें एक दूसरेके लिये सहनशीलता हो और अपनेमें दृढ़ विश्वास हो। इससे हम यह भी प्रगट करते हैं कि मानव प्रकृतिकी सौम्यताको हम भली भांति स्वीकार करते हैं।

हिन्दू मुस्लिम मेल

(फरवरी २५, १९२१)

कुछ दिन होते हैं मिस्टर काण्डलरने मुझसे पूछा था कि क्या आप हिन्दु मुस्लिम एकताको हृदयसे चाहते हैं और यदि आप इसके लिये आतुर हैं तो क्या आप उनके साथ खान पान और व्याह शादीका सम्बन्ध भी चला सकते हैं। इसी प्रश्नको दूसरे ढंगसे कुछ और मित्रोंने मुझसे पूछा है। उनका प्रश्न है क्या हिन्दू मुस्लिम एकताके लिये सहयोग और वैवाहिक सम्बन्ध आदि भो आवश्यक होगा? यह प्रश्न करनेके बाद उन्होंने लिखा है यदि वास्तमें हिन्दू मुस्लिम एकताके लिये सहयोग और असवर्ण विवाह भी आवश्यक है तो यह एकता हर तरहसे असम्भव है, क्योंकि करोड़ों सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू इसके लिये तैयार नहीं हो सकते। वे लोग तो सहयोगके लिये भी तैयार नहीं हो सकते, असवर्ण विवाहका प्रश्न तो विचारके एकदम बाहर है।

मेरा विचार उन लोगोंके साथ है जो जाति पाँतिके विभाग को अनुचित या हानिकार नहीं मानते। वर्ण व्यवस्थाका नाम बड़े ही उदार सिद्धान्तोंके अनुसार दिया गया था और इससे राष्ट्रीय उन्नतिमें बड़ी सहायता मिलती थी। जिन लोगोंका

कहना है कि राष्ट्रीय विकासके लिये सहयोग और असवर्ण विवाह आवश्यक है वे भ्रममें हैं और पाश्चात्यके संसर्गसे उनके हृदयमें इस तरहके भाव उदय हुए हैं। जीवनकी शुद्धताके लिये अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें जितनी आवश्यक हैं, भोजनकी शुद्धता भी उतनीही आवश्यक है और यदि मानव समाजने भोजनपर इतना जोर न डाल दिया होता तो आज हमलोग जीवनकी अन्य बातोंकी तरह भोजनको भी एकतामें ही करते होते। हिन्दुओंका सदाचार कम से कम यही शिक्षा देता है और आज भी हजारों हिन्दू ऐसे पाये जायँगे जो अपना भोजन किसीके सामने नहीं करना पसन्द करेंगे। मुझे ऐसे अनेक पुरुष तथा स्त्रियोंके नाम याद हैं जो भोजन एकदम एकान्तमें करते थे पर जिन्हें किसीसे किसी प्रकारका घृणा या राग द्वेष नहीं था। बल्कि वे पूर्ण मैत्रीके साथ रहते थे।

विवाहका सवाल और भी टेढ़ा है। पर मेरा तो यह कहना है कि यदि एक भाई और बहिन परस्पर पूर्ण मेलके साथ रह सकते हैं तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखलायी देती कि मेरी पुत्री मुसलमानको अपना भाई समझकर और उसी तरह किसी मुसलमानीकी पुत्री मुझे अपना भाई समझकर सब पूर्ण मेलके साथ रहें। धर्म और विवाहके सम्बन्धमें मेरे विचार बड़े ही कट्टर हैं खान पान या विवाह आदिके सम्बन्धमें अपने मतपर जितना अधिक अधिकार हम रख सकेंगे धार्मिक दृष्टिसे हम उतनेही ऊँचे रहेंगे। यदि आज यह सम्भावना हो जाय कि प्रत्येक

नवयुवकको मेरी लड़कीके साथ विवाह करनेका पूरा अधिकार है या मुझे संसारकी सभी जातियोंके साथ सहभोजमें खाना पड़ेगा तो मैं यहींसे निराश हो जाऊँगा कि इस संसारमें पुनः एकता नहीं स्थापित हो सकती। मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूं कि मैं संसारकी सभी जातियों और प्राणियोंके साथ मेलसे रहता हूँ। आजतक मैंने किसी मुसलमानसे क्रोध तक नहीं किया है। फिर भी वर्षोंसे मैंने इनके साथ सिवा फल आदिके और कुछ नहीं खाया है। जिस वर्तनमें मेरे लड़केने भोजन किया है और जिस ग्लासमें उसने पानी पिया है वह जब तक मांजा न जाय मैं प्रयोगमें नहीं ला सकता। पर इस तरहके व्यवहारसे मैंने आजतक न तो किसी मुसलमानका जी दुखाया है, न किसी ईसाईका जी दुखाया है और न इसके लिये मेरा लड़का ही कभी मुझसे असन्तुष्ट हुआ है।

इसके अतिरिक्त सहभोज या असवर्ण विवाहसे कलह, वैर और विरोधकी रुकावट होते नहीं दिखाई दी है। भारतवर्षका ही इतिहास इस तरहके प्रमाणोंसे भरा है। कौरवों और पाण्डवोंको ही ले लीजिये। दोनों चचेरे भाई थे। खान पान और व्याह शादी सब एक था। तो भी वे एक दूसरेका गला काटनेको उतारू हो गये। यही बात वर्त्तमान सभ्य संसारमें भी देखनेमें आरही है। अंग्रेज और जर्मन एक ही खूनके हैं। एक ही वंशका रक्त एक दोनोंकी धमनियोंमें बह रहा है, वैवाहिक सम्बन्ध भी बहुत ही नजदीकी रहा है। पर तिसपर भी दोनों एक

दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार हो गये। और वह वैमनस्य आज भी उसी तरह वर्त्तमान है।

इससे यह भाव निकला कि एकताके लिये असवर्ण विवाह या सहयोग आवश्यक पदार्थ नहीं हैं यद्यपि इसका प्रतिरूप अवश्य है। पर यदि हम व्यर्थका जोर या दबाव एक या दूसरेपर देने लगें तो वह मार्गका कंटक सहजमें हो सकता है, जैसे आजकल हिन्दू मुस्लिम एकताके लिये हो रहा है। यदि हम लोग इस धारणाको हृदयांगम कर लेते हैं कि हिन्दू मुस्लिम एकता तब तक नहीं स्थापित हो सकती जबतक हिन्दू और मुसलमानोंमें व्याह शादी और खान पान भी न प्रचलित हो जाय तो हम लोग अपने बीचमें एक बनावटी बांध खड़ाकर देते हैं जो शायद जन्मजन्मान्तरमें भी नहीं तोड़ा जा सकता। और यदि आज मुसलमान नवयुवकोंके हृदयमें यह भाव आजाय कि हिन्दू लड़कियोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना जायज है तो इस बढ़ती हिन्दू मुस्लिम एकतामें घोर बाधा पड़नेकी संभावना है। यदि इस तरहकी निर्मूल आशङ्का भी हिन्दुओंके हृदयमें उत्पन्न हो गई तो वे मुसलमानोंको अपने घरमें घुसने तक न देंगे और सम्मानके साथ बैठाना तो दूर रहा जैसा कि अबतक शनैः शनैः होने लगा है। मेरी समझमें प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान नवयुवकको यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिये कि जहाँ तक सम्बन्ध है उसके अधिकार बहुत ही नियन्त्रित हैं।

मेरी समझमें वैवाहिक और खान पानका सम्बन्ध स्थापित

कर लेनेपर न तो मुसलमान ही अपमा धर्म बचा सकेंगे और न हिन्दू ही। पर सच्चा मेल वही होगा जिसमें एकता और सद्-भावकी पूर्ण स्थापनाके साथ ही साथ अपनी अपनी धार्मिक मर्यादापर भी उतना ही ख्याल हो क्योंकि हम लोग इस बातकी चेष्टाकर रहे हैं कि कट्टरसे कट्टर हिन्दू और मुसलमान भी परस्पर मेलसे रहें और पुराने वैर भावको भूल जायं।

इतना कहनेके बाद प्रश्न यह उठता है कि हिन्दू मुस्लिम एकताका मर्म क्या है और उसकी स्थापना किस तरह हो सकती है। इसका उत्तर बहुत ही सहज है। इसका आधार है एक आदर्श, एक ध्येय, और एक भाव। इसकी उन्नतिका मूल है उसी एक आदर्शको लेकर पूर्ण मेलके साथ साथ चलना, सहनशील-ताका भाव प्रगट करना, और एक दूसरेके दुख सुखमें साथी बने रहना और यथासाध्य सहायता करना। इस समय हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित है। हम सभी चाहते हैं कि यह देश स्वतन्त्र हो जाय और अपना शासन आपसे आप करने लगे। विपत्ति भी हम लोगोंके ऊपर घहराती है। इस समय हम देख रहे हैं कि खिलाफतके साथ अन्याय करके ब्रिटेनने मुसलमानोंके हृदयोंपर मर्माघात किया है। हम लोग जानते हैं कि खिलाफतकी मांग न्याय पूर्ण है। तो इसके लिये हमें दत्त चित्तसे मुसलमानोंके साथ हो जाना चाहिये। मुसलमानोंकी सच्ची मैत्री प्राप्त करनेके लिये इससे उत्तम कोई भी तरीका नहीं हो सकता। इस उपायसे आप मसलमानोंके सद्भावको जितना खरीद

सकते हैं हज़ारों वारका सहयोग और विवाह काम नहीं कर सकता।

परस्पर सहन शीलता प्रत्येक जातिके लिये प्रत्येक अवस्था-में लाभ दायक होती है। यदि हिन्दू मुसलमानोंकी उपासनाके कायदे कानून तथा तरीकेको न पसन्द करें, उनके रस्म रिवाज व चाल चलनसे घृणा करें तथा उसी तरह यदि मुसलमान भी हिन्दूओंको मूर्ति पूजाको घृणाकी दृष्टिसे देखें अथवा उनके रस्म रिवाजको नापसन्द करें तो फिर दोनोंमें मेल नहीं हो सकता और हम लोग शान्तिसे नहीं रह सकते। जो कुछ हम बरदाश्त करते हैं उसे ही बरदाश्त करनेमें किसी तरहकी असुविधा नहीं है। बरदाश्त तो उसे करना चाहिये जो विरोधी बातें हैं, जैसे मैं शराब से परहेज करता हूं और सदा यही भाव रखता हूं कि लोग इस से अलग हो जायं पर यदि कोई हिन्दू मुसलमान या ईसाई इसे पीता है तो मैं उससे घृणा नहीं करता। उसी तरह मैं भी उन लोगोंसे आशा करता हूं कि वे मेरे परहेजपनेकी मर्यादा रखेंगे। आजतक हिन्दू मुसलमानोंके कलहका प्रधान कारण यही रहा कि दोमें से एकमें भी सहन शीलता नहीं रही और दोनों अपना अपना मन एक दूसरेपर जबर्दस्ती लाद देना चाहते थे।

गोरक्षाका उपाय
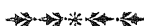
(सितम्बर ८, १६२१)

गोरक्षाके सम्बन्धमें मुझे केवल इतना ही कहना है कि गोरक्षा हिन्दुओंका परम धर्म है। हिन्दुओंके धार्मिक, सामाजिक तथा प्रचलित रीति रिवाजके अनुसार इनमें मत भेद है। पर गोरक्षाके प्रश्नपर सब एक मत हैं और मैं यह बात भी दावेके साथ कहता हूं कि हिन्दुओंकेलिये गोरक्षाका प्रश्न बड़ा ही महत्वपूर्ण है कि इसकी समता कोई भी धर्म नहीं रखता। भारतमें गौ की अत्यन्त आवश्यकता है। केवल गोदूधकी ही आवश्यकता नहीं हैं बल्कि बैलोंका प्रयोग खेतीमें किया जाता है। हिन्दू गोकी उपासना ब्राह्मणके बराबर ही करते हैं। पर भारतके बाहर यह बात नहीं है। इसलिये मुसलमान धर्मके अनुसार गोरक्षामें किसी तरहकी रोक टोक नहीं हैं। इसलिये यदि कोई मुसलमान ईदके अवसरपर गोबध करता है तो हिन्दू किस अधिकारके आधार पर इसके लिये उसपर हाथ उठा सकता है। क्या हिन्दू शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार वह गोरक्षाके लिये अपने भाईका गला काट सकता है? शास्त्रोंमें कोई इस तरहका उल्लेख नहीं है बल्कि शास्त्रोंके मतके अनुसार ऐसा करना घोर पाप है। अंग्रेज लोग गोमांस खाते हैं पर कोई भी हिन्दू इसका विरोध नहीं करता। प्रतिदिन भारतके अंग्रेजोंके खानेके लिये हजारों

गायें बूचड़ खानेमें भेजी जाती हैं और काटी जाती हैं पर कोई भी हिन्दू इसका विरोध करते नहीं दिखाई देता। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि गोमाताकी रक्षाके लिये तुम अपना प्राण दे सकते हो, तुम उसके लिये दूसरोंका प्राण नहीं ले सकते और न इसके लिये क्रोध प्रगट कर सकते हो और न हिंसाका भाव धारणकर सकते हो। मौलाना मुहम्मद अलीने अपने भाषणमें एक बार कहा था कि इसकी सार्थकता मैं अच्छी तरह समझता हूं। उन्होंने कहा था कि गोरक्षाकी तीन हिस्सा जिम्मेदारी हिन्दुओंके हाथ है और एक भागके लिये मुसलमान दोषी हैं। जो गाएँ मारी जाती हैं वे हिन्दुओंके यहाँसे ही आती हैं। हमने बम्बईमें अपनी आँखोंसे देखा है कि जहाजकी जहाज भरी गायें बम्बईसे दूसरे देशोंमें भेजी जाती हैं। गौ बेचनेका काम हिन्दू ही करते हैं मुसलमान नहीं। इस सम्बन्धमें मुहम्मद अलीने कहा था कि यदि गौवोंका मूल्य १००) रख दिया जाय तो गोरक्षा आपसे आप रुक सकती है क्योंकि इतना मूल्य देकर कोई भी मुसलमान गोवध नहीं करेगा। इस मतको मैं सर्वथा स्वीकार करता हूं। इस समयकी जिम्मेदारी हिन्दुओंके ही ऊपर है। बम्बईमें तिलक स्वराज्य फण्डमें दो गायें दानमें मिली थीं। एक ५००) में बेची गई और दूसरी इससे भी अधिक मूल्यमें। यदि खरीदने और बेचनेवालेकी पूरी श्रद्धा हो जाय तो इस तरहकी बातें कठिन नहीं हैं। इसलिये हिन्दू भाइयोंसे मेरा निवेदन है कि यदि वे वास्तवमें गौकी रक्षा करना चाहते हैं तो आप मुसल-

मान भाइयोंसे रण मत ठानिये उनके साथ शान्तिसे रहिये, मेल और सद्भावकी स्थापना कीजिये। उनके साथ किसी तरहकी ज्यादती मत कीजिये। इस समय वे घोर सङ्कटमें हैं। इस विपत्तिके समय उनकी सहायता कीजिये और उसके लिये किसी तरहका पुरस्कार मत माँगिये। मैं खिलाफतके प्रश्नको उसी दृष्टिसे देखता हूं जिस दृष्टिसे मैं गोरक्षाका प्रश्न देखता हूं अर्थात् मुसलमानोंके लिये खिलाफतका प्रश्न उतने ही महत्वका है कि हिन्दुओंके लिये गोरक्षाका प्रश्न जितने महत्वका है। मेरी यही पक्की धारण है कि एकके निपटारेसे दूसरेका निपटारा बड़ी आसानीसे हो जायगा। मैं बदलेके लिहाजसे यह बात नहीं कह सकता हूं। यदि हम मुसलमान भाइयोंकी सहायता सच्चे हृदयसे करें, यदि हम सच्चे हृदयसे आत्म त्याग करनेके लिये तैयार हो जायं, तो हमें पूर्ण आशा है कि इसका फल बड़ा ही उत्तम होगा। यही एकमात्र उपाय है जिससे गोरक्षाका प्रश्न पूरी तरहसे हल हो सकता है।
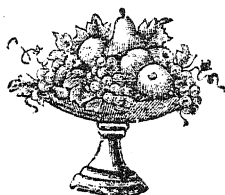
हिन्दुओं सावधान

(मई, १६ १६२१)

बिहार असहयोगके लिये सबसे उत्तम भूमि है। बिहारका हिन्दू मुसलिम ऐक्य आदर्श है। इसलिये यह देखकर खेद हुआ कि उस ऐक्यपर आघात पहुंचनेकी आशङ्का है। जितने उदार प्रकृतिके हिन्दू मुस्लिम नेता मुझसे मिले, सबोंने एक स्वरसे मुझसे कहा कि हिन्दू मुसलमानोंमें मतभेदकी आशङ्का उठ गई है। इससे हम लोग बड़े ही चिन्तित हैं और उसे रोकनेके लिये हर तरहकी चेष्टायें कर रहे हैं। लोगोंने मुझसे कहा कि चन्द हिन्दुओंने यह अफवाह फैला दी है कि मैंने हिन्दू और मुसलमान दोनोंको मांसके प्रयोगसे रोक दिया है और मांस खाना निषेध कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ अतिशय कट्टर शाकाहारियोंने लोगोंके घरोंसे जबर्दस्ती मछली और मांस निकालकर फेंक दिया है। मैं जानता हूं कि अनेक स्थानोंपर मेरे नामपर अन्याय किया जा रहा है। पर यह घटना मुझे सबसे विचित्र प्रतीत हुई लोग जानते हैं कि मैं कट्टर निरामिषभोजी सुधारक हूं। पर सब लोग इस बातको नहीं समझते कि अहिंसाका भाव सबके लिये बराबर है और इसीलिये मैं मांसाहारियोंसे भी विना किसी असद्भावके मिलता जुलता रहता हूं।

न तो गोरक्षाके लिये मैं किसी मनुष्यका वध कर सकता हूं और न किसी मनुष्यकी रक्षाके लिये गोवध कर सकता हूं चाहे दोनोंका महत्व कितना ही प्रवल क्यों न हो। मैं यहीं पर यह कह देना चाहता हूं कि निरामिषभोजी होना हमारे असहयोग कार्यक्रमका अंग नहीं है और न मैंने इस प्रकारकी ही मन्त्रणा दी है। जिन लोगोंने मेरे नाम पर इस तरहकी कार्रवाई की है मैं उन्हें जानता भी नहीं। मैं पक्का विश्वास दिला देना चाहता हूं कि यदि हमने कहींसे भी अहिंसाका भाव प्रगट किया और शान्ति भंग हुई तो हमारा सारा उद्देश्य विफल हो जायगा। हिन्दुओंको यह कभी भी उचित नहीं है कि वे मुसलमानोंको मांस—गोमांस तक—खानेसे रोकें। इसी तरह निरामिषभोजी हिन्दूओंको भी मांस मछली खाने वाले हिन्दुओं पर किसी तरहका दबाव नहीं डालना चाहिये। मैं तलवारके बलपर भारतको परहेजी नहीं बनाना चाहता। हिंसासे राष्ट्रका सदाचारिक ह्रास सबसे अधिक हुआ है। हमलोगोंके हृदयमें भयने सबसे प्रबल स्थान जमा लिया है। यदि असहयोगी लोगोंको अपने दलमें लानेके लिये बल प्रयोग करेंगे तो इससे बढ़ कर दूसरी कोई भी भूल वे नहीं कर सकते। इस तरह वे नौकरशाहीके हाथके खिलौने बन जायंगे। असहयोगके प्रचारमें लेशमात्र भी वलात्कार मार्गमें भीषण बाधा उपस्थित कर देगी।

गोरक्षाका प्रश्न बड़ा ही विकट प्रश्न है। उसका महत्व

हिन्दुओंकी दृष्टिमें सबसे अधिक है। गोमाताके लिये मेरे हृदयमें जो सम्मान है उसमें जराभी कमी नहीं आसकती। जब तक हिन्दुओंमें गोरक्षाकी योग्यता नहीं होजाती वे अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर सकते। इस योग्यताको प्राप्त करनेका दो मार्ग हैं—आत्मबल और पशुबल। गोरक्षाके लिये बल प्रयोग करना हिन्दू शास्त्रको शैतानके हाथमें सौंप देना है और गोरक्षाके मूल कारणको कलुषित तथा निन्दनीय बना देना है। किसी मुसलमानके लिखा है:—"गोमांसका प्रयोग इस्लाम धर्मके अनुसार अभी केवल जायज समझा जाता हैं पर जिस दिनसे हिन्दू लोग इसके लिये बल प्रयोग करना आरम्भ करदेंगे उसी दिनसे यह मुसलमानोंका परम धार्मिक कर्तव्य हो जायगा। केवल आत्मत्यागसे ही हिन्दूलोग गोमाताकी रक्षा कर सकते हैं। मेरी समझमें गोरक्षाके लिये हिन्दूओंके हाथमें एक ही उपाय है और वह यह है कि उन्हें इस संकट या आपत्तिके समय मुसलमानोंका साथ देना चाहिये और उनकी सहायताकर उनका सद्भाव प्राप्त करना चाहिये। इतना करके उन्हें इस विश्वास पर चुप चाप बैठ रहना चाहिये कि इसका बदला मुसलमान भाई अवश्य मर्यादाके साथ चुकावेंगे। अर्थात् अपने हिन्दू भाइयोंकी इज्जत और मर्यादाका ख्याल रखकर वे गौकी रक्षा अवश्य करेंगे। इसके लिये हिन्दुओंको सबसे पहले मुसलमानोंके प्रति हिंसाका भाव छोड़ देना चाहिये। आत्मत्याग और विश्वास आत्मबलके गुण हैं। हमने सुना है कि बड़े बड़े मेलोंमें यदि मुसल-

मानके हाथमें गाय या बछड़े या बकरियां देखी जाती हैं तो लोग उन्हें बलात् उनसे छीन लेते हैं। जो हिन्दू इस तरहका आचरण करते हैं वे हिन्दू और गोवंश दोनोंके शत्रु हैं। गोवंशक रक्षाका सबसे उत्तम और बढ़कर उपाय खिलाफतकी रक्षा करना है। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि प्रत्येक हिन्दू हिंसा या जोर जुल्मका जरा भी भाव नहीं दिखावेगा और न किसी मुसलमान पर हाथ छोड़कर अपने हाथको कलङ्कित करेगा चाहे वह गोरक्षाके लिये हो, अन्य जीवकी रक्षाके लिये हो अथवा किसी अन्य प्रयोजनसे हो।

—०—

७—राष्ट्रीय एकता

ब्राह्मण अब्राह्मण

महाराष्ट्रमें ब्राह्मण अब्राह्मणके प्रश्न पर जिस समय मैंने लिखा था उस समय मुझे यह नहीं ज्ञात था। कि यह प्रश्न केवल सामाजिक न होकर अधिकांशमें राजनैतिक है। और यह विद्वेष ब्राह्मण और अब्राह्मण वर्ग भरमें प्रचलित नहीं है बल्कि कुछ पढ़े लिखे शिक्षित अब्राह्मणोंका ब्राह्मणोंके प्रति है। अब्राह्मणमें चार आते हैं:—लिंगायत, मरठा, जैन और अछूत। अछुतोंका तिरस्कार अन्य अब्राह्मण भी करते हैं। इसके अतिरिक्त अब्राह्मणोंकी शिकायत समस्त अब्राह्मण जातियोंके लिये समान

नहीं है । उनकी शिकायतें निम्न लिखित शब्दोंमें रखी जा सकती हैं।

(१) शिक्षित अब्राह्मणोंको वही राजनैतिक अधिकार नहीं प्राप्त है जो ब्राह्मणोंको प्राप्त है।

अब्राह्मणोंकी संख्या अधिक होते हुए भी सरकारी पदों पर, व्यवस्थापक तथा अन्य प्रतिनिधि सभाओंमें उन्हें बहुत कम स्थान मिले हैं और ब्राह्मणोंकी संख्या कम होते हुए भी वे अधिक पदों पर हैं।

(२) ब्राह्मण लोग मन्दिरों पर अपना अनन्य अधिकार बतलाकर अब्राह्मणोंको उसमें घुसने नहीं देते। यहां तक कि जो मन्दिर लिंगायतके हैं उनमें भी नहीं घुसने देते। और यह अनर्गल अधिकार प्रायः सभी ब्राह्मण व्यक्त करते हैं।

(३) ब्राह्मण लोग अब्राह्मणोंकी गणना शूद्रोंमें करते हैं और उनको उसी दृष्टिसे देखते हैं जिस दृष्टिसे एक अंग्रेज हिन्दुस्तानीको देखता है।

इस तरह देखनेसे स्पष्ट मालूम होजाता है कि अब्राह्मणोंकी शिकायतकी जड़ बहुत ही कमजोर है और महाराष्ट्रके राष्ट्रीय सार्व-जनिक जीवनसे वह एक दम लुप्त हो सकती है यदि महाराष्ट्र राष्ट्रीय दलके ब्राह्मण कांग्रेससे स्वीकृत असहयोग कार्यक्रमके अछूतोंके कार्य क्रमका पूर्णतया पालन करना चाहें।

यह आन्दोलन सामाजिक या धार्मिक अयोग्यताके कारण नहीं है वलिक ब्राह्मणोंकी राजनैतिक प्रकर्षताके कारण है। चूंकि कुछ

ब्राह्मण विद्या, बल, बुद्धि और योग्यताके कारण ऊंचे पदोंपर पहुंच गये हैं इसलिये अब्राह्मण उन्हें देखकर जलते हैं। इस तरह असहयोगके कार्यक्रमको स्वीकार करके जब राष्ट्रीय दलके ब्राह्मण सरकारी उच्च नौकरियोंका त्याग करदेंगे, म्युनिसपैलिटियां और जिला बोर्डोंका बहिष्कार कर देंगे, तो यह प्रश्न आपसे आपही हल हो जायगा। मुझे यह निश्चय है कि सरकार अपनी कुटिल चाल बराबर चलती रहेगी और ब्राह्मणोंके खिलाफ अब्राह्मणोंको उभारती रहेगी, यह कार्रवाई वह इस तरह करेगी कि इसका किसीको पता नहीं लगेगा, अब्राह्मण इस चालको समझ तक नहीं सकेंगे। इस तरह वह दोनोंको सदा लड़ाते रहनेकी फिक्रमें रहेगी और अब्राह्मणोंको सदा राजनीतिक प्रलोभन देती रहेगी।

पर असहयोगके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेने पर राष्ट्रीय ब्राह्मण दल सरकारी सभी पदों और नौकरियोंका त्याग करके अब्राह्मणोंके विरोधको घटाते रहेंगे और इस तरह उन्हें उन्हींके शस्त्रद्वारा परास्त कर देंगे। इस प्रश्नके इतना विकट हो जानेका एक कारण और भी है और वह यह है कि आगामी निर्वाचनके लिये अब्राह्मण लोग अधिक चेष्टा करते हैं और निर्वाचकोंको अपने पक्षमें लानेके लिये कठोर चेष्टा कर रहे हैं। वे लोग लोगोंसे कहते फिरते हैं कि अब्राह्मण कमजोर हैं इसलिये उन्हें विवश होकर सरकारकी शरण जाना पड़ता है। ब्राह्मण लोग उन्हीं निर्वाचकोंपर अपना प्रभाव डालकर वे निर्वाचन अधिकारके प्रयोग-

को रोकना चाहते हैं। इससे विद्वेषाग्नि साधारणतः बढ़ रही है पर उसकी मात्रा इतनी अधिक नहीं है जितना राष्ट्रीय दल और नरम दल वालोंके बीच हो रही है। इस अवस्थाकी सबसे खराब बात यह है कि अब्राह्मण दलके लोग—जो जनताके प्रतिनिधि होनेका दावा करते हैं और उसी हैसियतसे व्यवस्थापक सभाओंमें जानेकी चेष्टा करेंगे पर उनके दुःख दारिद्रको दूर करनेके लिये सरकारी सहायता लेकर दूर करनेकी चेष्टा करेंगे और इस तरह उनपर सरकारकी जकड़ और भी मजबूत कर देंगे। दूसरे सरकारी सहायताके लिये इस प्रकार भिक्षुक बन करके पंजाब और खिलाफतके साथ किये गये अत्याचारों और अन्यायोंका प्रतिकार असम्भव कर देंगे। इस तरह अब्राह्मणोंकी नीति राष्ट्रीय हितके लिये अतिशय हानिकर है, उसका गला घोंटने वाली है। ब्राह्मणों अथवा राष्ट्रीय दलके प्रति उनकी शिकायत कैसी भी कड़ी और भीषण क्यों न हो पर उसका उपचार सरकारके साथ मैत्री जोड़नेमें नहीं है, क्योंकि सरकारकी नीति जनताको लूटना है इस तरह उसे निर्जीव तथा पंगु बना देना है। उसे ब्रिटिश भारतकी रक्षाका इतना अधिक ख्याल रहता है कि वह उसके कर्मचारियोंके किये गये अत्याचारोंका प्रतिकार तक नहीं करना चाहती। यही कारण है कि वह पंजाब तथा खिलाफतके अत्याचारोंका प्रतिकार करनेके लिये तैयार नहीं है। केवल पशुबलके जोरपर एक लाख अंग्रेज ३०।३१करोड़ भारतवासियोंको नहीं दबा सकते।

लेकिन वास्तवमें यही बात हो रही है और उसका कारण यह है कि वह अपनी कुटिल नीतिको सफल करके उन्हें उन्नति करनेसे लाचार करती और रोकती चली आ रही है। इसलिये मैं अब्राह्मण नेताओंको सचेत और सतर्क करना चाहता हूं कि वे सरकारके साथ सहयोग करनेके परिणामपर पूर्ण विचार कर लें। वे देखेंगे कि इससे वही आपत्ति उठती है और वे उसी पर और भी आघात करते हैं जिसे दूर करनेकी वे चेष्टा कर रहे हैं। केवल व्यवस्थापक सभाओंमें प्रविष्ठ हो जानेसे अथवा चन्द सरकारी नौकरियोंके पा जानेसे ही वे जनताकी आर्थिक अव-स्थाका सुधार नहीं कर सकते।

यदि आर्थिक सुधारकी कसौटीपर रगड़कर देखें तो यही विदित होता है कि हमारा २५ वर्षका राष्ट्रीय राजनैतिक प्रयास बेकार हो रहा है उससे कोई लाभदायक फल नहीं निकला है। इस समय भारतकी जनताकी जो अवस्था है वह पचास वर्ष पहले नहीं थी। पचास वर्ष पहले उन्हें अकाल आदिसे उतनी यातना नहीं सहनी पड़ती थी जितनी कि आज। आज वे इतने कमजोर और दुर्बल हो गये हैं कि उतने कभी भी पहले नहीं थे।

अब्राह्मणदल जिस राजनैतिक अयोग्यताके निवारणके लिये सरकारकी शरण आ रही है और वहींसे अपने सुधारकी आशा करती है उसका प्रतिकार ब्राह्मणदल अधिकांशमें कर सकता है। और वह यह है कि असहयोग कार्यक्रमको पूर्णतया स्वी-कार कर ले और सभी प्रश्नोंका निपटारा आपसे आप ही हो

जायगा। पर यह बुद्धिमत्ता पूर्ण है, प्रबल है और अधिकारियोंका आदर प्राप्त है। साथ ही इसमें जीतनेके लिये झुकने वाली भी शक्ति है। पर इतना ही पर्याप्त नहीं है।

जब तक ब्राह्मणदलके लोग उन लोगोंकी सहायताके लिये, जो अपनेको दुर्बल और क्षत समझते हैं हाथ नहीं फैलावेंगे यह विद्वेषका भाव दूर नहीं होगा। कर्नाटिकके राष्ट्रीय-पक्षके पत्रोंपर यह दोषारोपण किया जाता है कि उन्होंने अब्राह्मणोंके प्रति असभ्य शब्दोंका प्रयोग किया है और यहांके राष्ट्रीय दलके ब्राह्मण भी इनको नीची निगाहसे देखते हैं और इनका अपमान करते हैं। उनके अशिक्षित अब्राह्मण देशवासी इस बातकी आशा करते हैं और इस तरहकी आशा करना न्याय युक्त तथा संगत है कि उनके शिक्षित और उदार देशवासी ब्राह्मण उनके साथ उदारता और दयाका व्यवहार करेंगे। अभी तक अब्राह्मणोंकी अधिकांश संख्या ऐसी ही है जिनमें ब्राह्मणोंके प्रति इस तरहके भाव नहीं उदय हुये हैं। मुझे महाराष्ट्रके ब्राह्मणोंसे पूरी आशा है कि वे इस ब्राह्मण और अब्राह्मणके प्रश्नको हल करनेमें वह उदारता दिखलावेंगे जो उनकी परम्परागत मर्यादाके अनुकूल है।

वर्णाश्रम धर्म

(दिसम्बर ८, १९२०)

दक्षिणकी यात्रा करते समय वर्णाश्रम धर्मपर मैंने कुछ कहा था। इससे कुछ लोग मुझसे असन्तुष्ट हैं और मेरे पास शिकायतके पत्र लिख रहे हैं। मैं उन पत्रोंको प्रकाशित नहीं करता क्योंकि सिवा क्रोध और आवेशके उनमें कुछ नहीं है और जहां कहीं क्रोध आदि नहीं भी प्रदर्शित किया गया है वहां कोई मार्केकी बात नहीं लिखी गई है। जो लोग मुझसे मत भेद रखते हैं उनके लिये भी 'यंग इण्डियामें' स्थान है और वे अपना मत प्रगट करनेके लिये स्वतन्त्र हैं पर उन्हें दो बातोंका ध्यान रखना चाहिए। एक तो उन्हें सब बातें संक्षेपमें लिखना चाहिये और दूसरे उनके लेखोंमें कुछ सार रहना चाहिये जिससे पढ़नेवालोंको रोचक प्रतीत हो। केवल क्रोध प्रगट करना तो किसी कामका नहीं। मैं इन बातोंपर विशेष जोर इसलिये दे रहा हूं कि दो पत्र ऐसे हैं जो प्रकाशित किये जा सकते थे यदि उनके लेखक क्रोधमें पड़कर अपने भावको व्यक्त करनेमें असमर्थ हो गये होते। पर जो प्रश्न उन्होंने उठाया है उसपर विचार करना तथा उसका उत्तर देना आवश्यक और उचित है। पहली बात तो उन्होंने यह लिखी है कि यदि वर्णाश्रम धर्म माना जायगा तो भारतका नाश हो जायगा। इसीके

कारण तो भारतके ऊपर दासताका बोझ लाद दिया गया है। पर मेरी समझमें उनका यह कहना सच नहीं है। हमारी आज जो दशा है जिस वर्तमान अवस्थाको हम पहुंचे हुये हैं उसका कारण जात या वर्णाश्रम धर्म नहीं है। हमलोगोंने उसमें जो गुण था उसको स्वीकार करना छोड़ दिया और इसीसे हमारी यह दशा हो गई। मेरी तो यही धारणा है कि यदि हिन्दू धर्म छिन्न भिन्न और टुकड़े टुकड़े होकर गिर नहीं गया तो इसका एकमात्र कारण वर्ण व्यवस्था है।

पर अन्य संस्थाओंकी तरह इसमें भी शाखा और प्रतिशाखा निकली जिससे इसको घोर क्षति उठानी पड़ी है। मेरी समझमें चार भागमें इसका बटवारा स्वाभाविक, ठीक और आवश्यक था। एक वर्णमें पुनः विभाजन कभी कभी सुविधाजनक और आवश्यक हुए हैं पर अधिकतर उनसे हानि और विपत्ति ही हुई है। इसलिये वे पुनः एकमें जितनी जल्दी मिल जायं उतना ही अच्छा है। वर्णाश्रम धर्मका नाश और विकास भीतर ही भीतर सदा होता आया है और होता जायगा। सामाजिक दबाव और जन साधारणका मत इस प्रश्नपर पूर्णतया विचार कर सकता था। पर मैं उस आवश्यक और प्रधान विभाजनके नाशका कट्टर विरोधी हूं। वर्णाश्रम धर्मकी स्थापना असमानतापर नहीं हुई है। इसमें ऊंच नीचका कोई प्रश्न नहीं है और जहां कहीं मद्रास और महाराष्ट्रमें इस तरहके प्रश्न उठते हैं वहां इस तरहके भावोंके दबानेकी चेष्टा होनी

चाहिये पर चूंकि उसके अन्तर्गत कुछ इस तरहकी बुराइयां आ गई हैं इससे उसे मिटा देनेकी योजना तो कोई उचित उपाय नहीं प्रतीत होता और न इसमें तर्क ही है। इसमें सुधार करना अति सहज काम है। उदारताके भाव—जिनका इस समय इस देशमें प्रबल वेगके साथ प्रचार हो रहा है—इस वर्णाश्रम धर्ममेंसे ऊंचनीचको भावसे अब शीघ्रताकर दूर कर देगा।

उदारताके भाव किसी कलके पुर्जे नहीं कि आप उन्हें बस घुसकर ठीककर देंगे और उनकी कल बदलकर पहनादेंगे। बिना हृदयमें परिवर्तन हुए कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता। यदि जात पातकी व्यवस्था उदारताके भावको फैलानेमें बाधक हो रही है तो पांच धर्मोंकी मौजूदगीको इससे भी अधिक बाधा उपस्थित कर सकती है अर्थात् इस समय भारतमें हिन्दू, इसलाम, ईसाई, यहूदी और जोरोस्ट्रियन पांच धर्म प्रचलित हैं। वर्णाश्रम धर्मके मुकाबिले इनसे कहीं अधिक बाधा पहुंच सकती है। स्वतन्त्रताके भावके प्रचारमें क्या बाधा पड़ सकती है मेरी समझमें नहीं आता। यदि इस समय हिन्दू मुसलमानको या अन्य धर्मावलम्बीको अपना सगा भाई बनानेको तैयार हैं तो मेरी समझमें कोई कारण नहीं कि वह अपने देश भाईको भी उसी भावसे न देखे और उसके साथ भी वही व्यवहार न करे।

एक महाशयने लिखा है कि हमें वर्ण व्यवस्थाको तो उठा देना चाहिये पर यूरोपकी भांति वर्ण व्यवस्था मान लेनी चाहिये। उनका तात्पर्य यह है कि वर्ण-व्यवस्था परम्परागत नहीं होनी

चाहिये। मेरी यह धारणा है कि परम्परागत कानून अनन्त कालसे चला आ रहा है। इस तरहके नियमको तोड़ने या उलट फेर करनेकी कोई भी चेष्टा अशान्ति और उपद्रव अवश्य कर देगी। मेरी समझमें तो एक ब्राह्मणको जन्मसे लेकर मरण तक ब्राह्मण समझनेमें बड़ा लाभ है। यदि वह अपना व्यवहार और आचार विचार ब्राह्मणोंकासा नहीं रखता तो उसकी मर्यादा आपसे आप ही लुप्त हो जायगी और लोग उसकी जिस तरह प्रतिष्ठा कर रहे हैं नहीं करेंगे। अनुमान कीजिये कि एक न्यायालय ऐसा खुल गया जहां दण्डकी व्यवस्था ऊपर चढ़ाने और नीचे उतार देनेकी है। आपही समझिये इसमें कितनी कठिनाई उपस्थित होनेकी सम्भावना है। यदि हिन्दू धर्मके अनुसार हमें यह विश्वास है कि हमारा पुनः जन्म होगा और अपनी क्रिया और कर्मके अनुसार हम ऊपर या नीचेकी योनिमें उत्पन्न होंगे तो ब्राह्मणको जो अपना कर्म धर्म ठीक तरहसे नहीं करता यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि दूसरे जन्ममें वह किसी नीच योनिमें ढकेल दिया जायगा और नीच जातिका जो व्यक्ति उत्तम काम करता दिखाई देगा वह ब्राह्मण योनिमें उत्पन्न होगा।

इस उदारता और स्वतन्त्रताके भावके प्रचारके लिये मेरी समझमें असवर्ण-विवाह सहभोज उतनी आवश्यक बातें नहीं हैं। चाहे कितने भी उदार भाव और स्वतन्त्रताके विचार लोगोंमें क्यों न प्रचलित हो जायं पर इससे यह बात कभी

नहीं आ सकती कि लोगोंके आचार-विचार और रीति रिवाज सदा एक तरहके हो जायंगे। विभिन्नताओंमें ही हमें मेलकी स्थापना करनी होगी। यदि कोई आदमी संसारमें प्रत्येक व्यक्तिके साथ [खानापीना स्वीकार] न करे तो मैं उसे दोषी नहीं समझ सकता और न उसे कोई बुराई ही समझता हूं। हिन्दू धर्मके अनुसार भाई भाईमें वैवाहिक संबन्ध नहीं स्थापित हो सकता। पर इस रुकावटसे उसके संबन्धमें किसी तरहका विच्छेद नहीं उपस्थित होता बल्कि इसके विपरीत इससे संबन्ध बढ़ता ही है और यह और भी दृढ़ या पुष्ट होता है। वैष्णवोंके घरमें हमने देखा है कि मातायें घरके साधारण पात्रोंका प्रयोग नहीं करतीं तो इससे उनके संबन्ध या प्रेममें किसी तरहकी कमी नहीं पड़ जाती। इस तरहके तालीमकी रुकावट किसी तरहकी बुराई नहीं उपस्थित करता। पर यदि इनका प्रयोग इतना खींच कर किया जाता है कि उनकी सीमाको भी लांघनेकी व्यवस्था की जाती है तो इससे हानि होनेकी सम्भावना उपस्थित होती है। पर ज्यों ज्यों समय बीतता जा रहा है और नई आवश्यकता बढ़ती जाती है उसीके अनुसार अन्तर्जातीय भोजन, खानपान तथा विवाह शादीके नियमोंमें अवश्य परिवर्तन हो जायगा।

एक तरफ तो मैं प्राचीन वर्णव्यवस्थाके अनुसार वर्णाश्रम धर्मके चार भागमें बटवाराको उचित और आवश्यक समझता अपहलेकी भांति सदा इसका प्रतिपादन करनेके लिये

तैयार रहता हूं पर साथ ही दूसरी तरफ मेरा यह भी विश्वास है कि अछूतके प्रश्नसे भारतको घोर हानि उठानी पड़ रही है और यह मान व समाजके प्रति घोरतम अन्याय है। यह आत्म-संयमका कोई सिद्धान्त या निशानी नहीं है पर इससे व्यक्त होता है कि लोगोंके हृदयमें आत्म उच्चताका प्रबल भाव उत्पन्न हो गया है और वही इस तरहके आचरणका जिम्मेदार है। इससे मानव समाजका कोई हित नहीं हुआ है बल्कि इसने मानव समाजके उतने अंशको नीचे दबा दिया है जो विद्या और बुद्धिबलमें हमारे समान हो सकते हैं और जीवनके अनेक अंशोंमें देशकी बड़ी ही उत्तम सेवा कर रहे हैं। इस पापसे भारत अपना पिण्ड जितना ही जल्दी छुड़ावेगा उसको उतना लाभ होगा। यदि हिन्दू धर्म अपनी उच्च मर्यादा कायम रखना चाहता है तो उसे इस काममें विलम्ब नहीं करना चाहिये। जहां तक मैं जानता हूं इसके पक्षमें कोई भी शास्त्रीय उक्ति नहीं है और यदि इस तरहके पापाचार रोकनेके लिये कोई अस्पष्ट और अनर्गल प्रमाण उपस्थित भी कर दिये गये तो मैं उन्हें इनकार करनेके लिये तैयार हूं। इस तरहके पापके समर्थनके लिये इस तरहके सन्देह जनक पापाचार काममें नहीं लाये जा सकते। आत्म-निर्णय तथा सुदीर्घ और शान्ति पूर्वक विचारके सामने इसके विपक्षमें किसी भी युक्तिको स्वीकार करनेके लिये मैं तैयार नहीं हूं।

घृणा और विद्वेष

(नवम्बर १७, १९२१)

तंजोरसे एक संवाददाताने लिखा है। "हम दो भाई हैं। हमारी जाति ब्राह्मण है। बेकार बैठे रहनेके बनिस्बत कुछ काम करना हम लोगोंने उचित समझा। तदनुसार हम लोगोंने हल उठाया और खेत जोतना आरम्भ किया। इससे हमारे गांववाले बिगड़ गये और हमें जातिसे निकाल बाहर किया। पर हम लोग अपने निश्चयपर अटल रहे। इसके थोड़े ही दिन बाद कुम्भकोनमके शंकराचार्य हमारी तरफ भ्रमण करने आये। हम दोनों भाई नैवेद्य लेकर उनके पास गये। उन्होंने हमारा नैवेद्य लेना स्वीकार नहीं किया। इसका कारण यह बतलाया गया कि हम लोगोंने जीविकाके लिये मजूरी करना आरम्भ किया है। पर हमलोग इससे जरा भी विचलित या विरक्त नहीं हुए हैं। मैं इस दृढ़ताकी सौ बार प्रशंसा करता हूं। यदि कोई जालिम समाज अपनेमेंसे किसीको निकाल दे तो उसे इसपर हर्ष मनाना चाहिये क्योंकि उसमें विना किसी गुणके हुए उसके साथ इस तरहका व्यवहार नहीं किया जा सकता था। यदि कोई यह कहे कि ब्राह्मणको हल नहीं जोतना चाहिए तो मैं यही कहूंगा कि यह वर्णाश्रम धर्मको चिट्ठी निकालना है और श्रीमद्-भगवद्गीताके वाक्योंकी अवज्ञा करना है। वर्णाश्रम धर्मके

अनुसार प्रत्येक जातिके लिये जो कर्म बन्धन निश्चित कर दिये गये हैं उनमें यह भाव कहीं नहीं है कि दूसरा व्यक्ति उसको नहीं ग्रहण करे। क्या वीरकर्म क्षत्रियोंका विशिष्ट अधिकार हो गया है और ब्राह्मण उसे नहीं कर सकता। क्या गोरक्षाका भार सबपर बराबर नहीं है? क्या कोई भी हिन्दू गोमाताकी रक्षाके लिये उदासीनता दिखलाकर भी हिन्दू कहलानेका दावा कर सकता है या हिन्दू होनेका अभिमान रख सकता है? पर मुझे लिखते आश्चर्य होता है कि मुझे अभी हालमें ही मद्रास प्रान्तसे एक पत्र मिला है जिसमें साफ शब्दोंमें लिखा है कि गोरक्षाका भार एकमात्र वैश्यों पर है, इसके लिये और किसीको कुछ नहीं करना है और न किसीपर किसी तरहका भार है। जब हम लोगोंमें इस तरहके घृणा और विद्वेषके भाव भरे हैं तो हमें उचित है कि हम कोई ऐसा ही काम करें और सुधारकी कोई ऐसी योजना करें जिसकी असलियतका पता समय आपसे आप ही बता देगा। यदि प्रेम और दृढ़ताके साथ काम करें तो समयपर इस तरहका सभी विरोध दूर हो जायगा। इस-लिये सुधारकोंको उचित है कि वे न तो किसी तरहकी शिका-यत करें और न क्रोध प्रगट करें।

वर्ण और जाति

(दिसम्बर २६, १९२०)

मनुष्य सामाजिक जीव है। इसलिये किसी तरहके समाज संगठनकी योजना उसे करनी ही पड़ती है। हमलोगोंने अपने देशमें इसका स्वरूप वर्णाश्रम धर्म स्थापित किया है। उसी तरह यूरोपवालोंने जातिकी स्थापना की है। पर इन दोनों-मेंसे एकमें भी गृहस्थीके प्रतिरूप किसी तरहका संगठन नहीं है। गृहस्थीका संगठन ईश्वरने किया है और यही प्राकृतिक संगठन है। यदि वर्णाश्रम धर्मसे समाजमें कुछ बुराई आ गई है तो जातिधर्मसे कम बुराई नहीं आई है। स्वामी विवेकानन्दने इसी व्यवस्थाका वर्णन करते हुए कहा था:—'यदि यहां विधवाओंकी आहके शोले घर घरसे निकलते हैं तो वहां अधिक उमर तकके अविवाहित युवकोंकी आहें आसमानको झुलस रही हैं।" समाज सुधारक इसके लिये जो कोई भी युक्तियां निकालते हैं उन्हें देखकर यही कहना पड़ता है कि जाति धर्म समाजका स्वाभाविक विभाजन नहीं है।

यदि जातिधर्मसे किसी तरहका सामाजिक लाभ प्राप्त है तो वर्णाश्रम धर्मसे उससे कम नहीं प्राप्त है। साथ ही साथ वर्णाश्रम धर्ममें एक गुण और है कि उसकी व्यवस्था धन दौलत और समृद्धिके अनुसार नहीं हुई है। संसारका इतिहास प्रगट

करता है कि रुपया ही विनाशकी जड़ है। रुपयेके प्रलोभनमें पड़कर गृहस्थीका पवित्र संबन्ध भी कलुषित हो जाता है और टूट जाता है। वर्णाश्रम धर्म क्या है, परिवारका वृहद् रूप है। दोनोंका नियंत्रण खून और वंश परम्पराके हिसाबसे होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक लोग इस बातका पता लगानेके फेरमें पड़े हैं कि वंश परम्परा अस्वाभाविक है और जातिधर्म ही सब कुछ है। पर हमारे देशके अनुभवोंका ढेर इनके इस तरहके आविष्कारोंको सदा गलत और भ्रमपूर्ण प्रमाणित करता रहेगा। पर यदि उनकी बात मान भी ली जाय तो भी यही देखनेमें आता है कि वर्णाश्रम धर्मके अन्तर्गत ही इसका पूर्णतया पालन हो सकता है और बिना इसके उसका परिचालन नहीं हो सकता। इस समय अंग्रेज जातियां अपना ही मत सबसे उत्तम समझती हैं। दूसरोंकी बातको माननेके लिये वे तैयार नहीं हैं। यह तो प्रत्यक्ष है कि उनके मतके जो कुछ प्रतिकूल होता है उसका वे हृदयसे विरोध करते हैं। पर भारतीयोंको—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान--इस बातको भलीभांति देख लेना चाहिये कि वर्णाश्रम धर्मकी नींव उच्चताके अहंयुक्त भावपर नहीं अवलम्बित है। इसका आधार भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका भिन्न भिन्न सदाचार है। सामाजिक संगठन और उन्नतिका यह सबसे उत्तम और बढ़कर समीकरण है।

जिस तरहसे गार्हस्थ्य संबंधका बन्धन उन लोगोंको एक सूत्रमें बांधे रहता है जो वैवाहिक संबंध या अन्य प्रकारसे आपस-

में मिले रहते हैं। उसी तरह वर्णाश्रम धर्म एक दृढ़ समाजमें उन लोगोंको बांध देता है जो उसके अन्तर्गत आजाते हैं। यदि इन दोनोंमें कोई भेद है तो यही है कि एक वंशका नियमन उसके चन्द मेम्बरों द्वारा होता है। इससे उनका निर्णय पहलेसेही निश्चित रहता है, पर समाज एक विस्तृत समुदाय होनेसे तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियोंका समुदाय होनेसे उनके लिये कोई निर्दिष्ट नियम नहीं बना दिया जाता। वह वंश परम्पराके नियमको ही चलाता है और उसेही स्वीकार करता है। चूंकि यह एक तरहकी सदाचारिक पद्धति है इसलिये यदि कोई एक व्यक्ति इसमेंसे निकल कर बाहर हो जानेकी इच्छा रखकर भी इसमें रहनेके लिये बाध्य होता है तो उसके साथ इस तरह कोई अन्याय नहीं किया जाता। हम लोग देखेंगे कि सामाजिक जीवनमें परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होता है और इस तरह वर्णाश्रम धर्मके अनुसार सामाजिक अवस्थामें परिवर्तनोंके अनुसार नये नये दलकी स्थापनाकी सम्भवना है और होती रहती है। पर ये परिवर्तन इतने शान्त और सरल हैं कि इनका कुछ पता नहीं चलता। मानव समाज की समताका इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता है।

वर्णाश्रम धर्मसे ऊंचनीचकी ध्वनि नहीं निकलती। उसमें तो केवल जीवनके भिन्न भिन्न अवस्थाओं और कर्मोंके अनुसार विवेचना की गई है। इस बातको हम स्वीकार करते हैं कि वर्णाश्रम धर्ममें एक तरहकी कुलीनताका भाव अवश्य अवश्य

आ गया है पर इसका दोष हम ब्राह्मणोंके माथेपर नहीं मढ़ सकते। इसके विधायक वे नहीं हैं। जब सभी वर्ग जीवनका एक ही आदर्श और उद्देश्य स्वीकार करके आगे बढ़ते हैं तो इस तरहकी कुलीनताकी स्थापना अवश्यम्भावी है क्योंकि सभी वर्णके लोग उस आदर्शकी ओर एक ही तरह नहीं बढ़ सकते और न समान सफलताही प्राप्त कर सकते हैं। यदि सभी जातियोंका यह विश्वास हो जाय कि आमिष भोजनसे निरामिष भोजन उत्तम है तो निरामिष भोजन करनेवालोंकी श्रेष्ठता अवश्य ही प्रमाणित हो जायगी। भारतवर्षमें अनेक ऐसी जातियां हैं जो सदा एक साथ-साथ मैत्रीके भावसे रही हैं पर उन्होंने खान-पान या विवाह शादी आपसमें कभी भी नहीं की है। हिन्दू और मुसलमानोंका धर्म भिन्न होने पर भी वे एक दूसरेको किसी तरह नीच या ऊंच नहीं समझते। उसी तरह दक्षिणके लिंगायत या ब्राह्मण एक दूसरेके साथ पानी पीना तक स्वीकार नहीं करते। उसी तरह प्रत्येक जातिके लोग अपना खान पान और शादी विवाह अपनी जातिके अन्तर्गत ही रख सकते हैं।

छूआ-छूत, खान-पान तथा विवाह शादी व्यक्तिगत बातें हैं। यदि आप किसीको छूना नहीं चाहते तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि आप उसके साथ सम्पूर्ण संसर्ग छोड़ देना चाहते हैं। इस तरह सामाजिक विकासका समस्त अवसर उसकी दृष्टिसे लुप्त हो जाता है। जो छूतके काबिल हैं वे कथा कीर्तन आदिमें सम्मिलित हो सकते हैं, मन्दिरोंमें प्रवेश कर सकते हैं और इस

तरह स्वतन्त्र धार्मिक शिक्षा पा सकते हैं। मन्दिरोंमें परस्पर प्रेम, और सेवा आदिका विन्यास होता है। इस तरह लोग आधुनिक सभ्यताका फल प्राप्त कर लेते हैं। अछूत जातियां इस लाभसे सदा वञ्चित रहती हैं। गांवोंमें प्रायः वे वस्तीमें अलग रहती हैं। इस तरह उनके जान मालकी रक्षा भी पूरी तरहसे नहीं हो पाती। सामाजिक वटवारेके हिसाबसे मानव समाजके सबसे प्रधान कर्तव्यका भार उनके ऊपर है। पर वर्ण व्यवस्थाके अनुसार समाजके अन्दर जो सुविधाएं प्राप्त हैं उनसे वे सदा वञ्चित रहती हैं। छूआ छूतके प्रश्नने पठित जातियोंको हिन्दू समाजका कतवार बना दिया है। खान पानके प्रश्न पर किसी तरहका सामाजिक मूल्य नहीं रखना चाहिये। यह तो केवल स्थूल शरीरकी आवश्यकताओंकी पूरक है। इससे इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त करके उनके शमनका अवसर मिलता है। सहभोजसे कभी-कभी घनिष्ठता की स्थापना नहीं होते दिखाई दी है। पर इस तरहकी चेष्टाओंको रोकनेका फल यह हुआ कि मनकी प्रवृत्तियोंपर अधिकार बढ़ता गया है और कहीं कहीं अनेक सामाजिक गुणोंकी रक्षा हुई है।

पारसियोंके प्रति

(मार्च २३, १९२१)

बन्धुवर, मैं जानता हूं कि आप लोग वर्तमान असहयोग आन्दोलनमें धीरे धीरे अपना उत्साह बढ़ा रहे हैं। मैं आप लोगोंकी सेवामें इतना निवेदन कर देना चाहता हूं कि इस समय सारा देश टकटकी लगाये आपकी तरफ देख रहा है कि आप इस आत्म शुद्धिके महान व्रतमें—जिसमें आज सम्पूर्ण देश तत्पर है, कितना भाग लेना चाहते हैं। मुझे पक्का विश्वास है कि जिस समय काम करनेका अवसर उपस्थित होगा, आप लोग ठीक और उचित कामको ही हाथमें उठावेंगे। वह समय उपस्थित हो रहा है। इसलिये मैं स्मरणार्थ आप लोगोंकी सेवामें दो शब्द लिख देना उचित समझता हूं।

आप केवल मेरे देशवासी ही नहीं हैं। इस सम्बन्धके अतिरिक्त भी हम आपके साथ अनेक तरहसे बंधे हैं। जिस महापुरुषने जीवनमें उत्साह भरा वह आप ही की जातिका था। इस महा-पुरुषका नाम दादा भाई नौरोजी था।

जिस समय मैं और किसी नेताको नहीं जानता था, वही मेरे पथ प्रदर्शक और सञ्चालक थे। उन्होंने राजनीतिमें मेरा प्रवेश कराया। १८८६ में जिस समय मेरी अवस्था अधिक नहीं थी उन्होंने मुझे कार्यक्षेत्रका मार्ग दिखलाया। १८९२ में मैं एक राज्यके पोलिटिकल एजेंटके साथ संग्राम छेड़ना चाहता था। उस समय

उन्होंने ही मेरी जवानीके जोशको रोका और मुझे अहिंसाकी प्रथम शिक्षा दी। उन्होंने मुझसे कहा था कि यदि तुम भारतमाताकी सेवा करना चाहते हो तो व्यक्तिगत क्षतिपर किसी तरहकी भावना मत प्रकट करो। दक्षिण अफ्रिकामें रुस्तमजी गुरकोदू नामक पारसी व्यवसाई मेरे घनिष्ठ मित्र और मुवक्किल थे। उन्होंने सार्वजनिक सेवाका व्रत बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया। मेरे साथ प्रथम जेल यात्रियोंमें अपने पुत्र सहित वे मेरे साथी थे।

जिस समय मैं जनता द्वारा आहत किया गया था, उन्होंने ही मुझे शरण दी और इस समय भी वे मेरे असहयोग आन्दोलनमें पूर्ण योग दे रहे हैं। अभी हालमें ही उन्होंने ४० हजारका दान किया है। मेरी समझमें इस समय भारतकी स्त्रियोंमें प्रमुख एक पारसी रमणी हैं। उसका हृदय इतना सरल और दयापूर्ण है कि संसारको वह अपनी ओर खींच लेती है। उसकी मैत्रीको मैं अपना गौरव समझता हूं। मुझे इस विवरणको बढ़ाते समय बड़ा ही हर्ष होता है क्योंकि इसके साथ उन पवित्र स्मृतियोंका संबन्ध है, जिनका मुझे बड़ा ही अभिमान है। पर मैंने इतना साधारण विवरण दिया है और मुझे आशा है कि उस विवरणसे आप मेरे पत्रके अभिप्रायको समझ जायेंगे।

आपकी जाति बड़ी सतर्क है। आपका संबन्ध भी दृढ़ है। आप लोग किसी भी आन्दोलनमें भाग लेनेके पूर्व उसकी दृढ़ता और उपयोगिताकी जांच भली प्रकारसे कर लेते हैं। पर आप-

को अधिक सचेत होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस बातका भय है कि कहीं आपकी व्यापारिक सभ्यता आपको अपने अन्य देश भाइयोंकी ओरसे उदासीन न कर दे।

ताताके वंशमें राकफेलर वंशके भाव भर रहे हैं अर्थात् धनके अभिमानसे उन्हें अपने गरीब भाइयोंका ध्यान भूलता जा रहा है। भारतको व्यवसायिक राष्ट्र बनानेके लिये वे लोग गरीबोंको सम्पत्ति हड़पते जा रहे हैं। इसका जो परिणाम होगा उसका स्मरण कर मैं कांप उठता हूं। पर मुझे विश्वास है कि यह अस्थायी घटनायें हैं। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि आपको दिखला देगी कि इस तरहके व्यवसायका कैसा हानिकर परिणाम हो सकता है। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि इस बातको सहजमें ही समझ लेगी कि भारतके लाभके लिये यह आवश्यक नहीं है कि इसकी सम्पत्ति चन्द लोगोंके हाथोंमें आ जाय बल्कि भारतके कल्याणके लिये आवश्यकता इस बातकी है, कि यह पूंजी उन साढ़े सात करोड़ गांवोंमें बराबर बराबर बांटी जाय जिनकी लम्बाई तो १९०० लाख मील है और चौड़ाई १५०० लाख मील है। इससे मुझे पूरी आशा है कि आप केवल समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और समुचित समयके उपस्थित हो जानेपर आप भी उन सुधा-रकोंका साथ देंगे जो भारतको साम्राज्यवाद और पूंजीवादसे स्वतन्त्र करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं।

पर एक बात ऐसी है जिसके लिये समयकी प्रतीक्षा करना पाप है। इस समय भारतमें मादक वस्तुओंके विरुद्ध हवा बह

चली है। लोग अपनी इच्छासे ही इसका विरोध कर रहे हैं। समाजमें इस तरहके भाव उत्पन्न हो रहे हैं जिसके द्वारा शराबखोरी एक तरहका पाप समझा जायगा। अनेक पारसी ऐसे हैं जो केवल शराब बेचकर ही अपनी जीवन-यात्रा करते हैं। यदि आप शराबके विरुद्ध इस आन्दोलनमें सहयोग दें तो बम्बई प्रान्तमें इस तरहके पापका नाश हो सकता है। भारतकी सभी प्रान्तीय सरकारें इस आन्दोलनके मार्गमें बाधा उपस्थित कर रही हैं और इसकी उन्नति रोकनेकी चेष्टा कर रही है क्योंकि इसके कारण सारी आबकारीकी आमदनी मारी जानेकी संभावना है। ऐसी दशामें आप किसका साथ देना चाहते हैं। राजाका या प्रजाका। अभी तक बम्बई सरकार इस आन्दोलनसे नहीं घबराई है। पर यह संभव नहीं कि यह आबकारी विभागकी आमदनीको नष्ट होते देखेगी। इसलिये आपको किसी निर्णयपर तुरत पहुंचना चाहिये। मैं नहीं जानता कि आपकी धर्म पुस्तकोंमें शराबके बारेमें क्या लिखा है। जिस पैगम्बरने भलेको बुरेसे अलग किया है और जिसने बुराईके ऊपर भलाईकी प्रतिष्ठा की, उसने इस संबन्धमें जो कुछ कहा होगा उसका सहजमें अनुमान कर लिया जा सकता है। आपके धार्मिक विश्वास के अलावा भी आपके सामने यह प्रश्न उपस्थित है कि आप क्या करेंगे। खड़े होकर इस आन्दोलनमें योग दान करेंगे अथवा निरपेक्ष होकर इसकी गति देखेंगे। मुझे पूरी आशा है कि आप जैसी व्यवहारिक जाति इस आन्दोलनमें

पूर्ण योगदान देगी और इस आन्दोलनको सफल बनावेगी जो संसारमें अपना सानी नहीं रखती ।

मुलशीमें सत्याग्रह

(अप्रेल २७, १९२१)

मेरा हृदय इन गरीब जातियोंके साथ है। मैं चाहता हूं कि ताता वंशके लोग कानूनी दावपेचकी बातें छोड़ देंगे और जनताके साथ उनके मतके अनुसार विचार करेंगे और उनकी इच्छाके अनुकूल किसी निर्णयपर पहुंचेंगे। लैण्ड आक्विजिशन कानूनका मुझे भी कुछ अनुभव है। मुझे कमसे कम इस तरहके ८० अभियोगोंकी पैरवी करनी पड़ी है। उन अवस्थाओंमें लैण्ड अक्विजिशनका प्रयोजन व्यवसायिक विकास नहीं था बल्कि अस्वस्थता थी। मैं जानता हूं कि जिनकी भूमि हर ली गई है उन्हें पूरा हरजाना नहीं दिया गया। ताता कम्पनी भारतवर्षके लिये जो लाभका साधन तैयार कर रही है, उसका क्या लाभ है यदि वह लाभ एक भी गरीब भारतवासीकी आत्माको दुःख देकर प्राप्त हुआ है। इस समय भारतवासियोंकी जन संख्यामेंसे यदि साढ़े तीन करोड़ मनुष्य मार दिये जायं और उनके मृत शरीरका उपयोग खादके रूपमें किया जाय तो इससे मानव समाजका अतिशय कल्याण होगा! गरीबी और बीमारी

की समस्या बहुत कुछ हल हो जायगी और उन तीन करोड़ मृत आदमियोंकी सन्तति आराम तथा चैनसे अपना दिन काटेगी। पर इस तरहकी सलाह केवल पागल ही दे सकता है। यह प्रश्न भी इसी तरहका है। यदि इतने आदमियोंकी सम्पत्ति जबरदस्ती छीन ली जा रही है, उनके स्वत्वोंपर भीषण प्रहार किया जा रहा है, जिसपर उन्होंने जन्म जन्मान्तरसे अपनी सत्ता कायम रखी है, उससे उन्हें अलग किया जा रहा है तो यह उसीके बराबर या उससे भी खराब है। जो लोग भारतके भाग्यके निर्णायक हो रहे हैं, जिनके हाथमें भारतकी रक्षाका भार है, वे भारतकी अधिक सेवा कर सकते हैं, उसका सच्चा उद्धार कर सकते हैं यदि वे अपने भाइयोंकी मान रक्षाका यत्न करते और उनके हृदयके भावोंकी समुचित रक्षा करते। सत्याग्रहियोंका कर्त्तव्य स्वर्णाक्षरोंमें लिखा है। यदि विषय अन्यायपूर्ण है तो सत्याग्रह नहीं चल सकता। यदि सत्याग्रही दृढ़ नहीं हैं, अन्त तक तपस्या और यातना सहनेके लिये तैयार नहीं हैं तो न्यायपूर्ण मांगमें भी सत्याग्रह करना निष्प्रयोजन है और यदि हिंसाका लेशमात्र भी प्रयोग किया गया तो न्यायपूर्ण मांगमें भी सत्याग्रह हानिकर होगा। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी तरह हिंसाका भाव व्यक्त नहीं करना चाहिये। यदि मांग न्यायपूर्ण है और यातना सहनेके लिये पूरी दृढ़ता है और अहिंसाका भाव किसी भी तरह व्यक्त नहीं किया जाता तो विजय अवश्यम्भावी है।

पारसियोंको क्या करना चाहिये

(जून २२, १६२१,)

टाइम्स आफ इण्डियामें किसी समालोचकने लिखा है :—

राष्ट्रीय शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है, बालकोंकी शिक्षाका कोई उपयुक्त प्रबन्ध नहीं है ऐसी अवस्थामें क्या पारसियोंको उचित है कि वे अपने बालकोंको सरकारी अथवा सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षालयोंसे हटा लें? क्या पारसी वकीलोंको वकालत छोड़ कर भूखों मरना चाहिये? क्या अपने उन्नत व्यवसायको छोड़ कर पारसी समुदाय, चरखा कात-कर तीन आना रोजकी मजूरी करनेपर उतारू हो जाय? इस तीन आनेमें तो वे अपने सोडाका भी खर्च नहीं चला सकेंगे। अन्य खर्चोंकी तो चर्चा ही न कीजिये। क्या पारसियोंको अपनी वर्तमान पोशाकको छोड़ कर अपने पूर्वजोंकी पोशाक पहननी चाहिये और उसी पुराने जमानेके पायजामेको हथियाना चाहिये, जिसकी आस्तीन (मोहरी) इतनी चौड़ी होती थी कि उसमें दस बारह मुर्गियां एक साथ समा जा सकती थीं। क्या इस तरह समयकी प्रगतिको उलट देना संभव है? क्या मिस्टर गांधी इन प्रश्नोंका समुचित उत्तर देनेकी कृपा करेंगे?

पारसी जाति शिक्षामें सबसे चढ़ी बढ़ी है। उसे बालकोंको शिक्षालयोंसे उठा लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उन्हें केवल

इतना कर डालना चाहिए कि डिग्रियोंके लिए उनके चित्तसे मोह और प्रलोभन निकल जाय। वे लोग यह भी कर सकते हैं कि अपने सभी स्कूलोंको सरकारी सवन्धसे अलग कर लें। उनके पास धन भी इतना पर्याप्त है कि वे अपनी शिक्षाका प्रवन्ध अच्छी तरहसे कर सकते हैं। यदि पारसी वकील आज वकालत छोड़ दें तो व्यवसायमें उनके लिये पर्याप्त साधन हैं। पारसी जाति व्यवसाय-दक्ष भी है। यदि राष्ट्रीय काममें वे योग-दान न भी करना चाहें तो वे वकालत छोड़ कर मजेमें रह सकते हैं। इस तरह पारसी वकालत छोड़ कर ही देशकी सच्ची सेवा कर सकते हैं। जिस किसी पेशेसे सरकारका संबन्ध नहीं है उस पेशेको त्यागनेके लिये किसी भी पारसीसे नहीं कहा जाता और न उस पेशेको छोड़नेकी कोई आवश्यकता है। और न उनसे यही कहा जाता है कि इस तरहके आमदनीवाले पेशोंको छोड़कर चरखा ग्रहण करें। पर प्रत्येक पारसीको उचित है कि वह अपना फालतू समय राष्ट्रकी रक्षाके लिये चरखा कातनेमें लगावे। इस तरह पारसियोंकी विलासिता त्यागका कोई प्रश्न नहीं उठता। पर जो पारसी मादक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे उसे त्याग दें क्योंकि इससे राष्ट्रका कल्याण और उनकी भी भलाई है। पारसियोंको अपनी पोशाक छोड़नेकी कोई जरूरत नहीं है। केवल उन्हें चरखेका काता और करघेका बिना कपड़ेका प्रयोग करना चाहिये। पर वे यदि अपने पूर्वजोंकी

सादगीको अखतियार करें तो इससे उन्हें किसी तरहकी क्षति नहीं उठानी पड़ेगी। प्राचीन समयमें पारसी समुदाय जो पोशाक पहनते थे वह भारतीय जलवायुके सर्वथा अनुकूल था। यूरोपियन पहनाव एकदम भद्दा है और भारतकी जलवायुके अनुकूल नहीं है। भारतमें रहनेवाले अंग्रेज लोग भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि उनका पहनावा भारतीय जलवायुके अनुकूल नहीं है पर उनकी जिद् और अदूरदर्शिता उन्हें इस पहनावेको छोड़ने नहीं देती। यह बात मैं साहसके साथ कह सकता हूं कि विचारशून्य नकल उन्नतिकी निशानी नहीं है, और न प्राचीनताकी ओर झुकनेको हम समयकी प्रगतिका उलट फेर कह सकते हैं। यदि अनजानकारी या शीघ्रतासे हमने कदम आगे बढ़ा दिया है, और समझकर उसे हटा लिया तो उसे हम उन्नति अवश्य कह सकते हैं। यह तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि विगत पचास वर्षोंमें हमने कई बुराइयां की हैं इसलिये आगे बढ़नेके पहले हमें उतने पीछे अवश्य चला जाना होगा जहां पहुंच कर हम असली स्थिति पर पहुंच सकते हैं। हम लोगोंने रास्ता खो दिया और भटक गये। इसलिये मैं टाइम्सके लेखकको तथा अन्य पारसी भाइयोंसे इस बातकी प्रार्थना करूंगा कि सब मिलकर फिर उसी स्थानपर पहुंचनेकी चेष्टा करें जहांसे हम भ्रममें पड़कर गलत मार्गपर चल पड़े थे।

ईसाई और असहयोग

(अगस्त १८, १६२१)

उत्तर बसरेसे एक हिन्दुस्तानी ईसाईने लिखा है:—

मुझे यह लिखते खेद होता है कि आप ईसाइयोंकी गणना भारतीयोंमें नहीं करते। मैंने देखा है कि आप यंग इण्डियामें हिन्दू, मुसलमान और सिक्खोंकी बराबर चर्चा करते हैं पर ईसाइयोंका नाम तक नहीं लेते। मैं आपको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम ईसाई लोग भी भारतके ही निवासी हैं और भारतीय मामलोंमें उतनी ही दिलचस्पी रखते हैं जितनी कोई अन्य जाति रखती है। मैं यह भी बात दावेसे कह सकता हूं कि असहयोग आन्दोलनको जिस तरह ईसाइयोंने अपनाया है अन्य किसीने नहीं अपनाया है। मुझे अपनी मातृभूमिके लिये बहुत ही अभिमान है और मैं पूर्ण विश्वासके साथ लिख सकता हूं कि मैं सच्चा और कट्टर असहयोगी हूं। मैं मेसोपोटामियाके भारतीयोंकी अवस्थाका कभी कभी समाचार आप तक पहुंचाता रहूंगा।

मैं इस संवाददाता तथा अन्य भारतीयोंको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूं कि असहयोग जातपात या धर्मके किसी प्रकारके भेदभावका समर्थक नहीं है। जो कोई इसमें सम्मिलित होना चाहते हैं सबको इसमें स्थान है। बहुतसे

भारतीय ईसाइयोंने तिलक स्वराज्य फण्डमें दान दिया है, कितने ही भारतीय ईसाई असहयोग आन्दोलनमें सबसे आगे बढ़े हैं। हिन्दू मुसलमानोंकी अलग चर्चा इस कारण की गई है कि वे एक दूसरेको सदा अपना शत्रु समझते आए हैं। इसी तरह जहां कहीं अन्य जातियोंके लिये कोई विशेष अवस्था उत्पन्न हुई है वहीं उसकी चर्चा की गई है।

(सितम्बर २२, १९२१)

एक ईसाई छात्र लिखता है:—हम लोग ईसाई छात्र हैं तो भी हम आपको अपना नेता मानते हैं कि हम लोग आपसे सीखें कि भारतकी क्या माँगें हैं और आध्यात्मिक परम्परा क्या है। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि आप हमारे पास पाश्चात्य ईसाई धर्मपर अपना आलोचनात्मक विचार प्रगट करें और संगठन उपासना आदिके लिये हमें उचित मार्ग बतावें।

इस पत्रके लेखकने इस बातपर ध्यान नहीं दिया है वह मुझसे जो बात चाहता है वह मेरी मर्यादाके बाहर है। पर तो भी मुझे यह जानकर अतिशय प्रसन्नता होती है कि भारतीय ईसाई राष्ट्रीय आन्दोलनमें अधिकाधिक भाग लेने लग गये हैं। मैं जानता हूं कि सैकड़ों गरीब छात्रोंने बम्बईमें तिलक स्वराज फण्डमें अपनी योग्यताके अनुसार दान दिया है। मैं जानता हूं कि अनेक शिक्षित और समझदार ईसाई अपना बहुत

सा समय राष्ट्रीय काममें बिता रहे हैं। इसलिये मैं इस पत्रका उत्तर अपनी योग्यताके अनुसार दे देना चाहता हूं। यद्यपि यह उसकी इच्छाके अनुकूल नहीं हो सकता।

भारत सभी धार्मिक सम्प्रदायोंको अपने हृदयमें स्थान देनेको तैयार है। उसकी आध्यात्मिक परम्परा "सादा रहन और ऊंचा विचार है"। पश्चिमी ईसाई जिस तरह काम कर रहे हैं वह ईसामसीहके सिद्धान्तोंसे कहीं अलग भटक गये हैं। यदि ईसामसीह आज जीते होते तो पाश्चात्य आचार तथा रीति भाँतिको कभी भी स्वीकार या पसन्द न किये होते। यदि भारतीय ईसाई केवल उस शिक्षाका अवलम्बन करें जिसे ईसा-मसीहने उस पर्वतपर अपने अनुयायियोंके समक्ष दिया था तो वे पापाचारसे बच जायंगे। उस समय वे देखेंगे कि कोई भी धर्म वृथा नहीं है और यदि सब कोई अपने अपने धार्मिक विश्वासके अनुसार आचरण करें तो फिर किसीको किसी संगठन आदिकी चिन्ता नहीं रह सकती। फरोहके लोग संग-ठन आदिको मानते थे पर वे धर्मकी ओटमें अत्याचार और सङ्कुचित हृदयताका प्रचार कर रहे थे। इसीलिये ईसामसीहने उसे उठाया। यदि हम अपना जीवन पवित्र और शुद्ध बनाकर रखना चाहते हैं तो हमें दो बातकी आवश्यकता है, अच्छी बातोंके साथ सहयोग और बुरी बातोंके साथ असहयोग। चाहे वह जीवन हिन्दू जीवन हो, मुसलमान जीवन हो, या ईसाई जीवन हो।

राष्ट्रीय झण्डा

समस्त राष्ट्रोंके लिये झण्डेकी जरूरत होती है। निस्स-न्देह यह एक प्रकारकी मूर्त्ति पूजा है। परन्तु इसका अन्त कर डालना महापाप है। झण्डा आदर्शका द्योतक है। यूनियन जैकके फहराते ही अंग्रेजोंके हृदयमें जो भाव तथा उमंगे उठती हैं उसका पूर्ण उल्लेख करना कठिन है। तारा और रेखेका अर्थ अमेरिकनोंके लिये अनमोल है। तारा और अर्द्धचन्द्रसे मुस-लमानोंकी तबीअत जोशसे फड़क उठती है। अतएव हम भारत-निवासी—हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, ईसाई इत्यादिके लिये भी एक ऐसा झण्डा होना आवश्यक है, जिसके हेतु हम मरने जीनेको प्रस्तुत रहें।—मछलीपट्टमके राष्ट्रीय कालेजके मि० पिंक वेंकैय्याने कई वर्ष पूर्व सर्वसाधारणके सम्मुख एक छोटीसी पुस्तिका इस सम्बन्धकी उपस्थित की थी जिसमें अन्यान्य देशोंके झण्डोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने भारतके लिये भी एक राष्ट्रीय पताकाका नमूना तैयार किया था और आज चार वर्षसे उन्होंने जिस अदम्य उत्साह और उमंगसे इस प्रश्नको कांग्रेसके प्रत्येक अधिवेशनमें उपस्थित किया है, उसकी प्रशंसा मैं मुक्त-कण्ठसे करता हूं। परन्तु उस नमूनेमें मैंने कोई ऐसी विशेषता नहीं पाई जिससे राष्ट्र नवीन तरंगसे तरंगित हो उठे। इसका यश एक पञ्जाबी ही को मिलना था, जिसके

प्रस्तावने मेरा ध्यान शीघ्र आकृष्ट कर लिया। जालन्धरके लाला हंसराजने यह प्रस्ताव किया कि राष्ट्रीय झण्डेमें चर्खेको स्थान मिले। मैं इस प्रस्तावकी मौलिकता की पूर्ण प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता हूं। मैंने बेजवाड़ेमें उनसे कहा कि आप उसका एक नमूना मुझे तैयार कर दें जिसकी एक तरफ चरखा हो और पीछेकी तरफ लाल (हिन्दूरंग) और हरा (मुसलमानी रंग) हो। उन्होंने अपने अदम्य उत्साहसे तीन ही घंटेमें उपर्युक्त झण्डा मुझे दिया। परन्तु कुछ देर हो जानेके कारण मैं उसे आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीके सामने न रख सका। अधिक ध्यानसे विचार करनेपर मुझे यह उचित जान पड़ा कि पीछेकी तरफ अन्यान्य धर्मके सूचक रंग भी रहें। हिन्दू मुसलमानकी एकता व्यावर्त्तक नहीं, वरन अभिव्यापक है, जो भारतके सभी धर्मोंके अनुयायियोंकी एकताकी परिचायक है। यदि हिन्दू और मुसलमान मेल कर सकते हैं तो उन दोनोंको दूसरे धर्मवालोंसे भी मेल करना होगा। यह एकता भारतके तथा संसारके अन्य धर्म-सम्प्रदायोंकी बाधक नहीं है। इस लिये मेरी राय है कि पीछेकी तरफ सफेद, हरा और लाल तीनों रंग रहें। श्वेत भाग अन्यान्य सभी धर्मोंका सूचक होगा। सबसे निर्बल सम्प्रदायही प्रथम स्थान प्राप्त करेगा, उसके बाद मुसलमानी रंग और सबसे पीछे हिन्दू रंग (लाल) को स्थान मिलेगा। इसका तात्पर्य यह है कि सबल ही निर्बलोंके रक्षकका काम करेगा। इसके अतिरिक्त सफेद रंग शान्ति और पवि-

त्रताका परिचायक भी है। हमारी राष्ट्रीय पताकाका यदि कोई भाव हो तो यही, अन्यथा कुछ नहीं और छोटे तथा बड़ोंमें समानता सूचित करनेके ही निमित्त तीनों ही रंगोंको समान स्थान प्रदान किया जाय।—परन्तु एक राष्ट्रकी तरह भारत केवल चरखेके ही लिये जी या मर सकता है। प्रत्येक भारत महिला चकित पुरुषोंसे कहेगी कि चरखेके लोपके साथ ही भारतका वैभव-सूर्य भी अस्त हो गया। पुनः चरखेकी ध्वनिने भारत महिला तथा जनतामें अपूर्व जागृति डाल दी। जनता इसे नवीन जीवन सञ्चारक समझती है। स्त्रियां इसे अपने जीवन-सर्वस्व सतीत्वका संरक्षक समझती हैं। प्रत्येक विधवा जिससे मुझे भेंट हुई है, इसे एक बिछड़े हुए मित्रकी तरह जानती है। इसका पुनरुद्धार ही सैकड़ों क्षुधातुरोंके कष्टको निवारण कर सकता है। कितनी भी बड़ी औद्योगिक उन्नति १९०० मील लम्बी और १५०० मील चौड़ी चौहद्दीके निवासी भारतके दीन कृषकोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दरिद्रताके प्रश्नको हल नहीं कर सकती। भारत एक छोटा द्वीप नहीं है, यह एक महादेश है जो इंगलैण्डकी तरह सहजमें ही आद्यौगिक देश नहीं बनाया जा सकता और हम लोगोंको संसारकी दोहनकी प्रत्येक स्कीम से मुँह मोड़ लेना चाहिये। हमारी एकमात्र आशा केवल राष्ट्रके दुरुपयोगित समयका सदुपयोग करना ही होना चाहिये जिससे अपनी झोपड़ियोंमें रुईसे कपड़े बनाकर देशके धनकी वृद्धि कर सकें। अतएव, चरखा भारतीय जीवनके लिये जल-

वायुके सदृश ही परमावश्यक है ।—इसके अतिरिक्त मुसलमान भी हिन्दू ही के बराबर इसकी कसम खाते हैं। वस्तुतः मुसलमान इससे हिन्दुओंसे ज्यादा मुस्तैदीसे अपनाते हैं । इसका कारण यह है कि मुसलमान औरतें परदा-नशीन होती हैं और बड़ी आसानीसे दो एक पैसे इसके द्वारा अपने स्वामीकी अल्प आयमें मिला सकती हैं। अतएव चरखा राष्ट्रीय जीवनका अति स्वाभाविक, महत्वपूर्ण और सार्वलौकिक वस्तु है । इसीके द्वारा हम सारे संसारको यह सूचित करते हैं कि हमने भोजनाच्छादनके सम्बन्धमें किसीपर तनिक भी निर्भर नहीं रहनेकी ठान ली है ।—मेरे जैसा जिनका विश्वास हो वे अति शीघ्र अपने घरोंमें चरखेका प्रचार करें और सौर उपयुक्त राष्ट्रीय झण्डेको अपने घरोंमें लगावें। झण्डा खद्दरका हो, क्योंकि भारत मोटे कपड़ेके द्वारा विदेशी बाजारोंसे स्वाधीन हो सकता है। मैं सब धार्मिक संस्थाओंसे यदि वे मेरे तर्कके साथ सहमत हैं, तो यह कहना चाहता हूं कि वे अपने धार्मिक झण्डोंमें इसे रखें । उदाहरणार्थ खिलाफत-झण्डेमें एक छोटी राष्ट्रीय पताका भी उसके ऊपरी कोनेमें बना दी जाय । प्रमाण मापकमें पूरे प्रमाणके चरखेका चित्र होना चाहिए ।

सिक्खोंका रंग

(मई १८, १९२१)

सिक्ख लोगने अभी एक प्रस्ताव पास किया है। उस प्रस्ताव द्वारा उसने मुझसे कहा है कि राष्ट्रीय झण्डेमें सिक्खोंके काले रंगको भी स्थान दिया जाय। अभी एक मित्रने इस प्रस्तावकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। ये मित्र इस बातको भूल गये कि सफेद रंग प्रायः सभी जातियोंका स्वरूप है। हमें प्रान्तीय, जातीय होनेकी तरफ नहीं झुकना चाहिये। मुसलमान और हिन्दुओंका दो भिन्न भिन्न रंग इसलिये नहीं रखा गया है कि उनकी संख्या अधिक है वल्कि उसका प्रधान कारण यह है कि वे अनन्त कालसे अलग रहते चले आ रहे हैं। उनका वैमनस्य और भेद भाव इतना अधिक बढ़ गया है कि विना दो भिन्न रंगोंके उनकी राष्ट्रीयताका व्यक्तित्व स्थापित नहीं हो सकता। जब तक ऐसा नहीं होगा, एक दूसरेका विश्वास भी दृढ़तासे नहीं जम सकता। और इसके विना राष्ट्रीय महत्वकांक्षाकी पूर्त्ति भी नहीं हो सकती। पर हिन्दुओंके साथ सिक्खोंका कभी झगड़ा नहीं रहा है। यदि सिक्खोंको अलग रंग देना है तो फिर पारसी और यहूदी क्यों योंही छोड़ दिये जायँ। इससे मुझे पूर्ण आशा है कि सिक्ख लोग अपने प्रस्तावकी अनुपयोगिता और अव्यवहारिकता भली भांति समझ जायगी।

जिस तरहके राष्ट्रीय झण्डेकी हमने व्यवस्थाकी है उसमें परिवर्त्तन करनेके लिये हमारे पास अनेकों पत्र आये हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकता। दूसरे इन पत्रोंमें ऐसी कोई मार्केकी बात भी नहीं है। कितनोंका रोना है कि इस झण्डेमें कलाका सर्वथा अभाव है। कुछ लोगोंने हिन्दू और मुसलमान रंगको व्यक्त करनेके लिये कुछ सुधार करना चाहते हैं। पर इन लोगोंने प्रधान बातको ध्यानसे उतार दिया है। हम लोगोंको किसी धर्मका रंग नहीं रखना है और हमें राष्ट्रीय झण्डेमें उसी वस्तुको स्थान देना चाहिये जो स्थायी महत्व रख सके। इस तरहका महत्व रखनेवाला एक-मात्र चरखा है। अधिकांशका यही मत है कि चरखेके छोड़नेके साथ ही साथ हम लोगोंने अपनी स्वतन्त्रता खो दी। हम लोग अपनी स्वतन्त्रता तभी स्थापित कर सकते हैं जब हम लोग चरखेको फिर एक बार अपनाकर विदेशी वस्त्रोंका पूर्ण बहि-ष्कार कर दें।

(अगस्त ४, १९२१)

राष्ट्रीय झण्डेमें जिस तरहके रंगकी व्यवस्था की गई है उससे सिक्ख सम्प्रदायमें हलचल मच गई है। वे चाहते हैं कि काला रंगको उसमें अवश्य स्थान दिया जाय क्योंकि सिक्ख जातिका संग्रामिक महत्व है और काला रंग उनका द्योतक होगा। इसकी उपयोगिताकी बात दूर रखिये, इनकी हलचलका कोई कारण भी नहीं है क्योंकि अभी तो झण्डेका प्रश्न विचारार्थ

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने भी उपस्थित नहीं किया गया। और उनके आन्दोलनके कारण मैं इस प्रश्नको कांग्रेस कमेटीके सामने तब तक जाना भी अच्छा नहीं समझता जब तक मैं उन्हें यह बात अच्छी तरह समझा न दूं कि उनकी मांग न्यायपूर्ण और व्यवहारिक नहीं है। उपयोगिताके ख्याल से तो मैं निस्सन्देह यही कहूँगा कि उन्हें अपने इतराज उठा लेने चाहिये। एक रंग अन्य सभी जातियोंके रंगोंका द्योतक है। जो जाति अपना रंग दोसे भिन्न चाहती है वह अपने इस व्यवहार-से यही व्यक्त करना चाहती है कि वह इन दो प्रधान जातियोंमेंसे किसीमें भी मिल जाना नहीं चाहती। यदि हिन्दू और मुसलमानोंके बीच इस तरहका झगड़ा या वैमनस्य न रहा होता तो मैं एक ही रंग रखता। हिन्दुओंके साथ सिक्खोंका कोई विद्वेष नहीं था और मुसलमानोंके साथ उनके झगड़ेका वही रूप था जो हिन्दुओंका था। परस्पर मत भेद या व्यक्तित्व द्योतक करना भूल और भयसे भरा है। हमें जहाँ तक हो एकता ही द्योतित करनी चाहिये। जिस समय उदार मुसलमानोंको सिक्खोंके इस विरोधका समाचार मिला उन्होंने मुझसे कहा कि आप सबके लिये एक ही रंग कर दीजिये। पर मैंने उसे भी अनुचित समझा। लाल और हरे इन दो रंगोंका रखना आवश्यक है। इससे हमारी बढ़ती एकताका पता लगेगा। मैं सिक्खोंकी कठिनाईको समझता हूं। सरकारके खैरख्वाह सिक्ख लोग इस तरहकी अनेक बातें फैला रहे हैं जिससे और उपद्रव खड़ा

हो। इसीलिये सिक्ख लोग डर गये हैं। पर मेरी समझमें उन्हें इसके लिये चिन्ता नहीं करना चाहिये। यदि वे लोग हिन्दू मुसलमानोंके खिलाफ उठायी गयी प्रत्येक बुराइयोंका प्रतिकार करते जायँगे तो उनके मार्गमें किसी तरहकी बाधा नहीं उपस्थित हो सकती। चाहे उनकी संख्या थोड़ी हो या अधिक, उन्हें पूर्ण विश्वासके साथ काम करते रहना चाहिये।

राष्ट्रकी तीन आवाज

(सितम्बर ८, १९२०)

जिस समय मैं बेजवाड़ाकी तरफ दौरा कर रहा था, मैंने राष्ट्रीय आवाजकी ध्वनि सुनी थी। उस समय मैंने कहा था कि व्यक्तिगत नामकी जय घोष न करके आदर्शोंका जय घोष करना अधिक उपयोगी होगा। जो लोग 'महात्मा गाँधी की जय' पुकारते थे अथवा 'मौलाना शौकत अलीकी जय' पुकारते थे, उनसे मैंने हिन्दू मुसलमान एकताकी जय पुकारनेके लिये कहा। यह नियम भाई शौकत अलीने, जो मेरे साथ थे निकाला था। उन्होंने कहा कि यदि हिन्दू मुसलमान एकताकी जय न पुकार कर हिन्दू बन्देमातरम्‌की जय ध्वनि करें और मुसलमान अल्लाह हो अकबरका नाद उठावें तो इससे यही व्यक्त होता है, कि अभी ये लोग पूर्ण एकतासे काम नहीं कर रहे हैं। इसलिये राष्ट्रकी केवल तीन

आवाजें होनी चाहिये। "अल्लाह हो अकबर" इसे दोनों जातियोंको व्यक्त करना चाहिये कि इस विश्वमें ईश्वरके सिवा दूसरा कोई बड़ा जीव नहीं है। दूसरे "वन्देमातरम्"–इससे दोनों जातियोंको भारतमाताके यश गाना चाहिये, या "भारत-माताकी जय" इससे दोनों जातियोंको भारतमाताके सामने सादर शीश नवाना चाहिये। तीसरा "हिन्दू मुसलमान एकताकी जय"— इसके विना न तो भारतमें राष्ट्रीयताकी स्थापना हो सकती है, न भारत विजयी हो सकता है और न हम सच्चे हृदयसे ईश्वरका गुण गान ही कर सकते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि समाचार पत्र इन्हीं तीनों राष्ट्रीय आवाजोंका प्रचार करेंगे और जनताको इसीके प्रयोगके लिये अभ्यस्त करेंगे। ये तीनों राष्ट्रीय आवाज सार गर्भित हैं। पहलेमें प्रार्थनाका भाव भरा है जिसके द्वारा हम व्यक्त करते हैं कि ईश्वरके सामने हम कोई चीज नहीं हैं। इससे पहलेसे हमारी नम्रताका भाव व्यक्त होता है। यह उपासना और श्रद्धाका जय-घोष है। इसलिये इस जय घोषमें प्रत्येक हिन्दू और मुसलमानको भाग लेना चाहिये। अल्लाह हो अकबर अरबी शब्द है। पर इसके प्रयोगमें हिन्दुओंको हिचकना नहीं चाहिये। क्योंकि इस शब्दका अर्थ केवल निर्दोषही नहीं वलिक उत्तम है। ईश्वरकी प्रार्थना सब कोई कर सकता है। उसके लिये कोई इस प्रकारका नियम नहीं है कि अमुक भाषामें ही अमुक जातिकी प्रार्थना उस तक पहुंच सकती है। "वन्दे मात-रम्"के स्मरणसे जो भाव हृदयमें उठता है उसके अतिरिक्त इससे

यह भाव निकलता है कि आज भारतवासी एक होकर राष्ट्रीय उत्थानके लिये तैयार हैं। भारत माताकी जयके मुकाबिलेमें वन्दे मातरम्की ध्वनिको ही अधिक पसन्द करूंगा क्योंकि इससे बंगालकी बौद्धिक प्रकर्षताका परिचय होगा। चूंकि हिन्दू मुस्लिम एकता बिना भारतका उत्थान नहीं हो सकता इसलिये हमें हिन्दू मुस्लिम एकताकी जय, कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

इन राष्ट्रीय आवाजोंपर किसी तरहका मत भेद नहीं होना चाहिये, जिस समय कोई भी व्यक्ति इनमेंसे एकका भी नाम लेकर जय घोष करता है अन्य सबको उसीका अनुकरण करना चाहिये और अपना अलग सुर नहीं छेड़ना चाहिये। जो लोग उस जय घोषमें भाग नहीं लेना चाहते वे चुप रहें पर उन्हें यह उचित नहीं है कि जिस समय एक शब्दका जय घोष हो रहा है, बीचमें दूसरा लेकर उठ खड़े हों। अच्छा यह होगा कि जिस रीतिसे इनका क्रम नीचे दिया जाता है उसीके अनुसार इनका जय घोष भी करना चाहिये। इन जय घोषोंको लेकर लगातार शोरगुल भी नहीं मचाना चाहिये। जब कभी कोई प्रधान नेता किसी स्थानसे होकर गुजरता है तो जय घोषकी लगातार जयध्वनिसे आकाश गुञ्जायमान कर दिया जाता है। मेरी समझमें इस तरहके जय घोषसे राष्ट्रका कोई लाभ नहीं होता केवल चिल्लानेवालेके फेफड़ोंका दुरुपयोग मात्र होता है और उन पर अधिक भार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त हमें अपने नेताओंकी अवस्था-विशेष पर भी विचार करना चाहिये। घंटे आध घंटे तक लगा-

तार उसके दिमागको इसी तरहके जय घोषसे खपाते रहना कितना असुविधा जनक होगा। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग आवश्यकता और उपयोगिताकी ओर अधिक ध्यान दें तथा दत्तचित्त हों।

८—अछूत।

अछूतका पाप

(जनवरी १६, १६२१)

यह बड़े सौभाग्यकी बात थी कि अछूतोंके संबंधवाले प्रस्तावको विषय निर्धारिणी समितिने विना किसी विरोधके स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय महासभाने इस प्रस्तावको स्वीकार कर—कि स्वराज्य प्राप्त करनेके लिये हिन्दू धर्मके ऊपरसे यह कलंक मिटा देना अत्यन्त आवश्यक है—बड़ा ही अच्छा काम किया। शैतान तभी तक सफल रहता है जब तक उसके साथी उसकी मदद करते जाते हैं। हम लोगोंपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये वह हम लोगोंकी कमजोरियोंको ही ताकता है और उसीपर आक्रमण करता है। इसी तरह यह सरकार भी हमारी बुराइयों या कमजोरियोंसे लाभ उठाकर ही अपना अभिप्राय सिद्ध करती रहती है। यदि हम लोग इसकी इस तरहकी चेष्टाओंसे अपनी रक्षाका प्रबन्ध करना चाहें तो हमें सबसे पहले अपनी बुराइयोंको छोड़ना होगा। यही कारण है कि हमने असहयोगको आत्मशुद्धिका उपाय बतलाया है। जिस समय आत्मशुद्धिके उस तरीकेमें हम सफल हो गये, उसे पूरा कर डाला, उस समय

आवश्यक सहायताके अभावमें यह सरकार उसी तरह गिर जायगी जिस तरह सूखे स्थानपर मच्छड़ोंकी दाल नहीं गलती।

अछूतोंके साथ जो पापाचार हम लोग कर रहे हैं, क्या उसके लिये हमें उचित दण्ड नहीं मिल रहा है? क्या हम लोगोंने जैसा बोया है वैसा ही नहीं काट रहे हैं, क्या हम लोगोंने अपनेही बन्धु बान्धओंपर डायर और ओडायरकासा अत्याचार नहीं किया है? जिस तरह हम लोगोंने परिया आदि जातिको अपनेसे अलग कर रखा है, उसी तरह ब्रिटिश उपनिवेशों में हम लोग भी बहिष्कृत हैं। हम लोग अपने कुएं से उन्हें पानी नहीं लेने देते। हम लोग उन्हें घोरतम नीच समझते हैं। हम उनकी परछाईं तक बचाते हैं। जिस तरह हम लोग अंग्रेजोंको अपवाद देते हैं उसी तरह परिया भी हमें अपवाद देंगे।

हिन्दू धर्मपरसे इस कलंकको किस तरह मिटाना चाहिये। हमें औरोंके साथ वही व्यवहार करना चाहिये जो हम अपने लिये दूसरोंसे चाहते हैं। मैंने अंग्रेज पदाधिकारियोंसे बार २ कहा है कि यदि आप भारतवासियोंके मित्र और नौकर बनते हैं तो आपको उचित है, कि अपने उस ऊंचे पदसे नीचे उतर आइए और संरक्षकताका दावा छोड़ कर अपनी प्रेमपूर्ण कार्यवाहीसे, कि आप लोग हर तरहसे भारतवासियोंके मित्र हैं और हम लोगोंके साथ उसी बराबरीका व्यवहार कीजिए जिस तरह आप किसी अंग्रेजके साथ करते हैं। पञ्जाबकी दुर्घटनाके बाद उस विषयमें मैंने एक कदम और भी आगे बढाया है और उनसे कहा है कि

आप कृपा पूर्वक अपने दिलको भी बदलिये और अपनी कार-वारयोंके लिये पाश्चाताप प्रगट कीजिए। उसी तरह हम हिन्दुओंको भी उचित है कि जो बुराई हमने की है उसके लिये पश्चात्ताप प्रगट करें। अपने दिलकी प्रवृत्तिको बदलें और जिस शैता-नीके बर्तावके साथ हमने उन्हें दबाया है—जिस बातका कलङ्क हम भारत सरकारके सिरपर मढ़ते हैं—उसके लिये पश्चात्ताप करें। केवल चन्द स्कूलोंको उनके लिये खोल देनेसे काम नहीं चलेगा। हमें उनपर अपना बड़प्पन नहीं प्रगट करना चाहिये। हमें उन्हें अपना सगा भाई समझना चाहिये, जैसे कि वे वास्तवमें हैं। जिस परम्परागत सम्पत्तिसे हमने उन्हें वञ्चित किया है उसे हमें उन्हें अवश्य लौटा देना चाहिये। पर यह काम चन्द उन अंग्रेजी पढ़े लिखेवालोंका ही नहीं होना चाहिये बल्कि सर्व साधारणको अपने हृदयकी प्रेरणासे यह काम करना चाहिये। इस दीर्घ-काल-व्यापी सुधारके लिये हमें अनन्तकालतक ठहरनेका समय नहीं है। हमें उसकी पूर्ति इसी वर्ष भरमें कर देनी चाहिये। इसके लिये हमें कठिन तपस्या करनी चाहिये। यह सुधार स्वराज्यके बाद नहीं हो सकता। स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले ही इसे सम्पूर्ण कर डालना चाहिये।

अछूत धर्म विहित नहीं है बल्कि यह शैतानका धर्म है। अपने लाभके लिये शैतान भी धर्म-ग्रन्थोंका प्रयोग करता है। पर इस तरहके अवतरणोंसे सत्य और विश्वास कहींसे भी नहीं उठ जा सकता। उनका काम है, विश्वासको शुद्ध करना और

सत्यको व्यक्त करना। वेदोंमें अश्वमेध यज्ञकी चर्चा है तो इसके लिये हम निर्दोष घोड़ेको जला नहीं देंगे। मेरे हृदयमें वेदोंके लिये अपूर्व श्रद्धा है। मैं देवता प्रदत्त मानता हूं। उनके शब्दोंमें यह चर्चा हो सकती है, पर प्रकाश डालनेके लिये तो उसके तत्वका निरूपण करना चाहिये। और वेदोंका तत्व है पवित्रता, सचाई, निर्दोषिता, नम्रता, सादगी, क्षमादान, विस्मृति, देवत्व और अन्य वे सब बातें जिससे नर और नारी नम्र और वीर हो सकते हैं। समाजके उन असंख्य न बोलने-वालोंको इस तरह कतवारकी तरह समझना तो कोई बहा-दुरीमें शामिल नहीं है। क्या ईश्वरने हमें इसीलिये शक्ति दी है कि हम राष्ट्रके पतनके कारण हों जैसा कि हम लोगोंने अछूत जातियोंको बना डाला है।

—※—

पंचम जातियां

—::(०)::—

(सितम्बर २६, १६२१)

अछूतोंपर जितना अत्याचार मद्रास प्रान्तमें होता है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं होता। यदि ब्राह्मणोंपर उनकी परछाईं भी पड़ जाय तो वे अपनेको अपवित्र समझते हैं। अछूत जातियां उन सड़कोंपरसे नहीं चल सकतीं जिनपरसे ब्राह्मण लोग चलते हैं। अब्राह्मण भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, इस तरहसे अछूत जातियां—जिन्हें पञ्चम कहते हैं—इन

दोनों—ब्राह्मण और अब्राह्मण—वर्गके बीचमें पड़कर बुरी तरह पीसे जा रहे हैं। आश्चर्य तो यह है कि यहां सभी धार्मिकता प्रसिद्ध है और वहांके मन्दिरोंकी तो चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। यहांके निवासी बड़ी बड़ी चोटियां रखें, लम्बा तिलक लगावें, खुले बदन इस तरह प्रतीत होते हैं मानों प्राचीन समयके ऋषिगण सशरीर उतर आये हों। पर इन लोगोंकी सारी धार्मिकता इन्हीं बाहरी दिखावटों तक ही बस है। जिस भूमिमें शंकर भगवान और महर्षि रामानुजाचार्यने जन्म लिया था उस भूमिके इतने परिश्रमी और कामकी जातिके साथ इस तरहका आचरण समझमें नहीं आता। यहींपर हमारे बन्धुबान्धवोंके साथ इस तरहका शैतानी व्यवहार होता है और इसी दक्षिणपर हमारा अनन्य भरोसा है। मैंने उन्हें बराबर समझाया है, उनकी सभाओंमें इस बातपर जोर देकर कहा है कि जबतक हम लोग अपने बीचसे इस तरहके पापाचारको नहीं उठा देते तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। हम लोगोंने उनसे यह भी कह दिया है कि सारे ब्रिटिश साम्राज्यमें हमारी गणना इस घृणाके साथ इसलिये की जाती है कि हम लोग स्वयं अपने घरोंमें उन हजारों अपने भाइयोंको कैदियोंकी तरह अलग कर रखा है। असहयोग हृदयमें परिवर्त्तन लानेके लिये एक शस्त्र है पर यह परिवर्त्तन केवल अंग्रेजोंके चित्तमें परिवर्त्तन हो जानेसे नहीं चल सकता बल्कि हमें अपने हृदयमें भी परिवर्त्तन करना चाहिये। वास्तवमें सच बात तो यह है कि हमें उचित है कि हम सबसे पहले अपने

दिलोंमें परिवर्तन करें और तब अंग्रेजोंसे इस परिवर्तनके लिये कहें। जो जाति जन्म भरका कोढ़ एक ही विचारमें साफ कर सकती है, जो जाति फटे पुराने कपड़ोंकी तरह शराबका त्याग कर सकती है, जो जाति एकाएक अपने प्राचीन व्यवसायको ग्रहण कर सकती है, जो जाति अपने फालतू समयमें ६० करोड़ रुपयेकी मालियतका कपड़ा तैयार कर सकती है उस जातिको हम लोग सुधरी जाति अवश्य कह सकते हैं, उसके इस परिवर्तनका असर संसारके इतिहासपर अवश्य पड़ेगा। उसके इस आचरणसे नास्तिक भी इस बातपर विश्वास करने लगेगा कि ईश्वरकी कृपा कोई वस्तु है और ईश्वर है। इसीलिये मैं इस बातपर जोर देकर कहता हूं कि भारतवर्ष अपने चित्तकी वृत्तिको बदल देगा तो संसारमें कोई भी जाति नहीं है जो उसके स्वराज्यके अधिकारको उसे इनकार कर सके। यह मैं मानता हूं कि भारतीय क्षितिजपर अनेक तरहके काले बादल भीषण रूप धारण करके मंडरा रहे हैं, फिर भी मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूं कि जिस समय भारत इन अछूतोंके साथ अपने बुरे व्यवहारके लिये पश्चाताप प्रगट करलेगा और विदेशी कपड़ोंका पूर्णतया बहिष्कार कर देगा उसी समय वे अंग्रेज भी भारतका स्वागत करनेके लिये उतारू हो जायेंगे और उसे स्वतन्त्र और वीर जाति मानने लग जायेंगे जो इस समय कठोर हृदयताका परिचय दे रहे हैं। मुझे इस बातका पक्का विश्वास है कि यदि हिन्दू चाहें तो वे इन पंचम जातियोंका उद्धार कर सकते हैं और उनको भी वही अधिकार दे सकते

हैं जिसका उपभोग आप कर रहे हैं और यदि भारतवासी चाहें तो अपनी आवश्यकताभर वे कपड़ा भी तैयार कर सकते हैं जिस तरह वे अपने लिये भोजन बना लेते हैं। इसीलिये मुझे इस बातका भी भरोसा है कि हम इस वर्षमें स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। पर यह परिवर्तन किसी विस्तृत यन्त्रादिकी कार्रवाईसे साध्य नहीं है। केवल ईश्वरकी कृपासे ही हमें यह प्राप्त हो सकता है। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस समय ईश्वर हम लोगोंमेंसे प्रत्येकके दिलोंमें बैठा विचित्र तरहसे काम कर रहा है। हर तरहसे कांग्रेसमें काम करनेवालोंका यह धर्म है कि वे इन अछूत भाइयोंकी सहायता करें और हिन्दू तथा अहिन्दूसे इस बातकी चेष्टा करें कि किसी भी हिन्दू धर्मके अनुसार चाहे वह गीता विहित हो, वेद विहित हो, शंकर सम्प्रदाय हो या रामानुज सम्प्रदाय हो, किसीमें भी किसी मनुष्यके साथ चाहे वह कितना भी गिरा क्यों न हो—इस तरहका व्यवहार विहित नहीं है। प्रत्येक कांग्रेसमें काम करने वालेका धर्म है कि कट्टर हिन्दुओंको विनम्र भावसे इस तरह समझावें कि अछूतोंके प्रति इस तरहकी जड़ता अहिंसाके भावके प्रतिकूल है।

सत्याग्रह और पतित जातियां।

(अक्तूबर २७, १९२०)

मद्रासके मिस्टर मिचलने मेरे पास निम्न लिखित पत्र भेजा है—आपके नेतृत्वको स्वीकार कर राष्ट्रके अग्रसर और उन्नत दलने असहयोग व्रतको ग्रहण कर लिया है इससे इस प्रान्तकी गिरी जातियोंके हृदयमें आशाका उदय हुआ है कि उनका भी इस अयोग्यतासे उद्धार हो जायगा। जिसमें वे अनन्त कालसे पड़ी हैं और जिसके मुकाबिले पञ्जाब आदिकी दुर्घटनाओंकी भीषणता साधारण सी बात है। मैं यह पत्र आपके पास इसलिये लिख रहा हूं कि इसके द्वारा मैं इस ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूं और यदि संभव हो तो आपकी सलाहसे भी लाभ उठाऊं। सबको इस बातका विश्वास है कि स्वयं आप किसी न किसी दिन इस अयोग्यताको दूर करनेके लिये आन्दोलन खड़ा करेंगे क्योंकि यह ब्रिटनसे किये गये अन्यायों और अत्याचारोंसे कहीं पुराना है। इसके अतरिक्त इस कामके उपयुक्त आपके अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति है भी नहीं, पर न जाने किस कारणसे जिसे आपही समझ सकते हैं, आपने राजनैतिक सुधारका ही प्रयास किया है जो अभी कलका ही है। मेरी समझमें आपने गलत मार्गका अनुसरण किया है। पर उस बातका निर्णय तो केवलमात्र आपकी आत्मापर निर्भर है। आप हम

लोगोंको क्या राय देते हैं ? यहांको पञ्चम और थिया जातियोंमें इस अनाचारके लिये स्वयं आन्दोलन खड़ा करनेके भाव प्रगट होते दिखाई देते हैं। सत्य और अहिंसाका व्रत ग्रहण करके वे अपनी अयोग्यताओंका विरोध करना चाहते हैं जो उनके साथ निम्न लिखित बातोंमें की जा रही हैं—दूरसे उन्हें अपनी परछाईं बचानी पड़ती है कि किसी ब्राह्मणपर पड़ न जाय, चन्द सड़कोंसे वे जाने नहीं पाते, राज्यसे सहायता प्राप्त स्कूलोंमें उनके लड़के पढ़ने नहीं पाते तथा कूंआ, तालाबों और नलोंसे उन्हें पानी लेनेकी मनाही है।

मैंने इस प्रश्नपर इस जातिके कुछ प्रधान व्यक्तियोंसे बातचीत की है। और वे आपकी सलाह चाहते हैं। इसीलिये मैं यह पत्र आपके पास लिख रहा हूं। क्या हम लोगोंका यह धर्म नहीं है कि ब्रिटिश सरकारसे न्याय करवानेके लिये हम जिस तरीकेका प्रयोग करना चाहते हैं उसीका प्रयोग पहले अपने देश भाइयोंकी अनन्त कालकी अयोग्यता दूर करनेमें लगा दें।

पतित जातियां

(अक्तूबर २७, १६२०)

स्वामी विवेकानन्द मद्रासकी पञ्चम जातियोंको "दबाई हुई जाति" कहा करते थे। उनका यह विशेषण अतीव उपयुक्त था। हम लोगोंने उन्हें इस तरह दबाया है कि हम स्वयं पतित बन गये हैं। स्वर्गीय गोखलेने कहा था कि हम लोगोंने जो पाप किया है उसके लिये ईश्वरने हमें यही दण्ड दिया है कि हम लोग इस समय साम्राज्यके "परिया" समझे जाते हैं और यह दण्ड सर्वथा उपयुक्त भी है। एक संवाददाताने जले कटे हृदयसे मेरे पास एक पत्र लिखकर पूछा है कि आप इस सम्बन्धमें क्या कर रहे हैं। अपने लेखका जो शीर्षक उसने दिया है उसी शीर्षकका प्रयोग करके मैंने उस पत्रको प्रकाशित किया है। (अगले लेखको देखिये, शीर्षक "सत्याग्रह और पतित जातियां") क्या हम हिन्दुओंको यह उचित नहीं है कि अंग्रेजोंसे पहले हमें अपने हाथके खूनके दागको मिटा देना चाहिये। यह प्रश्न बहुत ही उचित और समयोपयोगी है। यदि दासताके पासमें बन्धे किसी राष्ट्रका आदमी हमें हमारी अवस्थासे मुक्त किये विना ही इन पतित जातियोंका उद्धार करना चाहता है तो इसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। पर यह बात एकदमसे असंभव है। एक दास सही काम करनेके लिये भी स्वतन्त्र नहीं है। विदेशी

मालकी आमदको रोकना हमारे लिये उचित और ठीक है पर इसका मुझे कोई अधिकार नहीं है। मौलाना मुहम्मद अलीके लिये उचित था कि वे तुर्किस्तान जाते और तुर्कोंसे कह देते कि भारतकी समस्त जनता उनके साथ है। पर वे ऐसा नहीं कर सकते। यदि राष्ट्रके हाथमें आज कानून बनानेका अधिकार होता तो मैं इन पतित जातियोंके लिये अच्छासे अच्छा कुंआ बनवा देता और उनके लड़कोंके लिये अलग शिक्षालय बनवा देता जिससे उनमें अनिवार्य शिक्षाका प्रचार हो जाता। पर जबतक वह शुभ दिन उपस्थित नहीं होता तब तक तो चुपचाप बैठे रहना ही उचित होगा।

पर तब तक क्या इन्हें इसी तरह छोड़ देना चाहिये? इस तरहकी कोई कार्यवाही अनुचित और अन्याय पूर्ण होगी। मेरी समझमें जो उचित प्रतीत होता है और जो मेरी शक्तिमें है उसे मैं इन पञ्चम भाइयोंके लिये उठा नहीं रखूंगा।

राष्ट्रकी इन पतित जातियोंके लिये तीन द्वार खुले हैं। अधीर होकर इस सरकारकी वे सहायता ले सकते हैं, जो लोगोंको दास बनाकर रखना चाहती है। उसे सहायता मिल सकती है। पर इससे तो गड्ढेसे निकल कर अगाधसागरमें जा गिरेंगे। आज वे गुलामोंके भी गुलाम हैं पर सरकारकी सहायता लेनेपर तो वे अपने ही बन्धु बान्धवोंको सताये जानेके आधार यन्त्र बन जायंगे। अभी तो उनपर ही अत्याचार किया जा रहा है इसलिये वे पापसे बचे हैं। पर उस समय

वे पापाचारके यन्त्र हो जायंगे। मुसलमानोंने पहले इसी मार्गका अनुसरण किया था पर अन्तमें उन्हें भी असफलता ही मिली। उन्होंने देखा कि उनकी अवस्था पहलेसेभी कहीं खराब हो गई है। सिक्खोंने भी इसका पूर्णतया अनुकरण किया पर उन्हें भी असफलता ही मिली। आज भारतकी जातियोंमें इस सरकारसे सबसे अधिक असन्तुष्ट सिक्ख जाति ही है। इसलिये सरकारकी सहायतासे उनकी कठिनाई नहीं दूर हो सकती।

दूसरा उपाय यह है कि वे हिन्दू धर्मको छोड़कर ईसाई या मुसलमान हो जायं। पर यदि धर्म परिवर्तनसे सांसारिक (इहलोक) जीवनमें भी सुख और शान्ति मिल सके तो मैं विना किसी संकोचके उसकी सलाह दे सकता हूं। पर धर्म हृदयकी बातें हैं। शारीरिक यातना या असुविधासे धर्म त्यागकी भावना नहीं उठ सकती। यदि पञ्चम जातियोंके साथ यह अत्याचार पूर्ण व्यवहार हिन्दू धर्ममें विहित हो तो उन्हें उचित है कि उस धर्मको तुरत त्याग कर दें और अपनी इस हीनताका सारा दोष उसी हिन्दू धर्मके सिरपर मढ़ें। पर मैं जानता हूं कि हिन्दू धर्ममें अछूतोंका कोई प्रश्न ही नहीं आया है। हिन्दू धर्मका कथन है कि इस तरहकी बातें उठा देनी चाहिये। इस समय अनेक हिन्दू समाज सुधारक हिन्दू धर्मपरसे यह काला धब्बा मिटा देनेके लिये प्राणपणसे यत्न कर रहे हैं। इसलिये धर्म परिवर्तनसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता। और न यह उसके लिये उपयुक्त उपचार है।

इसलिये तीसरी ही युक्ति उनके लिये शेष रह जाती है और वह यह है कि वे आत्म निर्भर हों और गैरपञ्चम हिन्दू अपना धर्म समझकर अपनी पूर्ण इच्छासे उनकी जो कुछ सहायता करें उससे ही अपना काम चलावें। यहीं असहयोगकी आवश्यकता पड़ती है। इस व्यक्त बुराईको दूर करनेके लिये मैं सुसंगठित असहयोगकी योजना ही उचित समझता हूं। पर असहयोगके माने हैं बाहरी सहायतासे एकदम बरी रहना, अपनी शक्तिके उपयोगकी सहायता ही उसका मर्म है। केवल उन प्रान्तोंमें घुस जाना जहां जानेकी मनाही है असहयोग नहीं है। यदि वह शान्तिपूर्वक जारी किया जा सके तो उसे सविनय अवज्ञा भले ही कह सकते हैं। पर मैंने यह भलीभांति देख लिया है कि सविनय अवज्ञाके लिये अधिक शिक्षा और आत्मसंयमकी आवश्यकता है। असहयोग सभी कर सकते हैं पर सविनय अवज्ञा बहुत कम ही लोग कर सकते हैं। इसलिये उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है उसके विरोधमें पञ्चम जातियोंको उचित है कि वे हिन्दुओंके साथ तब तक असहयोगकर अपना संबंध विच्छेद कर लें जबतक उनकी उस अयोग्यताका प्रतिकार न कर दिया जाय। पर इसके लिये सुसंगठित प्रयासकी आवश्यकता है। पर जहां तक मुझे दिखाई देता है पञ्चम जातियोंमें ऐसा कोई नहीं है जो असहयोग द्वारा उन्हें सफल मनोरथ कर सके।

इसलिये पञ्चम जातियोंके लिये सबसे उत्तम उपाय यही है

कि वे इस संग्राममें आकर सम्मिलित हो जायँ जिसकी आयोजना सरकारके मुकाबिलेमें हो रही है। पञ्चम भाई इस बातको भी साधारणमें ही समझ सकते हैं कि इससे परस्पर सहयोगकी भी अधिक संभावना है क्योंकि भारतकी भिन्न भिन्न जातियां परस्पर मिले विना सरकारके साथ सफलतापूर्ण असहयोग नहीं कर सकतीं। हिन्दुओंको यह बात भलीभांति समझ लेना चाहिये कि यदि वे लोग सरकारके साथ असहयोग कर उसमें सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें पञ्चम जातियोंको अपनेमें मिलाना होगा, जिस तरह उन्होंने मुसलमानोंको मिलाया है। अहिंसात्मक असहयोग आत्मशुद्धिका मन्त्र है। वह यज्ञ आरम्भ हो गया है। इसमें पञ्चम जातियां भाग लें या न लें पर हिन्दू जाति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती क्योंकि इससे उनकी उन्नतिमें कठिन वाधा उपस्थित होनेकी सम्भावना है। इसलिये यद्यपि पञ्चम भाइयोंकी समस्या मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है तो भी मैं इस समय केवल राष्ट्रीय आन्दोलनकी योजनासे ही काम चलाना चाहता हूं। मुझे पक्का विश्वास है कि यदि हम लोग इस महती समस्याको हल कर लेंगे तो इस छोटी समस्याको अवश्य हल कर सकेंगे।

मिस्टर मिचलका उत्तर

(नवम्बर १७, १९२०)

'पतित जातियाँ' शीर्षक लेखमें मैंने जिन प्रश्नोंका उत्तर दिया था उसका प्रत्युत्तर देते हुए मिस्टर एस० एम० मिचल लिखते हैं:—

"अक्तूबर २७ के यंग इण्डियामें मेरे पत्रका उत्तर देते हुये आपने मेरी इतनी बात तो अवश्य स्वीकार कर ली कि हम हिन्दुओंको उचित है कि अंग्रेजोंसे कहनेके पहले हमें अपने ही रक्त रंजित हाथोंको साफ कर लेना चाहिये। पर आप तो पहले वही काम करनेके लिये अंग्रेजोंसे ही कह रहे हैं। आपने इस बातको भी स्वीकार किया है कि मैंने उचित प्रश्न ठीक समयपर छेड़ा है। तो क्या इससे आप यह बात नहीं व्यक्त कर रहे हैं कि आपने अपने इस आन्दोलनको कुछ समय पहले ही चलाया है। इस प्रान्तमें दौरा करते समय आपने अपने किसी भाषणमें यही कहा था कि यदि हम भारतवासी अपनी अन्दरूनी अयोग्यताको दूर कर दें तो हमें स्वराज्य आपसे आप विना मांगे मिल जायगा। पर यह देख कर मुझे खेद होता है कि अब आपने अपना वह मत बदल दिया है। इस मत परिवर्तनको मैं भीषण राष्ट्रीय आपत् समझता हूं। पर मैं आपसे विनीत होकर प्रार्थना करूंगा कि हममेंसे जिनका मन अभी उसी तरहका बना है, उनके विषयमें आप गलत अनुमान न कर लीजियेगा। उसी प्राचीन विश्वासके

कारण इस प्रान्तकी अगणित दबी और अब्राह्मण जातियाँ आपके असहयोग आन्दोलनसे विमुख हो रही हैं और आपके मार्गमें बाधा उपस्थित कर रही हैं। उनके मतसे आपका यह प्रयास विरुद्धाचरण है। उनको इस बातका पक्का विश्वास है कि सम्प्रति इस संसारमें ब्रिटिश राज सबसे उत्तम है और यदि आपने अपने प्रयाससे भारतको स्वतन्त्र भी करा दिया तो वह स्वतन्त्रता अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती और अफगान या जापानके हाथमें भारत फिर पड़ जायगा। इसके अतिरिक्त जात-पांतके भेद-भावके कारण भी इसके छिन्न भिन्न और नष्ट हो जानेकी बहुत कुछ सम्भावना है जैसा कि पहले कई बार हुआ है। इसलिये वे चाहते हैं कि स्वराज्यकी स्थापनाके पहले भीतरी दुर्बलता और बाहरी आक्रमणके भयसे भारतको सुरक्षित कर देना चाहिये। इसीलिये वे आपको इसलिये धन्यवाद देते हुए कि आपने उन्हें अपने आन्दोलनमें शामिल होनेके लिये निमन्त्रित किया है, वे आपके अतिशय कृतज्ञ होंगी, यदि आप अपने अन्दोलनको स्थगित कर देंगे और उनके इस काममें योग दान करेंगे जिसके द्वारा वे भारतको सब तरहसे योग्य बनाना चाहती हैं। आपने 'दासोंके दास' 'बड़ी बुराईके दूर करनेसे छोटी बुराई आपसे आप दूर हो जायगी' इत्यादि जो बातें लिखी हैं, उनसे पढ़नेवाला और उन्हें सुननेवाला भलेही सन्तुष्ट हो जाय और आपकी प्रशंसा करे पर व्यवहार कुशल आदमीके लिये उनमें कोई सार या तत्वकी बातें नहीं दिखाई देतीं। इस

अवस्थापर पहुंच कर भी क्या यह आशा की जा सकती है कि आप अपनी भूलको स्वीकार करेंगे और अपने पैरको पीछे हटाकर सामाजिक जीर्णोद्धारके काममें लग जायंगे जिसे स्वयं आप भारतकी स्वाधीनताका सबसे प्रबल उपाय बतलाते हैं।

इस पत्रको मैं सहर्ष प्रकाशित करता हूं। पत्र पढ़नेसे स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि मिस्टर मिचल यंग इण्डियाको बराबर नहीं पढ़ते। यदि उन्होंने पढ़ा होता तो उन्हें सबसे पहले विदित हो गया होता कि असहयोग आत्मशुद्धिका प्रधान शस्त्र है। उन्हें विदित हो जायगा कि जिस समय इस असहयोगके द्वारा हम लोग स्वराज्य स्थापित करनेमें सफल हो जायंगे उस समय अब्राह्मण या परियाका प्रश्न रह ही नहीं जायगा, जिसके हल करनेकी आवश्यकता प्रतीत होगी। मैं इस बातको आज भी स्वीकार करता हूं कि भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेके लिये सामाजिक सुधार की प्रथम योजना होनी चाहिये। पर उस समय तक मैं इस बातको नहीं समझ सका था कि ब्रिटिश शासनका अत्याचार सब बुराईके तहमें है और इसलिये वह सबसे बढ़कर है। इसलिये यदि यह सरकार अपने पापपूर्ण कामोंके लिये पश्चात्ताप नहीं प्रगट करना चाहती तो उसे उसी तरह नष्ट हो जाना होगा जैसे हिन्दुओंको यदि वे छूआछूतके प्रश्नको अपने समाजके अन्दरसे नहीं उठाना चाहते। मेरा और मिस्टर मिचलका मतभेद उसी प्रकारका है जिस प्रकारका मतभेद उन हिन्दुओंका है जो छूआछूतके शैतानी प्रभावके परिणामपर

विचार नहीं करते। मिस्टर मिचल इस बातको नहीं समझ रहे हैं कि जिस राष्ट्रकी वे सन्तान हैं उनका ब्रिटिश सरकार इस तरह अपमान कर रही है कि वे दिनपर दिन गिरते जा रहे हैं। यही कारण है कि वे ब्रिटिश सरकारकी छत्र छायाको स्वीकार करनेके लिये तैयार हैं। पर ब्रिटिश सरकारकी वर्तमान अवस्थामें उसे स्वीकार करना तो मैं घोर पाप समझता हूं। इसलिये इस सरकारके प्रति मैं उसी उपायका प्रयोग कर रहा हूं जिस उपायका प्रयोग मैंने हिन्दुओंके साथ छूआछूतको मिटानेके लिये किया होता। अफगान आक्रमणकी चर्चासे मिस्टर मिचल अपने विषयसे बहक गये हैं। इसलिये मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे यंग इण्डियाके पिछले लेखोंको पढ़कर देखें; उनके प्रश्नोंका उत्तर मिल जायगा।

महात्माजी और पतित जातियां

(अप्रेल २७, १९२१)

१४ और १५ अप्रेलको पतित जातियोंकी अहमदाबादमें एक सभा थी। महात्माजी उस सभाके अध्यक्ष थे। नगरसे अनेक सज्जन और महिलाएं उपस्थित थीं पर पतित जातियोंकी संख्या आशासे कहीं कम थी। इसका कारण यह था कि लोगोंमें एक तरहका क्षोभ और भय पैदा हो गया था कि जो उस सभामें जायंगे उन्हें सरकार गिरफ्तार कर लेगी।

आरम्भमें महात्माजीने इसके लिये खेद प्रगट किया और कहा कि इस घटनासे मेरे हृदयसे सभा सोसाटियोंकी सामाजिक मर्यादा भी चली गई। इस लिये यदि मैं आवश्यकतासे कम समय लूं तो इसका कारण यह होगा कि जिन लोगोंके लिये यह सभा की गई थी वे उपस्थित नहीं हैं और न कि मेरा इस आन्दोलनसे स्नेह घट गया है या उत्साह भंग हो गया है। इस कांफरेंससे एक विशेष लाभ मुझे यह हुआ है कि आज बहुत दिनोंके बाद मुझे उन मित्रोंसे सहवासका अवसर प्राप्त हुआ है जिनसे मैत्री होने पर भी सिद्धान्तोंके कारण इधर मिलना जुलना बहुत कम हो गया है। प्रसन्नताकी बात है कि अछूतोंके प्रश्नपर मेरा उनके साथ मतैक्य है।

इसके बाद महात्माजीने अछूतोंका प्रश्न उठाया और निम्न-लिखित भाषण किया:—"इस सुधारके विरोधियोंने जिस गलत मार्गका अनुसरण किया है उसको मैं उन्हें किस तरह समझाऊं। जो लोग अछूत जातियोंके संपर्कसे अपनेको कलुषित समझते हैं और विना स्नान किये अपनेको पवित्र हुआ नहीं समझते उन्हें मैं क्या समझाऊं। केवल एकमात्र मेरा दृढ़ विश्वास मैं उन-लोगोंके समक्ष रख सकता हूं।

छूआछूतके प्रश्नको हिन्दू धर्मपर मैं सबसे प्रबल कुठाराघात समझता हूं। कुछ लोगोंका कहना है कि दक्षिण अफ्रिकामें सत्याग्रह संग्रामके समय मुझे जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था उन्हींके कारण मेरे हृदयमें ये भाव उठे, कुछ लोग

कहते हैं कि किसी समय मैं इसका कट्टर विरोधी था इससे आज इसका पक्षपाती बन गया हूं। अन्य लोगोंका मत है कि जबसे मैंने ईसाई धर्मका अध्ययन किया तबसे मेरे मनमें यह परिवर्तन हुआ। पर मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूं कि इस तरहके सभी विचार गलत और भ्रमपूर्ण हैं। यह भाव मेरे हृदयमें उसी समयसे उठा है जब कि न तो मैंने बाइबिलको पढ़ा था और न उसके अनुयायियोंसे किसी तरहका संपर्क था।

जिस समय मेरी अवस्था बारह वर्षकी भी नहीं थी कि इस असमानताका भाव मेरे हृदयमें उदय हुआ था। उक्का नामका मेहतर मेरे घर पाखाना साफ करने आया करता था। घरके लोग मुझे उसे छूनेसे मना किया करते थे। मैं अपने भाईसे इसका कारण बहुधा पूछा करता। यदि कभी कभी मैं उक्काको छू लेता था या उससे छू जाया करता तो मुझे स्नान करना पड़ता था, और कपड़े बदलना पड़ते थे। उस समय मैं बड़ोंकी आज्ञाका पालन तो अवश्य कर लेता था पर साथ ही साथ अपने हृदयके विरोधी भावको हँसते हँसते व्यक्त कर दिया करता था कि हिन्दू धर्म इस तरहकी योजना कभी नहीं कर सकता। हिन्दू धर्ममें अछूतोंकी चर्चा नहीं हो सकती। मैं बड़ोंकी आज्ञा मानना अपना धर्म समझता था। इसलिये जो कुछ वे लोग कहते थे उसे स्वीकार कर लेता था और उसके विरुद्ध कभी भी आचरण नहीं करता था। तो भी कभी कभी इस प्रसंगको लेकर कुछ न कुछ विवाद हो ही जाया करता था

मैं अपनी माताजीसे बहुधा कहा करता था कि आप उका को छूना पाप समझती हैं पर यह आपका भ्रम है।

स्कूलमें मैं अछूतोंको बहुधा छू दिया करता था पर यह बात मैं अपने माता पितासे छिपाता नहीं था। उनसे सब बातें सदा कह दिया करता था। मेरी माता मुझे सलाह दिया करती थीं कि इस तरहकी अपवित्रताको दूर करनेका सबसे सरल मार्ग किसी मुसलमानको छू देना है। अपनी माताका मान रखनेके लिये मैं बहुधा यह भी किया करता था पर मुझे इससे यह विश्वास कभी भी नहीं उत्पन्न हुआ कि वास्तवमें यह पवित्र करनेका साधन हो सकता है। थोड़े दिन के बाद हम लोग पोरबन्दर गये और वहां मैंने संस्कृत पढ़ी। अब तक मैं अंग्रेजी स्कूलमें पढ़नेके लिये नहीं भेजा गया था। इसलिये मुझे और मेरे भाईको पढ़ानेके लिये एक पण्डित नियुक्त किये गये जो हम लोगोंको रामरक्षा और विष्णुपुञ्जर पढ़ाते थे। उस पुस्तकमें मुझे एक श्लोक मिला था 'जले विष्णुः स्थले विष्णुः वह श्लोक आज तक मुझे स्मरण है। एक बुढ़िया हमारे पड़ो-समें रहा करती थी। उस समय तक मैं बहुत डरा करता था। अंधेरा हुआ कि मुझे भूत और प्रेतोंसे डर लगने लगता था। उस बुढ़ियाने मुझे सिखाया कि जब कभी तुम्हें डर लगे तो रामरक्षाके श्लोकोंका पाठ करने लगना तुम्हारी हर तरहकी बाधा दूर हो जायगी। यह मैं सदा करता था और धीरे धीरे मेरी भय बाधा दूर होती गई। उस समय मैं स्वप्नमें भी इस

बातका अनुमान नहीं करता था कि रामरक्षाके मन्त्र में इस तरहका कोई भाव है कि अछूतोंको छूना पाप है। मुझे उस समय उन श्लोकोंका अर्थ नहीं समझमें आता था और न मैं यही धारण कर सकता था कि जिस मन्त्रमें भूत प्रेतकी बाधा दूर करनेकी शक्ति है वह अछूतोंके छूतके भयकी कोई बात लिख सकता है।

हमारे घरमें रामायणका सदा पाठ होता था लद्दा महाराज नामके एक ब्राह्मण हमारे घरमें रामायणका पाठ करते थे। उन्हें कोढ़का रोग था। उनका विश्वास था कि रामायणके अनवरत पाठसे उनका वह रोग दूर हो जायगा और वैसा हुआ भी। रामायण सुनकर मेरे हृदयमें यह भाव उठा कि जिस रामायणमें रामको गंगा पार उतारनेवाला ही अछूत था उस रामायणमें किसी व्यक्तिको अछूत कैसे कहा गया है। हम लोग परमेश्वर-को 'पतित पावन' आदिकी उपाधि दिया करते हैं इससे इस पु-ण्य भूमिमें उत्पन्न किसी व्यक्तिको अछूत या अपवित्र समझना महापाप है और उसपर आचरण करना शैतानी है। उसी समयसे मैं सदा यही कहा करता हूं कि इस तरहके विचार पापपूर्ण हैं। उस समय यद्यपि यह भाव मेरे हृदयमें दृढ़ नहीं हो गया था तथापि मैं उसी समयसे छुआछूतके प्रश्नको पाप समझता था।

मैं अपनेको सदा सनातनी हिन्दू समझता हूं। मैं हिन्दू धर्म पुस्तकोंसे सर्वथा अनभिज्ञ नहीं हूं। मैं संस्कृतका विद्वान

नहीं हूं। मैंने वेदों और उपनिषदोंका अनुवाद पढ़ा है। इस लिये मैं यह नहीं कह सकता कि मैंने उनका अन्वेषणकर पूर्ण अध्ययन किया है। पर तोभी मैंने उनका अध्ययन करके उनका सार अवश्य समझ लिया है। २१ वर्षकी अवस्था पहुंचते पहुंचते मैंने अन्य धर्मोंका भी कुछ अध्ययन किया।

किसी समय मेरी चित्तकी वृत्ति दोलायमान हो गयी थी। मैं यह निश्चय नहीं कर सकता था कि मैं कौन धर्म ग्रहण करूँ। हिन्दू धर्मपर डटा रहूं कि ईसाई हो जाऊँ। पर मेरी यह अवस्था अधिक काल तक नहीं रही। होश सँभलते ही मैंने देखा कि मेरी गति हिन्दू धर्ममें ही है और उसीसे मैं मुक्ति लाभ कर सकता हूं। उसी समयसे हिन्दू धर्मपर मेरा विश्वास और भी दृढ़ और अटल हो गया। पर उस समय भी मेरे हृदयमें यह विश्वास जमा ही रह गया कि छूआछूतसे हिन्दू धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि वास्तवमें यह प्रश्न हिन्दूधर्मके अन्दर है तो मैं ऐसे हिन्दू धर्मको प्रणाम करता हूं।

सच्चे हिन्दू धर्ममें छूआछूतको कहीं भी पाप नहीं समझा गया है। शास्त्रोंकी जो व्याख्या की गई है उसके सम्बन्धमें मैं विवाद नहीं खड़ा करना चाहता। अपने कथनके समर्थनमें भागवत वा मनुस्मृतिसे उदाहरण निकालकर रख देना मेरे लिये असम्भव है। पर मैं इतना तो दावेके साथ कह सकता हूँ कि मैंने हिन्दू धर्मका मर्म समझ लिया है। छूआछूतके प्रश्नको अनुमति देकर हिन्दू धर्मने पाप किया है। उसने हमें

नीचे गिरा दिया है, उसने हमें साम्राज्यका अछूत बना दिया है। यह सब पाप उसी छूआछूतके पापसे निकला है।

यहीं पर मैं अपने सूत्रको भी उपस्थित कर देना चाहता हूं। मेरी धारणा है कि "जब तक हिन्दूलोग छूआछूतको अपने धर्मका अंग समझते रहेंगे, जब तक हिन्दू लोग अपने कुछ भाइयोंको छूना पाप समझते रहेंगे तबतक भारतमें स्वराज्यकी स्थापना नहीं हो सकती। युधिष्ठिर बिना अपने कुत्तेके स्वर्गमें प्रविष्ट नहीं हो सके। तो भला युधिष्ठिरकी सन्तान अपने उन अछूत भाइयोंको छोड़कर स्वराज्य पानेकी अभिलाषा किस तरह कर सकती है। जिस अत्याचारका दोषारोपण हम अंग्रेज जातिपर करते हैं क्या उसी पापके भागी हम अपने अछूत भाइयोंकी तरफसे नहीं हैं?

हम लोगोंने इन्हें पददलित किया। हम इस पापके भागी हैं। हम इन्हें पेटके बल रेंगाते हैं। हम इनसे जमीनपर नाक रगड़वाते हैं, लाल लाल आँखें करके हम इन्हें रेलके डब्बोंमेंसे ढकेलकर बाहर निकाल देते हैं। क्या ब्रिटिश शासनने इससे कुछ अधिक किया है। हम लोग ओडायर और डायरपर जो अपराध लगाते हैं क्या वह अपराध दूसरे लोग और मेरे भाई हमारे ऊपर नहीं लगा सकते। हमें इस पापसे मुक्ति लाभ करना चाहिये। जबतक हमलोग गरीबों, निर्बलों और असहायोंकी रक्षा नहीं कर सकते या जबतक एक भी आदमी किसी व्यक्ति विशेषकी आत्मापर चोट पहुंचा सकता है तब तक हमें स्वराज्य

कीचर्चा करना व्यर्थ है। स्वराज्यके माने हैं कि कोई भी हिन्दू या मुसलमान क्षण भरके लिये भी इस बातका दावा नहीं कर सकेगा कि वह किसी दुर्बल हिन्दू या मुसलमानको दवा सकता है। जब तक यह बात दूर नहीं हो जाती हमें स्वराज्य मिलनेसे कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि हम उसे पाकर भी खो देंगे। अपने कमजोर भाइयोंके प्रति हमने जो पापाचार किया है उसका जबतक परि-मार्जन नहीं कर देते हमलोग पशुओंसे उन्नत नहीं हैं।

पर मेरा विश्वास अभी तक दूर नहीं हुआ है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंका दौरा करते समय मैंने इस बातका स्थान स्थानपर अनुभव किया है कि जिस दयाके भावका महाकवि तुलसीदासने गान किया है, जो जैन और वैष्णव धर्मका मूल आधार है, जो भागवत धर्मका सार है और जिससे गीताका प्रत्येक श्लोक रञ्जित है उसी दयाके भावका भारतकी जनतामें धीरे धीरे उदय हो रहा है।

हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर कलह आज भी सुनाई दे रहा है। बहुतसे हिन्दू और मुसलमान ऐसे हैं जो एक दूसरेको हानि पहुंचानेसे भी बाज नहीं आते। पर औसत मिलानेसे यही प्रतीत होता है कि उदारता और दयाका भाव धीरे धीरे बढ़ रहा है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ईश्वरसे डरने लगे हैं। सरकारी अदालतों और न्यायालयोंके मायाजालको हम लोग समझ गये हैं और अब उनके भ्रमजालमें नहीं पड़ते। मैंने यह भी देखा है कि जिन्हें हमलोग मूर्ख अपढ़ समझते हैं उन्हींमें सच्ची

शिक्षा दिखाई देती है। वे हम लोगोंसे कहीं अधिक सदाचारी हैं। उनका जीवन हमलोगोंसे कहीं अधिक धार्मिक है। वर्तमान समयके लोगोंके मनके भावोंकी थोड़ी जांच करनेसे विदित हो जायगा कि उनके भावके अनुसार स्वराज्यका अर्थ है रामराज्य अर्थात् संसारपर सत्यराज्यकी प्रतिष्ठा।

यदि इससे हमारे अछूत भाइयोंको थोड़ी भी सुविधा हुई, है, यदि इनका दुःख जरा भी दूर हुआ है तो मैं कह सकता हूं कि अछूत जातियोंका प्रश्न जितना विकट पहले था उतना विकट अब नहीं रह गया है। पर इससे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमें हिन्दुओंकी ओरसे निश्चिन्त हो जाना चाहिये। जिन लोगोंने आपपर इतना भीषण अत्याचार किया है उन्हें आप सहसा कैसे विश्वास कर सकते हैं? स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि हिन्दुओंमें पतित जातियाँ नहीं हैं बल्कि उन्हें हिन्दुओंने दबा डाला है और उसका परिणाम यह हुआ है कि ये खुद दब गई हैं।

६ठीं अप्रेलको मैं नेलोरमें था। उस दिन अछूतोंके साथ मैंने प्रर्थना की थी जैसा कि मैं आज इस स्थानपर कर रहा हूं। मैं मोक्षकी कामना रखता हूं। मैं फिर जन्म ग्रहण करना नहीं चाहता। पर यदि मेरा पुनः जन्म हो तो मैं उसी अछूत जातियोंमें पैदा होना चाहता हूं जिससे मैं उनके दुःखोंका साथी हो सकूं, उनकी यातनाओं और तिरस्कारोंको भोगूं ताकि उस दुःखमय अवस्थासे मैं अपने उद्धारकी चेष्टा करूँ। इसलिये मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं न क्षत्रियके

घरमें पैदा होऊं न ब्राह्मणके, न वैश्यके और न शूद्रके, बल्कि पतितसे भी पतित किसी जातिके घरमें पैदा होऊं ।

आजका दिन उस दिनसे कहीं पवित्र है। आजकेही दिन हजारों बेगुनाहोंका रक्त बहाया गया था। इसलिये इस पुण्य-तिथिके दिन भी मैंने प्रार्थना की है कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो अछूत जातियोंमें ही मैं पैदा होऊं ।

मुझे सफाई करना पसन्द है। हमारे आश्रममें एक १८वर्षका ब्राह्मणकुमार सफाईका काम करता है और अपने उदाहरणसे वह औरोंको शिक्षा देता है। वह लड़का सुधारक भी नहीं है। उसका जन्म कट्टर हिन्दू घरानेमें हुआ है। वह प्रतिदिन नियमसे सन्ध्योपासन करता है और गीताका पाठ करता है। उसका संस्कृत उच्चारण मुझसे कहीं अच्छा होता है। जिस समय वह प्रार्थना करने लगता है उसकी सरस और मधुर वाणी मनको मोह लेती है। पर उसने देखा कि जबतक सफाई करना वह न सीख लेगा तबतक पूर्णरूपसे कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो जायगा और यदि वह चाहता है कि आश्रमके अन्य बालक भी सफाई करना सीखें तो उसे उनके सामने उदाहरण रखना होगा।

आप लोगोंको इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि आप हिन्दू समाजको साफ करनेका यत्न कर रहे हैं। इसलिये आपको अपना जीवन पवित्र करना है। आपको स्वच्छताकी आदत डालनी चाहिये जिससे कोई भी आपसे कुछ कह नहीं

सके। इसलिये यदि साफ रहनेके लिये आप साबुनका यथेष्ट प्रयोग नहीं कर सकते तो मिट्टीका प्रयोग कीजिये। आपमेंसे अनेक शराब पीते हैं और जुआ खेलते हैं। आपको यह आदत छोड़ देनी चाहिये। आपलोग कदाचित ब्राह्मणोंकी तरफ अंगुली उठाकर कहेंगे कि उनमें भी इस तरहकी आदत हैं। पर उनमें और आपमें भेद है। उन्हें कोई भी अपवित्र नहीं कहता पर आप अपवित्र समझे जाते हैं। आपको हिन्दुओंसे प्रार्थना करके अपना उद्धार नहीं करवाना चाहिये। आप उनसे कृपाकी भीख न मांगिये। हिन्दुओंको यह काम करना ही होगा, यदि वे अपने स्वार्थकी सिद्धि चाहते हैं। इसलिये आपको चाहिये कि आप अपनी आत्माको शुद्ध रखें, अपनेमेंसे बुराइयोंको दूर कर दें और इस तरह हिन्दुओंको लज्जित करें। मुझे पूरी आशा है कि आप पांच महीनेमें अपनेको एकदमसे शुद्धकर लेंगे। यदि इतने दिनोंमें आपने मेरी आशाको पूरी नहीं की तो मैं यही समझूंगा कि यद्यपि मेरी धारणा सच्च थी तथापि मैंने गणनाकी भूल अवश्य की थी।

आपलोग हिन्दू हैं। आप भागवत पढ़ते हैं। इसलिये यदि हिन्दू लोग आपको सताते हैं तो आपको समझना चाहिये कि इसका दोष हिन्दू धर्मके ऊपर नहीं है बल्कि उसके विधायक लोगोंकी भूल है और वे ही इसके दोषी और जिम्मेदार हैं। अपना उद्धार करनेके लिये आपको अपनी शुद्धि करनी होगी। आपको अपनी सभी बुरी आदतें जैसे शराब पीना आदि छोड़नी होगी।

यदि आप अपनी अवस्थामें परिवर्तन चाहते हैं, यदि आप स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको आत्मनिर्भर होना चाहिए। बम्बईमें मुझसे कहा गया था कि आपमेंसे कुछ लोग असहयोगके खिलाफ हैं और ब्रिटिश सरकारकी छत्रछायामें ही आपलोग अपनी मुक्ति समझते हैं। मैं आपसे यह बात दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं कि हिन्दू धर्मका त्यागकर तथा किसी दूसरे धर्मका सहारा लेकर आप अपनी दशा नहीं सुधार सकते, आपका कल्याण नहीं हो सकता। आपका उद्धार आपके ही हाथोंमें है।

भारतके सभी प्रान्तोंके अछूतोंसे मुझे मिलनेका अवसर मिला है। मैंने देखा है कि उनके अन्तर्गत जो विशेषता छिपी है उसका न तो उन्होंने कभी अनुमान किया है और न किसी हिन्दूने ही किया है। उनकी बुद्धिकी प्रखरता एकदम पवित्र पड़ी है। मैं आपको सलाह दूंगा कि आप चरखा और करघा उठा लीजिये, जिस दिन आप चरखा कातना सीख जायंगे उसी दिन दरिद्रता आपसे कोसों दूर भाग जायगी। भंगियोंके साथ आपका क्या व्यवहार होना चाहिये इसके सम्बन्धमें गोध्रामें मैंने जो कुछ कहा था वही यहां भी कह देना चाहता हूं। मेरी समझमें नहीं आता कि आप धेद तथा भंगीमें भेद भाव क्यों लाते हैं। उनमें किसी तरहका भेद नहीं है। उनका पेशा उतनाही मर्यादित है जितना किसी वकीलका या सरकारी कर्मचारीका।

आपको उच्छिष्ट भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिये चाहे वे कितने भी पवित्र क्यों न हों। आपको मजूरीमें सूखा दाना देना लेना चाहिए, यदि आपने मेरे कथनके अनुसार काम किया तो निश्चय जानिये कि आपका उद्धार देखते देखते हो जायगा।

मेरे हृदयमें दो वलिष्ठ अभिलाषा जमी है, वलिक मैं तो यही समझता हूं कि उसीको पूरा करनेके लिये मैं जीवन धारण कर रहा हूं। उनमेंसे एक तो अछूतोंका उद्धार है और दूसरा गोरक्षा है। जिस रोज उन दो अभिलाषाओंकी पूर्ति हो जायगी उसी दिन मेरी मुक्ति हो जायगी। मेरी ईश्वरसे यही विनय है कि वह आपको क्षमता दे कि आप अपना उद्धार कर सकें।

—०—

और भी कठिनाइयां

(नवम्बर २४, १९२०)

राष्ट्रीय स्कूलोंमें अछूत जातियोंके बालक भर्ती करनेकी मि० एण्ड्रयूजने जो बात उठाई है उस सम्बन्धमें गुजरात राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके सिनेटने एक प्रस्ताव पास किया है। इससे अहमदाबादमें सनसनी फैली है। जिससे "टाइम्स आफ इण्डिया" का एक सम्वाददाता केवल सन्तुष्ट ही नहीं हुआ है, बलिक उसे सिनेटकी रचनामें एक दूसरी त्रुटि देखनेका अवसर मिला है, वह यह कि सिनेटमें एक भी मुसलमान मेम्बर नहीं

है। इस त्रुटिसे यह न समझना चाहिये कि विश्वविद्यालयके राष्ट्रीय चरित्रमें अभाव है। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता मौखिक बात नहीं है। इसलिये कृत्रिम प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शिक्षामें तन, मनसे अपना समय लगानेको अभी तक कोई योग्य उच्च शिक्षित मुसलमान नहीं मिला है। मैं यह बात इसलिये कहता हूं कि यह जानना चाहिये कि कुछ आदमी इस आन्दोलनकी अप्रतिष्ठा करनेके लिये भ्रमोत्पादक बातें किया करते हैं। यही एक बाहरकी कठिनाई है, जिसका वर्णन सुगमतासे किया जा सकता है।

अछूत जाति-सम्बन्धी कठिनाई भीतरी है और इसलिये बहुत बड़ी है क्योंकि इससे फूट पैदा हो सकती है जिससे उद्देश्यको धक्का पहुंच सकता है—यदि भीतरी कठिनाइयां बराबर बढ़ती रहें तो कोई उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। तोभी फूटसे बचनेके लिये सिद्धान्तमें किसी बातका परित्याग नहीं करना चाहिए। यदि आप किसी उद्देश्यके कुछ महत्व पूर्ण अंशोंका परित्याग करें तो आप उसकी उन्नति नहीं कर सकते। अछूत जातियोंकी समस्या इस उद्देश्यका बड़ा भारी अंग है। अछूत जातियोंके मिलाये विना स्वराज्य उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताके विना। मेरी तो यह सम्मति है कि हम साम्राज्यके इसलिये गुलाम बन गये हैं कि हमने अपने मध्यमें गुलामोंकी सृष्टि की है। गुलामके मालिकको गुलामकी अपेक्षा अधिक धक्का पहुंचता है। जबतक

हम भारतकी जनताके पांचवें भागको गुलामीमें रखेंगे तब तक हम स्वराज्य पानेके योग्य नहीं होंगे। क्या हमने गुलामको पेटके बल नहीं रेंगाया है? क्या हमने उसे गुलाम नहीं कर दिया है? यदि उस गुलामके साथ ऐसा व्यवहार करना हमारा धर्म है तो हमें अलग कर देना भी गोरी जातिका धर्म है। गोरोंका यह कहना है कि हिन्दुस्तानी अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट हैं यदि यह ठीक नहीं है तो हमारे लिये तो यह कहना कभी ठीक हो ही नहीं सकता कि गुलाम अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट है। जब हम गुलामीको बढ़ाते हैं तो वह हममें पूर्णरूपसे और लिपट जाती है।

गुजरात सिनेटने कुछ सोच विचारकर ही लोगोंकी चिल्लाहटकी ओर ध्यान नहीं दिया। यह असहयोग आत्मपरिष्कृतिका मार्ग है। हमें चाहिये कि हम पुरानी रद्दी रीति रस्ममें न लटक कर स्वराज्यके उज्ज्वल फलके लिये चेष्टा करें। रीति रस्मके कारण ही कुछ जातियोंको अछूत समझनेकी परिपाटी पड़ गई है, अछूत जातियां हिन्दू समाजसे पृथक् हैं यह कोई बात नहीं है। संसार भावमें अग्रसर हुआ है, यद्यपि कार्यमें वह बर्बर बना हुआ है। जो धर्म वास्तविक तत्वोंकी नींवपर नहीं खड़ा किया गया है वह कभी ठहर नहीं सकता। भूलकी प्रतिष्ठा करना धर्मका उसी प्रकार नाश कर देगा जैसे रोगकी परवा न करनेसे वह शरीरका अन्तकर देता है।

हमारी यह सरकार निःशङ्क है। इसने मुसलमानोंको हिन्दु-

ओंसे पृथककर हमपर शासन किया है। हिन्दुओंके मध्य जो निर्भ-यता है उससे यह अपना पक्ष सबल करती है। यह अछूत-जाति-ओंको शेष हिन्दुओंसे तथा अब्राह्मणोंको ब्राह्मणोंसे लड़ाती है! गुजरात सिनेटने इस कष्टका अन्त नहीं किया है! इसने सिर्फ कठिनाइयां बता दी हैं। यह कष्ट तभी दूर हो सकता है जब हिन्दू जनता अछूतोंको घृणा करना छोड़कर उसे अपनी समाजमें मिला लेगी। स्वराज्यके प्रेमी किसी भी हिन्दूको अछूत जातिका उत्थान करनेके लिये उसी प्रकार निरन्तर उद्योग करना चाहिये जिस प्रकार वह हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता बढ़ानेके लिये करता है। हम अछूतोंके साथ अपने जैसा वर्ताव करें और उन्हें वही अधिकार दें जिसके लिये हम लड़ रहे हैं।

—o—

साम्राज्यके अछूत

—o—

गुजरातकी महत्व-पूर्ण कान्फरेन्सने प्रवासी भारतवासियों-की स्थिति पर प्रस्ताव करते हुए कहा है कि प्रवासी भारतवासि-योंका प्रश्न भी असहयोगकी आवश्यकताका एक कारण हो सकता है। यह बात सम्भव है। पूर्वीय अफ्रिकाके गवर्नरने लज्जास्पद निर्णय कर दिया है। संसारमें इससे अधिक न्याय और सत्यके सिद्धान्तोंकी अवहेलना कहीं भी न की गई थी।

लार्ड मिलनर और मि० मान्टेगूने इस निर्णयका समर्थन किया है और उनके भारतीय सहकारी भी इस निर्णयसे सन्तुष्ट हैं। पूर्वी अफ्रिकाके भारतवासी जो अंग्रेजोंसे कहीं अधिक हैं और जिन्होंने पूर्वी अफ्रिकाको निवास करने योग्य बनाया है, व्यवस्थापक सभामें अपने प्रतिनिधि भेजनेके अधिकारी नहीं समझे गए हैं। वे उन जगहोंमें रहनेके लिये बाध्य किए गए हैं जहां अंग्रेज लोग रहना पसन्द नहीं करते। उन्हें राजनैतिक और साम्पत्तिक किसी भी प्रकारकी सुविधाएं न मिलेंगी। जिस देशको अपने परिश्रम, धन और वुद्धिसे सुधारा है, उसीमें वे अछूत बना कर रखे जायंगे। वाइसरायने यह कह कर सन्तोष कर लिया है कि उन्हें यह बात पसन्द नहीं है और वे न्याय करानेके लिये उपाय सोच रहे हैं। यह स्थिति उनके लिए नई नहीं है, पूर्वीय अफ्रिकाके भारतवासियोंने इस आनेवाली दुर्घटनासे पहले ही उन्हें सचेत कर दिया था। यदि इतने पर भी वाइसराय महोदयको न्यायके लिए उचित उपाय नहीं सूझा है तो भविष्यमें सूझनेकी संभावना नहीं है। मैं वाइसरायके भारतीय सहकारियोंसे सम्मानके साथ पूछता हूं कि क्या वे अपने देशवासियोंके स्वत्वोंका इस प्रकार छीना जाना बरदास्त कर सकते हैं?

दक्षिण-अफ्रिकाकी दशा कम शोचनीय नहीं है। मेरे सन्देह ठीक सिद्ध होते मालूम हो रहे हैं। भारतवासियोंको अब उस देशसे अपनी इच्छानुसार लौट आनेकी बजाय वे अधिकतर वहां

से निकलनेको विवश किये जा रहे हैं। इच्छानुसार भारत लौट आनेका कानून गरीब भारतवासियोंको लाभ पहुंचानेके उद्देश्यसे नहीं बनाया गया, बल्कि एशिया निवासियोंके विरुद्ध जो आन्दोलन गोरे लोग कर रहे हैं उसके अनुसार इसकी रचना की गई है। मालूम होता है अनजान भारतवासियोंको फंसानेके लिए यह एक जाल तैयार किया गया है। इस समय दक्षिण-अफ्रिकाकी सरकार इस कानूनका उस उद्देश्यसे प्रयोग कर रही है जिस उद्देश्यसे उसकी रचना नहीं की गई थी।

फिजीके विषयमें हमें यह मालूम होता है कि मानव-जाति पर जो अत्याचार वहाँ किया गया है वह दबा दिया जायगा। मैं आशा करता हूं कि जब तक फिजीके गत मार्शल लाके जमाने-की करतूतोंकी जांच न की जाय तब तक कोई भी भारतीय वहां न जाय। भारत-सरकारने इस बातका वादा कर लिया है कि यदि फिजीके उपद्रवोंकी जांच करनेवाला कमीशन अच्छी रिपोर्ट लेकर वापस आया तो वह हिन्दुस्तानसे मजदूरोंको जानेकी इजाजत दे देगी।

ब्रिटिश गायनासे जो सामाचार प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि जो मिशन यहां आया है वह घोषणा कर रहा है कि शीघ्र ही हिन्दुस्तानी मजदूर वहां पहुंचेंगे। उस देशमें भारतवासियोंके लाभके लिए मुझे कोई भी वास्तविक आशा नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी भागमें हमारी जरूरत नहीं है। हां भंगियोंकी हैसियतसे अछूत बन कर यूरोप-नि-

वासियोंकी सेवा करनेके लिए हम जहां चाहें वहां रह सकते हैं। स्थिति साफ है। हम लोग अपने ही देशमें अछूत हैं। हम जो मागते हैं या जिस पर हमारा हक है, वह नहीं पाते। हम केवल वही पाते हैं जो सरकार हमें देती है। हम लोगोंको टुकड़े मिल सकते हैं, पूरी रोटी नहीं। मैंने स्वादिष्ट भोजनसे परिपूर्ण चौकेमें लालच पैदा करनेवाली जूठन गिरते हुए देखा है। मैंने हिन्दूधर्मको लज्जित करनेवाले अछूत लोगोंको भी देखा है जिनकी आंखे इस जूठनको अपनी टोकरीमें गिरते देख खुशीसे चमक उठती हैं। लेकिन एक उच्च हिन्दू जो कि अपनी टोकरी दूरसे भर रहा है, यह जानता है कि यह जूठन उसके कामकी नहीं है। इसी प्रकार हम लोग भी गवर्नरका पद पा सकते हैं जिसकी हमारे शासकोंको जरूरत नहीं। या जो कि वे अपने आर्थिक स्वत्वोंकी रक्षाके लिये अर्थात् भारत पर राजनैतिक और आर्थिक अधिकार कायम रखनेके वास्ते अपने हाथमें नहीं रख सकते। अब समय आगया है कि हम अपनी स्थितिका अनुभव करें।

९—शाही आगमन

युवराज

(जुलाई ७, १९२०)

युवराजकी भारतयात्राके सम्बन्धमें मिस्टर वैपटिस्टाने 'वम्बे क्रानिकिल' में एक पत्र लिखा है। उस पत्रमें उन्होंने चन्द बातों का विरोध किया है जिनसे वे मेरा सम्बन्ध बतलाते हैं। मैं इस विकट प्रश्नपर चुप रहना ही अच्छा समझता हूं पर जब मेरे ऊपर यह दोषारोपण किया जाता है कि मैं 'मन्त्रियोंके अपराधका बदला युवराजके बहिष्कार' से चुकाना चाहता हूं तो मुझे बाध्य होकर कुछ न कुछ लिखना पड़ता है। मिस्टर वैपटिस्टाने लिखा है कि शासन प्रबन्धमें युवराजका कोई हाथ नहीं है। साम्राज्यके मन्त्री जो कुछ भला बुरा करें युवराजका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। युवराजका स्वागत करनेके लिये मेरे हृदयमें उतना ही सम्मान है जितना अन्य किसीको हो सकता है और चूंकि मेरे हृदयमें ब्रिटिश शासन पद्धतिके लिये भी सम्मान है इसी-लिये वर्त्तमान अवस्थामें युवराजके स्वागतका बहिष्कार करना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि राजवंशसे तथा राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है इसीलिये मैं जान बूझकर ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल या भारत सरकारको अपने राजनैतिक लाभके लिये भारत सर-

कारका प्रयोग नहीं करने देंगे। यदि मैं और कुछ नहीं कर सकता तो मैं इतना तो कभी भी नहीं होने दूंगा कि मैं ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल अथवा भारत सरकारके हाथोंका शिकार बन जाऊं और युवराजके आगमनके बहाने उन्हें अपने अधिकारको और भी दृढ़ कर लेने दूँ ताकि वे संसारको इस बातकी घोषणा देकर सुनावें कि सम्राटके शासनमें भारतकी प्रजा परम सन्तुष्ट तथा सुखी है। यह बात सबको भली भाँति समझ लेना चाहिये कि यदि हम लोग चुप रहे या राजभक्तिके भ्रममें पड़कर युवराजका स्वागत किया तो संसारमें यही बात प्रगट होगी। मेरी समझमें ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके कानों तक हम यह बात पहुंचा कर कि यदि आपने युवराजको भारत भेजा तो भारतीय उनके स्वागतके लिये कभी भी तैयार न होंगे, हम अपनी राजभक्तिका ही सबूत देते हैं। हम उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहते हैं कि पञ्जाब तथा खिलाफतके सम्बन्धमें हमारा हृदय अतिशय पीड़ित है। और जिस समय हम लोग अपनी रक्षाके लिये संग्रामकर रहे हैं तो युवराजके स्वागतमें हम उनका साथ नहीं दे सकते। इस समय युवराजके आगमनका क्या अभिप्राय है, यदि इस बातको हम जनताके सामने प्रत्यक्ष नहीं रख देते, यदि उन्हें युवराजके आगमनके रहस्यको नहीं बतला देते तो हम लोग पापके भागी होंगे। सर्व साधारणको यह बात समझ लेनी चाहिये कि युवराज मन्त्रियोंके भेजे हुए भारतमें आ रहे हैं और ब्रिटिश सरकारका हाथ मजबूत करनेके अभिप्रायसे भेजे जा रहे हैं। इस

लिये यह आगमन युवराजकी निजी इच्छासे नहीं है बल्कि मन्त्रि-मण्डलकी प्रेरणाका फल है। इसलिये युवराजका वहिष्कार करके हम लोग मन्त्रियोंकी चालें व्यर्थ कर देंगे। इससे युवराजके लिये कोई बात नहीं होगी। इस तरह वे देखेंगे कि हम लोग उनके हाथके खिलौना नहीं बन गये हैं। मान लीजिये कि आज ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल लार्ड चेम्स फोर्डको हटाकर सर माइकल ओडायरको बड़े लाट बनाकर भेजती है और सर माइकल ओडायर युवराजके स्वागतकी तैयारी करते हैं तो इस अवस्थामें मिस्टर वैपटिस्टा हम लोगोंको क्या सलाह देंगे? क्या उस समय भी वे हमलोगोंको यही राय देंगे कि हमलोग उनके माया जालमें पड़ जायं और स्वागत करें। थोड़ी देरके लिये मान लीजिये कि युवराजकी उपस्थितिमें ही उन्होंने पञ्जाबके नेताओंका अनादर किया तो उस समय पञ्जाबके निवासी क्या करेंगे? क्या उस समय यह समझकर कि राजवंश और राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं हैं उन्हें उस अपमानको बर्दाश्त कर लेना चाहिये और युवराजके स्वागतमें योग देना चाहिये। इस तरहको बातें कहना राजभक्ति और राजनीतिके अर्थको अनभिज्ञता प्रगट करना है।

मैं यह बात दावेके साथ कह सकता हूँ कि यदि आस्ट्रेलियाके लोग इस तरह असन्तुष्ट होते जिस तरह हम हैं तो वे युवराजके स्वागतका वहिष्कार अवश्य करते। युवराजके आगमनसे मन्त्रिमण्डल राजनीतिक लाभ उठाना चाहता

है। हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि उसका यह प्रयास हम व्यर्थ कर दें।

मिस्टर बैपटिस्टाने लिखा है कि हमलोग शोकसे पीड़ित हैं। मेरा भी यही कहना है। इससे उन्हें आशा है कि युवराजको भारत नहीं भेजा जायगा पर यदि युवराजको भारत भेजा जाय तो उन्होंने लिखा है इस शोक और विपन्नावस्थामें भी हमें युवराजका स्वागत करना चाहिये। मैं युवराजका स्वागत करनेके लिये तैयार हूं। इसलिये मैं उस शोकको भी दूर करना चाहता हूं। इसलिये मैं प्रधान मन्त्रीसे कहूँगा कि आप भारतियोंका कहना मानकर खिलाफतके अन्याय और पञ्जाबके अत्याचारका प्रतिशोध कर दीजिये जिससे हम खुले दिलसे युवराजका स्वागत कर सकें। इसके बाद मैं उनसे यह भी कह देना चाहता हूँ कि यदि आप इन अन्यायों और अत्याचारोंको दूर नहीं करते और युवराजको भारत भेजनेकी तैयारी करते हैं तो आप प्रजाकी स्थितिके लिये जिम्मेदार हैं क्योंकि उन्हें लाचार होकर युवराजका बहिष्कार करना पड़ेगा।

राजद्रोही कौन है ?

(जुलाई २१, १९२०)

मि० मान्टेगूने राजद्रोहकी एक नई परिभाषा निकाली है। आप युवराजके आगमनका वहिष्कार कर देनेके मेरे प्रस्तावको राजद्रोही समझते हैं और आपकी देखा-देखी कुछ अखबारोंने भी ऐसा प्रस्ताव करने वाले लोगोंको 'असभ्य' कहा है। इतना ही नहीं उन्होंने इन असभ्य लोगोंके बारेमें यहभी कह डाला है कि वे युवराजका वहिष्कार कर देनेका प्रस्ताव कर रहे हैं। मैं युवराजका वहिष्कार करने और युवराजके जिस स्वागतका प्रबन्ध हो रहा है उसका वहिष्कार करने—इन दोनों बातोंमें बहुत भेद समझता हूं। श्रीमान् युवराज इस समयकी गवर्नमेन्टकी संरक्षकताके विना यहां आवें अथवा आ सकें तो मैं तो उनका हार्दिक स्वागत करूंगा। परन्तु चूंकि राजकुमार एक नियंत्रित सम्राट्के युवराज हैं। उनका आवागमन मंत्रियोंकी आज्ञानुसार हुआ करता है। यह दूसरी बात है कि वह आज्ञा कूटनीतिकी सभ्य भाषामें कितना ही छिपा दी जाय। इसलिये युवराजके वहिष्कारका प्रस्ताव करनेवाले एक धृष्ट नौकरशाहीका और श्रीमान् सम्राट्के बेईमान मंत्रियोंके बहिष्कारका प्रस्ताव कर रहे हैं।

तुम एक साथ दोनों कुण्डलियों पर पैर नहीं रख सकते।

यह बात सत्य है कि नियन्त्रित राजतन्त्रमें राज-घरानेवाले राजनीतिके झगड़ोंसे ऊपर होते हैं। लेकिन फिर तुम उन्हें राजनैतिक यात्राके लिये नहीं भेज सकते, उनके भारत आगमनसे राजनैतिक लाभ उठानेका यत्न नहीं कर सकते। और यदि तुम ऐसा करते हो तो फिर जो लोग तुम्हारे जालमें नहीं फँसते और उसे काटनेके लिये युवराजके स्वागतका वहिष्कार करते हैं उनके बारेमें तुम यह शिकायत नहीं कर सकते कि वे नियन्त्रित प्रजा तन्त्रकी वैध रीतियोंसे अनभिज्ञ हैं। युवराज यह भारत-यात्रा अपने प्रमोदके लिये नहीं कर रहे हैं। वह यहां मि० लायड जार्जके शब्दोंमें ब्रिटिश जातिके प्रतिनिधिकी हैसियतसे आ रहे हैं, जिसका कि दूसरे शब्दोंमें यह अर्थ हुआ कि वह मि० लायड जार्जहीके प्रतिनिधि बन कर—उन्हें प्रशंसा पत्र देनेको और सम्भवतः मन्त्रियोंको दिर्घ-जीवन प्रदान करनेको—यहां आ रहे हैं। युवराजको यहां भेजनेकी इच्छा एक ऐसी शक्तिका बल बढ़ानेको है जिससे कि भारतको हानिहोकी सम्भावना हो सकती है। खैर, यह सब होते हुए भी मि० मान्टेगू समझते हैं कि अब तक भारतमें राजघरानेके पुरुषोंका जैसा स्वागत हुआ है युवराजका स्वागत सम्भवतः उससे घटकर नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि पञ्जाबमें अधिकारियोंने जो अत्याचार किये हैं तथा खिलाफतके सम्बन्धमें दिये गये सरकारी बचनोंका जो वेई-मानीके साथ भंग किया गया है उनसे भारतकी जनताको वास्त-विक और गहरा दुःख नहीं पहुंचा। भारत गवर्नमेंन्टको यह

बात मालूम है कि भारतके हृदयमें इस समय भारी चोट लगी हुई है। इस लिये उसे ब्रिटिश मन्त्रियोंसे कह देना चाहिए था कि यह समय युवराजको भेजनेके लिये ठीक नहीं है। मैं कह सकता हूं कि युवराजको यहां भेजना और उनके द्वारा उस गवर्नमेंटको जो कि बेइज्जतीके साथ वर्खास्त कर दी जानेके लायक है, नई प्रतिष्ठा और सम्मान प्रदान करना हमारे घावपर नमक छिड़कना है। मेरा दावा है कि मैं यह कह कर कि भारत इतने शोकमें फंसे होनेके कारण युवराजके स्वागतमें कोई भाग नहीं ले सकता, अपनी राजभक्ति प्रमाणित कर रहा हूं और ब्रिटिश मन्त्रिगण तथा भारत गवर्नमेन्ट अपनी गहरी राजनैतिक चालमें युवराजको अपनी कठपुतली बना कर अपने राजविद्रोहका परिचय दे रहीहैं। अगर वे अपनी जिद पर अड़ी ही रहीं और युवराजको भेजा ही तो भारतका स्पष्ट कर्तव्य यही है कि वह युवराजकी यात्रासे कोई सम्बन्ध न रखे।

नाममें क्या है

—:०:—

(अगस्त ४, १६२०)

महात्माजीने युवराजके स्वागतके वहिष्कारका समर्थन किया है। इसी प्रसंगको लेकर 'टाइम्स आफ इण्डिया' में किसी लेखकने उनकी हंसी उड़ाई है कि जब वे ब्रिटिश मालके वहिष्कारकी निन्दा कर रहे हैं तो उन्हें युवराजके स्वागतका वहिष्कार नहीं करना चाहिये। हम लोगोंको विदेशी भाषाका प्रयोग करना पड़ता है, यही कारण है कि इस पत्रके लेखकको कुछ भ्रम होगया है। लेखक महोदयको यह बात भलीभांति समझ लेनी चाहिये थी कि महात्माजी ब्रिटिश मालका वहिष्कार अवश्य करते हैं पर इससे यह नहीं कहा जासकता कि वे हर तरहके वहिष्कारका विरोध करेंगे। वे बुराई और झूठके वहिष्कारकी सदा योजना करते हैं और उन्हें बहुधा तकरार भी मिली है। उन्होंने हर तरहके विदेशी कपड़ोका वहिष्कार किया है। ब्रिटिश मालके वहिष्कारका विरोध उन्होंने इसलिये किया है कि उसमें प्रतिहिंसाकी झलक दिखाई देती है और वह किसी स्थायी सिद्धान्तके आधार पर नहीं है जैसा कि स्वदेशी है। ब्रिटिश वस्तुओंके वहिष्कारके माने हैं ब्रिटिश राष्ट्रसे संग्राम करना और महात्माजी वर्तमान ब्रिटिश सरकारके साथ संग्राम कर रहे हैं। इस संग्राममें यदि ब्रिटिश मालका वहिष्कार किया जाय तो जापान आदि

अन्य विदेशी राष्ट्रोंको अपने मालसे भारतीय बाजार पाट देनेका अवसर मिलेगा। इसका परिणाम यह होगा कि हम आर्थिक असुविधामें पड़ जायंगे और इन राष्ट्रोंके साथ अनेक तरहकी कठिनाइयां उपस्थित होंगी। बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड है। इसलिये उसकी सफलता तुरत होनी चाहिये और उसका प्रभाव भी व्यापी होना चाहिये। पर जनता उसके लिये तैयार नहीं है। यही कारण है कि माहात्माजी उस तरहके बहिष्कारके विरोधी हैं। पर युवराजके स्वागतके बहिष्कारके साथ किसी तरहके दण्डका भाव नहीं लगा है। इसके द्वारा हम लोग उस अधिकारी वर्गके साथ सहयोग नहीं करना चाहते हैं जो अपनी शक्ति और भी मजबूत बनानेके लिये और सभ्य संसारसे इस बातका प्रमाण प्राप्त करनेके लिये कि वे भारतको योग्यताके साथ शासित कर रही है, युवराजकी यात्राका प्रबन्ध कर रही है। इसलिये जिन्हें राष्ट्रकी मर्यादाका जराभी ख्याल है उन्हें युवराजके स्वागतका अवश्य बहिष्कार करना चाहिये। इस तरह हम लोग अधिकारी वर्गको यह साबित करके दिखला देंगे कि वे अपने जड़ मजबूत करनेके लिये जो चालें चल रहे हैं उसमें वे प्रजासे सहायता नहीं प्राप्त कर सकते।

टट्टीकी ओटसे शिकार

—:०:—

(अक्तूबर २०, १९२०)

युवराजके अस्वस्थ हो जानेके कारण उनकी भारत यात्रा रोक दी गई है और अब सम्राटके चचा कनाटके ड्यूक महोदय दिसम्बरके आरम्भमें भारतमें पधारेंगे और नई कौंसिलोंका उद्घाटन करेंगे। पर जनताके प्रमुख नेताओंने जिस दृढ़ताके साथ कौंसिलोंका बहिष्कार किया है उससे प्रजाकी दृष्टिमें राजवंशके आगमनका अभिप्राय इस समय इन कौंसिलोंका एकमात्र उद्घाटनही नहीं है। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री तथा भारत सरकार ड्यूक महोदयकी इस यात्रासे संसारको यह दिखलाना चाहती है कि उनकी सरकार सर्वप्रिय है। इसलिये यदि हम वास्तवमें यह समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार और भारत सरकारने हमलोगोंके साथ वास्तवमें अत्याचार और अन्याय किया है तो हमें इनके इस तरीकेके आड़में होकर शिकार खेलनेको व्यर्थ कर देना चाहिये। हममें आतिथ्य और राजभक्तका गुण है पर इसका दुरुपयोग हमारी हीनता बनानेमें नहीं होना चाहिये। हम लोगोंको यह भूल नहीं जाना चाहिये कि हम लोगोंके हृदयोंमें राजभक्तिका जो भाव है उसके लिये हमलोग कभी कभी उपहासके पात्र भी बन जाते हैं। राउण्ड टेबुलके किसी सदस्यने राजवंशके प्रति हमारी और ब्रिटिश प्रजाके भावकी तुलना की है।

उसने लिखा है कि भारतवासी राजाको ईश्वरका अंश मानते हैं और राजगद्दीको परम पवित्र मानते हैं और वृटिश जनता राजाको राज्यका साधारण संरक्षक समझती है। इसलिये हम लोग जो राजभक्तिका भाव दिखलाते हैं उसकी उसी तरह चर्चा की जाती है। राजवंशके लिये अतीत कालमें हमने जो सम्मान दिखाया है यदि उसी सम्मानके साथ हमने ड्यूक महोदयका स्वागत किया तो हम अदूरदर्शिता और अविवेकका सच्चा प्रमाण देंगे। जिस समय इसी मंत्रिगणके किये अत्याचारोंके कारण हम कराह रहे हैं तो भला हमारे मुंहसे उन ड्यूक महोदयके स्वागतमें हर्षके शब्द कैसे निकल सकते हैं जिन्हें इन्हीं मन्त्रियोंने भेजा है। यह पहला ही अवसर नहीं है कि मन्त्रिमण्डल अपने शैतानी कार्यपर सफेदी पोतनेके लिये राजवंशकी सहायता लेता है। १८८५ में आयर्लैण्डके सम्बन्धमें भी इसी तरहकी चाल चली गई थी। उस समय मिस्टर पार्नलने संयुक्त आयर्लैण्डके विषयमें जो कुछ लिखा था उसे उद्धृत कर देना उचित होगा :—

"आप लोग युवराजके स्वागतके विषयमें मेरा मत जानना चाहते हैं। इसके उत्तरमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि शासन पद्धतिका प्रयोग जिस तरह इंगलैण्डमें होता है उसी तरह यदि उसका प्रयोग आयर्लैण्डमें हो तो जो लोग नियन्त्रित राजतन्त्रमें विश्वास रखते हैं उनसे किसी तरहका मत भेद नहीं हो सकता। उस अवस्थामें युवराजके स्वागतमें

भी समुचित भाग लिया जा सकता है। पर चूंकि शासन पद्धतिका प्रयोग आयर्लैण्डमें यथामत सच्चे भावसे नहीं हुआ है और लार्ड स्पेन्स तथा वायसराय जो अधिकार भोग रहे हैं वह क्रूर और उच्छृंखल है और चूंकि राजदल युवराजके स्वागतका प्रयोग आयर्लैण्डके राष्ट्रीय दलका अपमान करने तथा यथा-सम्भव उनके काममें वाधा उपस्थित करनेके लिये कर रहा है, ऐसी अवस्थामें कोई भी कारण नहीं दिखाई देता कि कोई भी नियन्त्रित राज-सत्ताका पक्षपाती सरकार यह साबित कर सकती है कि आयर्लैण्डके स्वतन्त्र और देशभक्त नागरिक युव-राजका स्वागत करें। हम एक उदाहरण देना चाहते हैं। मान लीजिये कि सरकार अपने स्वार्थ लाभके लिये निर्वाचनके समय युवराजका प्रयोग करती है और उन्हें मत संग्रह करनेके लिये भेजती है ताकि उसके राजनैतिक विरोधी दब जायं। क्या यह वे लोग पसन्द करेंगे और इसका समर्थन करेंगे। इस अवस्थामें तो युवराजकी यात्राका दुरुपयोग करके एक राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके मार्गमें आगे बढ़नेका काम रोका जा रहा है जिसके लिये उसने अनेक तरहके त्याग किये हैं। ऐसी अवस्थामें तो यह बात और भी गम्भीर हो जाती है। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि आयर्लैण्डके निवासी इस तरहकी पूर्व चेतावनी पाकर इस तरहकी कोई भी चेष्टा नहीं दिखलावेंगे जिसका यह अभिप्राय समझा जाय कि वे पुरानी बातोंको भूल गये हैं और वर्तमान शासन प्रणालीसे सन्तुष्ट हैं।"

जो बात मिस्टर पार्नलने आयर्लैण्डवालोंके लिये कही थी वही बात हम लोग भारतवासियोंके लिये कह सकते हैं। यहांके निवासी भी पूर्व चेतावनी ही नहीं वल्कि जिस संस्थाकी जड़ मजबूत करने ड्यूक महोदय आरहे हैं उसके वहिष्कारमें पूर्ण सफलता प्राप्त करनेके वाद कोई भी ऐसी कार्रवाई न दिखावें जिससे यह सावित हो कि सरकारने उधर जो अत्याचार किये हैं उन्हें वे भूल गये और वर्तमान शासनप्रणालीसे वे सन्तुष्ट हैं।

कनाटके ड्यूक

(दिसम्बर १, १९२०)

कई दिनमें कनाटके ड्यूक महोदय हम लोगोंके बीचमें आ उपस्थित होंगे। मुझे इस बातका खेद है कि उनके सम्मानमें जितने सार्वजनिक समारोह होंगे सबसे वहिष्कारकी मुझे विवश होकर योजना करनी पड़ी है। वे बड़े ही उदार और सरल-चित्त अंग्रेज हैं। पर मैं इसके लिये लाचार हूं, क्योंकि देशकी स्थिति यही प्रगट करती है कि हर तरहसे उनके स्वागतका वहिष्कारही उचित होगा। कनाटके ड्यूक महोदय उस अत्याचारी शासनप्रणालीकी पीठ ठोंकने आ रहे हैं, वे उस नौकरशाहीकी क्रूर करनी पर सफेदी पोतने आ रहे हैं, वे हम

लोगोंको उस बातके भूल जानेके लिये कहने आ रहे हैं जिसे हम कभी भी नहीं भूल सकते। वे हम लोगोंकी जखमोंको अच्छा करने नहीं आ रहे हैं। वलिक धोखाजनक सुधाररूपी नमक छिड़कने आरहे हैं। कनाटके ड्यूक हमारे अपमानके लिये बुलाये जा रहे हैं। उनके स्वागतमें योगदान देना अपने हाथों अपने अपमानको बढ़ाना होगा। जबतक वह सरकार जिसका वह कर्मचारी है उसी तरह अन्यायी और क्रूर बनी रहती है तथा अपनी करनीके लिये पश्चात्ताप नहीं प्रगट करती तब तक उसके कर्णधार किसी भी व्यक्तिका स्वागत या सत्कार हम नहीं कर सकते।

कनाटके ड्यूकके नाम पत्र

(फरवरी ६, १६२१)

महात्मा गाँधीने श्रीमान् कनाटके ड्यूकको निम्न लिखित पत्र भेजा था—

श्रीमन्,

आपने असहयोग, असहयोगी, उनकी कार्य-प्रणाली तथा असहयोगका पुरस्कर्त्ता—मेरे बारेमें भी बहुत कुछ सुना होगा। मुझे भय है कि श्रीमानको असहयोगके बारेमें केवल एक तरफा बयान मालूम हुआ होगा। आपके मेरे अन्य मित्रोंके

तथा अपनी आत्माके प्रति मेरा यह कर्त्तव्य है कि अपनी बुद्धिके अनुसार असहयोगका उद्देश्य, असहयोगकी मर्यादा-को मैं अपके सामने पेश करूं। असहयोगका केवल मैं अकेला ही अनुयायी नहीं हूं, पर मौलाना महम्मद अली शौकत-अली जैसे मेरे परम मित्र भी इसके अनुयायी हैं। आपके स्वागतके वहिष्कारके लिये इस प्रकार अविरल परिश्रम करनेसे मुझे किसी प्रकार आनन्द नहीं हो रहा है। मैंने स्वयं स्फूर्तिसे तीस वर्ष तक सरकारकी राजभक्ति-पूर्वक अखंड सहायता की है। मुझे पूर्ण विश्वास था कि सरकारकी सहा-यता करनेसे ही मेरा देश स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकेगा। इस कारण मेरे लिये अपने देश-भाइयोंको आपके

स्वागतका वहिष्कार

करनेके लिये कहना कोई ऐसी वैसी बात नहीं थी। हममें किसीको भी आपके खिलाफ कुछ भी नहीं कहना है। अंगरेज सज्जनकी हैसियतसे आप मेरे मित्रोंसे भी मुझे अधिक प्रिय हैं। मेरा कोई भी मित्र ऐसा नहीं है जो अपनी जान देकर संकटके समय आपकी जान न बचावे। व्यक्तिगत अंगरेजोंसे हमारी लड़ाई नहीं है। हम अंगरेजोंका जीवन नष्ट करना नहीं चाहते। हम उस प्रणालीको नष्ट करना चाहते हैं जिसके कारण हमारे देशवासियोंका आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक ह्रास हुआ है। अँगरेजोंके उस स्वभावके विरुद्ध लड़नेका हम लोगोंने निश्चय किया है जिसके कारण पञ्जाबमें ओडायर और डायरशाही

सम्भव हो सकी तथा जिसके कारण इस्लामका बड़ा भारी अपमान हुआ है। भारतवर्षकी सात करोड़ प्रजा इस्लाम धर्मको माननेवाली है। प्रधान मन्त्रीकी घोषणाके शब्द तथा अर्थका विपर्यास करके जो प्रतिज्ञा-भंग किया गया है उससे इस्लामका

अत्यन्त अपमान

हुआ है। तीस करोड़ निरुपद्रवी भारतवासियोंके मानकी जिस सरकारने बारंबार अवज्ञा की है उसके महत्व और हुकूमतको माननेके लिये अब हम लोग बिलकुल तैयार नहीं हैं। यह सर्वथा हमारे लिये अपमानकारी है, आपके लिये भी यह गर्व करनेकी बात नहीं है कि तीस करोड़ भारतवासी प्रति दिन एक लाख अंगरेजोंके कारण अपनी जानके लिये डरते रहें और जानके भयसे उनकी गुलामी करें। जिस शासन-प्रणालीका मैंने वर्णन किया है आप उसे नष्ट करने नहीं आये हैं, बलिक उसका बल बढ़ाकर उसकी फिरसे स्थापना करने आये हैं। आपने अपने पहले ही भाषणमें लार्ड विलिंगटनकी तारीफ की है। मैं भी उन्हें पहचानता हूं। मेरा विश्वास है कि वे ऐसे महात्मा पुरुष हैं जो मक्खीको भी सताना पसन्द नहीं करते। पर शासककी हैसियतसे वे अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सके। वे अधिकारके पक्षपातियोंके कहनेमें आ गये। वे द्रविड़ देशवासियोंके विचार नहीं समझते हैं। यहां बंगालमें भी आप गवर्नरको प्रशंसा पत्र दे रहे हैं। जहांतक मैंने इनके बारेमें सुना है ये भी बड़े सज्जन पुरुष हैं, पर ये भी बंगवासि-

योंके हृदय और आकांक्षाओंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते।

बंगाल कलकत्ता नहीं है

फोर्ट विलियम और कलकत्तेके महलोंमें बसनेवाले इस सुन्दर प्रान्तके शांत किसानोंको मनमाना खूदनेका उद्योग करते हैं। असहयोगियोंने यही अन्तिम निर्णय किया है कि भारतवर्षके कष्ट और अपमान दूर करनेके लिये जिन सुधारोंकी योजना की गई है उनसे जनताको धोखा न खाने देंगे और उन पर क्रोध भी प्रगट न करेंगे। क्रोधमें आकर हमें मूर्खतासे बलात्कार करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। हम यह माननेको तैयार हैं कि वर्तमान परिस्थितिके लिये कुछ अंशमें हम लोग भी दोषी हैं। अंगरेजोंकी बन्दूकोंकी अपेक्षा सरकारसे सहयोग करके ही हमने अपनेको गुलाम बना लिया है। इससे स्पष्ट है कि आपके स्वागतका बहिष्कार करनेके लिये जो आन्दोलन किया गया है वह आपकी व्यक्तिका बहिष्कार करनेके लिये नहीं किया गया है, पर आप जिस शासन-प्रणालीकी स्थापना करनेके लिये आये हैं उसके विरुद्ध यह आन्दोलन है। मुझे विश्वास है कि कोई भी एक अंगरेज यदि वह चाहे तो भी एक दम अपना अंग्रेजी स्वभाव नहीं बदल सकता। यदि हम अंगरेजोंके समान होना चाहें तो हमें

डर छोड़ना चाहिये

हमें अपने पर भरोसा करना सीखना चाहिये और सरकारके

संरक्षणसे, अदालतोंसे तथा स्कूलोंसे स्वतन्त्र बन जाना चाहिये। यदि सरकार हमारे कष्ट दूर न करेगी तो हम उसके लिये चाहे जिस प्रकारसे प्रयत्न करेंगे। इस कारण बलात्कार-रहित असहयोग शुरू किया गया है। मुझे मालूम है कि अब तक हम लोग वाचा, कर्मणा शान्त नहीं बन गये हैं पर श्रीमान्‌को विश्वास दिलाता हूं कि अब तक असहयोगने आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त कर ली है। लोग बलात्कार न करनेका रहस्य और महत्व पहलेसे अधिक समझने लगे हैं। जो इस असहयोगको देखेगा वह कहेगा कि असहयोग धार्मिक प्रायश्चित्त करनेका आन्दोलन है। हम लोग मद्य-पान छोड़ रहे हैं, हम लोग भारतवर्षको छूत अछूतके झगड़ेसे मुक्त कर रहे हैं, हम लोग भड़कीली विदेशी पोशाकका बहिष्कार कर रहे हैं और चर्खा चला कर लोगोंको पुरानी प्रथासे साधारण जीवन व्यतीत करना सिखा रहे हैं। ऐसा करके हम वर्तमान दुष्ट शासन प्रणालीका नाश करनेकी उम्मीद रखते हैं। मैं श्रीमान्‌से इस आन्दोलनका अच्छी तरह अभ्यास करनेकी प्रार्थना करता हूं और साम्राज्य और संसारके लिये इसका कहांतक उपयोगी होना सम्भव है यह भी जाननेकी प्रार्थना करता हूं इस प्रकार

इस्लामकी रक्षा

करनेसे हम सब धर्मों की रक्षा कर रहे हैं। भारतवर्षके गौरवकी रक्षा करके हम मानव-जातिके गौरवकी रक्षा कर रहे हैं। हमारे आन्दोलनसे किसीको कष्ट नहीं पहुंचता। हम अंगरेजोंके साथ मित्रभाव रखना चाहते हैं, पर यह मित्रता सिद्धान्त तथा व्यवहारमें बराबरीकी होनी चाहिये। और जबतक हमें हमारा लक्ष्य प्राप्त न होगा तब तक हमें असहयोग जारी रखना चाहिये।

मैं श्रीमान्से और आपके द्वारा प्रत्येक अंगरेजसे असहयोगियोंकी विचार दृष्टिकी तारीफ करनेकी प्रार्थना करता हूं।

श्रीमान्का नम्रसेवक—

मो० क० गांधी

युवराजका आदर करो

(अक्तूबर २७, १९२०)

इस लेखकके शीर्षकसे किसीको भ्रम नहीं होना चाहिये। मान लीजिये कि युवराज हमलोगोंके सगे भाई हैं और किसी उच्च पदपर हैं। हमारे पड़ोसी अपनी नीच वासनाकी प्राप्तिके लिये उन्हें धोखा देकर उनका दुरुपयोग करते हैं, युवराज पूरी तरहसे हमारे पड़ोसियोंके कब्जेमें हैं, हमारी आवाज उन तक नहीं पहुंच सकती, वे पड़ोसी उन्हें हमारे गांवमें ला रहे हैं, ऐसी अवस्थामें उनको ठगनेके लिये जितने समारोह इस आगमनके रूपमें किये जाते हैं, उनसे हर तरहसे अलग रह कर उनमें भाग न लेकर और हर तरहसे उन्हें यह बतला कर कि वे इस तरह धोखेमें डाल दिये गये हैं, क्या हम उनकी यथेष्ट सेवा नहीं कर रहे हैं? हमारे पड़ोसियोंने उनके लिये जो जाल फैलाया है उसमें फंसनेसे बचनेके लिये चेतावनी दे देना क्या हमारा धर्म नहीं है?

इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं रह गया कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी शोहरत मचानेके लिये, उसकी उत्तमता प्रमाणित करनेके लिये ही युवराजकी यात्राका प्रबन्ध किया गया है।

जिस समय भारतमें असन्तोषकी दावाग्नि जल रहा है, और जनता उस शासनसे नितान्त असन्तुष्ट है जिसके अन्दर उसे रहना पड़ रहा है, जिस समय खुलना और सीडेड प्रान्त अकाल-के कराल कवलमें पड़ रहे हैं, जब मलाबारमें सशस्त्र विद्रोह खड़ा है, ऐसी अवस्थामें यहां युवराजको आनन्द मनानेके लिये बुलाना, उनके स्वागतमें करोड़ों रुपया उन भूखे और दीन-हीन प्रजाका खर्च करना, जो पेट भर अन्नके लिये तरस रही है, पाप और अत्याचार नहीं तो और क्या है। इस तैयारी और समारोहके लिये केवलमात्र बम्बई सरकारने आठ लाख रुपयेको मंजूरी की है।

उनके आगमनका आरम्भ दमनसे हो रहा है। सिन्धके प्राय ५०।६० असहयोगी जेलकी हवा खा रहे हैं। चन्द वीर, धीर और साहसी मुसलमानों पर अभियोग चलाया जारहा है, क्योंकि उन्होंने कुछ मत स्थिर कर लिये हैं और उनका प्रचार करते हैं। बंगालके १६ कार्यकर्ता गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये हैं। उनमें उस स्थानके प्रसिद्ध बारिस्टर मिस्टर जे० एन० सेन गुप्त भी हैं। इसी तरहके अपराधके दोषमें एक मुसलमान पीर और तीन निस्वार्थ देशसेवी जेलकी यातना भोग रहे हैं। कर्नाटककेभी अनेक नेता जेलमें भेज दिये गये हैं। और आज कर्नाटकका प्रधान नेतापर वह बात कहनेके कारण—जिसे मैं इस पत्रमें अनेक बार लिख चुका हूं, और जिस बातको प्रत्येक कांग्रेसमैन विगत १२ महीनोंसे कहता चला आरहा है—अभियोग चलाया जारहा है। इसी तरह मध्य प्रान्तके नेताओंकी स्वतन्त्रता भी अपहरण कर ली गई है। सर्वमान्य और निस्वार्थ डाक्टर परांजपे साधारण अपराधीकी भाँति जेलमें अपना दिन काट रहे हैं। यहीं बस नहीं है। जितने असहयोगी इस समय

जेलकी यातना भोग रहे हैं उनकी सख्या अपरिमित है। चाहे उनपर वास्तविक अपराधके कारण यह दण्ड आरोपित किया गया हो या बढ़ते असन्तोषका इन्हीं शब्दोंमें उत्तर देना सरकारको उचित प्रतीत होता हो, पर इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि युवराजकी भारतयात्रा असामयिक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस अवस्थामें कोईभी यह नहीं चाहता कि युवराज भारतकी यात्रा करनेकेलिये आवें। उन्होंने निश्चित रूपसे, स्पष्ट शब्दोंमें अपना मत दे दिया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि जिस दिन वे बम्बई बन्दरगाहमें उतरें बम्बईको हड़ताल मनानी चाहिये। इस तरहके प्रत्यक्ष विरोधकी परवा न करके युवराजको भारतमें बुलाना उन्हें जनताके सिर पर जबरदस्ती लादनेके बराबर है।

ऐसी अवस्थामें हमें क्या करना चाहिये! हमें उचित है कि युवराजके स्वागतमें जितने जल्से किये जायं हम सबका बहिष्कार करें। इस निमित्त दान, सदाव्रत, उत्सव, समारोह, आतिशबाजी आदिमें हमें कहीं नहीं जाना चाहिये। इस निमित्त हमें अपने घरोंमें न तो रोशनी करनी चाहिये और न रोशनी देखनेके लिये हमें अपने लड़कोंको घरसे बाहर भेजना चाहिये। इस निमित्त हमें लाखों परचे छपा छपा कर बांटना चाहिये और इस विषयमें उनके कर्तव्यका उन्हें ज्ञान देना चाहिये। यदि उनके आगमनके दिन बम्बई शहरका दृश्य उजाड़ प्रतीत हुआ तो इससे बढ़कर युवराजका दूसरा उपकार हम नहीं कर सकेंगे।

पर हमें युवराजसे उनके व्यक्तित्वको अलग कर रखना चाहिये। युवराजके व्यक्तित्वसे हमें किसी तरहका क्षोभ या विद्वेष नहीं है। न तो उन्हें यहांके दमनका कुछ पता है और न जनतामें फैले असन्तोषके भावका कुछ ज्ञान है। उन्हें यह बातभी

नहीं विदित है कि अधिकारीवर्गने पंजाबके हृदयमें जो जख्म किया है उससे आजभी रक्तकी धारा बह रही है, खिलाफतके सम्बन्धमें जिस बेइमानीकी नितिसे बृटिश प्रधानमन्त्रीने काम लिया है उसकी भयानक स्मृति आजभी जनताके हृदयमें उसी तरह वर्तमान है और जिन सुधार कौंसिलोंकी जड़ मजबूत करनेके लिये युवराज बुलाये जा रहे हैं, वे सरकारकेही शब्दोमें, जनताकी सच्ची प्रतिनिधि नहीं हैं। उनमें निर्वाचित सदस्य तो केवल नाममात्रके निर्वाचित हैं नहीं तो जिन निर्वाचकोंका नाम निर्वाचन सूचीमें है उनके दशमांशनेभी इनके निर्वाचनमें योग दान नहीं दिया है। युवराजके शरीरको किसी तरहका कष्ट देना या किसी तरहके कष्ट देनेकी चेष्टा करना हम लोगोंके लिये केवल अन्यायपूर्ण और क्रूर ही नहीं होगा बल्कि विश्वासघातका सबसे बडा उदाहरण होगा क्योंकि हमलोगोंने पूर्णतया अहिंसात्मक रहनेकी शपथ खायी है। यदि हमारी चेष्टासे युवराजके शरीरको किसी तरहका कष्ट पहुंचा तो हम भारत और इस्लामके हकमें जो बुराई पैदा कर देंगे वह किसी अंग्रेज द्वारा भी नहीं हो सकती। वे लोग सब बातें भली भाँति नहीं जानते पर हम लोग इस तरहकी अनजानकारीका दावा नहीं कर सकते। हम लोगोंने ईश्वरको प्रमाण देकर शपथ खाई है कि जिस शासन प्रणाली और सरकारका अन्त कर देनेके लिये हमलोगोंने प्रतिज्ञा की है उसको वा उससे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको किसी भी तरहकी शारीरिक क्षति नहीं पहुंचावेंगे। इसलिये हमारा यह धर्म होना चाहिये कि जिस तरह हम अपने शरीरकी रक्षाके लिये हर तरह उपाय करते हैं उसी तरह हमें युवराजके शरीरकी रक्षाका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

हम लोग चाहे जो प्रयत्न करें पर कुछ लोग ऐसे हैं जो

भयसे, प्रलोभनसे या अपनी इच्छासे युवराजके स्वागतमें भाग लेंगे। उनको अपनी इच्छाके अनुसार काम करनेका पूर्ण अधिकार है। जिस स्वतन्त्रताका हम आवाहन कर रहे हैं और जिसका हम उपभोग करना चाहते हैं उसकी यही पहचान है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाका अनुकरण करनेके लिये स्वतन्त्र हो। इसलिये हमें ध्यान रखना चाहिये कि नौकरशाही द्वारा हर तरहसे उत्तेजित किये जानेपर भी हमें साहस धैर्य और शान्तिके साथ काम लेना होगा। यदि हम लोग दोनों काम सफलता पूर्वक एक ही साथ कर सके तो हम अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें जितना आगे इससे बढ़ जायँगे उतना और किसी तरहसे नहीं बढ़ सकते, अर्थात् एक तो हमें दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि हम ऐसा कोई काम नहीं करते जिसके द्वारा यह प्रगट हो कि हमने युवराजके स्वागतोत्सवमें भाग लिया और दूसरे हमें हर तरहसे अहिंसात्मक रहकर उन लोगोंके साथ किसी तरहकी छेड़ छाड़ नहीं करनी चाहिये जो हम लोगोंसे भिन्न मत रखते हैं और युवराजके स्वागतोत्सवमें भाग लेते हैं।
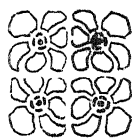
काला धब्बा

(नवम्बर २४, १९२१)

युवराजके आगमनके दिन बम्बईमें जो दुर्घटना हुई उसे देखकर महात्माजीने निम्न लिखित सूचना प्रकाशित की थी।

बम्बईके यशमें, मेरी स्वप्नवत आशाओंमें कल अमिट काला धब्बा लग गया। मैं तो अपनी सदाकी सादगीके साथ जनताको उनकी अहिंसात्मक प्रवृत्तिके लिये बधाई दे रहा था कि सरकारकी ओरसे उत्तेजित किये जानेपर भी वे विचित्र शन्तिसे काम ले रही हैं क्योंकि कल रातको ही अनेक स्वयंसेवक केवल पोस्ट चिपकानेके अपराधमें गिरफ्तार किये गये थे। इन पोस्टरोंमें युवराजके स्वागतके बहिष्कारकी चर्चा थी। वे सब नष्ट कर दिये गये। स्वराज्य सभा कार्यालयपर धावा किया गया और विना इस्तेमाली पोस्टर उठा ले गये यद्यपि वे नाजायज नहीं ठहराये गए थे। स्वयं युवराजका आगमन, उनके स्वागतके लिए किए गए अनेक तरहके प्रबन्ध तथा सार्वजनिक रुपयेका अपव्यय ही जनताको उत्तेजित करनेके लिये पर्याप्त था। इतनेपर भी बम्बई शान्त था। यह बधाईकी बात थी। इसके अतिरिक्त विदेशी वस्त्रोंकी होली उसके प्रतिकूल और भी उत्साहका द्योतक था।

एक तरफ तो अहिंसात्मक शान्तिमय दृश्यको देख देखकर मैं आनन्दित हो रहा था। पर मैं नहीं जान रहा था कि दूसरी ओर मिलके कर्मचारी अपने मालिकोंकी आज्ञाकी उपेक्षा करके एक एक करके काम छोड़ रहे थे, और जिस समय युवराज

उन सजी सजाई सड़कोंसे होकर आगे बढ़ रहे थे, यह उत्तेजित भीड़ राह चलनेवालोंको तंग कर रही थी, ट्राम गाड़ियोंको रोक रही थी और जो लोग विदेशी टोपियां लगाकर उधरसे जाते थे उनके सिर परसे जबर्दस्ती टोपियां उतार रही थी तथा निर्दोष अंग्रेजोंपर ढेले फेंक रही थी। इस तरह ज्यों ज्यों दिन बीतता गया अपनी दुष्टतामें सफल होकर भीड़की उत्तेजना और शरारत और भी बढ़ती गई। उन्होंने ट्रामगाड़ियोंमें आग लगा दी, एक मोटर जला दी, शराबकी दूकानें नष्ट भ्रष्ट कर दीं, और दो दूकानोंमें आग लगा दी।

इस दुर्घटनाका समाचार मुझे एक बजे दिनको मिला। मैं कुछ मित्रोंको लेकर फौरन घटनास्थलपर पहुंचा। वहां मुझे मालूम हुआ कि कतिपय पारसी बहिनोंको तंग किया गया है। इससे मुझे मार्मिक वेदना हुई। कितनी बहिनोंपर हाथ छोड़ा गया और कितनोंकी साड़ियां काट डाली गईं। एक पारसी घोर उत्तेजना और क्रोधके साथ कांपते स्वरमें इस शोचनीय दृश्यका वर्णन कर रहा था। उस समय किसीने भी इस दोषको अस्वीकार नहीं किया यद्यपि मेरे मोटरके सामने उस समय कोई १५०० आदमी जुट गये थे। एक वृद्ध पारसीने मुझसे कहाः—"कृपया इस उत्तेजित भीड़से हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।" पारसी बहिनोंके साथ इस अत्याचारका समाचार मेरे हृदयको चीरने लगा। मुझे यही मालूम होने लगा मानों मेरी बहिन और मातापर ही यह संकट आ पड़ा था। कुछ पारसियोंने स्वागतमें भाग अवश्य लिया था। पर वे अपनी इच्छाके अनुसार आचरण करनेके लिये स्वतन्त्र थे। इसके लिये उन्हें तंग करना अनुचित था। स्वराज्यमें इस तरहके अत्याचारको स्थान नहीं मिल सकता। मूर्ख मोपले हिन्दुओंको जबर्दस्ती मुसलमान बनाकर

यही सोचते हैं कि वह धर्मका काम कर रहे हैं और ईश्वर उससे प्रसन्न होंगे। पर यदि कोई असहयोगी ज्यादती करता है और किसीको सताता है तो इसके लिये वह किसी तरहकी बहानेबाजी नहीं पेश कर सकता।

उस स्थलसे मैं दूसरे स्थानपर पहुंचा। वहां देखा कि शराबकी दूकानें नष्ट भ्रष्ट कर दी गई हैं और दो सिपाही बुरी तरह घायल कर दिये गये हैं। वे बेहोश पड़े हैं और उनकी फिकर करने वाला कोई नहीं है। मैं फौरन मोटरसे उतर पड़ा। जनताने मुझे घेर लिया और जय घोष करने लगी। साधारणतः उस घोषसे मुझे कष्ट होता है। पर उस दिन मुझे उससे अत्यधिक कष्ट हुआ कि दो बेहोश भाई जमीनपर पड़े हैं, उनकी किसीको चिन्ता नहीं है और मेरा नाम लेकर आकाश गुंजानेके लिये सब तैयार हैं। मैंने उन्हें डाटा और वे चुप हो गये। उन दोनों आहत सिपाहियोंके लिये जल लाया गया। मैंने अपने दो साथियोंसे तथा भीड़मेंसे कई लोगोंसे प्रार्थना की कि इन्हें अस्पतालमें पहुंचावो। वहांसे मैं और आगे बढ़ा जहांसे आगकी लपट आ रही थी। यहां दोनों ट्रामगाड़ियां जल रही थीं जिनमें भीड़ने आग लगा दी थी। लौटते समय मुझे एक जलती मोटरगाड़ी भी मिली। मैंने भीड़से प्रार्थना की कि आप लोग अपने अपने घर चले जाइये। मैंने उनसे कहा कि आप लोगोंने खिलाफत पञ्जाब तथा स्वराज्यके मसलेमें घोर बाधा पहुंचाई है। मेरा हृदय अतीव क्षुब्ध था। मैं भी घर लौट आया।

पांच बजे शामको कतिपय वीर सिन्धी मेरे पास समाचार लेकर आये कि भिण्डी बाजारमें उपद्रवी राह चलनेवालोंको बेतरह तंग कर रहे हैं। जो लोग विदेशी टोपियां पहने हैं उनकी टोपियां उतार रहे हैं और लोगोंको मार पीट रहे हैं। एक

बुड्ढे बीर पारसीने उनकी बातें नहीं सुनी और अपनी पगड़ी नहीं दी। इसपर भीड़ने उसे बेतरह पीटा। मियां छोटानीको लेकर मैं उसी समय घटनास्थलपर पहुंचा। भीड़को समझाने लगा कि इस तरह निर्दोष आदमियोंपर अत्याचार करके वे अपने धर्मपर घोर क्षति पहुंचा रहे हैं। इससे भीड़ धीरे धीरे हटने लगी। पुलिस वहां थी पर चुपचाप थी। हमलोग इसी तरह आगे बढ़े। जब लौटे तो देखा कि एक शराबकी दूकान जल रही है। मेरे दुःखका ठिकाना न रहा। भीड़ने वाटर ब्रिगेड (आग बुझाने वाली कल) को भी ठीक तरहसे काम नहीं करने दिया। प० नेकीराम शर्मा तथा अन्य लोगोंके कठिन परिश्रमसे उस दूकानके लोग बेदाग बाहर निकल आये।

इस भीड़में केवल लड़के और बदमाश ही नहीं थे। इसमें केवल अनपढ़ मूर्ख ही न थे। इसमें केवल मिलके मजूर ही नहीं थे। इसमें हर तरहके लोग शामिल थे जो किसीकी बातें सुननेके लिय तैयार नहीं थे। उस समय वह आपेसे बाहर हो रहे थे। यह भीड़ कई भागोंमें बटी थी और कुल मिलाकर इसमें २० हजार आदमी थे। वह दुष्टता और उपद्रवके लिये तुली और तैयार थी।

मुझे मालूम हुआ कि कहीं कहीं गोलियां चल गईं और अनेक आदमी मारे गये। अंग्रेजी पाड़ोंमें जो लोग अपने बदन परसे खादीके कपड़े नहीं उतार देते थे उन्हें बुरी तरह पीटा जारहा था। मुझे मालूम हुआ कि कितनेको बुरी तरह चोट लगी। जिस समय मैं लिख रहा हूं मेरे पास ६ हिन्दू और मुसलमान कार्यकर्ता बैठे हैं जिनकी नाक टूट गई है, अनेक जगहपर अंग भंग हो गया है और रक्तसे तर हैं। लक्षणसे मालूम होता है कि उनके प्राणभी संकटमें हैं। वे लोग पेरल जारहे थे। मौलाना आजाद

सोभानी तथा मुअज्जम अली उनके साथ थे। वहां मिलके मजूर ट्रामगाड़ी रोके खड़े थे। पर ये लोग वहां तक नहीं जा सके। रास्तेमें ही चोट खाकर ये लोग लौट पड़े।

इस दुर्घटनासे सामूहिक सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेका एक यह भी अवसर हाथसे चला गया। इससे स्पष्ट हो गया कि सामूहिक सविनय अवज्ञाके योग्य शान्त वायुमण्डल अभी तक नहीं उपस्थित हुआ है। यह कहना उचित नहीं है कि बारडोलीका वायुमण्डल अवश्य शान्त रहेगा। इसलिये बम्बईकी दुर्घटनाके होनेपर भी सविनय अवज्ञा आरम्भ की जा सकती है। यह असम्भव है। न तो बम्बईकी ही गणना अलग की जा सकती है और न बारडोलीकी ही। ये एक ही वस्तुके अंग हैं। मलाबारको अलग करना संभव था। मालेगांवकी उपेक्षा करना संभव था। पर बंबईकी उपेक्षा करना कठिन है।

असहयोगी इस दुर्घटनाकी जिम्मेदारीसे बरी नहीं हो सकते। मैं इस बातको स्वीकार करता हूं कि अनेक स्थानोंपर अनेक प्राणोंको संकटमें डालकर भी वे भीड़को समझा रहे थे, दुर्घटनाको रोक रहे थे और अनेक स्थानोंपर उन्हींके कारण कितनोंके प्राण बचे। पर न तो इससे हमलोग सामूहिक सविनय अवज्ञा जारी कर सकते हैं और न इस दुर्घटनाकी जिम्मेदारीसे बरी हो सकते हैं। इस बातको मैं स्वीकार करता हूं कि हमलोगोंने वायुमण्डलको शान्त रखा है। अर्थात् अपनी शान्तवृत्तिसे हमने लोगोंपर काफी प्रभाव डाला और उन्हें हिंसासे रोका। पर जहां हमें पूर्ण सफलता मिलनी चाहिये थी वहां हम असफल हुए। कलका दिन हमारी परीक्षाका दिन था। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार हमपर युवराजके शरीरकी रक्षाकी जिम्मेदारी थी। यदि हमलोगमेंसे किसीने एक भी अंग्रेजपर हाथ छोड़ा

उसे आहत किया तो हमारी प्रतिज्ञा अवश्य भंग हो गई। मैं अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीको भी टाल नहीं सकता। इस हिंसा तथा मारपीटकी सबसे अधिक जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। मैं ही इसका कारण हूं। मैं देखता हूं कि लोगोंके हृदयोंमेंसे हिंसाकी प्रवृत्ति निकाल देनेकी मुझमें पूर्ण योग्यता नहीं है। मुझे इसके लिये अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये। मैं इस संग्रामको पूर्णतया धार्मिक मानता हूं। उपवास और प्रार्थनामें मेरा विश्वास है। आजसे मैं प्रति सोमवारको २४ घंटेका उपवास व्रत तबतक करूंगा जब तक स्वराज्य नहीं प्राप्त होगा।

कार्यकारिणी सभाको अपना ध्यान इस ओर आकृष्ट करना होगा और इस घटनाके आधारपर यह निर्णय करना होगा कि जबतक जनतापर पूर्ण अधिकार हम न कर लें क्या सामूहिक सविनय अवज्ञाकी सलाह देना उचित होगा? मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि अभी हमलोग सविनय अवज्ञाके लिये तैयार नहीं हैं। जबतक कि सर्वसाधारणके हृदयमें अहिंसाका भाव पूरी तरह से न व्याप जाय मैं नहीं समझता कि सामूहिक सविनय अवज्ञामें मुझे सफलता मिल सकती है। जिस निर्णयपर मैं पहुंचा हूं उसके लिये मुझे खेद अवश्य है। मैं अपनी अयोग्यताको विवश होकर स्वीकार करता हूं। पर इस तरह अपनी अयोग्यताको स्पष्ट जाहिर कर मैं ईश्वरको अधिक प्रसन्न कर सकूंगा बनिस्बत जो बात मुझमें नहीं है उसे दिखाकर। यदि मैं सरकारके संगठित दमनका साथी नहीं हो सकता तो मैं जनताका असंगठित हिंसाभी नहीं देख सकता। इस अवस्थामें तो दोनोंके नीचे पिसकर मर जाना ही मैं उचित समझूंगा।

—*—

साथियोंके प्रति

(नवम्बर २४, १९२१)

ये पिछले कुछ दिन हमारी अग्नि-परीक्षा के दिन थे, और हमें परमात्माको धन्यवाद देना चाहिये कि हममें से कितने ही लोग उसमें कच्चे नहीं साबित हुए। मेरे आस-पास सोये हुए ये घायल लोग तथा जिन लोगोंकी लाशोंका हाल हमने विश्वस्त सूत्रसे सुना है, इस बातके काफी प्रमाण हैं। कई कार्यकर्त्ताओंने शान्ति स्थापित करनेके तथा अपने उन्मत्त देशभाइयोंके कोपको शान्त करनेके कार्यमें अपनी जानें गवाँई हैं, हाथ—पैर गँवाये हैं, और गहरी चोटें खाई हैं। ये मृत्युयें और ये चोटें यह साबित करती हैं कि यद्यपि हमारे अनेक देश भाई भूलकर बैठे हैं तथापि हममें कुछ लोग ऐसे जरूर हैं जो अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये प्राणतक न्यौछावर करनेपर कटिबद्ध हैं। अगर हम सब लोगोंके हृदयमें अहिंसाका रहस्य अच्छी तरह अङ्कित हो गया होता, या थोड़े ही लोगोंने हृदयंगम किया होता, पर दूसरे लोग सिर्फ निरुपद्रवी ही बने रहते तो किसी तरहका खून—खराबी न होती। किन्तु होनहार ऐसा नहीं था। ऐसी हालतमें किसी न किसीको तो स्वेच्छापूर्वक अपना खून बहाना आवश्यक हो है जिसकी बदौलत शान्तिमय वायुमण्डल उत्पन्न हो जाय और जबतक खून-खराबी कर बैठनेवाले दुर्बल लोग हमारे अन्दर मौजूद रहेंगे तबतक दूसरे ऐसे कमजोर लोग भी निकले होंगे जो ऐसे लोगोंकी सहायता ढूंढ़ते रहेंगे जो ऐसी मार-काट-की विद्यामें अधिक नि यापुण हैं जिनके पास उसके अधिक

साधन है। इसीलिए तो पारसियों और ईसाइयोंने सरकारकी सहायता माँगी और वह उन्हें मिली भी—यहाँतक कि सरकारने खुल्लमखुल्ला पक्ष लिया और उनको हथियार देकर उलटा खून खराबी करनेमें उत्तेजना दी और उन लोगोंमेंसे किसी एकको भी जान बचानेकी जरा भी परवा नहीं की जो शुरूआतमें तो दरअसल गुनहगार थे, परन्तु पीछेसे पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंके उस क्षम्य कोपके शिकार हो गये थे। इस तरह यह सरकार शान्तिकी रक्षाके लिये नहीं, पर चोट खानेवाले खून-खराबी पर तुले हुए अपने तरफदारोंके उपद्रव जारी रखनेके लिए, खून--खराबी करती हुई अपने नग्न रूपमें नजर आ रही है। हाँ, यह सही है कि ईसाइयोंका क्रोध सकारण था। परन्तु जब वे बे—कुसूर लोगोंकी सफेद टोपियाँ छीनने लगे और अपनी टोपियाँ न देनेवालोंको ठोकने-पीटने लगे, अथवा जब पारसी लोग आत्मरक्षाके लिये नहीं, पर केवल इसलिये कि अमुक मनुष्य हिन्दू व मुसलमान या असहयोगी है, उनपर हमला करने और गोलियाँ झाड़ने लगे, तब सरकारी पुलिस और फौज पत्थर-की तरह खड़ी खड़ी लापरवाही से मुँह ताकती थी। मैं उन दुखी और पीड़ित पारसी और ईसाइयोंको तो क्षमाकर सकता हूं, परन्तु पुलीस और फौजने सरेदस्त तरफदारी करते हुए जो जुर्मके जैसा बरताव किया है, उसकी सफाईका कोई कारण नहीं दिखाई देता।

इसलिये असहयोगी कार्यकर्त्ताओंका तो यही कर्त्तव्य है कि वे सरकार तथा अपने इन भूले भटके देश भाइयोंके हाथोंकी चोटें सहन करें। बस, दंगा-फसादके भावोंको निष्प्राण करनेका यह एक ही रास्ता हमारे लिये खुला है। शीघ्र स्वराज्य प्राप्तिका मार्ग तो यही है कि हम हिंसाके भावों पर

अपना अधिकार कर लें—सो भी अधिक हिंसात्मक उपायोंके द्वारा नहीं बल्कि नैतिक प्रभाव डाल कर, क्योंकि हमें यह सूरजकी रोशनीकी तरह साफ साफ दिखाई देना चाहिये कि हमारे लिये तो पशुबलकी इतनी तैयारी कर लेना और इतनी साधन सामग्री जुटा लेना असम्भव ही है कि जिससे हम इस वर्तमान सरकारके अस्तित्वको मिटा सकें।

कई लोग यह ख्याल करते हैं कि आखिर ठीक उस १७ तारीखको ही यह दंगा फसाद खड़ा हो जानेसे शाहजादेके स्वागतके प्रति जनताका तीव्र रोष जिस प्रकार प्रगट हुआ है उतने कारगर तौरसे वह दूसरे ढंगसे शायद ही होता। इस दलीलसे जितना अज्ञान प्रगट होता है उतनी ही दुर्बलता भी सूचित होती है। अज्ञान तो इस बातका कि हमारा लक्ष्य स्वागतको हानि पहुंचाना नहीं था, और दुर्बलता इस बातकी कि अब भी हम अपने बलके ज्ञानसे संतुष्ट रहनेकी अपेक्षा उसे दूसरोंपर जाहिर करनेके पीछे मरे जाते हैं। मैं हर एक कार्यकर्ताको यह किस तरह समझाऊँ कि ऐसा करके हमने खिलाफत, पञ्जाब और स्वराज सम्बन्धी अपने इस त्रिविध कार्यकी प्रगतिको निश्चितरूपसे पीछे हटा दिया है?

किन्तु यदि कार्यकर्ता लोग अपनी जवाबदेहीको समझकर उसके अनुसार कार्य करें तो अब भी बाजी हाथसे गई नहीं है। हमें बम्बईके उन उपद्रवी लोगोंके हृदयपर अधिकार कर लेना चाहिये, हमें मिल-मजूरोंसे परिचित हो जाना चाहिए। वे या तो सरकारका साथ दें या हमारा अर्थात् या तो मार काटमें शामिल हों या ऐसे उपद्रवोंका सामना शान्तिके साथ करें। इसमें बीचका रास्ता हो ही नहीं सकता। उन्हें हमारे कामोंमें दखल हरगिज न देना चाहिये या तो वे हमारे प्रेमके अधीन हो

जायँ या असहाय होकर संगीनोंका भोग हो जायँ। किन्तु मारकाटके लिये वे अहिंसाके झण्डेका आश्रय नहीं ले सकते। अपना यह सन्देश उन तक पहुंचानेके लिए हमें एक एक मिल मजदूरके पास जाना चाहिए। और उसे अपने संग्रामका रहस्य समझा देना चाहिये। इसी प्रकार हमें दूसरे गुण्डे लोगोंसे भी मिलना चाहिए, उनसे मेल मुहब्बत करना चाहिए और उन्हें इस धर्म-युद्धके धार्मिक भावोंको समझनेमें मदद देनी चाहिये, हम उन्हें भुला नहीं सकते; पर उन्हें अपने सिर पर भी नहीं चढ़ा सकते। हमें तो बस उनके सेवक बन जाना चाहिए।

हम पैबन्द लगी हुई शान्ति नहीं चाहते। हमें तो सरकार-की सहायताके विना, और कभी तो उसकी ओरसे प्रत्यक्ष विरोध होते हुए भी, टिक रहनेवाली शान्तिके इत्मीनानकी जरूरत है। हमें तो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदी इन सबके हृदयोंकी एकताकी जरूरत है। हां, ये आखरी तीन जातियां पहली दो जातियोंका अविश्वास कर सकती हैं और शायद करेंगी भी। इन हालकी घटनाओंने ऐसे अविश्वासको मजबूत बनानेके कारण उपस्थित कर दिये हैं। इस अविश्वासको हटानेके लिये हमारी तरफसे खास तौर पर प्रयत्न होना चाहिये। अगर वे पूरे असहयोगी न बनना चाहते हों, या स्वदेशीको न अपनावें या सफेद टोपी न पहनें तो भी हमें उन्हें परेशान न करना चाहिये। अगर वे हर वक्त सरकारकी ही तरफदारी करें तो भी हमें चिढ़ उठनेकी जरूरत नहीं है। हमें तो निरी प्रेम-भरी सेवाके बलपर ही उन्हें अपना बना लेना है। वर्तमान स्थितिमें यही हमारी आवश्यकता है। यह पसन्द न हो तो दूसरा उपाय है—आपसमें लड़

मरना। और यह पारस्परिक संग्राम भी ऐसी दशामें कि जहां एक तीसरी विदेशी सत्ता कभी एकका और कभी दूसरेका पक्ष लेकर, अपनी सत्ताकी जड़ अधिकाधिक मजबूत करनेके लिये घात लगा कर बैठी हुई है, इस समय तो असंभव ही होना चाहिये।

और जो बात छोटी जातियोंके विषयमें सच है वही सहयोगियोंके विषयमें भी उतनी ही सच है। हमें उनके प्रति भी अधीर न होना चाहिये उनको हरकतें सहन करना चाहिये, अगर हम सरकारके साथ असहयोग करनेके लिये अपनेको स्वतन्त्र मानते हैं तो फिर सरकारके साथ सहयोग करनेकी उनकी आजादीका भी कायल हमें होना चाहिये। अगर हमारी संख्या कम होती और सहयोगी, अधिक संख्याके होनेके कारण हम पर जोरो-जब्र करने लगते तो हम उसे कैसा समझते? अहिंसामय असहयोग ही एक मात्र ऐसा उपाय दुनिय को मालूम है जो अपने विरोधियोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये रामबाण है। और हमारे इस संग्रामका रहस्य इसी बातमें है कि हम अंग्रेजों-सहित अपने हरएक प्रतिपक्षीको इसी उपायसे अपने पक्षमें मिला लें। और यह हम कमजोरसे कमजोरको लेकर बलवान्से बलवान् तक प्रत्येक मनुष्यके प्रति द्वेष भावका त्याग करके ही कर सकते हैं। यह महान् कार्य्य हम उसी अवस्थामें कर सकते हैं जब हम अपने अन्तःस्थित सत्यकी खातिर उन लोगोंका जो उस सत्यको नहीं देख सकते हैं, शिरच्छेद न करें बल्कि उनके लिये खुद मरनेको तैयार हो जायं।

नीतिका बल

(नवम्बर २४, १९२१)

ज्योंही हमसे नीतिका सहारा छूटा कि हमारे धार्मिक जीवनका अन्त हुआ समझिये। धर्म और नीतिमें विरोध हो ही नहीं सकता—जैसे मनुष्य झूठा, निष्ठुर या संयमहीन होते हुए ईश्वरका कृपा-पात्र कभी नहीं हो सकता। बम्बईमें उन असहयोगसे हमदर्दी रखनेवाले लोगोंने नीतिकी मर्यादा तोड़ दी। वे उन पारसियों और ईसाइयों पर टूट पड़े, जो युवराजके स्वागत-समारम्भमें शरीक हुए थे और उन्हें इसका 'मजा चखाने' की कोशिश की। उन्होंने बैर और बदलेको न्योता दिया और वह उन्हें मिला। १७ ता० के बाद तो वह मारकाटकी एक खासी बाजी हो हो गई, जिसमें फायदा तो वास्तवमें किसीका भी नहीं हुआ, हां हानि अलबत्त दोनोंकी हुई।

स्वराज्यका यह रास्ता नहीं है। हिन्दुस्थानको बोलशेविज्म-की जरूरत नहीं। यहांके लोग तो इतने शान्तिप्रिय हैं कि वे अराजकताको सहन ही नहीं कर सकते। वे तो उसीके आगे अपना घुटना टेक देंगे जो 'शान्ति' की स्थापनाके लिये आगे बढ़ेगा। हिन्दुस्थानियोंकी इस मनःस्थितिको आप अस्वीकार नहीं कर सकते। शान्तिके पीछे इस तरह पड़ जाना नेक है या बद, इसकी छानबीनकी जरूरत हमें यहां नहीं। आम तौर पर हिन्दुस्थानके मुसलमान दुनियाके दूसरे मुल्कोंके मुसलमानों-से बिलकुल ही दूसरी तरहके हैं। हिन्दुस्थानके वायुमण्डलमें रहनेके कारण वे अपने बाहरी इस्लामी भाइयोंकी बनिस्बत किसी बातको जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। वे अपनी जानोमालकी

हानिकी छाया तकको बरदाश्त नहीं कर सकते। और हिन्दू लोगोंकी सिधाईकी तो कहावत ही मशहूर है। वह तो प्रायः निरस्कार करनेके लायक है। पारसी और ईसाई भी कलहकी अपेक्षा शान्तिके ही अधिक प्रेमी हैं और धर्मको तो हमने प्रायः शान्तिका एक सहायक साधन ही बना लिया है। हमारी यह मनो दशा जैसे हमारी कमजोरी है वैसे ही हमारा बल भी है।

हमारी इस मनःस्थितिका जो उत्तम भाग है-धार्मिक भाग है उसीका पोषण करना चाहिये। 'धर्मके मामलेमें सख्ती न होनी चाहिये।' क्या हमारे लिये स्वदेशी व्रतका पालन करना, अतएव खादी पहनना धर्म नहीं है? परन्तु अगर दूसरे लोगोंका धर्म यह न चाहता हो कि वे स्वदेशीको अपनावें, तो हमें उन्हें उसके लिये मजबूर न करना चाहिये। ऐसा करके हमने कुरानके विश्वजनीन सिद्धान्तके प्रतिकूल काम किया है और उस सिद्धान्तका यह अर्थ नहीं है कि धर्मको छोड़कर दूसरे मामलोंमें जबरदस्ती की जाय। उस आयतके मानी तो यह है कि जिस मजहबपर हमारी पक्की श्रद्धा हो उसके लिये दूसरोंपर जबरदस्ती करना अगर बुरा है तो उससे कम दरजेके मामलोंमें ऐसा करना तो और भी बुरा है।

इसलिये हम तो अपने प्रतिपक्षियोंकी युक्तियां और दलीलें पेश करके ही समझा सकते हैं और अधिकसे अधिक हम अहिंसात्मक असहयोग उनके साथ कर सकते हैं, जैसा कि सरकारके साथ कर रहे हैं। लेकिन खानगी मामलोंमें हम उनके साथ असहयोग नहीं कर सकते; क्योंकि हम उन मनुष्योंके साथ तो असहयोग कर ही नहीं रहे हैं जो सरकारी काम करते हैं, वल्कि उनकी चढ़ाई उस शासन-प्रणालीके साथ कर रहे हैं। गवर्नरकी हैसियतसे सर जार्ज लाइडको हम

सरकारी काममें मदद देनेसे इनकार कर सकते हैं: परन्तु एक अंगरेज-भाईके नाते हम सर जार्ज लाइडको सामाजिक सेवा-ओंसे वंचित कभी नहीं कर सकते।

मुझे यह कहते दुःख होता है कि यह शरारत खुद हिन्दुओं और मुसलमानोंमें ही पैदा हुई। लोग परस्पर दिक करते थे, जब्रन् रोकते थे। हां, मुझे मंजूर है कि मैंने हमेशा ही इन बातोंकी उतने जोरके साथ निन्दा नहीं की जितनी कि मैं कर सकता था। जब कि यह प्रवृत्ति आम तौरपर फैलने लगी तब मैं उससे अपनेको अलहदा कर सकता था। पर हमने शीघ्रही अपने मार्गको सुधारा। हम अधिक सहनशील हुए। परन्तु सूक्ष्म रूपसे जबरदस्ती रोक-थाम अभी बाकी ही थी। मैंने इसे चलने दिया—सोचा था कि यह आप ही अपनी मौत मर जायगी। परन्तु बम्बईमें मैंने देखा कि वह मरी नहीं थी। १७ ता० को तो उसने बड़ाही उग्र रूप धारण कर लिया था।

हमने अपने हाथों अपने पांव पर कुल्हाड़ी मार ली। हमने खिलाफतके कामको और उसके साथ ही पञ्जाब और स्वराज्य-के कामको नुकसान पहुंचाया। अब हमको अपनी भूल सुधा-रनी होगी और छोटी छोटी जातियोंको अच्छी तरह यकीन दिलाना होगा कि हम उनको इस तरह जरा भी दिक न करेंगे। अगर ईसाई लोग हैट लगाना और अंगरेज बनकर रहना पसन्द करते हैं तो उन्हें ऐसा करनेकी आजादी होनी चाहिये। अगर पारसी अपने फेंट ही पहनना चाहें तो उन्हें ऐसा करनेका हक है। अगर वे दोनोंको सरकारके साथ रहनेमें ही अपना हित समझते हों, हम उन्हें सिर्फ उनकी तर्क-शक्तिकी ही आराधना करके उनकी गलतीसे विमुख कर सकते हैं, उनको ठोक-पीट

कर नहीं। जितना ही अधिक जबरदस्तीसे रोकनेका प्रयत्न किया जायगा उतना ही अधिक हम सरकारको उसकी रक्षाका मौका देंगे, क्योंकि हमारी बनिस्बत सरकारके पास जब्र रोकनेका साज सामान अधिक कारगर हैं और हमारे लिये सरकारसे बढ़कर जब्र रोकनेका प्रयत्न करना भारत-माताको अबसे भी अधिक गुलामीमें जकड़ना है।

स्वराज्यका अर्थ है—हर एकको आजादी मिले,—छोटेसे छोटे लोग भी अपनी मर्जीके मुताबिक चलें और रहें—उनकी स्वाधीनतामें किसी तरहसे बलपूर्वक हस्तक्षेप न किया जाय। और यह अहिंसात्मक असहयोग स्वतन्त्र लोकमत तैयार करने और उसको कार्य्यरूपमें परिणत करनेका ही उपाय है। यह स्पष्ट ही है जब देशमें पूर्ण मत-स्वातन्त्र्य होगा तब बहुमतके अनुसार काम चलेगा। यदि हमारी संख्या कम हो तो जबरदस्ती रोके जानेपर भी हम अपने धर्मपर आरूढ़ रहकर सच्चे धर्मनिष्ट सिद्ध हो सकते हैं। हजरत मुहम्मद बहुमतके दबावको मानकर भी अपने धर्मपर मजबूत बने रहे और ज्योंही बहुमत उनकी ओर हुआ उन्होंने अपने अनुयायियोंपर यह प्रगट कर दिया कि "मजहबके मामलेमें जोरोजब्र न होना चाहिये।" अब हमें चाहिये कि न तो जबानसे और न शरीरसे जोरोजब्र करके हजरत मुहम्मदके उपदेशके खिलाफ चलें और अपनी ही बेवकूफीसे अपनी प्रगतिकी गाड़ीको उलटे रास्ते ले जावें।